स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला ६ठा पुष्प

कूपीपक्व रस-निर्माण विज्ञान

लेखक व भाषाकार—

हरिशरणानन्द वैद्य

प्रथम संस्करण २००० अप्रैल १९४१ मूल्य १०)

समर्पण

जिन्होंने प्राचीन रस ग्रन्थोंके अनुसन्धानमें लाखों रुपया पानीवत् वहाकर अप्राप्यग्रन्थोंको प्राप्त किया और उन्हें महान् परिश्रमके साथ प्रकाशितकर लुप्तप्राय रस शास्त्रके बहुत बड़े अंशका जीर्णोद्धार किया। जिनकी उन कृतियोंका आश्रय पाकर मैं इस क्षुद्र ग्रन्थका संकलन कर पाया हूं। उन्हीं श्रद्धेय—

यादवजी त्रिविक्रमजी आचार्य, बम्बई

के

करकमलोंमें

धन्यवाद

श्रीयुक्त पं० प्रवर श्रीधर मायाधारी जी
शास्त्री आयुर्वेदाचार्य तथा पण्डित
युगलकिशोर जी शास्त्री
अपना
अमूल्य समय देकर ग्रन्थके प्रूफ संशोधन
का महान् कार्य करते रहे हैं इसके
लिए इनका अत्यन्त आभार
मानता हुआ धन्यवाद
करता हूं।

हरिशरणानन्द

उपोद्‌घात विषय सूची

दूसरा अध्याय

कूपीपक्वरस-निर्माण ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

शास्त्रोक्त कूपीपक्व रसोंकी अकाराद्यनुक्रम सूची ।

मुद्रक व प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य,
पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्किट अमृतसर

रसोंकी रोगानुक्रम सूची

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

रत्ननाम पृष्ठ संख्या

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

रसनाम **पृष्ठ संख्या**

प्राक्कालीन रसायन-विद्याका इतिहास

—————.—०—.—————

चीन विचारके विद्वानोंकी धारणा है कि आयुर्वेदका प्रादुर्भाव जिस तरह ब्रह्माजीसे हुआ इसी तरह रस-तन्त्रका आविर्भाव भी शिवजीके द्वारा हुआ। यह शिवजी कौन थे और कब हुए? इसका प्राक्-इतिहास नहीं मिलता। हां, पुराणोंके आधार पर इन्हें त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) में से एक देव माना जाता है और इनका प्रादुर्भाव सृष्टिके आरम्भमें हुआ बताया जाता है।

कुछ समयसे प्राचीन समयके इतिहासकी बड़ी बारीकीसे छान-बीन हो रही है। वेदोंसे लेकर पुराणों तकके रचनाकालको उन्हीं ग्रन्थोंके भीतर दिये प्रमाणों, रचना-शैलियों तथा अनेक और आधारों द्वारा उनका समय जाचा जारहा है। इससे भिन्न प्राक्कालीन ध्वसावशेषोंकी खुदाईमें प्राप्त शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अन्य वस्तुओं के आधारों पर इन दोनोंके समयका

मिलान करनेसे इतनी अधिक बातें ढूंढी गयी हैं, जो वेद, ब्राह्मण, दर्शन, पुराण आदि ग्रन्थोंके समय को ठीक-ठीक निर्धारित करती है। प्राप्त शिलालेखों, ताम्रपत्रों में जो राजाओं के नाम तथा उनकी वंशावली मिली है, उनसे पुराणों-में दी हुई अनेक वंशावली कहीं-कहीं तो पूरी-पूरी मिल गयी है, कहीं पूर्वापर-सम्बन्धको मिलाती है। जिन व्यक्तियोंको इस तरहके तुलनात्मक इतिहासके अध्ययनका शौक हो उन्हें श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार-रचित 'प्राचीन भारतीय इतिहास की रूपरेखा' को अवश्य पढ़ना चाहिये।

किसी बातकी सचाईको जानना हो तो उसे किस तरह मालूम किया जाय, किस तरह देखा तथा समझा जाय? इसको मालूम करने, देखने और समझनेकी भिन्न-भिन्न विधियां हैं। किसी बातकी वास्तविक स्थितिको जाननेके लिए प्राचीन प्रमाण और आधुनिक पुरातत्त्व-सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्रीको एकसाथ मिलाकर अच्छी तरह विचार करना चाहिये, और इतिहास-प्रमाणसे पुरातत्त्व-प्रमाणके घटना-कालका सम्बन्ध खोजके साथ जानना चाहिये तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धको मिलाकर अच्छी तरह देखना और समझना चाहिये; तभी असली तथ्य तक पहुंचा जा सकता है।

हम यहां पर यथाशक्ति उक्त अनुसन्धानपूर्ण मार्गका अनुसरण कर रस-तन्त्रकारोंके समयकी खोज करेंगे और यह दिखानेकी चेष्टा करेंगे कि आदि रसतन्त्रकर्त्ता कब हुए और उनकी परम्परा कबसे चली?

रस-तन्त्र या रस-विद्या क्या है?

रस नाम पारदका है। पारद द्रवरूप है। सम्भव है, इसी आधार पर इसकी रस-संज्ञा पड़ी हो। जिन ग्रन्थोंमें पारदके योगसे अल्प-मूल्य धातुओंको चांदी, सोना जैसी मूल्यवान् धातुओंमें बदला जा सकता हो तथा जिस पारदके योग-से ऐसी औषधें तैयार की जाती हों, जिनसे जरा-व्याधिका विनाश होता

हो उन ग्रन्थोंका नाम रस-तन्त्र है, और इसका ज्ञान रस-विद्या कहाता है। रस-विद्याका प्राचीन नाम रसायन-विद्या या रसाङ्कुशी-विद्या भी है।

इस विद्याका आरम्भ कब हुआ, कैसे हुआ और इसको जाननेवाले कौन-कौन हुए? इन बातोंका उत्तर पानेके लिए हमें सर्व-प्रथम पारदका पूर्वापर-इतिहास अवश्य जानना चाहिये। इसका इतिहास जान लेनेपर रस-विद्याके जाननेवालोंका समय ढूढना कठिन नहीं। नाटकके पात्रका समय मिल जाय तो नाटक-रचयिताका समय आसानी से निकाला जा सकता है। ऐसे अवसरपर कल्पनाको लम्बी उड़ान लेनेका मौका नहीं मिलता। इसी-लिए हम पाठकोंको सर्व-प्रथम पारदकी खोज करते हुए अपने सर्व-मान्य ग्रन्थ वेदके भीतर ले जायेंगे। फिर वहासे पुरातत्त्व-अनुसन्धानकर्ताओंकी खोजोंके स्थान तक पहुचायेंगे, ताकि पाठक वस्तुस्थितिको भली भान्ति जान सकें।

वेद और पारद

वेद आर्य-जातिके सर्व-प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेदोंको यहांका धार्मिक जगत् नित्य, अपौरुषेय मानता है और साथही यह कहता है कि यह वेद समस्त विद्याओंका भाण्डार हैं, हरएक विद्याका बीज इनमें विद्यमान है। इसमें कोई सशय नहीं कि वेदको ससारके समस्त ऐतिहासिक विद्वान् अतिप्राचीन रचना-ग्रन्थ मानते है, परन्तु वह इसे नित्य, अपौरुषेय नहीं मानते। उनका मत है कि मानव-सभ्यताका विकास आजसे लगभग १५ सहस्र वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ और उसका विकास धीरे-धीरे होता चला आरहा है। उसके ४-५ सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर आर्य-ऋषियोंने अपने व्यवहृत ज्ञान-विज्ञानको वाङ्मयरूप देना आरम्भ किया, वह आजसे छ.-सात सहस्र वर्ष पूर्व सुश्रंखलित हुआ। जिस वाङ्मयरूपको उन्होंने सुश्रृङ्खलित किया, वह ऋचाए आर्यजातिमें वेद नामसे सगृहीत ग्रन्थ हैं। इन वेदोंको विचारपूर्वक पढ़ने से उस पूर्व-कालकी सभ्यता और समाजका अच्छी तरह निदर्शन होता है तथा उस समय जिन-जिन वस्तुओंका उन आर्यपुरुषोंको ज्ञान हुआ था, उन सबका उनमें काफी उल्लेख मिलता है।

इस वातको तो वड़े-वड़े विदेशी विद्वान् भी मानते है कि वैदिक सभ्यता पूर्वकालमें अन्य जातियोंसे बढ़ी-चढ़ी थी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इस सभ्यताकी उत्पत्तिका कोई समय नहीं था—यह स्वत-सिद्ध, नित्य, अपौरुषेय है। वेदोंकी रचनाके समयको पाश्चात्य विद्वान् ही नहीं, अब तो आर्य-विद्वान् भी ऐतिहासिक-दृष्टिसे मानने लगे है। उनमें से लोकमान्य वाल गगाधर तिलक, श्री अविनाशचन्द्र दत्त, श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य आदि अनेक इतिहासज्ञ अग्रणी है। इनमेंसे जिसने अवतक जो युक्तियां दी हैं उनमें से लोकमान्य तिलककी युक्तियोंको अधिक विश्वसनीय समझा जाता है। हम उन्हींकी दी गयी युक्तियोंको आधार मानकर अपने विषयका विवेचन करेंगे।

आर्यजाति अपने पूर्वजोंसे कव पृथक् हुई और इसने अपनी सभ्यताकी पृथक् नींव कव डाली, इसने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कव स्थापित किया? इस समयको उक्त इतिहासज्ञ आजसे कम-से-कम सात-साढ़े सात सहस्र वर्ष पूर्व मानते है। अर्थात् वैदिक सभ्यताका स्वतन्त्र रूपेण आरम्भ कम-से-कम आजसे १० सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। ऋग्वेदके अनेक मन्त्र उस समयके अपने उन पूर्वजों के सम्वन्धको वहुत अच्छी तरह सूचित करते है, तथापि हम उनसे इनकी सभ्यताको पूरी तरह मिला नहीं पाते। हा, उनके लगावकी सास्कारिक सम्पत्ति का अवशिष्ट चिह्न इनमे अवश्य पाते है। वह चिह्न कौनसे हैं? हम इनके कुछ उदाहरण ऋग्वेदके दो-तीन मन्त्रों द्वारा देंगे।

ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें १०१वें सूक्तके १ से ११ तक मन्त्र ऐसे हैं, जिन के अर्थ आजसे कुछ समय पूर्व तक विद्वान् नहीं लगा सके थे। सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेदके भाष्यमें स्पष्टतया स्वीकार किया है कि इन मन्त्रोंका अर्थ समझ-में नहीं आता।† इनसे अतिरिक्त ऋग्वेदके और भी ऐसे मन्त्र है, जिनका ठीक-ठीक अर्थ कुछ काल पूर्व विना पूर्वापर-इतिहास जाने नहीं लगता था। यथा —

---

† देखो हितचिन्तक प्रेस वनारस का छपा ऋग्वेद, भूमिका पृष्ठ ७

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिब्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृल्हा अशेरन् ॥१॥
अभिब्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥३॥

ऋग्वेद, मण्डल १, अध्याय २०, सूक्त १३४

यह मन्त्र† असुरोंके साथ युद्धके सम्बन्धमें दिये गये हैं । इसमें जो रोदसी शब्द आया है, उसका अर्थ प्राचीन विद्वानोंकी समझमें नहीं आता था । वास्तवमें रोदसी शब्द सुमेर अक्कादके लिए आया है । इसी तरह अभिब्लग्य शब्दका अर्थ भी नहीं लगता था । यह शब्द वास्तवमें भिब्लग्य का रूप है जो विब्लिक जातिका सूचक है । इसी तरह वैलस्थान शब्दका अर्थ नहीं लगता था । वास्तवमें वैलस्थान बेबिलोन अर्थात् असुरोंके निवास-स्थानका सूचक है ।

इसी तरह चिद् अद्रि शब्दका अर्थ नहीं लगता था । इसका अर्थ है उरके समीपका पर्वत इसी तरह शीर्षा शब्दका अर्थ नहीं लगता था, शीर्षाका अर्थ है शीरके लोग या सैमेटिक लोग । इसी तरह बट-उर इणापदा का अर्थ स्वर्गीय उच्च प्राकार परिवेष्टित उर देशके राजा । महावटूरिणापदा शब्दसे महान् बट-उर इणापदा अर्थात् महान् उरका राजा अर्थ है । अवासे शब्दसे अवजातिके लोग । मघवन् शब्दसे अवन नामक नगरके सम्राट्, शर्धोसे कैल्डियाके राजा, वैलस्थानके अर्मके शब्दसे बेबिलोन नगरके अर्मियन् , महाबैलस्थे अर्मकेसे वैबिलोन राज्यके अर्मियन् अर्थ निकलता है । इसीतरह ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोंमें उर, वेविलोन, किश, कैल्डिया, अवन, सूसा, सुमेर, अक्काद आदि प्रदेशों में जो राजा, महाराजा हुए है और जिन्होंने आर्योंका युद्धमें पक्ष या विपक्ष लिया उन सबके नाम

† नागरी-प्रचारिणी-पत्रिकामें दिये डाक्टर प्राणनाथ, डी.एस-सी. के एक लेखसे ।

इस बातको तो बड़े-बड़े विदेशी विद्वान् भी मानते हैं कि वैदिक सभ्यता पूर्वकालमे अन्य जातियोसे बढ़ी-चढ़ी थी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इस सभ्यताकी उत्पत्तिका कोई समय नहीं था—यह स्वत-सिद्ध, नित्य, अपौरुषेय है। वेदोंकी रचनाके समयको पाश्चात्य विद्वान् ही नहीं, अब तो आर्य-विद्वान् भी ऐतिहासिक-दृष्टिसे मानने लगे है। उनमें से लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, श्री अविनाशचन्द्र दत्त, श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य आदि अनेक इतिहासज्ञ अग्रणी है। इनमेंसे जिनने अबतक जो युक्तियां दी हैं उनमें से लोकमान्य तिलककी युक्तियोंको अधिक विश्वसनीय समझा जाता है। हम उन्हींकी दी गयी युक्तियोंको आधार मानकर अपने विषयका विवेचन करेंगे।

आर्यजाति अपने पूर्वजोंसे कब पृथक् हुई और इसने अपनी सभ्यताकी पृथक् नींव कब डाली, इसने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कब स्थापित किया ? इस समयको उक्त इतिहासज्ञ आजसे कम-से-कम सात-साढ़े सात सहस्र वर्ष पूर्व मानते हैं। अर्थात् वैदिक सभ्यताका स्वतन्त्र रूपेण आरम्भ कम-से-कम आजसे १० सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। ऋग्वेदके अनेक मन्त्र उस समयके अपने उन पूर्वजों के सम्बन्धको बहुत अच्छी तरह सूचित करते है; तथापि हम उनसे इनकी सभ्यताको पूरी तरह मिला नहीं पाते। हा, उनके लगावकी सांस्कारिक सम्पत्ति का अवशिष्ट चिह्न इनमें अवश्य पाते है। वह चिह्न कौनसे है ? हम इनके कुछ उदाहरण ऋग्वेदके दो-तीन मन्त्रों द्वारा देंगे।

ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें १०१वें सूक्तके १ से ११ तक मन्त्र ऐसे हैं, जिन के अर्थ आजसे कुछ समय पूर्व तक विद्वान् नहीं लगा सके थे। सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेदके भाष्यमें स्पष्टतया स्वीकार किया है कि इन मन्त्रोंका अर्थ समझ में नहीं आता।† इनसे अतिरिक्त ऋग्वेदके और भी ऐसे मन्त्र है, जिनका ठीक-ठीक अर्थ कुछ काल पूर्व बिना पूर्वापर-इतिहास जाने नहीं लगता था। यथा —

† देखो हितचिन्तक प्रेस बनारस का छपा ऋग्वेद, भूमिका पृष्ठ ७

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिद्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृल्हा अशेरन् ॥१॥
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥३॥

ऋग्वेद, मण्डल १, अध्याय २०, सूक्त १३४

यह मन्त्र† असुरोंके साथ युद्धके सम्बन्धमें दिये गये हैं । इसमें जो रोदसी शब्द आया है, उसका अर्थ प्राचीन विद्वानोंकी समझमें नहीं आता था । वास्तवमें रोदसी शब्द सुमेर अक्कादके लिए आया है । इसी तरह अभिव्लग्य शब्दका अर्थ भी नहीं लगता था । यह शब्द वास्तवमें भिव्लग्य का रूप है जो विब्लिक जातिका सूचक है । इसी तरह वैलस्थान शब्दका अर्थ नहीं लगता था । वास्तवमें बैलस्थान बेबिलोन अर्थात् असुरोंके निवास-स्थानका सूचक है ।

इसी तरह चिद् अद्रि शब्दका अर्थ नहीं लगता था । इसका अर्थ है उरके समीपका पर्वत इसी तरह शीर्षा शब्दका अर्थ नहीं लगता था, शीर्षाका अर्थ है शीरके लोग या सैमेटिक लोग । इसी तरह वट-उर इणापदा का अर्थ स्वर्गीय उच्च प्राकार परिवेष्टित उर देशके राजा । महावदूरिणापदा शब्दसे महान् वट-उर इणापदा अर्थात् महान् उरका राजा अर्थ है । अवासे शब्दसे अवजातिके लोग । मघवन् शब्दसे अवन नामक नगरके सम्राट्, शर्धोसे कैल्डियाके राजा, वैलस्थानके अर्मके शब्दसे बेबिलोन नगरके अर्मियन् , महावैलस्थे अर्मकेसे बैबिलोन राज्यके अर्मियन् अर्थ निकलता है । इसीतरह ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोंमें उर, बेबिलोन, किश, कैल्डिया, अवन, सूसा, सुमेर, अक्काद आदि प्रदेशों में जो राजा, महाराजा हुए है और जिन्होंने आर्योंका युद्धमें पक्ष या विपक्ष लिया उन सबके नाम

† नागरी-प्रचारिणी-पत्रिकामें दिये डाक्टर प्राणनाथ, डी.एस-सी. के एक लेखसे ।

आते हैं। कुछ अन्य मन्त्रोंमें जो राजाओंके नाम आये हैं, इतिहाससे उनका समय निकाल लिया गया है।

उदाहरणार्थ ऋग्वेदमें तारक्ष शब्द आया है। सुमेर-अक्कादके इतिहासमें (ईसा से ३४००-३१०० वर्ष पूर्व) यह आवसिका राजा था, इसका नाम तारसि था। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें **उर्मिणा राजा देवः समुद्रियः** आया है। सुमेर-अक्काद के इतिहासमें (ईसासे ३००० वर्ष पूर्व) उर्निना नामका राजा हुआ। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें अण्डामान शब्द आया है यह सुमेरियन-अक्कादके इतिहासमें (ईसासे ३०००-२९०० वर्ष पूर्व) अन्तामान नामसे राजा हुआ। इसी प्रकार उक्त देशों के स्थानों तथा नगरोंके नाम भी ऋग्वेदमें आये है। ऋग्वेदके इपपुरका सुमेरा अक्काद के इपिपुरसे अभिप्राय है। इसी तरह **उमाचा ये सुहवासो** मन्त्र का उमा शब्द सुमेर अक्कादके उम्मा नामक नगरसे सम्बन्धित है। इसी तरह 'अवन्' शब्द सूसाके पासके अवन् नगरका द्योतक है। अवनके राजाको वहाके लोग मह्-अवन—मवनकी उपाधिसे विभूषित करते थे। वही मह्अवनका रूपान्तर वेद-मन्त्रों में मघवन् शब्द आया है। इसी तरह उर् शब्द वेदका वेविलोन के उर् नामक नगरको वतलाता है। इसी तरह ऋग्वेदके तुतुर्वणि तुतुर शब्द वेविलोनियाके एक व्यापारिक नगर तुतुरको वताता है। इसी प्रकार ऋग्वेद का शूप शब्द ईरानका सूसा है, शिप्र शब्द सुमेर अक्कादका सिप्पर् है। इस तरह इतिहासज्ञोंने उन देशोंके प्राचीन भूगोल, भाषा, साहित्यके आधारपर जो कुछ खोजा है उससे वेद-मन्त्रोंके जर्फरी, तुर्फरी आदि शब्दोंका अर्थ भी अब निकल आया है और इनका पूर्वापर-सम्वन्ध भी जान लिया गया है। इनसे वेदोंके समयका और इनके पूर्वजोंके निवास तथा सम्वन्धका वहुत कुछ स्पष्टीकरण हो जाता है। वैदिक सभ्यता जवसे आरम्भ हुई वह उस समयसे तीन-चार हजार वर्ष तक क्रमसे विवर्द्धित होती चली गयी, उसीका वर्णन वेदकी ऋचाओं में हुआ है। समस्त वेदोंकी ऋचाए एक समयकी नहीं हैं। अन्य वेदोंकी अपेक्षा ऋग्वेदकी ऋचाए सवसे प्राचीन हैं, जिसके लगभग ७—८ सौ वर्ष वाद कृष्ण-

यजुर्वेद और सामवेदकी ऋचाओंकी रचना हुई, ऐसा माना जाता है। कृष्ण-यजुर्वेदकी ऋचाओंकी रचना इनके दो-चार सौ वर्ष बादकी बतायी जाती है। अथर्ववेदकी ऋचाए तो इनसे कोई ८—६ सौ वर्ष बाद की सिद्ध होती हैं। इसी तरह वेदका रचना-काल आजसे लगभग ५५०० वर्ष पूर्व समाप्त हो जाता है। वेदोंको भले ही कोई इससे भी अधिक प्राचीन सिद्ध करता रहे या अनादि मानता रहे, हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं। हमें तो इन वेद-मन्त्रोंमें यह दिखाना है कि इनके किसी मन्त्रमें पारेका भी उल्लेख है या नहीं।

वेद-ज्ञाताओंसे छिपा नहीं कि ऋग्वेदमें सोना, चांदी और तांबा इन तीन धातुओंका उल्लेख आया है। कुछ मन्त्रोंमें 'आयस' शब्द आया है जो निरुक्तकार तथा सायणादि भाष्यकारोंके मतानुसार ताम्रके लिए या धातुके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इसके बाद यजुर्वेदमें 'कृष्ण आयस'का उल्लेख आया है। वहां पर 'कृष्ण-आयस' शब्द लोहेके लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके बाद अथर्ववेदमें इन्हीं धातुओं तथा कांसा, पीतल आदि मिश्रित धातुओंका उल्लेख मिलता है, परन्तु वहां भी पारद का या किसी अन्य द्रवरूप धातुका उल्लेख नहीं आया है। इससे ज्ञात होता है कि वेदोंके समयतक पारदका ज्ञान नहीं हुआ था—यह अवश्य उस समयके बहुत पीछेकी चीज है। यदि पारा उस समयकी वस्तुओंमें से होता तो इसको बीज-रूपसे मिलना ही चाहिये था। ब्राह्मण, गृह्यसूत्र और दर्शनका समय, उस वेद-कालके पश्चात् उनके ऋचाओंकी व्याख्याओंका समय आता है इस समयको अबसे चार साढ़े चार सहस्र वर्ष पूर्वसे आरम्भ हुआ माना जाता है। इस समयके लिखे ग्रन्थोंमें भी पारेका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके लगभग १३-१४ सौ वर्ष बाद दर्शन-ग्रन्थों और उनसे सम्बन्धित पतञ्जलि, आत्रेय, पुनर्वसु आदि ऋषियोंका समय आता है। दर्शन-ग्रन्थोंका समय अबसे लगभग ३ हजार वर्ष तथा आत्रेयादिका समय अबसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व माना जाता है। आत्रेयके समकालीन या कुछ थोड़ा पीछे सुश्रुत का समय माना जाता है। दर्शन-ग्रन्थोंमें भी पारेका उल्लेख नहीं मिलता। न पुनर्वसु आत्रेय

कृत 'आत्रेय-सहिता' में इसका पता लगता है । आत्रेय-सहिताका प्रति-सस्कार आत्रेयके कोई ५०० वर्ष बाद (सन् ईस्वी ७८) कश्मीरके राजा कनिष्कके राजवैद्य चरकके द्वारा हुआ । जो इस समय 'चरक-सहिता'के नामसे प्रख्यात है । वेदोंमें चार-लोह (धातु) का वर्णन आया है । चरकमें स्वर्ण, चादी, ताम्र, लोह और वग पाच धातुओंका उल्लेख आया है । परन्तु 'सुश्रुत-सहिता' में वग†, सीसा, ताम्र, रजत, कृष्णलोह और स्वर्ण इन छ धातुओ का वर्णन आया है । इनके अतिरिक्त लेपवर्ग की औषधोंमें एक स्थानपर पारद‡का भी उल्लेख मिलता है ।

कहते है कि जिस तरह चरकने आत्रेय-सहिताका प्रति-सस्कार किया था, उसी-तरह सुश्रुत-सहिताका प्रति-सस्कार बौद्ध-धर्मानुयायी आचार्य नागार्जुन ने किया था । नागार्जुन दो हुए है—एक ईस्वी सन् १७२-१८०में, दूसरे ईस्वी सन् ७८०-७९०में । दोनों ही नागार्जुन बौद्ध-धर्मानुयायी थे, दोनोही आयुर्वेद और रसतन्त्रके आचार्य थे, परन्तु सुश्रुत-सहिताका प्रति-सस्कार करनेवाले प्रथम नागार्जुन थे, ऐसा माना जाता है । आत्रेयको पाच धातुओं का पता लगा था सुश्रुतने छ धातु और सातवें पारेका पता लगाया, परन्तु पारेका लेपनीय वर्गकी औषधमें जो उपयोग दिया गया है, हमतो समझते है कि वह आरम्भिक उपयोग की सूचना मात्र है ।

कुछ व्यक्तियोंका विचार है कि प्रथम नागार्जुन रस-तन्त्रके आचार्य थे, उन्होंने ही सुश्रुतका प्रति-सस्कार किया । यदि ऐसा होता तो पिष्टिवर्गकी औषधोंमें जहा पारेका साधारण उपयोग आया है वह वहा इसके अन्य विशेष उपयोग भी बतलाते यदि वह पारदके दैहिक उपयोगका अनुभव रखते होते—किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । इससे ज्ञात होता है कि सुश्रुतके प्रति-सस्कारकर्ता नागार्जुन रसतन्त्रके आचार्य नहीं कोई और ही होंगे ।

---

† त्रपु सीस ताम्र रजत कृष्ण लोह सुवर्णानि । सुश्रुत

‡ रक्त श्वेत चन्दन पारदश्च काकोल्यादि क्षीर पिष्टिश्च वर्ग । सु.चि.अ. २५

उक्त तर्क युक्तियुक्त नहीं, क्योंकि प्रति-सस्कारका अर्थ क्या है ? यह बात सशय करनेवाले नहीं समझते। प्रथम तो सुश्रुत रस-वादका ग्रन्थ न था। दूसरे प्रति-संस्कारकर्ताको यह अधिकार नहीं होता कि वह प्राचीन लेखकके ग्रन्थमें अपने अभिमतको दे। प्रति-सस्कारकर्ता तो इतनाही करनेका अधिकारी है कि वह सुश्रुतने जो कुछ कहा अथवा वह अपने शिष्य-सम्प्रदाय-को आयुर्वेद—सम्बन्धी—जो दे गये उसीको ढूढ-खोजकर सग्रह करे। उस समय प्रकाशनका बिल्कुल प्रबन्ध न था, और लेखन-सामग्रीकी भी कमी थी—बड़े कठिन साधनोंसे ताड़-पत्रों, भोज-पत्रों, ठीकरों, चर्मवस्त्रों पर लिखनेकी परिपाटी थी। इसके अतिरिक्त सुश्रुतके अनुयायी देश—देशान्तरमें फैले हुए थे। अतः नागार्जुनको उस समय सुश्रुत-सम्प्रदायवालोंसे सुश्रुत-सहिता-की जो सामग्री उपलब्ध हुई उसको उन्होंने सङ्कलित किया। ग्रन्थ-प्रति-सस्कारकर्त्ताका इतना ही काम था कि उस सुश्रुत-सहिताके जो बिखरे अश थे उन सबको ढूढ-खोजकर एकत्र कर दे। इसीलिए प्रति-सस्कृत ग्रन्थमें वही बातें आई है, जिनका ग्रन्थकारने स्वय वर्णन किया है और इसमें वही मत, वही सिद्धान्त और उन्हीं द्रव्योंका वर्णन होना चाहिये, जिनका वर्णन स्वय ग्रन्थकार द्वारा हो चुका हो। हमारी यह धारणा है कि रसतन्त्रके आचार्य प्रथम नागार्जुन ही थे। वह बौद्ध-भिक्षु थे, इसलिए अनेक देश-देशान्तरोंका भ्रमण करते रहे। उन्होने ही अपने समयमें आकर जब सुश्रुत-सहिताको छिन्न-भिन्न अवस्थामें देखा, उन्हें अपने भ्रमण-कालमें भिन्न-भिन्न वैद्योंके पास जो मसाला मिलता गया उसे वह संग्रह करते चले गये अन्त में उन्होंने इसे सहिताका रूप दे दिया।

इस तरह हम अबसे ७ हजार वर्ष पूर्वके ग्रन्थ वेदोंसे पारेकी खोज करते-हुए ईसा से ५०० वर्ष पूर्व तक आते है, तब कहीं उसका पता सर्व-प्रथम सुश्रुत-सहितामें लगता है। सुश्रुत-सहितामें दी हुई लेपनकी वस्तुओंमें पारेका उपयोग वैसा ही आरम्भिक उपयोगका द्योतक है, जैसा किसी नई वस्तुका होना चाहिये।

पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजोंके प्रमाण

पारेकी खोजमें हम वेदोंसे चलकर चिकित्सा-शास्त्रके प्राचीन ग्रन्थों तक जव पहुचते है, तव हमें सुश्रुत-संहितामें उसका पता लगता है। यह तो हुआ ग्रन्थ-प्रमाण। अव इतिहास-प्रमाण से भी इसका पता लगाना चाहिये कि ससारमें पारदकी उत्पत्ति और निकास कहासे और कव से है?

"पृथिवी पर मानव-वशका कोई पूर्व-पुरुष एकाएक अवतरित हुआ और उससे मानव-वश चला तथा वह पूर्व-पुरुष समस्त ज्ञान-विज्ञानको साथ लाया, उसने अपने वशमें एकाएक उस ज्ञान-विज्ञानका प्रसार किया" ऐसा विश्वास करना या मानना अव विचार-श्रेणीके वाहर की वात है। इस समय जव यह देखा जाता है कि उस पूर्व-पुरुषकी सन्तानको विना सिखाये कुछ नहीं आता, विना अनुकरण किये मनुष्य कुछ नहीं सीखता, विना पढ़ाये कुछ नहीं पढ़ सकता, तव यह कहना कि आरम्भमें वह पूर्णज्ञानी, सर्वविद्या-सम्पन्न अवतरित हुआ, निरी विशृङ्खलित कल्पना है, जिसको अलौकिकताके साथ जोड़कर अव ससारपर विश्वासका सिक्का नहीं जमाया जा सकता।

जवतक पुरातत्त्व-सम्बन्धी विद्याका जन्म नहीं हुआ था और प्रायोगिक साधन ज्ञात नहीं थे, उस समय तक हरएक वातको तर्क-प्रमाणसे समझा जाता था। उस समय तक अलौकिक सत्तापर विश्वास भी वना हुआ था और उस विश्वासका एकमात्र सहायक प्रमाण आप्त-वाक्य था। परन्तु अव, जव अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण सम्मुख आये, उन प्रमाणोंका महत्त्व उतना ही रह गया जितना उनके द्वारा सिद्ध होता है।

पाठक जानते हैं कि पृथिवी ही चराचरको धारण किये हुए है। इतना ही नहीं, वरन् सजीव, निर्जीव सभी तरहके पदार्थ इस पर विद्यमान है। मानव-जाति इस पृथिवीपर कव अवतरित हुई? यह अभी तक हम ग्रन्थोंमें ही पढ़ते रहे है, परन्तु अवसे सौ वर्ष पूर्व हमें यह ज्ञात न था कि इसका सच्चा इतिहास किसी और जगहभी मिल सकता है।

अब ज्ञात हुआ है कि प्रकृति इस सजीव जगत्का इतिहास पृथिवीके पृष्ठोंपर काफी समयसे लिखती चली आरही है, जिसको यदि पढ़नेका ढङ्ग सीखा जाय तो जो बात वेदोंके मन्त्रोंमें नहीं मिलती वह पृथिवीके इन पृष्ठोंमें मिल सकती है। इसका ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता गया लोगोंने पृथिवीके स्तरोंको हटाना आरम्भ कर दिया। स्तरोंमें से प्राक्कालीन मुद्राए, लेख-चित्र, अस्थि-कंकाल आदि अनेक चीजें निकलने लगीं। इन भिन्न-भिन्न चीजोंको समझनेके लिए विद्वानोंने पुरातत्त्व-विज्ञान, लिपि-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, मानुषमिति, मानव-जाति-विज्ञान, कपाल-मिति आदि अनेक विद्याओंको जन्म दिया। इन नयी विद्याओंकी सहायतासे हरएक वस्तुकी प्राचीनताको धीरे-धीरे समझा जाने लगा। नयी विद्या होनेके कारण इसके निर्धारित सिद्धान्तोंपर विचारों की भिन्नता होना स्वाभाविक बात थी। इस विचार-भिन्नताको देखकर कई पुराने विचारके व्यक्ति इन विद्याओंके विशेषज्ञोंकी हसी उड़ाते रहते हैं। उड़ाते रहिए, जिन्हें कुछ नहीं आता—केवल थोथे गाल बजाते हैं, उनकी अपेक्षा जिन्होंने कुछ कर दिखलाया है वह लाख दर्जे अच्छे हैं। उन्होंने जो कुछ खोजा है उसमें कितनी यथार्थता है, इसकी सत्यताको जानने का अधिकार सबको है।

इस समय तक पुरातत्त्व-अनुसन्धानकर्त्ताओंने ऐतिहासिक दृष्टिसे पृथिवीके पृष्ठोंको अर्जेण्टाइन, ब्राजील, प्रेडवर्थ, (बोहेमिया) ओल्मो (इटली),सूसा (ईरान), शिपकर (बालकन प्रायद्वीप), स्पाई (बेलजियम),नियण्डर्थल (जर्मनी),फिल्ट डाउन ट्रिनल (जावा) उर, किश, एलम, हडप्पा, मंहञ्जोदडो, कान्होदड़ो, तक्षशिला (भारत) आदि सैंकड़ों जगहोंपर पुराने स्थानोंकी खुदाई की है, जिनमें प्राचीन इतिहासकी काफी सामग्रीके होने का अनुमान किया गया है। इनमेंसे अनेक स्थानोंकी खुदाईमें बहुतसी पुरातत्त्व सम्बन्धी-सामग्री प्राप्त हुई है। कहींपर मानव-कङ्काल और मानव-कपाल मिले हैं। कहींपर शिला-लेख, चित्र-लेख तथा अनेक कला-कौशलकी प्राचीन वस्तुए प्राप्त हुई हैं। इनमें से ट्रिनल (जावा) की

खुदाईमें मानव-कङ्कालके ढाचेका जो भाग मिला है, वह कपालमिति-विद्यासे वन-मानुष और मानव-वशके बीचका प्राणी-सिद्ध होता है। अनुमान किया गया है कि यह कङ्काल अव से १० लाख वर्ष पुराना है। हाइडल वर्गमें जो कङ्काल मिला है वह अर्द्ध जगली मनुष्यके ढाचेसे मिलता है। इसका समय कोई ६ लाख वर्ष पुराना कूता गया है। फिल्टडाउन में जो खोपड़ी मिली है यह १॥ लाख वर्षके वनमानुप जातिकी है। नियण्डर्थलमें जो मानव-कङ्काल मिला है, वह ५० हजार वर्षका पुराना अनुमान किया गया है। उस समय मनुष्य जाति पत्थरके हथियारोंका तथा अग्नि का प्रयोग करती थी और गुफाओंमें रहा करतीथी। स्पेनके ग्रिमैल्डी तथा उसके समीपकी गुफामें मिले मानव-कङ्काल अवसे २५ हजार वर्ष पूर्वके माने जाते है। उस समय उस देशमे क्रोमोगनीय नामकी जाति रहती थी। स्पेनकी गुफाओंमें इनके हजारों कङ्काल तथा गुफाओंमें इनके चित्रित किये हुए अनेक चित्र मिले हैं। मनुष्य-जातिका अवसे ८००० वर्ष पूर्व तकका जो इतिहास पृथिवीके पृष्ठोंमें मिला है उससे ज्ञात होता है कि उस समय तक उसे किसी धातुका ज्ञान न हुआ था। हा, इतना पता अवश्य चलता है कि वह पत्थरके हथियार वनाना सीख गया था। उस समय वह अनगढ़ पत्थर उपयोग किया करता था, फिर वह पत्थरोंको घिसकर उन्हें तीक्ष्ण करके नोकदार वनाना जान गया। १० हजार वर्ष पूर्व तक वह पत्थरोंके शस्त्र वनाकर उनका उपयोग करता रहा। इसके वाद उसे सर्व-प्रथम स्वर्णका पता लगा। उसके वाद उसे कासेका ज्ञान हुआ और उसके साथ ताम्र चादीका, उसके वाद पीतलका ज्ञान हुआ और पश्चात् इनका उपयोग उसने जाना। लोहा इन सवसे वादमें जानी हुई चीज है। इसका उल्लेख ईसाके तीन सहस्र वर्ष पूर्वतक नहीं मिलता। इससे पुरातत्त्ववेत्ता इस परिणाम पर पहुचे है कि लोहेका ज्ञान पाच हजार वर्षसे अधिक पुराना नहीं, पारा या पारे जैसी किसी वस्तुका पता इन पुराने खण्डहरोंमें कहीं नहीं लगा। इससे पता चलता है कि पारद-युग लोह-युगके वादका है। पुरातत्त्व-ज्ञान

के आधारपर तथा भूगर्भ-विज्ञान आदिकी सहायतासे मानव-सभ्यताके विकासका जो इतिहास निर्माण हुआ है, उसे विद्वानोंने चार युगोंमें विभक्त किया है। उनका कहना है कि मनुष्य-जाति जब कन्दराओं और गुफाओंमें रहकर जीवन बिताती थी और पत्थरके अस्त्र-शस्त्रोंका उपयोग करती थी, उस युगको पाषाण-युग समझना चाहिये। इसके बाद जब उसे कांसा, ताम्र, स्वर्ण आदि कुछ धातुओंका पता लगा और वह उनका उपयोग करने लगी, उस युगको ताम्रयुग समझना चाहिये। इसके पश्चात् जब उसे लोहेका पता लगा, और उसको अस्त्र-शस्त्र बनानेमें उपयोग कर सकी उसे 'लोह-युग' मानना चाहिये। अबसे लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व पारद और उसके खनिजों का ज्ञान हुआ। बीसवीं शताब्दीमें जबसे रेडियम (रश्मिम) तत्त्व का आविष्कार हुआ, इसे 'रेडियम-युग'का नाम दिया गया है। अब देखना यह है कि यह चौथा युग कितने प्रकारकी सभ्यताको जन्म देता है और मानव-जाति को कहां तक उन्नति-शिखर पर पहुचाता है।

पारदोत्पत्तिके स्थान

इन खोजोंके आधारपर हम कह सकते हैं कि पारदका ज्ञान तीन सहस्र वर्षसे अधिक पुराना नहीं। इसके अतिरिक्त एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि खनिज-वैज्ञानिकोंकी खोजोंसे ज्ञात होता है कि भारतमें पारेकी कोई प्राचीन खान नहीं मिलती। पारा सदासे विदेशी वस्तु रहा है। यह हमारा ही मत नहीं, प्राचीन भारतीय इतिहास-वेत्ता भी इस बातको स्वीकार करते हैं, कि पारा प्राचीन काल में भी विदेशसे आता था और आज भी आरहा है।

पारेकी खानें कहा हैं? और यह यहां किस देशसे आता है? इसकी जानकारी पहले-पहल भारतीयोंको बहुत कम थी। पारेकी खानें इटली, स्पेन और केलीफो-र्नियामें हैं। इनमें से अलमेडम और आइड्री (स्पेन) के पारदीय कूप (खानें) अधिक पुराने—लगभग ३ हजार वर्षपूर्वके माने जाते है। यद्यपि इस समय वहा इन कूपोंकी सख्या १५-१६ के लगभग है, तथापि आरम्भमें वहा चार-पाच ही कूप

थे। प्राचीन इतिहाससे ज्ञात होता है कि पारा स्पेन देशसे व्यापारियों-द्वारा प्रथम मिश्र में आता था और मिश्रसे ईरान, अरब, फारस और काबुल तक पहुचता था। वहासे नौकाओं-द्वारा अरब-सागर होकर वह भारत भी पहुचता था। अबसे चार हजार वर्ष पहले भारतके आदि द्रविड़ियन लोग नौकाओं-द्वारा मिश्र, अरब, बेबिलोन, सूसा तक पहुचा करते थे। उन देशोंके व्यापारी भी अपने देशसे बहुत-सा माल यहां लाते थे। पारा पश्चिमीय देशोंसे ही आता था, इसका प्रमाण प्राचीन रस-शास्त्रोंसे भी मिलता है। इसके कुछ प्रमाण प्राचीन ग्रन्थोंमें पारदोत्पत्तिके सम्बन्धमें आलङ्कारिक रूपसे आए है उसमें इस सत्यताका आभास पाया जाता है।

रसशास्त्रज्ञोंने पारदकी शिव-वीर्यसे उत्पत्ति बतायी है। इसी सम्बन्धमें शिवका वीर्य सम्भोग-कालमें किस तरह अग्नि-द्वारा ग्रहण हुआ और किस तरह पृथिवीपर गिरा, इसको थोड़े-बहुत अन्तरसे कई ग्रन्थकारोंने दिया है। रस-सकेत कलिकाकार चामुण्डाने लिखा है कि सम्भोग: कालमें शिवजीका जो रेत च्युत हुआ, उसे अग्निने अपने मुहमें लेलिया और उसे पृथिवीके चारों ओर फेंका। तीन ओर समुद्र था, इसलिए उधर वह पानीमें चला गया। चौथी पश्चिम दिशामें पृथिवी थी वहा गिरकर वह समस्त कार्य करनेवाला पारद हुआ। यह सकेत पारदकी उत्पत्ति को पश्चिममें बताता है। श्रीगोविन्दाचार्यने अपने रससार नामक ग्रन्थमें पारदकी पूजाके प्रसगमें लिखा है कि रसेन्द्र†की पश्चिममें पूजा करे। पश्चिममें पूजाका अर्थ यह है, कि जहा देवताका मुख्य स्थान हो वहां तक यदि न पहुचा जाय तो उस ओर मुह करके उसकी पूजा करे। मुसलमान पश्चिमकी ओर मुह करके नमाज क्यों पढते है? इसीलिए, कि उनका पूज्य मक्का पश्चिममें है। पारेकी खानें पश्चिममें है—वह पश्चिमसे आता था,

---

· रते शम्भोश्च्युत रेतो गृहीतमग्निना मुखे। क्षिप्त तेन चतुर्दिक्षु वाराब्धौ तत्पृथक् पृथक्।
पश्चिमाया विमुक्त तत् सतोऽभूत् सर्व कार्यकृत्। —रस-सकेत कलिका ॥

† पश्चिमे तु रसेन्द्रं हि पूजयेत् सिद्धिपूर्वकम् ॥—रससारः ॥

इसीलिए उसकी उस दिशामें पूजा बतायी गई। पारदकी खानें बहुत दूर थीं। उस तक शायद ही कोई प्राक्कालीन भारतीय पहुचा हो। कई ग्रन्थोंमें लिखा है कि पारद* और रसक (खपरिया) इन दोनोंके उत्पत्ति-स्थानको केवल नागार्जुनने देखा था। मालूम होता है कि कुछ रसाचार्योंने व्यापारियोंसे सुन कर इस बातका पता लगा लिया था कि पारद† के कूप होते हैं और वह बहुत गहरे कूपोंसे निकाला जाता है। तभी तो उन्होंने यह अलङ्कार बाधा कि अग्नि-द्वारा गृहीत शिव-वीर्य जब पृथिवीपर गिरा, तब देवताओं और नागोंने सौ योजन गहरे पांच कुए खोदे, जिनमें वह वीर्य चला गया और फिर उन कुओंको मिट्टी और पत्थरसे भर दिया गया।

वास्तवमें पारा जिन खानोंसे निकलता है उनकी गहराई कूप सदृश है और वह १५ सौ फीटसे लेकर २५-२६ सौ फीटकी गहराई पर पहुचकर मिलता है। ज्ञात होता है कि इसी बातको वाग्भट्टने मालूम करके इसको शिव-वीर्य-च्युतिसे सम्बन्धित कर बहुत ही उत्तम आलङ्कारिक रूप दिया। पारदके विदेशी होनेका एक प्रमाण और देखिये। पारेके अन्य नामोंमें एक नाम मिश्रक मिलता है। कुछ ग्रन्थकारोंने इसका अर्थ किया है कि जिसका तेज समस्त‡ धातुओं में मिश्रित होकर जहा ठहरता है, उसको मिश्रक कहते हैं। हमें तो इसका यह अर्थ भी आलङ्कारिक दिखाई देता है। हम समझते है कि मिश्रक शब्दका अर्थ है—मिश्र देशसे आया हुआ। पहले पारा मिश्र देशसे ही आता था। इसी कारण इसका नाम मिश्रक रखा गया। बादमें रसाचार्योंने इस शब्दका दूसरा अर्थ किया जो ऊपर बताया गया है।

---

* नागार्जुनेन सदिष्टौ रसश्च रसकावुभौ।

† शतयोजन निम्नांस्तान्कृत्वा कूपास्तु पञ्चवै।
देवैर्नागैश्च तौ कूपौ पूरितौ मृद्भिरश्मभिः॥—रसरत्न समुच्चयः।

‡ सर्व धातु गतं तेजो मिश्रितं यत्र तिष्ठति। तस्मात् स मिश्रक' प्रोक्तः॥
—रसरत्न-समुच्चय।

पारद के सम्बन्ध में पाश्चात्य ज्ञान

विदेशी इतिहाससे पता लगता है कि ईसासे ३०६ वर्ष पूर्व थियोफ्रेटिस नामका एक विद्वान् हुआ, जिसने सबसे पहले अपनी पुस्तकमें कुछ खनिजोंके सम्बन्धकी जानकारी दी है। उसने लिखा है कि मिश्रमें पारेके खनिजको ताम्र-चूर्ण और सिरका मिलाकर बन्द वर्त्तनमें गरम करते है तो उस खनिजसे पारा पृथक् हो जाता है। उसने यह भी बताया है कि इसकी स्वच्छ आभा-प्रभाको देखकर बहुतसे लोग इसे द्रव चांदी कहते हैं। इसीलिए उसने इसका नाम क्विक् सिलवर (Quick silver) दिया। इसके पश्चात् ईसाकी पहली और दूसरी शताब्दीमें तो पारदके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं।

शिव और पारद

कहा जाता है कि पारद-द्वारा देह-सिद्धि और लोह-सिद्धिका ज्ञान महादेवने पार्वतीको कराया। जिस तरह वेदोंके आदि-प्रवर्त्तक ब्रह्मा बताये जाते हैं, उसी तरह रस-तन्त्र के आदि प्रवर्त्तक तथा आदि-आचार्य शिवजी कहे जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह शिव वही भोलानाथ है, जिन्हें सृष्टिके आदि ब्रह्मा, विष्णुका साथी माना जाता है अथवा यह कोई दूसरे शिव है। यदि उन्हीं शिव को रस-तन्त्रका आचार्य मान लिया जाय, जो सृष्टिके आरम्भ में हुए, तो उनका रचा हुआ रस-तन्त्र भी उतना ही पुराना होना चाहिये, जितने पुराने वह स्वय है। इसके अतिरिक्त रसतन्त्रोंका अधिनायक पारा भी उतना ही प्राचीन होना चाहिये; परन्तु ऐसा अभी तक किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सका। पारदका पता पिछले तीन सहस्र वर्षके भीतर लगा है। जब पारा ही तीन सहस्र वर्षकी पुरानी चीज है, तो उसके प्रवर्त्तक शिव अथवा महादेवका पारद-ज्ञानसे बहुत पूर्व होना अवश्यही असगत बात है। यदि पारद-ज्ञानसे पूर्व कोई शिव हुए हैं तो उन्हें रसतन्त्रका कर्त्ता नहीं माना जा सकता, क्योंकि जब नाटकके मुख्य नायकका ही अस्तित्व न हो, तब नाटकका रूप खड़ा करना

केवल एक कल्पना है और वह कल्पना वस्तु-स्थितिसे बहुत दूर रहती है। इस-लिए रसतन्त्रके आदि-आचार्य ब्रह्मा-विष्णुके सहयोगी शिव नहीं हैं और न उन पौराणिक कैलाशवासी शिवको रसतन्त्रका कर्त्ता मानाही जासकता है। रसतन्त्रकर्त्ता शिव कब हुए और वह कौन थे? अब हम इसकी खोज करते हैं। इस आदि-आचार्यकी खोजके लिए हमें फिर पारदके उपयोगकी ओर जाना पड़ेगा, तभी इसको जाना जा सकता है, अन्य साधनसे नहीं।

इस बातपर समस्त विद्वान् एक मत दिखाई देते हैं कि पारदका प्रथम उपयोग लोह-सिद्धि अर्थात् सोना-चादी बनानेके लिए हुआ। प्राचीन ग्रन्थोंसे इस बातकी काफी पुष्टि होती है कि पारदको पहले रसायन-विद्या या कीमियागरी के लिए काममें लाया गया। इसके पश्चात् धीरे धीरे इसका उपयोग देह सिद्धि पर हुआ। बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंका क्रमभी इस बातकी पुष्टि करता है। उनमें देखिये! पहले लोह-सिद्धिका प्रसग देकर बादमें देह-सिद्धिका वर्णन आता है। मिश्रके इतिहाससे पता लगता है कि वहां अबसे दो हजार वर्ष पूर्व इस बातकी काफी चर्चा थी कि पारा वास्तवमें द्रव-चादी है। यदि इसके पानीको सुखा दिया जाय तो वह चादीमें बदल सकता है। कई तत्त्ववेत्ता इसे कच्ची चांदी अर्थात् द्रवरूप चांदीका स्वरूप मानते थे और कई इसे तत्त्व मानते थे। उस समय तक पृथ्वीपर कोईभी धातु द्रवरूप नहीं देखी गई थी। द्रव धातुका पृथिवी पर मिलना और उसका अग्निपर रखते ही वाष्प बनकर उड़ना उस समय एक ऐसी घटना थी जो अन्य ठोस धातुओंमें नहीं पाई जाती थी। इसीबातको देखकर इन तत्त्ववेत्ताओंको भ्रम हुआ कि प्रकृतिमें किसी कारण-वश यह पदार्थ चादी बनते-बनते इस रूपमें रहगया। कुछ तत्त्ववेत्ताओंका विचार था कि पारद समस्त धातुओंका आरम्भिक पदार्थ है।

उस समय रसायन-शास्त्र (Chemistry) का जन्म भी नहीं हुआ था, जो बतलाता कि पारद एक धातु है और एक पृथक् तत्त्व है। हम समझते हैं कि पारदके द्रवरूपको देखकर तथा किम्बदन्तीके आधारपर पारदसे चादी

बनानेका सूत्रपात हुआ। इतिहास-ग्रन्थोंके आधारपर अनुमान किया जाता है कि जब प्राक्कालीन तत्त्ववेत्ताओंने यशद खनिजोंको बारम्बार ताम्रके साथ धमानेसे उसे पीला होते देखा, तब उन्होंने सोचा हो कि जब तांबे जैसी लाल धातु पीली हो जाती है, अर्थात् पीतल बन जाती है तो पारद का चांदीवत् होजाना सरल है। इन्हीं विचारोंने अबसे २२-२३ सौ वर्ष पूर्व कीमियागरीकी नींव डाली और वह सर्व-प्रथम मिश्रमें पड़ी। बादमें उसका प्रचार ईराक ईरान, अरब आदि देशोंमें हुआ और वहासे यह विद्या भारतमें आई।

इसका आगमन भारतमें कब हुआ ?

यह बात अब निश्चय हो चुकी है कि भारतमें इस विद्याका आगमन बौद्ध-धर्मके प्रचारकों द्वारा बुद्ध-निर्वाणके २-३ सौ वर्ष बाद हुआ। बहुतसे पाठकोंको यह बात सम्भवत अनहोनी और असम्बद्ध जचेगी, इसलिए हम इसके सम्बन्धमें कुछ ऐतिहासिक प्रमाण भी देदेना उचित समझते है और यह बता देना चाहते है कि उस समय बौद्ध-धर्मके प्रचारक कहांतक पहुचते थे, और आर्य-जाति कहां तक फैली हुई थी।

यह तो अब ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोंसे सिद्ध होगया है कि वैदिक-युगमें आर्य-जाति काबुलसे लेकर हिन्दुकुश व अरारात पर्वत तक फैली हुई थी। इतना ही नहीं, वरन् इनका सम्बन्ध फारस, ईरान, अरब और मैसोपोटामिया के लोगों से था। उस समय इन देशोंमें इस्लाम-धर्मका नामभी न था। मुसलमानोंका अस्तित्व तो पिछले १३सौ वर्षोंमें हुआ है।

कुछ वर्षोंसे एक फ्रान्सीसी पुरातत्त्व अनुसन्धान-समिति काबुलसे ४० मीलके फासलेपर कोह दामनके पास बेग्राम नामक प्राचीन खडहरोंकी खुदाई कर रही है। उसे इस खुदाईमें अबतक जितनी चीजें मिली हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह खण्डहर अब से दो सहस्र वर्ष पूर्व अच्छा समृद्धिशाली नगर था। खुदाईमें मिले शिला-लेखोंसे यह भी पता लगा है कि यह नगर सम्राट् कनिष्ककी दूसरी राजधानी थी। पाणिनिका कपिशा स्थान यहीं अथवा इसके

आसपास कहीं था। इस स्थानसे कुछ दूर वामिया नामक पहाड़ की एक गुफामें बुद्धकी सैकड़ों फीट ऊंची मूर्त्तिया मिली हैं, जो अजन्ता की चित्ररचना से मिलती हैं। इस सम्बन्धमें पता लगा है कि ईसाकी पहिली शताब्दीमें महाराज कनिष्कने अथवा उनके उत्तराधिकारियों ने इन बौद्ध-स्तूपोंका निर्माण कराया। इतिहाससे जाना जाता है कि ईसासे बहुत पहले ईसाकी पाचवीं सदी तक समस्त अफगानिस्तानमें आर्य निवास करते थे। पांचवीं शताब्दीमें हूणोंके आक्रमण ने उन्हें छिन्न-भिन्न किया। उस समय बचे-बचाये आर्य अपनी सभ्यताको लेकर पञ्जाबमें आ-बसे। इससे पूर्व वहापर जो आर्य वसे हुए थे उनका फारस, ईरान, मिश्र आदि देशोंसे घना सम्पर्क था उस समय बौद्ध-भिक्षु धर्म-प्रचारके लिए अफगानिस्तानसे ईरान, चीन, तुर्किस्तान तथा मिश्र तक पहुचा करते थे।

सन् १९३७में बौद्ध-विद्वान् महापण्डित श्रीराहुल सांकृतायनजी जब दूसरीबार रूस गए तो वहांसे वापस आकर उन्होंने 'सोवियेत भूमि' नामकी एक पुस्तक लिखी, जिसको बनारसकी नागरी प्रचारिणी सभाने प्रकाशित किया है। इस पुस्तकके अन्तिम पृष्ठोंमें उन्होंने रूसके बाकू नामक उस नगरका उल्लेख किया है, जिसमें दुनियाके सबसे बड़े मिट्टीके तेलके स्रोत (कूप) हैं। काबुल होकर बाकू जानेके लिए कास्पियन सागर तक पहुचनेमें दो महीनेसे अधिक लगते हैं कास्पियन सागर पार करके बाकू पहुचा जाता है। यदि काश्मीरसे बाकू जायें तो यारकन्द और समरकन्द होकर जाना पड़ता है। इस बाकू नगरमें ज्वालाजीका एक मन्दिर है। इस मन्दिरमें अबसे १२-१३ वर्ष पहले तक पृथिवीके गर्भसे उसी प्रकारकी ज्वाला निकलती थी, जिस प्रकार जिला कांगड़ाके ज्वालाजीमें निकलती है। यह मन्दिर रूस देशमें है, और हिन्दू मन्दिर है। इसके फाटक पर एक लेख खुदा हुआ है वह देव नागरी लिपी और हिन्दी-भाषामें लिखा—निम्न रूपमें है—'**ओं श्रीगणेशायनमः। स्वस्ति श्री नरपति विक्रमादित्य राज साके श्रीज्वालाजी निमित्त दरवाजा**

बणाया यती केचनगिरि संन्यासी रामद्हावासी कोटेश्वर महादेवका। असौज वदि ८ सम्वत् १८६६। मन्दिरके चारों ओर साधुओंके रहनेकी अनेक कोठड़िया है। इन कोठड़ियोंके वनवाने वाले वहुतसे साधु है जिनके नामभी प्राय, कोठड़ियोंके द्वारोंपर लिखे हुए हैं। कई कोठड़ियोंपर गुरुमुखी लिपिमें नाम, पते और सवत् आदि दिये हैं। इससे ज्ञात होता है कि अबसे १२५-१५० वर्ष पूर्व तक इस ज्वाला माईके दर्शनार्थ भारतसे अनेक साधु-सन्त वहा पहुचा करते थे। उस अवस्थामें, जवकि हमारे देश और वाकू नगरके वीच ऐसे देश आये है, जिनकी वोली और भाषा भिन्न-भिन्न थी। अवसे कुछ ही समय पूर्व हजारों मीलका रास्ता तयकरके साधु-महात्मा वहा पहुच सकते थे तो, प्राचीन समयमें जव कि आर्य-जाति मिश्र, ईरान, ईराक, फारस, अरव आदि देशोंसे पूर्ण सम्पर्क रखती थी, उसके साधु-महात्माओंका उन देशोंमें पहुचना अवश्य ही वहुत सरल वात थी। वौद्ध-भिक्षुओंने तो उस समय सुदूर पूर्व-पश्चिम तक पहुचकर वौद्ध-धर्मका प्रचार करने और फैलानेका मानों ठेका ही ले रखा था। इनमें से वहुतसे भिक्षु चीन, स्याम, वर्मा, यारकन्द, समरकन्द, ईरान, फारस, मिश्र आदि देशों तक पहुचते थे। उनमें से नागार्जुनने दूर-दूर तक पहुचनेमें काफी प्रसिद्धि प्राप्त की थी, यह वातें इतिहास-प्रसिद्ध है। ऋषि, मुनि, साधु, तपस्वीतो वैदिक युगसे ही होते चले आये हैं उनका उल्लेख वेदोंसे लेकर पुराणों तक मे जहा देखो वहीं मिलता है। उस समय यह साधु-सन्यासी भिन्न-भिन्न विचार रखते थे। उनमें मतभेद था, परन्तु कट्टर धर्म-भेद न था। उस समय उनके सन्तानें भी होती थीं। वह दूर-दूर देशों तक विद्या-ग्रहण करनेके लिए जाया करते थे। वसिष्ठ और भारद्वाजका विद्या-ग्रहण करनेके लिए इन्द्रादि देवोंके पास जाना शास्त्र-सिद्ध वात है।

प्राचीन-समयमें व्राह्मण, ऋषि-मुनि आदिके पास धन-रूपी सम्पत्ति तो थी नहीं, हा! उनके पास सिद्धि-मूलक अनेक विद्यायें अवश्य थीं और मन्त्र-

तन्त्र, योग-तप, चिकित्सा आदिकी वह अनेक विद्या जानते थे। जो व्यक्ति जिस विषयमें पारङ्गत हुए हमें उनका उल्लेख उस विषयके प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता है इससे भिन्न उनके शिष्यों अथवा मतानुयायियोंने अपने-ग्रन्थोंमें भी इन्हीं बातोंका उल्लेख किया है। अस्तु, अबसे लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पूर्वके आयुर्वेदज्ञ ऋषि-मुनियोंके नाम हमें आयुर्वेद-सहिता (चरकसहिता) में काफी मिलते है। इसी प्रकार रसतन्त्रके प्राचीन आचार्योंके नामभी रसग्रन्थोंमें मिलते हैं।

'रसरत्न-समुच्चय' कार वाग्भटने काफी रस सिद्धोंके नाम दिये हैं। उन्होंने आदिनाथ (शिव), चन्द्रसेन, लकेश, विशारद, कपाली, मत्त, माण्डव्य, भास्कर, सूरसेन, रत्नघोष, शम्भु, सात्विक, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कम्वलि, व्याडि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागवोधि, यशोधन, खण्ड कापालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लम्पक और हरि ये २७ रससिद्ध बतलाए है, तथा रसांकुश,भैरव, नन्दी (नन्दीश्वर), स्वच्छन्द भैरव, मन्थान भैरव, काकचण्डी, ऋषिश्रृङ्ग, रसेन्द्रतिलक, भालुकि, मैथिल, महादेव, नरेन्द्र, वासुदेव, हरि और ईश्वर आदि इन १८ व्यक्तियोंको रस-तन्त्रकार बतलाया है। हालमेंही प्रकाशित 'आनन्दकन्द' में* आदिनाथ, मूलनाथ

---

* आदिनाथं मूलनाथं गोरक्ष कौंकणेश्वरम्।
चोलाभ्रदेशं कन्थनीशं मौद्गीयं चिङ्खिणीश्वरम्॥
चौरंगि मेतान्नागाख्यान्नव संतर्पयेत्ततः।
चौरिंगी कर्पटी घोंटी चुल्ली कामद्वयं ततः॥
बालगोविन्दसिद्धञ्च व्यालिं नागार्जुनं ततः।
भोरण्ड शूर्पघण्टाञ्च दुत्तार्यी रेवणं ततः॥
सिद्धं कुक्कुरुपादञ्च सूर्यपादं कर्पैरितम्।
सिद्ध टिंटिणिकास्याञ्च सिद्धान् षोडश तर्पयेत्॥ आनन्दकन्द पृष्ठ १५

तन्त्रान्तरे च—मन्थान भैरवो योगी सिद्धबुद्धश्च कन्थडी।
कोरण्टक सुरानन्दः सिद्धपादश्च चर्पटी॥
कर्णेरी पूज्यपादश्च नित्यनाथो निरञ्जनः।

गोरक्षनाथ, कोंकणेश्वर, चोलान्प्रदेश, कन्थनीश, मुद्गीय, चिङ्कणी, ईश्वर, चौरंगी, कर्पटी, घोंटी, चुल्ली-काम रूपक दोनों, वालगोविंद, व्यालि, नागार्जुन, भोरण्ड, सूर्यघण्टा दुत्तायी, रेवण, कुक्कुरीपाद, सूर्पपाद, कणेरी, टिण्ठणीपाद आदि सिद्धोंके नाम दिये हैं। यह रस-सिद्ध और रसाचार्य कब हुए और कहा हुए? यदि इनका कुछ भी पता लग जाये तो आदि रसतन्त्र-कर्त्ता शिव, भैरवका भी पता लग जाना कठिन नहीं।

सिद्ध और उनका इतिहास

प्राचीन ग्रन्थोंमें सिद्धोंकी खोज की जाय तो ज्ञात होता है कि सिद्धोंका सम्प्रदाय वैदिक युगकी विभूति नहीं थी। इनकी उत्पत्ति लोह-युगमें ही हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्योंके साथ अनार्यों (दस्यु, असुर आदि) का अधिक सम्पर्क अथर्ववेदके समयमें हुआ। मन्त्र-तन्त्र, टोना-टोटका, भूत-प्रेतसिद्धि आदि बहुतसी आसुरी विद्याए इनमें उसी समयसे प्रचलित हो चली थीं, परन्तु इस मायाजालकी वृद्धि दर्शनकालके पश्चातही हुई दिखाई देती है। प्राचीन कालमें तप सिद्ध तथा योगसिद्ध अवश्य होते थे और उन्हें सिद्ध न कहकर तपस्वी और योगी कहा जाता था। योग-बल, तपो-बलसे सिद्धियां प्राप्त करनेका क्रम अवश्य प्राचीन हो सकता है, परन्तु सिद्ध और सिद्धियोंका सम्बन्ध पतञ्जलि-द्वारा स्थापित किया हुआ ज्ञात होता है। इन्होंने अपने 'योग-दर्शन' में एक पाद अलगही देकर उसमें सिद्धियोंका उल्लेख किया है। उसके पहले ही सूत्रमें आपने आदेश किया है कि मन्त्र, औषध और तपसे सिद्धियां प्राप्त होती हैं।*

कपाली विन्दुनाथश्च काकचण्डीश्वरो गज ॥
अल्लमः प्रभु देवश्च घोडाचोली च टिण्ठिणी।
भालुकिर्नागदेवश्च खण्ड. कापालिकस्तथा ॥
इत्यादयो महासिद्धा रसभोगप्रसादत ।
खण्डयित्वा काल दण्डं त्रिलोक्यां विचरन्ति ते ॥

* मन्त्रौषध तप सिद्धिः।

पारद द्वारा भी किसी तरह की सिद्धि प्राप्त हो सकती है, इसका पता उन्हें भी न था। पारदका पता तो उनके ४-५ सौ वर्ष व्यतीत होनेके बाद लगा। यहां पर औषध सिद्धिसे उनका अभिप्राय आयुर्वेदके उन कल्पोंसे है, जिनके सेवनसे मनुष्य जरामरण-रहित हो जाता है और हजारों वर्षोंकी आयु भोगता है।

रस-सिद्धोंके अस्तित्त्वका आरम्भ तो उस समयसे हो सकता है, जबसे रस (पारद) का ज्ञान अथवा उपयोग जाना गया। जब हम रस-सिद्धोंकी खोज करते हैं तो उनका अस्तित्त्व पिछले दो सहस्र वर्षके भीतर ही हुआ मिलता है। हम बौद्ध-विद्वान् श्री राहुल सांकृतायनके बड़े कृतज्ञ हैं कि उन्होंने बौद्धधर्मके इतिहासकी खोज करते हुए ८४ सिद्धोंका पता लगाया। आपने तिब्बतके प्राचीन पुस्तकालयों तजूर और कजूरसे हजारों प्राचीन ग्रन्थोंको पढकर उनसे बौद्ध-कालीन राजाओं, उपदेशकों, साधु-महात्माओं और सिद्धोंका इतिहास छांटा है। उनकी खोजोंसे यह परिणाम निकलता है कि किसी समय मन्त्र-सिद्ध, रस-सिद्ध तथा भैरवी-चक्र-प्रवर्तकोंका बौद्ध-सम्प्रदायसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। अधिकांश रस-सिद्ध और मन्त्रसिद्ध बौद्ध-सम्प्रदायसे ही निकले हैं। उन्होंने अपनी खोजके आधारपर ८४ सिद्धोंके समयका उल्लेख करते हुए उनका जीवन-चरित्रभी भोटिया (तिब्बती) भाषासे अनुवाद करके संग्रह किया है और उनको गङ्गा नामक मासिक पत्रिकाके सम्वत् १९९३ के पुरातत्त्वांकमें प्रकाशित किया है। सिद्धोंका अस्तित्त्व-काल मालूम करनेके लिए हमने यहांपर उस पत्रिकासे ही कुछ अंश संकलन किया है। उसे हम संक्षेप में देते हैं।

शुगों और कण्वोंके बाद आन्ध्रपति शालवाहन या शालिवाहनका राज्योदय आरम्भ हुआ। उसकी राजधानी प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र प्रान्तके अमरावती जिलेका वर्तमान पैठन नगर) थी। कारणवश उस राजाका कोई वंशज दक्षिण आन्ध्रदेश चला गया और उसने वहां जाकर 'धान्यकटक' नामकी नगरी बसायी।

अमरावतीके पास भी प्रथम धान्यकट नामसे प्राचीन राजधानी थी, इसीके ढग पर इसी नामकी दूसरी नगरी उसने वहां जाकर बसायी। शालवाहन

मौर्य तथा पालवशके शासकोंके समान वौद्ध-धम पर विशेष श्रद्धा रखता था। उसके राज्य-कालमें बौद्ध भिक्षुओंके चार मठ अथवा चैत्य स्थापित हुए। जिनके नाम पूर्व शैलीय, अपर शैलीय, राजगिरिक और सिद्धार्थक थे। इनकी स्थापना का समय ईसासे एक शताब्दी पूर्वसे लेकर उसकी दूसरी शताब्दीके मध्य तक निकलता है। धीरे-धीरे इन मठोंके बौद्धोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय (निकाय) वन गये। उन्होंने अपने भिन्न भिन्न मठ स्थापित किये पूर्वशैल और अपरशैल दक्षिण देशके महापर्वत पर हैं। धीरे धीरे इन पर्वतोंमेंसे एक मठ (चैत्य) का नाम श्रीशैल दूसरेका श्रीपर्वत्त पड़ा*। जिस मठकी स्थापना श्रीशैल पर थी उसके पास ही राजा शालवाहनकी धान्यकटक नामक नगरी थी।

इसी श्रीशैल पर्वतके मठाधीश प्रथम नागार्जुन थे। यह नागार्जुन आयुर्वेद के वड़े विद्वान् थे तथा वौद्ध होते हुए भी अनेक विषयों में इनके विचार प्राचीन वौद्ध-धर्मके विरुद्ध थे। यह वैपुल्यवादी थे। बौद्ध-पण्डित इन्हें महाशून्य वादका आचार्य मानते हैं। इनके मतमें एकाभिप्रायेण स्त्रीप्रसग निन्द्य न था। यह लौकिक वुद्धके अस्तित्त्वको नहीं मानते थे। मन्त्र-तन्त्रकी ओर इनका अधिक झुकाव था। रस-शास्त्रका इन्होंने काफी अध्ययन किया था और रसायन-विद्या सीखनेके लिए यह वहुत दूर-दूर तक पहुचे थे। शालवाहन नामका तत्कालीन शासक इनका परम मित्र था। जव वह देशाटनके लिए गए, तव किसी स्थानसे उन्होंने शालवाहनको सुहृल्लेख नामक एक पत्र लिखा था, जिसका भाषान्तर भोट और चीनी भाषामें प्राप्त होगया है। इनका समय सन् १७२ ईस्वी निकलता है। धान्यकटकमें शालवाहनोंका राज्य सन् ७३ ईस्वीसे आरम्भ होकर २१८ ईस्वी तक रहा। राजतरङ्गिणीमें भी इन्हीं नागार्जुनके सम्वन्धमें लिखा है कि वह शाक्यसिंहके सन्यास लेनेके १५०वर्ष वाद हुए। इनके दिए वर्षों में उक्त सन् से अन्तर पड़ता है। मालूम होता है कि कल्हणजी ने नागार्जुनका अन्दाज से समय निश्चित किया था। ह्वेनसेन नामक एक चीनी यात्रीने अपने

* श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणा पथ संज्ञके।

भारत-भ्रमण नामक ग्रन्थमें इन्हीं नागार्जुनका उल्लेख किया है। यह चीनी यात्री सन् १६२ ईस्वीमें भारत आया था। बताया जाता है कि इन्हीं नागार्जुनके लिखे दो ग्रन्थ मिले हैं—एक रसरत्नाकर और दूसरा रसेन्द्रमङ्गल। 'रसरत्नाकर' प्रश्नोत्तर के रूपमें लिखा गया है और उसमें प्रश्नकर्त्ता वही शालिवाहन नामक राजा है। गोंडल रसशाला द्वारा प्रकाशित 'रसेन्द्रमङ्गल' के साथ 'कक्षपुट' नामका एक छोटा सा ग्रन्थ और जुड़ा हुआ है उसे भी नागार्जुन प्रणीत लिखा है जिसमें रसायनविद्या दी हुई है, यह भी प्रश्नोत्तरके रूपमें लिखा हुआ है। 'कक्षपुट' आरम्भ करते हुए उसमें *सकल दोपसे निर्मुक्त बुद्धकी तथा सिद्धोंकी बन्दना की गई है और श्रीशैल पर्वत पर विराजमान नागार्जुनसे वट-यक्षिणी नामक एक स्त्री कुछ प्रश्न करती है। उस समय उनके पास महाबोधि सूरसेन, रत्नघोष और प्रभाकर तीन बौद्ध भिक्षु तथा शालिवाहन नामक राजा बैठा हुआ है। आगे चल कर राजाने प्रश्न किया कि किसी समय माण्डव्यने रस-उपरसके योगसे सूतको सिद्ध किया था और उस सिद्ध पारद द्वारा उन्होंने ताम्र तथा सीसे से स्वर्ण बनाया था, वह आप मुझे बताइये। नागार्जुन कहते हैं, मैने रसायन विद्याके सम्बन्धमें ‡गुरु वसिष्ट और माण्डव्यसे जैसा सुना है वह तुझे बताता हू। इस श्लोकसे ज्ञात होता है कि नागार्जुनसे पूर्व इस विद्याके दो आचार्य वसिष्ठ और माण्डव्य नामके हुए, जिनसे उन्होंने रसायन–विद्या सुनी। परन्तु यह ग्रन्थ स्वय नागार्जुनका लिखा है, इसमें सन्देह है, क्योंकि †श्रीशैल पर्वत पर नागार्जुनको विराजमान वताने वाले स्वय नागार्जुन नहीं हो सकते, ऐसा तो दूसरा ही लेखक कह सकता है। खैर! हम यहां इस विवादमें पड़ना नहीं चाहते, हमें तो यहां यह देखना है कि सिद्धों का समय कब से आरम्भ होता है।

---

* प्रणिपत्य सर्वबुद्धान् सकलदोपनिर्मुक्तान्सिद्धान्। कक्षपुट

‡ शास्त्रं वसिष्ठ माण्डव्य गुरु पार्श्वे मया श्रुतम्॥ कक्षपुट

† श्रीशैल पर्वतस्थोऽसौ सिद्धो नागार्जुनो महान्। कक्षपुट

इन नागार्जुनके समय (२००ई०) से लेकर दूसरे नागार्जुनके समय (८००ई०) तक उस *श्रीशैल पर्वतपर अनेक सिद्ध हुए। जिनका इतिहास नहीं मिलता। बाद (ई० ८००) के यह श्रीशैल पर्वत जिन सिद्धोंकी भूमि वन कर मन्त्र-सिद्धिका वड़ा जवरदस्त गढ़ होगया था, उसका संस्कृतसाहित्यमें काफी उल्लेख आया है। मृच्छकटिक-नाटकमें जो पाचवीं शताब्दीमें लिखा गया माना जाता है वहा लिखा है–**आर्यकनामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति**"। इसी तरह श्रीपर्वत का इसके पीछेके लिखे मालतीमाधव व श्रीहर्षचरित्र आदिमें भी कई स्थानों पर उल्लेख आया है। कादम्बरीमें लिखा है—"**सकल प्रणयि मनोरथ सिद्धिः-श्रीपर्वतो हर्षः**"। †धान्यकटक और श्रीशैल पर्वत पहिली शताब्दीसे लेकर आठवीं शताब्दी तक अनेक मन्त्र-सिद्ध और रस-सिद्ध उत्पन्न करता चला आया। उस समय ये विद्यायें साधु महात्माओं तक सीमित रहीं। परिश्रमसे प्राप्त होनेके कारण वे इन्हें वहुत गुप्त रखते थे, हर किसी को वताते न थे। इस विद्याको जिसे वड़ी सेवा टहलके पश्चात् दिया उसको—"**गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः**" का पाठ भी पढ़ाते गए, इसीलिये उस समय इस विद्याका अधिक प्रचार न हो सका। एक तो उस समय इतिहास लिखनेकी परिपाटी न थी, दूसरे इस साधुवर्गका—जिसका न कोई घर था न घाट–इतिहास लिखा जाना और भी कठिन था। इसीलिये पूर्वके रसाचार्योका कोई इतिहास नहीं मिलता। दूसरे नागार्जुनके समय (८००) से चलकर कोई ईस्वी १२वीं शताब्दी तक ४०० वर्षोमें जो ८४ सिद्ध हुए उनका जीवन इतिहास वौद्ध धर्मियों द्वारा लिखा गया वह भोट (तिव्वत) देशमें खोज से मिला है। जो निम्न है—

८४ सिद्धोंका इतिहास—शिला लेखोंसे पता लगता है कि पाल वंशके

---

* श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणा पथ संज्ञके।

† श्रीधान्यकटके चैत्ये जिनधातुधरे भुवि। सिध्यन्ति तत्र मन्त्रा वै क्षिप्र सर्वार्थकर्मसु।

राजाओंमें से ७८६–८०६ ईस्वीमें धर्मपाल नामक एक राजा हुआ जिसने अपनी राजधानी पटना बनाई।

उसके राजत्वकालमें एक राज्ञी नामक नगरी में किसी ब्राह्मणके यहा एक सन्तान हुई जिसका नाम था 'राहुलभद्र' दूसरा नाम था 'सरोजवज्र'। वे नालन्दामें पढ़ने के पश्चात् बौद्धभिक्षु होकर अच्छे पण्डित हुए। धीरे धीरे यह मन्त्र-तन्त्रों की विद्यामें लग गये और धान्यकटकके श्रीपर्वत (चैत्य) पर चले गये। कुछ कालके पश्चात् यह बाहर भ्रमणके लिये निकले तो एक बाण बनाने वालेकी सुन्दरी कन्याको देख कर उसे महामुद्रा (सहचरी-योगिनी) बना कर किसी अरण्यमें वास करने लगे। वहां यह भी बाण (शर) बनाया करते थे। धीरे धीरे सिद्ध होगए। बाण (शर) बनानेके कारण ही इनका नाम सरहभद्र पड़ गया। यह फिर नालन्दामठमें आकर रहने लगे। इनके लिखे ३० ग्रन्थोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिलता है। इनके बुद्ध-ज्ञान, शवरपाद और नागार्जुन तीन प्रधान शिष्य हुए। इनमें से शवरपाद और नागार्जुन दोनों ही बड़े भारी तान्त्रिक सिद्ध हुए। यह नागार्जुन भी रस-तन्त्रके बड़े ज्ञाता थे। पण्डित हरिनाथजीने बौद्ध धर्मका जो इतिहास लिखा है उसमें आपने उक्त नागार्जुन जी के सम्बन्धमें निम्नलिखित वर्णन दिया है:—

किसी विदर्भ देशके एक धनाढ्य निःसन्तान ब्राह्मणको एक वार स्वप्न हुआ कि यदि वह सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दान दक्षिणा दे तो उसके सन्तान हो सकती है। उसने ऐसा ही किया और उसके एक लड़का जन्मा। ज्योतिषियों-ने बालकके ग्रह देखकर कहा बालकतो भाग्यवान् है किन्तु अधिक दिन जीवित नहीं रहेगा। उन्होंने इसके जीवित रहनेका उपाय देखा और बताया कि सौ भिक्षुओं को नित्य भोजन कराओगे तो यह ७ वर्ष तक जीवित रह सकता है। उसने ऐसा ही किया, जब ७ वर्ष व्यतीत होनेको थे तो उसके माता पिता बहुत चिन्तित हुए और उसको नौकरोंके साथ किसी अरण्यमें रहनेके लिए भेज दिया। वहां कुछ दिन बाद वेश बदल कर महाबोधि-सत्त्व अवलोकितेश्वर आये

और उस बालकको देख कर कहने लगे कि इसे मगधके नालन्दा मठ (चैत्य) में लेजाकर रखो और कह गए कि वहा वह मृत्युके भयसे बचा रहेगा । वह ब्राह्मण उसे वहा ले गया । उस समय वहा सरहभद्र जी नालन्दा मठके मठाधीश थे । उन्होंने बालक को बुद्धिमान् यशस्वी देख कर अपना शिष्य (भिक्षु) बना लिया और उसका नाम नागार्जुन रखा । ये वहां रह कर विद्याध्ययन करते रहे, बादमें यह अपने गुरुके साथ धान्यकटक चले गये और श्रीशैल पर्वतपर रहने लगे । वहां इन्होंने घोर वज्रयान की अनेक सिद्धियां प्राप्त कीं । कहते हैं कि उन्हीं दिनों बहुत बड़ा अकाल पड़ा और समस्त बौद्ध भिक्षु अन्नके अभावसे बहुत दु खी हुए । इनके गुरु सरहभद्रको बड़ी चिन्ता लगी । उन्हें किसी महात्मासे पता लगा कि समुद्र पार एक टापूमें जहा मनुष्य नहीं जा सकता, एक बड़े भारी महात्मा रहते हैं जो सुवर्ण बनाने की कलामें बड़े दक्ष है, यदि कोई वहा पहुच कर उनसे यह विद्या सीख कर आवे तो भिक्षुओंके सारे कष्ट मिट सकते हैं ।

सरहभद्रजीने नागार्जुनको योग्य देखकर उनके पास जानेका आदेश दिया । समुद्र पार जाना कोई साधारण बात न थी, वहा जानेका उस समय कोई मार्ग न था । उन्होंने अपनी मन्त्र-विद्याके बलसे दो पीपलके पत्तोंको तोड़कर उन्हें अभिमन्त्रित किया और उन पत्तोंके सहारे समुद्र पार होगए। वहा पहुच कर महात्मा जी को ढूढते हुए उनके सामने जा खड़े हुए । उन्हें देखकर महात्माजी बड़े विस्मित हुए । पूछा, आप यहा कैसे आये ? और किस मार्गसे आये ? किस कारण आये ? नागार्जुनने एक पत्ता दिखा कर कहा कि मैं इसके बलसे समुद्र पार कर आया हूं । उन्होंने दूसरा पत्ता छिपा रक्खा और अपने आनेका कारण भी बतला दिया । महात्माजी कहने लगे यदि आप मुझे यह पत्ता देदें तो मैं आपको रसायन-विद्या सिखा देता हू, जिससे तुम्हारे भिक्षुओंका दु ख दरिद्र दूर हो सकता है । उन्होंने सहर्ष इसे स्वीकार किया और पत्ता देकर रसायन-विद्या सीखली, दूसरे पत्तेके सहारे वह फिर धान्यकटक वापस आगए ।

यहां आकर उन्होंने मठनिवासी सारे भिक्षुओंके दुःख दारिद्र दूर कर दिए। आगे लिखा है कि फिर उन्होंने उत्तर कुरुकी यात्रासे लौट कर अनेक चैत्य (मठ) व मन्दिर वनवाए और मन्त्र, तन्त्र, रसवाद, औषध, ज्योतिष आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे। सरहभद्रकी मृत्युके पश्चात् श्रीशैलके चैत्यमें आपको ही अधिष्ठाताके पद पर बिठाया गया। इनके उस समय अनेक शिष्य थे उनमें आर्यदेव, नागवोधि और पङ्कजपाद तीन प्रधान शिष्य थे। इनमें से आर्य-देव सिद्ध कर्णरीपादके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके लिखे तन्त्र विभाग पर २६ ग्रन्थोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिलता है। जिनमेंसे ६ ग्रन्थ दर्शन विषय पर लिखे मिलते हैं। दूसरे शिष्य नागवोधिका लिखा आदि-योग-भावना नामक एक ग्रन्थ तिब्वती भाषामें मिला है। नागार्जुनके तीसरे शिष्य पङ्कजपाद के लिखे दो ग्रन्थ अनुत्तर सर्वशुद्धिक्रम तथा महामुद्रा-भावना मिले हैं। नागार्जुन के उक्त शिष्योंमें से नागवोधिके दो शिष्य हुए, एक भूसुक दूसरा विरूपाद। भूसुक क्षत्रिय राजकुमार थे और वहीं कहीं नालन्दाके आस पासके थे। यह भिक्षु वन कर प्रथम शातिदेवके नाम से प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि एक बार नालन्दाके राजा (गौडेश्वर) देवपाल (ई०८०६-८४६) इनका विचित्र रहन सहन देखकर इन्हें भूसुक कहने लगे तबसे आपका नामही भूसुक पड़ गया। आप भी सिद्धोंमेंसे वड़े सिद्ध हुए। आपके लिखे दर्शन सम्वन्धी ६ ग्रन्थ तथा तन्त्र सम्वन्धी ३ ग्रन्थ मिले हैं जिनमें एक चक्रसम्वर तन्त्रकी टीका है। दूसरे शिष्य विरूपाद जी जो जातिके कायस्थ थे इनका जन्म त्रिउर नामक ग्रामका था। यह भिक्षु वन कर नालन्दामें पढ़ते रहे और फिर श्रीपर्वत पर जब पहुचे तो इनकी नागवोधिसे भेंट होगई। वहीं यह उनके शिष्य वन गए, यह भी सिद्ध हुए। इनके लिखे १८ ग्रन्थोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिलता है। यह तन्त्र शास्त्रके भारी पण्डित होनेके कारण यमारितन्त्रके ऋषि थे। इनके शिष्योंमें डोम्भिपाद और कण्हपाद दो प्रधान शिष्य हुए। यह भी दोनों आगे चलें कर सिद्ध हुए। डोम्भिपाद मगध देशमें क्षत्रियवशमें पैदा हुए थे।

लामा तारानाथने लिखा है कि यह सिद्ध विरूपादके १० वर्ष वाद तथा वज्रघण्टा पादसे १० वर्ष पूर्व सिद्ध हुए । यह हेवज्रतन्त्रके अनुयायी थे । इनके लिखे २१ ग्रन्थ तंजूरमें मिले हैं। सिद्ध कण्हपाद जातिके ब्राह्मण कर्णाटक देशमें (ई० ८०६-८४६) उत्पन्न हुए। इनका रङ्ग काला था इसीसे इनका नाम कृष्णपाद या कण्हपाद पड़ा। कहते है कि यह पीछे जलन्धरनाथके शिष्य होगए और वादमें वड़े करामाती (सिद्ध) हुए। इनके शिष्योंमें कनखला, मेखला यह दो योगिनिया भी शिष्या थीं। इनसे भिन्न धर्मपाद, कन्यालिपाद, महीपाद, उधलिपाद और भदेपाद ५ शिष्य और सिद्ध हुए, जिनकी गणना ८४ सिद्धोंमें हुई है। इनके लिखे दर्शन पर ६ ग्रन्थ तथा तन्त्र विद्या पर ७४ ग्रन्थ मिलते है। इस तरह नागवोधिका शिष्य-सम्प्रदाय वहुत ही वढ़ा जिसमें जानेकी हमें जरूरत नहीं । नागार्जुनके दोनों शिष्य आर्यदेव और पङ्कजपाद इन दोनोंका शिष्य-सम्प्रदाय चला या नहीं ? और उनके शिष्योंमें कोई सिद्ध हुआ या नहीं ? इसका कोई पता नहीं चलता। हा ! नागार्जुनके दूसरे गुरुभाई सवरपाद का शिष्य-सम्प्रदाय खूब चला और इनके वशमें वहुत अधिक सिद्ध हुए। हम थोड़ेमें उनका वश-वृक्ष भी देंगे । क्योंकि इनके वश-वृक्ष के कई सिद्ध रस-तन्त्रसे सम्वन्ध रखते है।

सरहपादके दूसरे शिष्य सवरपाद इतने वड़े तान्त्रिक विद्वान् हुए कि उस समय उन्हें शिवका अवतार माना जाने लगा था। उन्होंने ऐसे मन्त्रोंकी सृष्टि की, जिनको सिद्ध करने या जप करनेकी आवश्यकता नहीं थी। वह मन्त्र स्वत सिद्ध हो रहे थे। एक वार पढने से ही कार्यसिद्धि हो जाती थी, वह मन्त्र सावर-मन्त्रके नामसे प्रसिद्ध हुए । मालूम होता है तुलसीदास जी ने रामायण वालकाण्डमें शिवकी महत्तापर जो *चौपाइया कही है, क्या कहीं इन्हीं सवर (शिव)से सम्वन्ध तो नहीं रखतीं ?

---

* सावर मन्त्रजाल जिन्ह सिरजा ॥

अनमिल आखर मन्त्र न जापू। प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू॥ तुलसी रामायण ।

उक्त सवरपादके लिखे २६ ग्रन्थ तजूरमें प्राप्त हुए हैं। इनमें से कई ग्रन्थ मन्त्र-विद्या पर हैं। इन सवरपादके तीन शिष्य हुए एक लूहिपाद दूसरा सर्वभद्र तीसरे घर्भरीपाद। सर्वभद्र शवरीके पेटसे उत्पन्न शूद्र थे और भमर नामक स्थानके रहने वाले थे। यह इधर सवरके शिष्य वन कर पीछे भूसुकके भी शिष्य बने थे। यह अघोरी सिद्ध हुए। अघोर मन्त्रोंकी इन्होंने सृष्टि की तथा अघोर मत फैलाया। इनका लिखा 'करुणाचर्या कपालदृष्टि' नामक एक ग्रन्थ मिला है। सवरका दूसरा शिष्य लूहिपाद जो जातिका कायस्थ पूर्वनामा रन्तिदेव राजा धर्मपालका लेखक था इसके शिष्य होनेके सम्बन्धमें लिखा है कि एक समय राजा धर्मपाल अपने प्रदेशके वारेन्द्र नामक नगरमें ठहरे हुए थे। उस समय उधर विचरते हुए सिद्ध सवरपाद जा निकले। एक दिन भिक्षाके लिए राजाके महलके नीचेसे जा रहे थे कि मार्गमें इनकी रन्तिदेवसे भेंट होगई। वह प्रणाम कर सवरसे बातें करने लगे तो इनके प्रभावसे इतने प्रभावित हुए कि घरबार छोड़ कर इनके शिष्य बन गए। उनका नाम इन्होंने लूहिपाद रक्खा। यह अपने गुरु जैसे ही प्रतापी सिद्ध हुए। अनेक इतिहासज्ञोंके विचार है कि ८४ सिद्धोंमें यह प्रथम सिद्ध हुए। कई जगह ८४ सिद्धोंमें इन का नाम प्रथम लिखा मिलता है और इनके गुरु सवरको आदिनाथ (शिव) कहकर उन्हें अलौकिक सत्ताधारी माना गया है। किंतु यह इतिहाससे सही सिद्ध नहीं होता। इतिहाससे सरहपाद ही सिद्ध होते हैं। इनके अनेक शिष्य हुए उनमेंसे उड़ीसाका राजा और उसका मन्त्री दोनों ही राज-पाट छोड़ कर इसके शिष्य होगए थे, जो आगे चल कर सिद्ध दारिकपाद और डेंगीपादके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके लिखे ७ ग्रन्थोंका अनुवाद तजूरमें मिला है। उड़ीसाका राजा दारिकपाद भी अच्छा सिद्ध हुआ। इसके लिखे ११ ग्रन्थोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिलता है। कहते हैं कि लूहिपादने उड़ीसाके राजा को जब शिष्य बनाया तो उसे आदेश दिया कि तुम कांचीपुरमें जाकर दारिका (वेश्या) की सेवा करो। यह वहां गए और कई वर्षों तक उस वेश्या की सेवा

करने पर सिद्ध हो गये, इसीसे इनका नाम दारिकपाद पड़ा। दारिकपादके कई शिष्य हुए, उनमेंसे एक सहजयोगिनीचिंता नामकी प्रसिद्ध शिष्या हुई। दूसरे इनका एक शिष्य वज्रघण्टा, सूर्यघण्टा या घण्टापादके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस वज्रघण्टापादके लिखे ११ ग्रन्थोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिलता है। इन घण्टापादके शिष्य कूर्मपाद हुए और कूर्मपादके शिष्य जलन्धर-पाद हुए। जलन्धरपादका जन्म भोग नगरमें ब्राह्मणके घर हुआ। यह अच्छे विद्वान् थे, यह प्रथम बौद्ध भिक्षु बने, बादमें मन्त्र तन्त्रकी ओर झुक गए और अनेक सिद्धिया प्राप्त कीं। धीरे धीरे इनके विचार बदले नास्तिकसे आस्तिक होगये। उस समय इन्होंने अपना भिन्न सम्प्रदाय स्थापित किया जो नाथपन्थके नामसे प्रसिद्ध है। नाथपथी तो इन्हें आदि-नाथ मानते ही हैं तिब्बती ग्रथोंमेंभी इन्हें आदि-नाथ कहा गया है इनके लिखे ७ ग्रथोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिलता है। इनके कई शिष्य हुए। उनमें से शाति-पाद, कण्हपाद, ततिपाद या टिण्टिणीपाद और मत्स्येन्द्रनाथ प्रधान शिष्योंमें से थे जो आगे चलकर सब सिद्ध हुए। कण्हपाद वास्तवमें प्रथम विरूपादके शिष्य हुए थे फिर जलन्धरके शिष्य बन गये। कहते है मत्स्येंद्रनाथ कामरूप देशमें एक मछली पकड़ने वालेके घर मछलीके पेटसे जन्मे थे। बताया जाता है कि यह १२ वर्ष तक मछलीके पेटमें रहे पीछे उस मछुवेने मछलीके पेटसे इन्हें चीरकर निकाला और इनको पाला। वह मछुवा भी चर्पटी-पादका शिष्य होगया था जो सिद्ध मीनपादके नामसे प्रसिद्ध हुआ। रसग्रथोंमें इन्हीं दोनोंको कामद्वय कहा गया है।

जलन्धर नाथके शिष्य शातिपाद जो आगे चल कर रत्नाकर शातिके नाम से प्रसिद्ध हुए, वड़े विद्वान्, बौद्ध धर्म प्रचारक हुए। इनका समय ९७४-१०२६ है। कहते हैं कि इन्होंने पूरी सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर शरीर छोड़ा था। इनके लिखे ६ ग्रन्थ दर्शन-विषयक तथा २३ ग्रन्थ तन्त्र-विद्या पर और छन्दो-रत्नाकर नामका एक ग्रथ छद शास्त्रपर मिला है। जलन्धरनाथके दूसरे

शिष्य ततिपाद या टिण्टिणीपाद जातिके ततुवाय (कोरी) थे इसीसे इनका प्रथम नाम ततिपाद था, जब सिद्ध हुए तो टिण्टिणीपादके नामसे प्रसिद्ध हुए। यह इधर तो जलधरके शिष्य हुए, आगे चल कर जब यह कण्हपादके सत्सगमें रहे तो उनके शिष्य बन गए। इनका लिखा 'चतुर्योगभावना' नामक एक ग्रन्थ तिब्बती भाषामें अनुवादित मिला है। कण्हपादके महीपाद भादेपाद आदि अनेक शिष्य हुए जो सब सिद्ध हुए। मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य प्रसिद्ध गोरखनाथ जी तथा चौरंगिया या चौरगीनाथ हुए। यह दोनों अपने समयके बड़े ख्याति-प्राप्त सिद्ध हुए। गोरक्षनाथजी के लिखे कई ग्रन्थ मिलते है उनमेंसे 'गोरक्ष-सिद्धात सग्रह' नामक ग्रन्थ सरस्वती भवन टैक्स्ट सीरीज बनारसने प्रकाशित किया है। यद्यपि गोरखनाथ बौद्ध सम्प्रदायसे बहुत दूर हट गए थे और उन्होंने आस्तिकवादका प्रचार किया, तथा अपना एक स्वतत्र नाथपन्थ स्थापित किया, इतना होने पर भी नाथपन्थसे उन बौद्ध धर्मावलम्बी प्राचीन *८४सिद्धों की चर्चा नहीं छुटी।

हमने ऊपर सवरपादसे इस वश-वृक्ष को आरम्भ कर गोरक्षनाथ तक पहुचा कर छोड़ा है। गोरखनाथजी ९वीं शताब्दीमें हुए। सवरपादके दो शिष्य-सम्प्रदायोंकी हमने ऊपर कुछ चर्चा की है उसके तीसरे शिष्य घर्भरीपाद के जो शिष्य सिद्ध हुए हैं वह उक्त क्रममें छूट गए हैं। घर्भरीपादका एक शिष्य चर्पटीपाद हुआ जिसका शिष्य कुक्करीपाद हुआ। यह चर्पटीपाद रसायन-विद्याका अच्छा ज्ञाता हुआ। इस तरह यह सिद्ध ८वीं शताब्दीसे प्रादुर्भूत होने लगे तो इनकी वृद्धि उन चार सौ वर्षमें ८४से अधिक हो गई। अन्तिम सिद्ध चेलुकपादके शिष्य कालपाद हुए। कालपादके गुरु चेलुकपाद मैत्रीपादके शिष्य थे। यह मैत्रीपाद दीपकर श्रीज्ञानके गुरु थे, जो ११वीं शताब्दी के आरम्भमें विद्यमान थे। जिनके लिखे अनेक ग्रन्थ मिलते हैं।

---

* चतुः शती सिद्धाना पूर्वादीनां दिशा न्यसेत्। नवनाथ स्थितिं चैव सिद्धागमेन कारयेत्

गोरक्ष सिद्धान्त।

सिद्ध और रस-तन्त्र—इन सिद्धोंके सम्बन्धमें अनुसधानसे हमें जो ज्ञात हुआ है वह यही है कि इनकी सृष्टि बौद्ध धर्मके वज्रयान नामक सम्प्रदायसे हुई। बौद्ध धर्मके वज्रयान सम्प्रदायसे भैरवी-चक्र, मन्त्रसिद्धि, तन्त्रविद्या और रसायन-विद्याके आचार्योंका गहरा सम्बन्ध मिलता है और बौद्ध धर्मके दक्षिण-देशीय श्रीशैल, श्रीपर्वत नामक चैत्य इन विद्याओंके केंद्र थे। इन केंद्रोंने जिन सिद्धोंको उत्पन्न किया उनमेंसे अनेक व्यक्ति जब सिद्ध बने तो वह स्वतंत्र विचारके होने लगे। जिनमेंसे कइयोंने अपने सम्प्रदायभी चलाये। इतिहासमे पता चलता है कि करवाल भैरव नामक एक ऐसा सिद्ध हुआ जिसने भैरवीचक्रका बीजारोपण किया। यह जब कश्मीर पहुचा तो यहा इसके मतका खूब प्रचार हुआ। यहीं इसकी कई शाखाए फूटीं; जिसमें से कुलकौल, महा-कौल, सिद्धकौल नामक कई सम्प्रदाय निकले। इन्हीं सम्प्रदायोंका उल्लेख रसार्णवकारने रसार्णव में किया है। उक्त ८४ सिद्धोंमें से अनेक सिद्धरस-सम्प्रदाय में जो आए है उनके नाम मथान भैरवने 'आनदकद'में दिए है। तथा एक और ग्रन्थ-कारने भी जिन सिद्धोंके नाम दिए हैं वह उपर्युक्त ८४ 'सिद्धों मेंसे ही निकले दिखाई देते है। यथा—आदि-नाथ (सरहभद्र या जलधरनाथ), गोरखनाथ, चोलाभ्रदेश (अवधूत मैत्रीपादका शिष्य चेलुकपाद), कथानीश (कराहपादका शिष्य), चिङ्किणीपाद (तितिलीपाद), चौरङ्गी (चौरङ्गिया), कर्पटी (कर्पटीपाद), घोंटी (घण्टापाद), चुली (चेलुकपाद), कामद्वय (कामरूप देशीय दो सिद्ध मीनपाद और मत्स्येंद्रनाथ), व्यालि (व्यालिपाद), कुक्कुरी (कुक्कुरीपाद), कर्णरी (कर्णरीपाद या आर्यदेव), टिंटिणीपाद (ततिपाद), मथानभैरव, सिद्ध बुद्ध, (बुद्धज्ञान), कथडी (कथालीपाद), कपाली (कपालपाद), डिंठिणी (तन्तिपाद) आदि। आनदकद नामक रसतन्त्रमें आये इन नामोंका

---

* नित्यनाथ विरचित रसरत्नाकरके रसायन-खण्डका पर्वत साधक नामका अध्याय पाठक पढ़ें उनसे हमारे उक्त विचारोंकी काफी पुष्टि होती है।

८४ सिद्धोंके साथ सीधा सम्बध दिखाया गया है। इतिहाससे ज्ञात होता है कि उक्त सिद्धोंमें से अनेक सिद्ध एक ओर तो मन्त्र तन्त्रके ज्ञाता होते थे दूसरी ओर रसायन-विद्यामें भी प्रवीण होते थे। किंतु उक्त विद्याओंको वह बहुत गुप्त रखते थे। इन विद्याओंका प्रचार यदि किंसी प्रकार हुआ है तो वह शिष्य-परम्परासे ही आगे बढ़ता चला आया है।

मन्त्र से रसवाद का सम्बन्ध

ज्ञात होता है कि पारेके सम्बधमें जब यह जाना गया कि यह अग्निपर रखनेसे उड़ जाता है और दृढ़ सम्पुटमें बद करके रखने परभी नहीं ठहरता तो उन्होंने पारेको वशमें करनेका उपाय मत्रों द्वारा निकाला। रसांकुशी नामकी विद्या जो हमें रसतन्त्रोंमें मिलती है वह बतलाती है कि अनेक मत्रोंकी रचना मत्र-शास्त्रके नियमानुसार है। ज्ञात होता है कि पारद सिद्धिके अर्थ मत्रोंके सिद्ध करनेका उपाय इसी विद्यासे निकाला है। बौद्ध धर्मके ग्रथोंमें एक स्थान पर आया है कि रसायन-विद्यामें मत्रोंके उपयोगका सर्व प्रथम आविष्कार रसांकुश नामके किसी सिद्धने किया। तभी से मत्रयुक्त पारेकी सिद्धिका नाम रसांकुशी-विद्या पड़ा। रसतन्त्रोंका मत्र तत्रसे गठजोड़ा जो दिखाई देता है इसका मुख्य कारण यही रहा कि जो आचार्य मंत्र तत्रके ज्ञाता थे उन्हींमें से कुछ रसतन्त्रोंके भी थे और यह जितने भी सिद्ध साधक हुए हैं सबके सब विरक्त, साधु, महात्मा, ऋषि, मुनि, तपस्वियोंकी श्रेणीके थे। समयके प्रभावसे चाहे उनके विचार, रहन, सहन और व्यवहार आर्य ऋषियों जैसे न रहे हों, उनमें चाहे काफी अतर आ गया हो, किंतु हम उन्हें उन साधु सन्तोंकी श्रेणीसे अलग नहीं कर सकते। नागार्जुन, भैरवानद योगी, भालुकी, नदीश्वर, कम्बलि, व्याडि नागबोधि, ऋषि-शृङ्ग, स्वच्छद भैरव, करवाल भैरव आदि अनेक सिद्ध सतोंका जीवन-इतिहास जो इधर उधरसे ढूढे मिलता है उससे ज्ञात होता है कि यह सब सत महात्मा पूर्व ऋषियोंकी श्रेणीसे निकल कर ही आए है। रसरत्नसमुच्चय-कार वाग्भटने जिन ईश्वर महादेव, भैरव, हरि, महाभैरव, शम्भु, आदि रसाचार्यें

के नाम गिनाये हैं, ज्ञात होता है कि यह रसाचार्य पहिले नागार्जुनके बाद और दूसरे नागार्जुनसे पहिले हो गुजरे हैं । इनसे भिन्न भैरवानंद योगी, मन्थान भैरव, महाभैरव आदि जिन सिद्धोंका नाम इन्होंने दिया है उनमें से मन्थान भैरवका लिखा 'आनंदकंद' नामक रसतन्त्रका ग्रंथ—जिसका प्रमाण पहिले सीलोनसे प्राप्त बौद्धसम्प्रदायके इतिहाससे लगता था—अब मिल गया है, जो देवी महाभैरव सम्वादरूपमें है । मथानभैरवका लिखा आनंदकंद जिस तरह देवी महाभैरव सम्वादरूपमें है, हो सकता है कि इसी तरह रसार्णव और रुद्रयामलतंत्र भी किसी भैरव नामधारी के हों ।

हम देखते है कि इस समय जितने भी सम्प्रदाय व मत हैं सब अपने अपने पन्थ को पीछेसे पीछे लेजाकर किसी अलौकिक देवी देवतासे निकला हुआ सिद्ध करनेकी चेष्टा करते है । जिसको देखो अपने पन्थ की महत्ताको बढ़ानेके लिए वह किसी न किसी सिद्ध कलाधारी अवतारीसे उसकी उत्पत्ति बतलाते है । यही बात हम रस-तन्त्रों, मन्त्र-तन्त्रोंकी उत्पत्तिमें पातेहै । मन्त्र-तन्त्र और रस-विद्या पर गहरा विश्वास जमानेके लिये ही उन ग्रन्थ कर्त्ताओंने अलौकिक शिवकी रचना की, ऐसा ज्ञात होता है । मन्थान भैरवने जिस तरह अपने ग्रन्थ की महत्ता बढ़ानेके लिए उसे अलौकिक शिवकी रचना की ओर सङ्केत किया तथा उसे भैरव-देवी सवादरूपमें लिखा, उसी तरह अन्य कुछ ग्रन्थकार करते चले आये हों तो आश्चर्य क्या है ?

जिस कैलाशवासी शिवकी ओर पौराणिक गाथाए सकेत करती है जिन्हें रस-तन्त्रका आदि आचार्य कहा जाता है यदि हम ब्रह्मा, विष्णु तद्वत् इनकी ऐतिहासिक खोज करें तो इनका कहीं कोई पता नहीं लगता । आर्यजातिके सर्व-प्राचीन मान्य ग्रन्थ वेदमें भी इनका स्पष्टतया कोई उल्लेख नहीं मिलता । हा ! ऋग्वेदके कुछ मन्त्रोंमें रुद्र शब्द आया है । किन्हीं एक दो मन्त्रोंमें शिव शब्द भी आया है ऋ १०।९२।९ वहा उसे सर्व हितकारी कहा है, जिसकी जटाओंके वर्णनमें ऋ १।११४।१-४ कपर्दिन शब्द भी आया है । इससे

आगे अथर्व वेदको देखें तो वहा ११।२।२-७ मन्त्रमें शिवको पशुपति और अथर्ववेदके २।३१।१, ११।२ मत्रमें उसे सहस्राक्षभी कहा है और बतलाया है कि वह चारों ओर देख सकता है। किन्तु, यह शिव कहां के वासी थे और किसके देवता थे ? इसका कोई पता नहीं लगता।

वेदोंमें तो हमें शिव नामके देवताका कोई महत्त्व-पूर्ण स्थान दिखाई नहीं देता। इन्द्र, वरुण, सूर्य, भग, अग्नि, द्यौ आदि जिन वैदिक देवताओंकी प्रार्थना-वन्दना वेद मन्त्रमें मिलती है उसी तरह शिवकी अर्चना वन्दनाका एक मन्त्र भी दिखाई नहीं देता। ऋग्वेद और अथर्व वेदके मन्त्रोंमें शिवके वर्णनकी तुलना करें तो अथर्ववेदके समय कुछ शिवजी की महिमा बढी दिखाई देती है। हम इतिहास द्वारा इसका मुख्य कारण यही पाते हैं कि अथर्ववेदके समयमें आकर आर्योंका असुरों, सुमेरियोंके साथ अधिक सम्पर्क हो गया था और उनके देवी, देवता तथा मन्त्र तन्त्रों पर आर्योंका विश्वास हो चला था। प्राचीन इतिहासकी यदि हम गहरी छान बीन करें तो पता लगता है कि शिव और शक्ति यह दोनों आर्य देवता नहीं थे। यह तो शत्रु पक्षके देवता थे।

मोहञ्जड़ोदड़ो और हड़प्पाकी खुदाईमें अनेक शिवलिंग तथा एक शिवकी त्रिमुखी-मूर्त्ति मिली है इससे भिन्न ऐसी कई देवीकी मूर्त्तियां मिली है जिन्हें देख कर अनुमान किया गया है कि इनकी उस समयके लोग पूजा किया करते थे। मोहञ्जड़ोदड़ोमें जो वस्तुए प्राप्त हुई हैं उन्हें देख कर अधिक विद्वानोंकी यही राय है कि जिस सभ्यता की यह चीजें हैं वह आर्य-सभ्यतासे भिन्न थी। कहा जाता है कि वह अनार्य आदिद्रविड़ आसुरी-सभ्यतासे सम्बन्ध रखने वाले सुमेरियन थे। पूर्वकालमें शिव और शक्तिके उपासक आर्य नहीं थे, असुर थे। इसके जितने प्रमाण चाहो अपने ग्रथों में मिल सकते है। दूर न जाइये ! पुराणोंमें दी हुई अनेकों देवासुर-संग्रामकी कथायें पढिये, वहा देखिए ! देवता किसकी उपासना किया करते थे, और असुर (अनार्य) राक्षस किसकी। रावण, बाणासुर, रक्तबिंदु आदि अनेक असुरों की कथाए सिद्ध करती

हैं कि यह जब देवताओंसे पराजित होते थे तो शिव या शक्तिकी शरणमें भागते थे और उनको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी बड़ी तपस्यायें तथा अनुष्ठान किया करते थे। समय पाकर जैसे जैसे आर्योंके साथ अनार्यों (असुरों) का सम्मिश्रण होता गया उनके साथ ही उनके मन्त्र तन्त्र और देवी देवता इनमें प्रवेश करते चले गये। जिसे पुराण रचयिताओंने अति-रञ्जित रूप देनेमें कोई कसर बाकी न छोड़ी।

इतिहास शिला-लेख और ताम्र पत्रादि प्राचीन सामग्रीसे पता चलता है कि आर्यजातिमें इन अनार्य देवी देवताओंका प्रवेश कोई १३-१४ सौ वर्षके भीतर हुआ। बौद्ध धर्मके ह्रासके साथ साथ जब ब्राह्मणोंने जोर पकड़ा और देशमें आर्य, अनार्य तथा सिद्ध सम्प्रदायी साधुओंका प्रभाव बढ़ा, उन्हीं समयों में आकर इन्होंने आर्य देवोंमें महादेवको भी सम्मिलित कर दिया और साथ ही उसके दुर्गाको भी उच्च स्थान दिया। हमारे उक्त कथनकी सच्चाईको खोजने के लिए कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। ताम्र-लेख, शिला-लेख तो सैंकड़ों मिले हैं जो इस बातको सिद्ध करते है कि शिव व शक्ति अनार्य देवता थे। उन्हें छोड़िये! इस समय इस देशमें बसी उच्च और नीच कही जाने वाली जातियोंमें देखिये कि परम्परासे कौनसी जातिया किस किस देवता की मुख्य-रूपसे आराधना करती है। यद्यपि आर्यजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय) में अनार्य जाति (नाई, धोबी, काछी, कोरी, डूम आदि) का काफीसे अधिक मिश्रण हो चुका है तथापि इनके रीति, रिवाज, धर्म और देवता बहुत कुछ कुल-परम्पराके साथ लगे चले आए हैं, वह आज तक इन जातियोंसे भिन्न नहीं हुए। उनसे इनकी सच्चाईका प्रमाण प्राप्त कर सकते हैं। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें आया है कि इन्द्र लिंग-पूजकों (शिवोपासकों) को घृणाकी दृष्टिसे देखता है, क्यों? इसीलिये कि उस समय इनकी गणना शत्रुपक्षके देवताओंमें थी। राजतरंगिणीमें पहिली तरंगके २८९से३२४ श्लोकोंमें एक मिहिर कुल नामका राजा हुआ है वह म्लेच्छ वंशज शैव था। इसने तीन कोटि हिन्दु मारे थे तब इसका नाम

त्रिकोटिक पड़ा । शिव और शक्तिके पुजारी दक्षिणीवीरशैव, लिंगायत पश्चिमी जगम* और योगी कौन हैं ? जरा इनका प्राचीन इतिहास तो ढूढिये !

आजसे एक शताब्दी पूर्व तक प्राचीन इतिहासकी खोजकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत कम था । इतिहास सामग्रीकी कमीके कारण-कोई ग्रन्थ कब का है ? कब लिखा गया ? इसकी खोज कठिन थी । अब आकर जब अनेक प्रकारकी इतिहास सम्बन्धी प्राचीन सामग्री उपलब्ध हुई तो उसके आधार पर अनेक बातें मालूम होने लग पड़ी हैं ।

ग्रन्थोंके सम्बन्धमें इतिहासज्ञ इस निर्णय पर पहुचे हैं कि कोई ग्रन्थकार अपनी कृतिको कितनी ही प्राचीन बनाने की चेष्टा क्यों न करे, परन्तु वह अपने समयकी प्रचलित भाषा परिपाटी तथा उसके आसपास विद्यमान परिस्थिति से उस ग्रन्थको अछूता नहीं रख सकता ।

उसकी रचनामें उस समयकी भाषा-व्यञ्जना तथा उस समयकी अनेक ऐतिहासिक सामग्री अवश्य अङ्कित हो जाती है । उदाहरणके लिए हम रसतन्त्रोंका ही प्रमाण देंगे—रसतन्त्रों की सस्कृत पौराणिक शैली की है । दूसरे इसमें दी हुई अनेक बातें इसके रचनाकालको बताती हैं । रुद्रयामल तन्त्रको अति-प्राचीन माना जाता है । इस ग्रन्थके जो अब तक दो पाद प्राप्त हुए है उनमें से एक में तो बौद्ध सम्प्रदाय की अनेक बातें आई है, इससे भिन्न उसके धातु-क्रिया नामक पादमें एक स्थान पर फिरग रोगका वर्णन आया है । आचार्य श्री प्रफुल्लचद्र रायजीका मत है कि यह ग्रन्थ ८०० वर्षसे अधिक पुराना नहीं जचता । पोर्चगीज जब सर्व-प्रथम भारतमें आए उनके साथ फिरग-रोग भी भारत में आया । आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें से इस रोगका वर्णन १६वीं शताब्दीमें लिखे भावप्रकाशमें दिया है । और देखिए ! रसार्णवको भी प्राचीन ग्रन्थ कहा जाता

---

* जगमोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें देखिए—श्रीयुक्त गौरीशङ्कर ओझा लिखित सौलङ्कियोंका प्राचीन इतिहास ।

है। इस ग्रन्थको आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय जीने प्रकाशित किया है। इसके आरम्भमें देवी, भैरवकी प्रशसामें कहती है, 'हे! *कुलकौल, महाकौल, सिद्धकौलादि सम्प्रदायोंको नाश करने वाले'।

जिसने प्राचीन इतिहासका अध्ययन न किया हो उसे क्या पता कि कुलकौल, महाकौल और सिद्धकौल नामके कौनसे सम्प्रदाय थे? और कब हुए? यह प्राचीन इतिहाससे ही पता चलता है कि यह मत ११-१२वीं शताब्दीमें आकर काश्मीरमें फैला। यह वास्तवमें वाममार्गके अन्तिम सम्प्रदाय थे, जिनको नाश करने वाले शिवजीको कहा गया। आगे चलकर इसी ग्रन्थमें पारदका माहात्म्य वर्णन करते हुए ग्रन्थकारने लिखा है कि जनता †केदारादि शिवलिंगके दर्शनार्थ पृथिवी पर जहा तहा फिरती है, उन स्थानोंमें जाकर दर्शन करनेसे जितना पुण्य होता है उतना पुण्य घरमें बैठे पारदके दर्शन से हो जाता है। जिस केदारनाथका ग्रन्थकारने नाम लिया है इतिहाससे ज्ञात होता है कि उस केदारनाथकी स्थापना ६वीं शताब्दीमें हुई। आगे चलकर इसी पारद के माहात्म्यको लेकर ग्रन्थकार कहता है कि ‡षट्दर्शनने जो मुक्तिकामार्ग बतलाया है वह मनुष्यको मरनेके बाद मिलती है, किंतु पारदके प्रभावसे वह मुक्ति हस्तामलक्वत् जीवित ही मिल जाती है। यहां षट्दर्शनोंका उल्लेख इस बातको सिद्ध करता है कि इस ग्रन्थकी रचना उस समय हुई जब षट्दर्शनोंका देशमें खूब प्रचार था। इसी तरह जब आप 'आनन्दकद' ग्रन्थको देखेंगे तो उसमें आये रसाचार्यों सिद्धोंका समय ढूंढेंगे तो आपको पता लगेगा कि यह ८ से १२वीं शताब्दी ईस्वीके बीच हुए। जो सिद्ध १२वीं शताब्दीमें हुआ हो उसका उल्लेख जिस ग्रन्थमें आवे उसे कौन व्यक्ति १२वीं शताब्दी से पहिलेका लिखा मानेगा।

---

* कुलकौल, महाकौल, सिद्धकौलादि नाशन॥ रसार्णव

† केदारादीनि लिंगानि पृथिव्यां यानि कानि च।
तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्य तत्पुण्य रसदर्शनात्॥ रसार्णव

‡ षट् दर्शनेऽपि मुक्तिस्तु दर्शिना पिण्डपातने।

ऐसी ही अनेक सम-सामयिक बातें होती हैं जिनकी छाप ग्रन्थकार अपने ग्रन्थोंमें लगी हुई छोड़ जाते हैं उसकी विद्यमानतामें—कोई अन्ध श्रद्धालु भक्त चाहे उसे ही अति प्राचीन क्यों न बतानेकी चेष्टा करें—विद्यमान बातोंकी साक्षीमें वह कभी प्राचीन नहीं मानी जा सकती।

रस-तन्त्रोंका समय—एक बात जब यह निर्भ्रम है कि पारद का ज्ञान इस अढाई सहस्र वर्षके भीतरका है तो उसके सम्बन्धकी विशेष जानकारी रखने वाली बातें भी अवश्य ही उसकी उत्पत्तिके बाद की हो सकती है। फिर पारदकी उत्पत्ति भारत भूमिसे कई हजार मील पश्चिमकी ओर हुई, वहासे इसके विज्ञानका श्रीगणेश हुआ। एक बात और विचारणीय है कि जहा पर यह विद्या जन्मी होगी, वहीं एकाएक समुन्नत हुई होगी ऐसा सम्भव नहीं। हरएक वस्तुका ज्ञान विज्ञान समय पाकर ही बढ़ता है। अनुमान है कि वहां इसकी उन्नतिमें अवश्य ही ५-७ सौ वर्षसे ज्यादा लगे होंगे। जब इस विद्याकी ख्याति देश देशान्तरोंमें फैली उस समय इसे सीखनेके लिये लोग वहां पहुचने लगे होंगे। भारतीयोंमें हमें इस विद्याको सीखनेके लिये जानेवालों मेंसे नागार्जुनजी का नाम सर्वप्रथम मिलता है। सम्भव है और भी अनेक साधु महात्मा पहुचे हों। किन्तु हमें उनके जानेके इतिहासका कोई पता नहीं मिलता। यहभी स्मरण रखने वाली बात है कि कोई विद्या सर्वांग-पूर्ण बननेमें समय लेती है; इस विद्या ने भी समय लिया होगा। रसायन-विद्याको सर्वांग-पूर्ण बननेके लिए अवश्य ही ५-७ सौ वर्षसे अधिक लगे होंगे, इसमें कोई सशय नहीं। इसके बाद ही उसे ग्रन्थका रूप मिलना सम्भव जंचता है। रसायन-विद्या पर लिखे किसी ग्रन्थ के समयको जाननेके लिए हमें उसकी कृतियोंमें अनेक बातोंको ढूढना पड़ता है। तब उसके आधार पर उसका सही सही समय निकाला जाता है।

अब तक रस-तन्त्रपर लिखे कोई ७० के लगभग हस्त-लिखित ग्रन्थ मिल चुके हैं। इनमेंसे आधेके लगभग प्रकाशित हो चुके है। रस-सार, रस-हृदय, रसार्णव, आनन्दकन्द आदि अनेक ग्रन्थ शुद्ध रसायन-विद्यापर हैं। कुछ ग्रन्थोंमें

देह सिद्धि और लोह सिद्धिकी दोनों ही बातें सम्मिश्रित है। देह सिद्धिका क्रम लोह सिद्धिके बहुत पश्चात् का है यह इन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे सिद्ध होजाता है। प्राचीन ग्रन्थ जितने भी लिखे गए है वह प्राय: रसायन विद्यापर लिखे गए है। इसके बाद जब देहसिद्धिका उपयोग मालूम हुआ, आगेके ग्रन्थोंमें सङ्कलित होता चला गया। इस समय तकके प्रकाशित ग्रन्थोंका जो समय विद्वानोंने निर्द्धारित किया है हम उनमें से कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी एक सारणी देते है—

नाम ग्रन्थ	कर्त्ता	उसका समय
रसरत्नाकर	नागार्जुन द्वितीय	८वीं शताब्दी
कक्षपुट		
रसेन्द्रमंगल		
रसहृदय	गोविन्दाचार्य	९वीं शताब्दी
रसपद्धति	श्रीविन्दु	१०वीं शताब्दी
आनन्दकन्द	मन्थान भैरव	१२वीं शताब्दी
रसार्णव	भैरवानन्द योगी	१२वीं शताब्दी
रसरत्नाकर	सिद्ध नित्यनाथ	१२वीं शताब्दी
रससार	गोविन्दाचार्य द्वितीय	१३वीं शताब्दी
रसरत्नसमुच्चय	वाग्भट	१३वीं शताब्दी
रसेन्द्र चिन्तामणि	प० रामचन्द्र	१३वीं शताब्दी
रसचिंतामणि	अनन्तदेव सूरि	१४वीं शताब्दी
रसेन्द्रचिंतामणि	ढुढुकनाथ	१४वीं शताब्दी
रसप्रकाश सुधाकर	यशोधर	१४वीं शताब्दी
रुद्रयामल तन्त्र	भैरव	१६वीं शताब्दी
आयुर्वेद प्रकाश	माधव	१७वीं शताब्दी
रसकामधेनु	प० चूड़ामणि	१७वीं शताब्दी

आठवीं शताब्दीसे पूर्वके ग्रन्थ नहीं मिलते । नागार्जुन कृत ग्रन्थोंके सम्बन्धमें अधिक विद्वानोंकी राय है कि यह ग्रन्थ चाहे प्रथम नागार्जुन प्रणीत हों किंतु इनका प्रथम रूप अवश्य बदला गया है। इन ग्रन्थोंमें सशोधन, परिवर्द्धन हुआ है। आरम्भिक ज्ञानकी सामयिक स्थितिसे यह बहुत आगे बढ़े है। इन ग्रन्थोंका विवर्धित ज्ञान आठवीं शताब्दीका समय निर्द्धारित करता है। ऐसा भी हो सकता है कि प्रथम नागार्जुनकी रसायन विद्या सम्बन्धी बातें गुरु-परम्परामें कण्ठाग्र चली आई हों और उनका सङ्कलन दूसरे नागार्जुनने किया हो। क्योंकि इतिहाससे प्रथम नागार्जुनके समयमें जितने महारस, उपरस, साधारण रस व धातुए बतलाई गई हैं—इतनी चीजोंका उस समय तक ज्ञान नहीं हुआ था। दूसरे उस समय देह सिद्धिके अर्थ पारेका उपयोग बहुत ही साधारण रुपमें हुआ होगा। पारद तथा धातु भस्मोंका देह सिद्धिके अर्थ अधिक उपयोग आठवीं नौवीं शताब्दीके बादका सिद्ध होता है। सबसे प्राचीन वृन्द-प्रणीत 'सिद्ध योग' नामक ग्रन्थमें पारद का उपयोग दिया है, इसका समय १०वीं शताब्दी है। इसके बाद पारद और धातुओंके मिश्रित कुछ योग दिए हैं जिसमें धातुभस्मोंके बनानेका क्रम अधिकतर आरम्भिक ज्ञानका द्योतक है। वहा धातुओंके पत्रोंको औषध लेपन करके अग्निमें तपा तपा कर त्रिफलादि क्वाथमें बुझा चूर्ण कर लेने और उन्हें पीस कर उपयोगमें लानेका क्रम दिया है। यही नहीं, अभ्रकको निश्चन्द्र करनेके लिए लिखा है कि इसे *घोटो, पीसो और छान छान कर पुनः पीसते हुए निश्चन्द्र करो । स्पष्टतया उस ग्रन्थमें अयोरज, ताम्ररज, लोहचूर्णोंके उपयोग आए है। विद्वानोंने इस ग्रन्थकी रचना का समय ई० ११वीं शताब्दी निश्चित किया है। आयुर्वैदिक चिकित्सामें धातु-रसका प्रयोग इसी प्राचीन ग्रन्थमें मिलता है। यही पहिला आयुर्वेदका ग्रन्थ है जिसमें रसोंको स्थान मिला है। इसके पश्चात् ई० १४वीं शताब्दीके लिखे वगसेन नामक आयुर्वेदके ग्रन्थमें रस-धातुओंका अधिक उपयोग मिलता है।

---

* पिष्ट्वा घृष्ट्वाहि वस्त्रेण निश्चन्द्रकं कुर्यात् । चक्रदत्त रसायनाधिकार ।

इस तरह आयुर्वेदमें रसोंका प्रवेश ई० १०वीं शताब्दीके आरम्भमें हुआ। इसके काफी प्रमाण दिए जा सकते हैं। इससे पूर्व रसोंका देह सिद्धिके अर्थ उपयोग जिन्होंने किया होगा वह उनका स्वतन्त्र अनुभव होगा। आयुर्वेदमें उसका कोई स्थान न था।

लोह सिद्धिसे देह सिद्धिका सम्बन्ध कैसे हुआ? हमारा तो अनुमान है कि पूर्वकालमें जिन महापुरुषोंको पारेसे या अन्य धातुओंसे सोना चादी बनाने की धुन लगी थी वह महापुरुष पारद व धातुओंको अनेक वनस्पतियों, खनिजद्रव्यों, उपरसों, महारसोंके साथ घोट पीस कर अग्निकी सहायता से उसे एक रूपसे दूसरे रूपमें बदलनेके लिए जो प्रयत्न करते चले आये उन के इन प्रयत्नोंमें पारेके कई रूप ऐसे बने जो स्थाई थे। यथा—रससिंदूर, रसकपूर आदि। इसी तरह धातुओंके कई रूप ऐसे बने जिन्हें फिर पूर्वरूपमें वह नहीं ला सके। जैसे लोहभस्म, वगभस्म आदि; ऐसी भस्मोंका उन्होंने निरुत्थ नाम दिया। जिन धातुओंको इस तरह अनेक विधियोंसे मारते, फूकते, गलाते, मिलाते चले आए उनसे जो भस्में बनती चली गई उनसे लोह सिद्धि तो नहीं हुई, किंतु उन्हें उन्होंने फेंका नहीं; कई ऐसे महापुरुषोंने—जिन्हें अपनी देहकी भी परवाह न थी, किसी कष्ट व दु.खके समय उन रस-भस्मोंका स्वयम् उपयोग किया, अथवा किसी अन्य व्यक्तिपर किया। आरम्भमें इन धातु भस्मों का उपयोग अवश्य साहसका काम था, तथापि वह लोग इनका जो उपयोग करते थे दूसरेकी भलाईको दृष्टिमें रखकर-चिन्ता रहित करते थे। इसी आधार पर **"येन केन भविष्यति"** को उन्होंने साहससे देखा। इस शताब्दीमें भी जहा कानूनका प्रवल राज्य है हजारों प्रमाण साधु महात्माओंके ऐसे मिलते हैं कि वह औषध देकर किसीको जीवित कर गये और किसीके कर्म बुरे थे तो विचारे को यम नगरीका मार्ग देखनेको विवश कर दिया। अपक्व धातु भस्में खाकर जो व्यक्ति रोग पीड़ित हुए उनके अनेकों प्रमाण मिलते हैं।

किसी धातुभस्म या पारद यौगिकको किसी रोगमें लाभदायी दिखाई दिया

तो उस धातुभस्म व रसके बनानेका क्रम उन्होंने स्थिर कर लिया ऐसी धातु भस्मोंके बनानेका क्रम परम्परासे चल पड़ा। उस समयके महापुरुष घूमते फिरते एक दूसरेसे मिलतेही रहते थे। परस्परकी ज्ञान गोष्ठीमें जब यह वातें अनेक महापुरुषोंके गोचर हुई तो औरोंने भी उसी विधिसे या अन्य विधिसे रस भस्मोंको बना कर उपयोग करने की चेष्टा की। धीरे धीरे उन्हें ज्ञात हुआ कि पारदका उपयोग लोहसिद्धिकी अपेक्षा देहसिद्धिमें अधिक सुलभ और सफल है। इससे जनताको काफी लाभ पहुचता है और इस उपायसे यश कीर्तिके साथ आर्थिक सिद्धि भी प्राप्त होती है। यह देह सिद्धिका आविष्कार लोह-सिद्धिसे कुछ कम महत्वका न था। जिन महापुरुषोंके विचारमें यह बाते आई उन्होंने लोह सिद्धिके प्रयत्न को छोड़ कर देह सिद्धिकी ओर अधिक प्रयत्न किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय में ही परस्पर अनेक महात्माओंने मिलकर इसमें काफी उन्नति की। हम जहां तक इसकी उन्नतिमें पीछे की ओर निगाह दौड़ाते हैं तो ज्ञात होता है कि लोह सिद्धि की अपेक्षा देह-सिद्धिकी उन्नतिका यह चक्र उस समय बड़े वेगसे चला और इसने तीन चार शताब्दियोंमें ही इतनी अधिक उन्नति की जितनी उसके बाद आज तक नहीं हुई। हम उस समयको ९ ईस्वीसे १२ ईस्वी तक मानते हैं। इसके बाद तो फिर उन्हीं बातोंका पिष्ट-पेषण अधिक हुआ। इनके बाद जितने ग्रन्थ लिखे गये, इधर उधरसे लेकर इकट्ठे किए गए है। मौलिकताका प्राय: उनमें अभाव है। इसमें कोई सशय नहीं कि अनेक देह सिद्धिके योग गुरु परम्परासे उन महापुरुषोंमें ही चले आये थे जो रसायन विद्याकी ठरकमें लगे हुए थे। उन महापुरुषोंने सिवाय अपने शिष्योंके किसी औरको यह विद्या न बताई। उनसे आगेके किसी किसी उदार शिष्योंने इसे अवश्य प्रकाशित किया। किंतु ऐसी ओषधियों एव रसोंका आविष्कार भी हम उन तीन चार शताब्दियोंसे अधिकका नहीं मानते। जो कुछ प्रयत्न हुआ उन सिद्धोंके समयमें ही हुआ। वादमें तो उनके शिष्योंको जितना कुछ मिला वह उसी में ही सन्तोष कर बैठे। उस

समय से लेकर आजतक इस विद्यामें किसी वैद्य या महापुरुषने कोई उन्नति की हो, हमें इस बातका प्रमाण नहीं मिलता। प्रत्युत इसके विरुद्ध यह बात अवश्य दिखाई देती है कि इस शताब्दी में आकर अनेक धातुओं खनिजों का ज्ञान अन्य लोगोंको अवश्य बढ़ा पर रस-ज्ञाता वैद्योंको वही सात सौ वर्ष का पुराना सात ही धातुओंका ज्ञान सीमित रहा। इनकी विचार धारा विश्वासके गढ़े में गिर कर ऐसी लुप्त हुई कि इन्हें फिर कुछ सूझ न पड़ी कि रसतंत्रमें दी हुई वस्तुओंसे भिन्न ससारमें कुछ और पदार्थ भी हो सकते हैं? या इसमें उन्नतिके लिए कुछ और किया जा सकता है? जिन व्यक्तियोंके यह विचार हैं कि रसायन विद्या और रसतंत्रोंका आविष्कार किसी एक अलौकिक व्यक्तिसे हुआ, वह भारी भूलमें हैं। यदि यह विद्या आरम्भमें किसी एक व्यक्तिकी आविष्कृत होती—जैसा कि उसे अलौकिक सत्ताधारी शिवजीके द्वारा वरदान स्वरूप मिली हुई कहा जाता है—तो इसमें उन्नति न होनी चाहिए थी। हमारा अपना यह विचार है कि पूर्वकालमें धर्मनिष्ठा व गुरुभावना बहुत अधिक बढ़ी हुई थी। धर्म, अर्थ, मोक्ष दाता गुरुओंके प्रति शिष्योंकी अपार श्रद्धा भक्ति होती थी। शिष्य गुरुओंकी मानप्रतिष्ठा बढ़ाने तथा उसे स्थिर रखनेका सदा प्रयत्न करते थे। बौद्ध धर्मके ह्रासके साथ साथ जब अवतारी पुरुषों व सिद्धोंकी सृष्टि हो रही थी, उन्हीं समयोंमें शिव, भैरव, ईश्वर, शम्भु आदि नामधारी कुछ रसतत्र ज्ञाता प्रसिद्ध महापुरुष ऐसे हुए जिनका रहन सहन सतों, अवघड़ों, अवधूतों जैसा था। जिनका नाम रसरत्नसमुच्चयकारने दिया है। पुराणोंमें ऐसी कथाए भी आई हुई है कि शिवजी कई वार मृत्यु-लोकमें आये, वैलपर चढ़े फिरते रहे। हो सक्ता है कि पुराणोंके लिखनेसे पहिले ऐसे कोई सिद्ध औघड़ वावा रहे हों जो वैल पर चढ़े अपनी स्त्रीको लिए मृत्युलोकमें विचरते रहे हों। ऐसी ही किसी पार्वतीके पुत्र रसरत्नाकर नित्यनाथ भी हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। हमें जब ८४ सिद्धोंमें कई ऐसे सिद्ध हुए दिखाई देते हैं जिनकी स्त्रिया थीं, कइयोंकी स्त्रिया चेली थीं। कण्हपादकी

मेखला, कनखला दो शिष्या थीं जो योगिनी होकर सिद्ध हुई । इसी तरह कुक्कुरीपादकी मणिभद्रा नामकी एक चेली थी जो योगिनी होकर सिद्ध बनी; यह सब सिद्धोंके साथ रहती थीं । मालती-माधवमें सौदामिनी नामकी एक स्त्री का वर्णन आया है जो मालवा देशसे मन्त्र, तन्त्र विद्या सीखने के लिये श्रीशैल पर्वतपर गई थी और वहा जाकर वह योगिनी बन गई थी । इस तरह इन सिद्धों से पूर्व भी अनेक ऐसे सिद्ध हुए होंगे जिनकी स्त्रिया साथ रहा करती थीं । वैदिक ऋषियों मुनियोंके स्त्रियां होती थीं, उनके सतान होती थी, यह परम्परा शङ्कराचार्यके समय तक बनी रही । पूर्व समयके सिद्धोंमें कोई शिव, शम्भु नाम के सिद्ध रसाचार्य हुए होंगे, जिनको आगे चलकर उनके श्रद्धालु शिष्योंने अवतारी बना कर अलौकिक शिवके साथ मिला दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

ज्ञानका विकास—हम पीछे सिद्ध कर आए हैं कि मनुष्यको पदार्थ-सम्बन्धी ज्ञान एक बार ही नहीं हुआ, प्रत्युत धीरे धीरे हुआ है और वह क्रम से बढ़ा है । रसतन्त्रों में दी हुई धातूपधातु, महारस, उपरसादिका ज्ञान एक-वार ही नहीं हुआ, बल्कि धीरे धीरे सैंकड़ों वर्षोंमें जाकर बढ़ा है । पदार्थोंके ज्ञानका विकास, मानव विकासका एक अङ्ग है और वह उसकी आवश्यकतासे सम्बन्ध रखता है । जब जब इसे किसी बातकी आवश्यकता हुई उसकी पूर्त्तिके लिये इसने अपने आसपास पाये जाने वाले पदार्थोंमेंसे उन पदार्थोंको चुना जो आवश्यक थे । जिन पदार्थों को यह पूर्वसे जानता था इसके अधिक सम्पर्कमें आने के कारण विशेष परिच्चित होगये थे, उन चीजोंका समय समय पर उपयोग होता रहनेसे यह उसके गुण धर्मोको भी जान गया । हम इस बातकी सत्यता को जानने की चेष्टा करें तो ग्रन्थोंमें हमें इसके अनेकों प्रमाण मिल सकते हैं।

दूर न जाइये ? पहिले धातुओं को ही लीजिये ! ऋग्वेदकी रचनाकालमें सुवर्ण, चांदी और ताम्र तीन ही धातुओंका ज्ञान था, यजुर्वेदकी रचनाकालमें लोहका पता लगा । फिर चरक जीके समयमे आकर वगका ज्ञान हुआ, सुश्रुतजीके समयमें सीसाका बोध हुआ । यह छः धातुए कई सौ वर्ष तक बनी रहीं । इसके

वाद आयुर्वेदप्रकाशके समयसे कुछ पूर्व यशदका पता लगा। पहिले तीन धातुए मानी जाती थीं, वादमें उनकी सख्याका वढना सिद्ध करता है कि धातुओंके ज्ञानका विकास क्रमसे हुआ। और देखिये! रसपद्धतिमें विन्दुजीने छ महारस कहे है किंतु रसराजलक्ष्मीकारने सात, तथा रसार्णवकारने आठ महारस कहे है। इसी प्रकार रसपद्धतिकार गन्धक, हरताल, मैनसिल तीन ही उपरस कहता है। रसराजलक्ष्मीकार सात उपरस तथा इससे आगेके ग्रन्थ कर्त्ता चूड़ामणि, शालि-नाथ आदिने वहुत अधिक उपरस गिनाए हैं। यह बातें सिद्ध करती है कि इन वस्तुओंका ज्ञान जैसे जैसे वढता गया वैसे वैसे उन चीजोंको—जो जिस विभागके योग्य समझी गई उसमें उन्हें सम्मिलित करलिया गया। इसीलिये धीरे धीरे उन वस्तुओंकी सख्या वढ़ती चली गई।

हमें यदि कहीं आठवीं शताब्दीसे पूर्व के लिखे रसग्रन्थ मिल जाय तो हम अपने विचारोंकी पुष्टि वहुत जोरके साथ कर सकते है। फिर भी इन्हीं ग्रन्थोंमें जो आगे पीछेके लिखे हैं उनपर निगाह डाली जाय तो उनमें अनेक बातोंका क्रम विकास मिल जाया करता है। हमें जव पदार्थोंकी ज्ञान वृद्धिका इतिहास क्रमसे वढ़ता हुआ मिले तो इस वातका स्वतः खण्डन हो जाता है कि कोई विद्या ईश्वरी-देन है। एक वात और है, यदि रसतन्त्रका कोई एक ही आदि आचार्य होता और वह विद्या आरम्भसे ही पूर्ण होती तो आगे चल कर उस विद्यासे सम्वन्ध रखने वाली अनेक वातोंमें मतभेद उत्पन्न नहीं होना चाहिए। किन्तु जहा देखो हमें इसके विरुद्ध वातें मिलती है।

यथा—रसपद्धतिमें वैक्रात अभ्रकको महारसोंमें गिना है, किंतु रसार्णवमें हिंगुल अञ्जनको महारसोंमें गिना है। वैक्रातको भिन्न महारस माना है। रसराजलक्ष्मीमें पारदको भी महारसमें गिना है। एक और आगेके ग्रन्थकारने तुत्थ-कात, राजावर्त, वज्र और सुहागे को महारसमें गिना है यह पहिलेसे कहे ग्रन्थकारोंके कई महारसोंको छोड़ गया है। इसी प्रकार उपरसोंमें जिन आठ चीजों को रसार्णवकार मानता है उसे रसराजलक्ष्मीकार नहीं मानता। रसकामधेनु

में इन उपरसोंके बीचमें नमक, मिट्टी, कांच तक इकट्ठे कर दिये गए हैं। और देखिए! ऊपरके ग्रन्थकार महारस, उपरस दोनोंको भिन्न भिन्न कर आए हैं। आगे चलकर शालीनाथने महारसोंकी स्वतन्त्र आवश्यकता नहीं समझी, उसने महारसोंको भी उपरसोंमें ही गिनलिया है। इसीतरह आयुर्वेद-प्रकाशनेभी उक्त बातोंका सशोधन करते हुए महारसोपरसोंको मिलाकर एक ही स्थान पर एकत्र कर दिया है। यह काट छांट करना इस बातको सिद्ध करता है कि प्रथमकी दी हुई बातोंमें कुछ त्रुटियां—कमियां थीं, जिन्हें पीछेके अनुसन्धान-कर्त्ताओंने ठीक करनेकी चेष्टा की और उन्होंने आगे चलकर अनेक सशोधन व परिवर्द्धन किए।

कई व्यक्ति उक्त विचारोंको पढकर शायद यह धारणा बना लें कि लेखक का अभिमत उनकी लघुता दर्शानेका है; यह बात नहीं है। हमारा यहां पर मुख्य उद्देश्य यह है कि हम वस्तु-स्थितिको असली रूपमें रखें। रहा उसे भिन्न भिन्न दृष्टिकोणसे देखना वह विचारकोंकी इच्छा पर निर्भर है।

क्या रसायन विद्या कल्पना है?

हमारा अनुभव

बहुतसे व्यक्ति हमारे लिखे इन पिछले विचारोंको पढ़कर यह सोच सकते है कि जब रस-तन्त्रोंकी उपज इसी हजार, डेढ़-हजार वर्ष की है और उसका ज्ञान भी अति प्राचीन नहीं, तो सोना, चादी बनानेकी यह विद्या कुछ भी महत्त्वकी न ठहरी? लोग किंवदन्तियों, कल्पनाओंके ही पीछे दौड़ते रहे होंगे? हमारे देखनेमें भी सैकड़ों नहीं हजारों व्यक्ति ऐसे आए हैं जिन्होंने रसायन विद्याके पीछे अपना सर्वस्व स्वाहा कर लिया। उनकी हरएक प्रक्रिया में एक आंचकी कसर बनी रही, कभी द्वन्द्व मेलन प्रक्रियाकी कसर बाकी रही। वह इस तरह कहते व करते करते ससारसे चलेगए, किंतु उनकी कसर पूरी न हुई। इन्हीं बातोंको देखते देखते अनेक व्यक्तियोंके यह विचार दृढ़ होगए है कि कीमियागरी एक ढकोसला है। चादी, सोना प्रस्तुतीकरण निरी गप्प है। आइये! आगेके अध्यायमें हम जरा इसकी सच्चाई को खोजें।

इसमें तो कोई सशय नहीं कि रसायन-विद्याका जन्म पारस पत्थर और पारदकी प्राप्तिसे सम्बन्ध रखता है। यदि द्रवरूपमें यह धातु न मिलता तो शायद किसीको इस बातकी कल्पना ही न होती कि एक धातुको दूसरी धातुमें बदला भी जा सकता है। इसकी द्रवताने ही इस बातकी शङ्का उत्पन्न की कि हो न हो यह अवश्य चादीका एक रूप है या धातुओंका मूल धातु है। सम्भव है पारदके आविष्कारकालमें चांदी कम मिलती हो और पारद खनिज जहा मिलते हों वहा इसकी बहुतायत हो और यह सस्ता पड़ता हो। ऐसी दशामें लोगोंका ध्यान इधर खिंचा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भारतीय रसायन-वादी तो पारदको आजतक धातु नहीं मानते, वह रस कहते है। किंतु विदेशी कीमियागरोंमेंसे कुछने इसे समस्त धातुओंका आदि-धातु माना था, जभी तो इससे वह चादी, सोना बनानेकी फिकरमें लगे। परन्तु हमें विश्वास है कि कुछ व्यक्ति उस समय इसे किसी न किसी तरह चादी जैसे रूपमें अवश्य बदल सके होंगे तभी तो अन्य लोगोंका ध्यान इधर अधिक खिंचा। यदि पारेसे चादी न बनी होती तो असत्य व कल्पना का राज्य इतने समय तक जम नहीं सकता था। यह बात हम केवल अनुमानके आधारपर नहीं कह रहे हैं, प्रत्युत अपने गुरुदेवकी कृपासे पारद द्वारा चादी बनती देखकर और अपने हाथों बाजारमें बेच कर लिख रहे है। इतना ही नहीं, इस चादीकी एक बार नहीं कई बार आधुनिक रसायन शास्त्रियों से—इसके तात्त्विक रूपकी—परीक्षाभी करा चुके है। प्राचीन रसायन-विद्यामें हमारे गुरुदेव काफी दक्ष थे, उनके द्वारा पारदसे चादी निर्माणका विधान अत्यत सरल था किन्तु वह उसका रहस्य बताने के लिए तय्यार न हुए।

विधि निम्नलिखित थी—पाच, सात तोला पारा बाजारसे लेकर कड़वे तेलमें २४ घण्टे तक डुबो देते थे। अगले दिन दो भिन्न वनस्पतियोंके लुगदेकी कटोरी में रखकर एक बताशानुमा कपडाके गर्तमें बिठाकर दूसरी वनस्पतिसे ढक दूसरा कपडा ऊपरसे ढककर ऽ१॥ सेर उपलोंकी अग्नि देदेते थे। ३-४ घण्टेमें

ही उपले जलकर भस्म बन जाते थे, उसमें पारे की डली बनी हुई मिलती थी। इस डलीको गलाइये ९२५ शतांशपर जाकर गलती थी। चांदी ९६३ शतांशपर गलती है। इसका परमाणुभार चांदीके परमाणुभारसे कुछ अधिक था। गलनेपर इसकी ज्वाला स्वर्णकी ज्वालासे कुछ मिलती थी। यह २ रत्ती प्रति तोला स्वर्णमें गल मिलकर आत्मसात् हो जाती थी। जब कि असली चांदी आधी रत्तीका भी पता देदेती है।

धातुओंका बदलना

आधुनिक रसायन-शास्त्र जिस प्राचीन रसायन विद्याके बीजसे अंकुरित हुआ है उसका १९वीं शताब्दीमें आकर यह विचार दृढ हो चला था कि एक धातु दूसरी धातुमें नहीं बदल सकती। कई धातुओंके मिश्रणसे उसका रूप अवश्य बदल सकता है किंतु, किसी धातुकी तात्त्विक स्थिति नहीं बदली जासकती। तत्त्व अच्छेद्य, अभेद्य अपरिवर्तनीय हैं। यद्यपि पाश्चात्य देशोंमें इन विचारोंकी नींव डाल्टनने डाली, किंतु इसकी पुष्टि प्राउट, मैण्डलीफ आदि कई आगेके वैज्ञानिकों ने की। १८९५ ईस्वीमें आकर पैरां व जे.जे. टामसन जैसे वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया कि तत्त्व अच्छेद्य, अभेद्य नहीं, इन्हें तोड़ा जासकता है। आगे चलकर सर विलियम क्रुक्स आदिने इसी बातका प्रायोगिक समर्थन किया। मैडमक्यूरी नामक एक पोलैण्ड निवासिनी महिलाने १८९८ ई०में आकर एक ऐसे तत्त्वका आविष्कार किया जो स्वय ही टूट रहा था। पाठक इस धातुके नामसे परिचित है। इसका नाम है रेडियम। यह प्रकाशमान धातु है, इसके परमाणु सदा टूटते रहनेके कारण उसमें से प्रकाश निकलता है। उस प्रकाशको यदि किसी रोधक पदार्थसे रोका जाय तो उसके रुकनेसे उससे सीसा (नाग) नामक धातुका जन्म होताहै। यह धातु पूर्व की धातुसे गुण स्वभावमे बिलकुल भिन्न होती है। इसतरह जब एक धातुसे दूसरी धातु बनती हुई देखी गई तो आधुनिक वैज्ञानिकोने इस बातको मान लिया कि एक धातु दूसरी धातुमें बदल सकती है। अब तो कोई भी समझदार व्यक्ति एक धातुसे दूसरी धातुमे बदल जानेको अनहोनी बात

नहीं मानता, किंतु इस परिवर्तन की विधिको जानना और उसे दूसरी धातुमे परिवर्तन करना यह एक विशेष विद्यासे सम्बन्ध रखने वाली बात है। जबतक रसायन विद्याके शौकीन आधुनिक रसायन शास्त्रका अध्ययन नहीं करते तब तक वह धातु-परिवर्तनके इन सूक्ष्म रहस्योंको कभी समझ नहीं सकते।

यह हम मानते है कि कुछ वनस्पतियां ऐसी तात्त्विक रचनाकी है जो धातु परिवर्तनमे परम सहायक होती है। कई उन धातुओंकी तात्त्विक स्थितिको बदलनेमे समर्थ भी होंगी, किंतु उनको जानना और प्राप्त करना परिश्रम साध्य काम है। १६१०मे जिला देहरादूनके पास ग्रामवाला ग्राममें एक लोहारका हमें पता लगा कि उसको एक ऐसी वनस्पति मालूम है जो पारेका पक्षच्छेदन कर देती है। हम उसको जाकर मिले और कई दिन उसके पास रहकर प्रार्थना की कि क्या आप इस वनस्पतिका चमत्कार हमें दिखलावेंगे? उसने कहा कोई हानि नहीं! पारा लाओ, दिखादूगा। हम पहिलेहीसे ४ तोला पारा अपने साथ लेगये थे, वह उसको दिया। २ तोला पारा तो उसने रख लिया और दो तोला पारा लोहेकी करछीमें डालकर कहने लगा आप भट्टी सुलगाइए और इसे गरम करिये, मैं आता हू। कहकर बाहर चला गया। हम आग जलाने लगे, १५-२० मिनटमें वह एक वनस्पति दोनों हाथोंकी हथेलियोंसे मसलता हुआ आरहा था, उसने उस वनस्पतिका रस करछी मे निचोड़ दिया और बाकी वनस्पतिका अवशेष भाग मुहमें डाल कर खा गया। करछीको अग्निमें खूब तपाया, थोड़ी देरमें रस सूख गया, पारा खूब गरम होगया, उसने उस गरम पारेमें कुछ मुंहका रसभी डाल दिया और कहने लगा, अब इसे खूब तपाओ। हम तपाने लगे, पारेका रग अग्निवत् लाल हो गया, किंतु न वह उड़ा न उसमें कोई परिवर्त्तन हुआ। उसने उस पारेको गरम गरम ही जलके गिलासमें गिरा दिया; कहने लगा, इसे ले जाओ और जिसको चाहो दिखाओ, यह सोने जितनी गलने की अग्नि पर जा कर उड़ेगा। हम उसे लेकर देहरादून चले आये। एक सुनारकी चादी गलानेकी घरियाकेसाथ दूसरी घरिया में इसे रखाकर उसे अग्निपर रखाया और चादी गलवाई। जब चादी गलने लगी

उधर पारा भी रक्त तप्त होगया तब उसके साथही पारेकी घरियाभी निकालली। पारा जितना अग्नि पर रक्खा था तोलने पर उतना ही मिला। पारा साधारणत. ३५७ शतांश के उत्ताप पर उबल उठता है और वाष्प बन कर उड़ने लगता है किंतु यह पारा चादीके द्रवाक तक नहीं उड़ा, न उसके रूपमें ही कोई परिवर्तन आया। यह पारा हमारे पास ५ वर्ष तक रहा, कई व्यक्तियोंको इसके अग्निस्थायित्वका चमत्कार दिखाते रहे। यह पारेके रूपमें ऐसा भौतिक परिवर्तन था जिसने कई एम एस.सी. को चक्करमें डाले रखा। हमारे प्राचीन रसायन विद्याके ग्रन्थोंमें ६४ ऐसी साधक वनस्पतियोंका उल्लेख आया है जिनके प्रभावसे पारदकी स्थितिमें अनेक परिवर्त्तन बतलाए गए है, किंतु इन वनस्पतियोका हमे अब बहुत कम ज्ञान रह गया है।

हम इस बातको स्वीकार करते है कि इस विद्याका आरम्भ एक अजनबी तरीकेसे हुआ, जिसके आरम्भको हम सुव्यवस्थित और ज्ञान विज्ञान सम्पन्न नहीं कह सकते। तथापि आगे चलकर इस मार्गपर कई व्यक्तियोंको सफलता अवश्य मिली। जिसको मिली उनमें से किसी ही उदार व्यक्तिने अपने आत्मजोंको यह विद्या दी हो, वरना कौन व्यक्ति है जो अपने धनको दूसरेके सुपुर्द करेगा। यह निश्चित बात है जिसको कुछ आता नहीं, वह ससारमें अपनी योग्यताकी खूब डींगें मारते फिरते हैं और ससारको ठगते फिरते हैं। जिसको कुछ आता है वह सासारिक पुरुषोंसे बात तक नहीं करते। कौन मूर्ख व्यक्ति है जिसके पास खजाना हो और वह ढडोरा पीटता फिरे कि मेरे पास धन है, लेलो। सच्ची रसायनविद्या देना अपारधन देनेके बराबर है। हमे भी इस रसायन विद्याका १९१० से शौक लगा। उस समयसे इस विषयके जो ग्रन्थ प्राप्त हुए उन्हें पढा, गुरु द्वारा समझनेकी चेष्टा की, जो ग्रन्थ अप्राप्य थे उनकी खोज हम गुरु-चेला करते रहे। १९१५ मे कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ हमें टिहरी स्टेटमे देखनेको मिले। कुछ १९१८ में चम्बा रियासतकी राजधानीके राजकीय पुस्तकालयमें देखनेको प्राप्त हुए। यहीं पर हमे रसायन विद्या पर लिखा हुआ सबसे बड़ा सग्रह ग्रन्थ

रसकामधेनु मिला। हम इस ग्रथको देख कर अपने लोभको सवरण न कर सके। ६ मास वहा रहकर स्वय अपने हाथसे उसकी प्रतिलिपि की। वही मेरी की हुई प्रतिलिपि श्रीयुक्त जीवराम कालिदासजी राज्य वैद्य गोंडल द्वारा श्रीयुक्त यादवजी त्रिविक्रमजी के पास पहुची, जो १६२५मे यादवजी महाराजके द्वारा प्रकाशित की गई। हमे वहा पर ही रस-सागर, नागार्जुन कृत कक्षपुट, रसपद्धति, रससार आदि अन्य कई और ग्रन्थ भी देखनेके लिये मिले। हम इन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे इस परिणाम पर पहुचे है कि विद्यमान ग्रन्थोंमे जितने भी सुवर्ण, चादी प्रस्तुतीकरणके विधान दिए गए है, वह सब अपूर्ण और रोचकतासे भरे है। वह हमे मार्ग तो बताते है, किंतु ध्येय-स्थान तक नहीं पहुचाते। विना गुरुके इन सब रसतन्त्रोंके आधार पर कार्य करना अधेरेमें निशाना लगानेके तुल्य है। इस विद्याको विना समझे बूझे सुवर्ण चांदी प्रस्तुतीकरणार्थ वनस्पतिकी तलाश मे जङ्गलोंमे भटकना और दिन रात मारे मारे फिरना, विना विचारे बेसमझे प्रयोग करना, धन और समयको वृथा खोना है। इस विद्याको प्राप्त करना हो तो नए सिरेसे धातुओंकी स्थितिको तथा पदार्थोंकी स्थितिको अच्छी तरह समझना चाहिए और यह जानना चाहिए कि धातुए कौनसी सत्ताओंमे बनी हुई है ? इनको एक रूपसे दूसरे रूपमे परिवर्त्तन करनेके लिये उन सत्ताओं पर किस तरह अधिकार प्राप्त किया जा सकता है ? धातु परिवर्त्तनके सिद्धान्त क्या है ? जबतक हम इन रहस्योंको भली प्रकार नहीं समझेंगे तबतक हमे इस रसायन विद्या मे सामूहिक सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती।

पाश्चात्य प्राक्कालीन रसायन विद्याका इतिहास और उससे आधुनिक रसायन-शास्त्रका जन्म

इस समय तक जितनाभी प्राचीन सभ्यताका प्राक्कालीन इतिहास ढूढा जा सका है उनमें सर्व प्रथम चीनको स्थान मिलता है। इसके बाद मिश्री, असी-

रियन, सुमेरियन तथा आर्यन् सभ्यताका नम्बर आता है । ऋग्वेदमें जिस असुर, निप्पर, अक्काद, उर, किश आदि स्थानोंका उल्लेख आया है यह सबके सब दजला, फरात नदियोंके तट पर बसे, उन नगरोंके नाम हैं जो आजसे ५ सहस्र वर्ष पूर्व सजीव थे। किन्तु सुमेरियन, असीरियन लोग आर्य (सेमेटिक) नस्लके नहीं थे। प्रत्युत इन लोगोंसे ही आर्य जातिका वहां पर सघर्ष होता रहा। वहींसे आर्य जाति इस सघर्षमें हटी और हट कर हिन्दुकुश पर्वतमालाकी ओर आई। जहासे काबुल आदि स्थानोंकी ओर फैल गई। उस समय तक उस सुमेरियन, असीरियन और आर्य जातिको सोना, चांदी, ताबा आदिका ही ज्ञान हुआ था। जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें आया है और जिसका उस देशके पुरातत्त्व अनुसन्धानसे पता चलता है।

मिश्रमें रसायन विद्या

मिश्र देशके पिरामिडोंमें प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री तथा पैपरिसके लेखोंसे पता चलता है कि आजसे ५ सहस्र वर्ष पूर्व उन मिश्रवासियोंको ताबे का ज्ञान था। २०७५ ईस्वी-पूर्वमें मिश्रके राजा सेनूस्रेतने न्यूबिया पर चढाई की और उसको जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया तो उसे उस देशसे काफी सोना मिला; उस समयसे इसे सोनेका पता चला। इसके पश्चात् १८०० ईस्वी पूर्व हिक्सोस नामक कोई सेमेटिक भाषा-भाषी आर्य सरदारने एकाएक मिश्र पर चढाई करदी। उसकी फौजें घोड़ों वाले रथों पर सुसज्जित कासेकी तलवारें चमकाती हुई मिश्री फौजपर टूट पड़ीं। उस समय तक मिश्र वासियोंने घोड़े रथ और कासेकी तलवार न देखी थी, इनके आगे वह ठहर न सके। उस हार में इन्हें कांसेके बने शस्त्रोंका ज्ञान हुआ। इनके पश्चात् १४५० ईस्वी पूर्व मिश्र का तृतीय सम्राट् थटमोज विजयकी लालसा से मेसोपोटामिया असीरिया आदि देशोंको जीतता हुआ हिटाइट (खत्ती या हत्ती) लोगोंके देशमें जा पहुचा तो उसे हिटाइट लोगोंसे लोहेका ज्ञान हुआ और ३२४ ईस्वी पूर्व जब यूनानके बादशाह सिकन्दरने मिश्रको जीत कर वहां सिकन्दरिया नामका नगर बसाया

और उस नगरको एक व्यापारिक केन्द्र बना दिया तो वहा पर बाहरसे व्यापारियों द्वारा सिंगरफके खनिज विक्रयार्थ लाये गये।

इतिहास बतलाता है कि ३०० ईस्वी पूर्व बनी-उमय्या नामक शासकके समय सिकन्दरिया नगरमें रसायन विद्या प्रेमियों (कीमियागरों) की एक भारी कान्फ्रेन्स हुई, जिसमें दूर दूरसे चल कर अनेक रसायनी एकत्र हुए थे। उस समय रसायन विद्या पर कई दिनों चर्चा होती रही। कई व्यक्तियोंने प्रयोगों द्वारा अपने कर्तब दिखलाये। पता चलता है कि एक रसायनीने सिंगरफ चूर्ण के साथ ताम्र चूर्ण मिला कर उसे सिरकेमें भिगो कर तिर्यक्-पातन विधि (वकयन्त्र) द्वारा पारद निकाल कर दिखलाया। इसी यन्त्र द्वारा एक दूसरे रसायनीने कसीस, फिटकरी, रेह, मिट्टी, निमक आदि मिला कर गन्धकाम्ल बना कर बतलाया था।

पारस पत्थरसे रसायन विद्याका जन्म

मिश्र देशके इतिहाससे पता चलता है कि १ सहस्र ईस्वी सन्से पूर्व मिश्र में यह विश्वास फैल चुका था कि पारस नामका कोई ऐसा पत्थर होता है जिस के साथ पीतल, तावा, कांसा आदि धातुए छुआ दी जांय तो वह धातुए सोना बन जाती है। इस लालसासे सैंकड़ों आदमी पारस पत्थरकी खोजमें पहाड़ों पर भटकते फिरे।

हमारे यहा भी आज तक इस बात पर विश्वास किया जाता है कि *पारस पत्थरके स्पर्शसे हीन धातुए सोना बन जाती हैं। बद्रीनारायण, नैपाल आदि देशोंमें इस बात की किंवदन्ती पाई जाती है कि पहिले लोग बकरीके पैरोंमें लोहेकी नालें बाध देते थे, इसीलिये कि जहा कहीं पारस पत्थर होगा नालसे छूते ही उसे सोना बना देगा। लोगों की यह धारणा थी कि पर्वतोंमें कहीं न कहीं पारस पत्थर अवश्य होता है।

---

* पारस परस कुधात सुहाई। तुलसी रामायण

कहते हैं कि हीन-धातुसे सोना बनजाने की कल्पनाका बीज पारस पत्थरकी खोजके समय मिश्र देश वासियोंमें प्रादुर्भूत हुआ, किंतु भारतीयोंमें इस तरहके विचारों का कोई प्रमाण नहीं मिलता। पारद जब मिश्रियोंको मिला तो इसकी श्वेत स्वच्छ आभा, प्रभा तथा उसके द्रवता धर्मको देख कर मिश्र वासियोंमें यह विचार दृढ हो गए कि यह प्रकृतिमें चांदी बनते बनते रह गयी अपूर्ण चांदी है। यदि इसके पानी (द्रवता) को किसी तरह सुखा दिया जाय तो इसमें और चांदीमें कोई अन्तर नहीं रहता। बस, पारसमणिके स्पर्शसे सोना बन जानेकी कल्पना और पारेसे चादी बनानेके प्रयत्नने रसायन विद्या की नींव डाली। धीरे धीरे इस विद्याकी चर्चा सारे देशमें फैल गई और हजारों आदमी गुप्तरूपसे इस ठरकमें लग गये।

रसायनी लेखक

पारद प्राप्तिके समयसे रसायनी होते चले आए हैं, परन्तु इस पर किसीने कुछ लिखा हो, ईस्वी ५वीं शताब्दीसे पूर्व इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता; ५वीं शताब्दीमें आकर जोसीमोस नामक एक बड़ा भारी मिश्री रसायनी हुआ, जिसने रसायन विद्या पर एक अच्छा ग्रन्थ लिखा। उसने ही अपने इस ग्रन्थमें एक स्थानपर एक ऐसी द्रुतिका उल्लेख किया है जिसको चांदीपर डालनेसे चांदी सोनेमें परिणत हो जाती है।

अरब में रसायन विद्या

रसायन विद्याका जन्म मिश्र देशमें हुआ और सबसे प्रथम इस देशका लगाव अरब निवासियोंसे हुआ, इसीलिए अरब निवासियोंको इनसे इस विद्याका पता लगा। उस देशमेंभी अनेक व्यक्ति इस विद्याके व्यसनी निकल आए। इतिहास से ज्ञात होता है कि ईस्वीकी प्रथम शताब्दीके आरम्भमें वहा खालिदबिन अजीद नामक एक बड़ा भारी रसायनी हुआ, जिसने इस विद्यामें काफी उन्नति की थी। इसके कुछ समय पश्चात् इमाम जाफरसादिक नामका एक और रसायनी हुआ। इसके बाद जाबिरबिन हय्यात तथा उसके समकालीन अबूबकर

राजी नामक प्रख्यात रसायनी हुआ। इतिहाससे पता चलता है कि अबूबकर राजीने प्राचीन तिर्यक् पातन यन्त्र (वकयन्त्र) में कई सुधार किए और उसने उस यन्त्रसे तीव्र गन्धकाम्ल प्राप्त किया।

हमारे रसशास्त्रोंमें शखद्राव नामक जो अम्ल तिर्यक्पातन द्वारा निकाला जाता है यह वास्तवमें साधारण गन्धकाम्ल ही होता है। हमारे यहाके रसायनियोंको तिर्यक् पातन यन्त्रका ज्ञान तथा इस गन्धकाम्लको चुवानेका पता ईस्वी की दशवीं शताब्दीके लगभग हुआ था, किंतु हमने इस अम्लमें कौड़ी, शङ्ख गलती हुई देखकर इसका नाम शङ्खद्राव रख लिया, पर यह आज तक न जान पाये कि यह अम्ल किस रासायनिक प्रक्रियाके कारण बनता है और वास्तवमें है यह कौन सा अम्ल ? किंतु हमारी इस जानकारीसे वहुत पूर्व ही अरब निवासियोंने इस यन्त्रमें सुधार करके तीव्र अम्ल प्राप्त कर लिया था। यही नहीं, इस अरब निवासी रसायनीने रसायनकी ठरकमें पारदको अनेक वस्तुओंके साथ घोट मिला कर अग्नि देते रहनेसे रसकपूर बनानेकी विधि आविष्कृत की। यह पहिला व्यक्ति था जिसने पारेसे रसकपूर नामक स्थायी यौगिक तय्यार किया। इसने इससे भिन्न पारदको बन्द बर्तनमें गरम करके कुछ लाल वर्णकी पारद भस्म (पारद ऊष्मिद) भी प्राप्त की थी और इसने अपने प्रयोगोंमें नौसादर और चूना के मेलसे पवनिया (अमोनिया) नामक वायव्यको बनते देखा तथा इन सब बातोंका उसने अपने ग्रन्थमें उल्लेख किया। कहते है कि इसने लवणाम्ल, पोटास आदि कुछ और भी रासायनिक पदार्थ तय्यार किये थे। इस तरह अरबने आठवीं शताब्दी तक अनेक प्रख्यात रसायनी उत्पन्न किये। इनमें से ८वीं शताब्दीमें आकर जीवर नामक जो रसायनी हुआ उसने रसायन विद्या पर अनेक ग्रन्थ लिख कर तथा अनेक रासायनिक पदार्थोंको बना कर काफी ख्याति प्राप्त की। इसकी बतलाई हुई रासायनिक विधिया इतनी उच्च थीं जो कई शताब्दी पीछे तक लोग उन्हीं विधियों से अनेक रासायनिक चीजें तय्यार करते

रहे। इस रसायनीने सबसे पहिले शोरेका तेजाब बनाने की विधि आविष्कृत की और उस विधिका सविस्तर वर्णन अपने ग्रन्थ में किया।

ईस्वीकी ८वीं शताब्दी तक पहुचते पहुचते उन रसायनियोंसे सोना चाांी बनी या नहीं, इसका तो हमें कोई पता नहीं लगता, किंतु सोना, चादी बनाने की धुनमें उन रसायनियोंने जो अनेक रासायनिक यौगिक बना डाले, वह सोना, चादीसे कम महत्त्वके न थे। यथा—सिंगरफ, रसकपूर, दारचिकना, लालकसीस, हराकसीस, जगार, तुत्थ, पोटास, गन्धकाम्ल, शोरकाम्ल, लवणाम्ल, मद्य, जवाखार, सज्जीखार इत्यादि इतनी चीजें बनीं कि उनके उपयोगसे अनेक परिवारों की रोजी चलने लगी।

धातुओंमें कौन कौन से तत्त्व होते हैं?

अब हम इस बातकी चर्चा करेंगे कि उक्त रसायन विद्याने आधुनिक रसायन शास्त्रको कैसे जन्म दिया? यद्यपि पञ्चतत्त्ववादसे रसायन-वादका कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं, तथापि जिन प्राचीन रसायनियोंने धातुओंकी तात्त्विक स्थिति पर विचार किया था उन्होंने इस वादको आंशिक रूपमें अपनाया था। मिश्रके सिकन्दरिया नगरमें जिस समय रसायनियोंकी कान्फ्रेन्स हुई थी उस समय इस बातकी भी चर्चा छिड़ी थी कि धातुओंमें कौन कौन से तत्त्व मिले होते है? ज्ञात होता है कि उस समय वहा के लोग पचतत्त्ववादसे परिचित न थे। इसीलिये भिन्न भिन्न व्यक्तियोंने भिन्न भिन्न कल्पनायें रखीं। उस समय कुछ रसायनी इस बात पर एक मत थे कि पारा समस्त धातुओंका मूल धातु है।

कुछ दार्शनिक विचारके व्यक्तियोंकी राय थी कि समस्त धातुए पारा, गन्धक और जलके मेलसे बनी है उस समय वहा जलसे सृष्टिकी उत्पत्तिको मानते थे। जिनके यह विचार थे, उनकी राय थी कि यदि किसी धातुमें से इन तत्त्वोंके अनुपात को किसी तरह बदल दिया जाय तो वह धातु दूसरी धातु में बदल सकती है। कुछ उनके साथियोकी यह भी राय थी कि पारा और गन्धक यह स्वय धातुओंके रूपको बदल सकते है। ज्ञात होता है कि इस बात

को तो अनेक रसायनियोंने मान लिया था कि सखिया, सिंगरफ, हरताल, अभ्रक, मैनसिल, स्वर्ण माक्षिक आदिमें पारा होता है और इनसे निकाला भी जा सकता है। हमारे रसायन ग्रन्थोंमें दी हुई द्रुतिया क्या है ? उक्त विचारों का रूपान्तर मात्र है। *द्रुतिका स्वरूप ग्रन्थकार वगतुल्य निर्मल द्रवरूप कहते हैं और वह अभ्रक, मैनसिल, हरताल आदिसे निकालनेकी विधि भी वतलाते है।

कहते है कि हमारे यहा पञ्चतत्त्व-वादका आरम्भ ईस्वी सन् से कोई एक सहस्र वर्ष पूर्व हुआ, किंतु उस पञ्चतत्त्वके वादके समयसे लेकर रसायन विद्या के जन्मदाताओं तक ने कहीं भी इस वातका उल्लेख नहीं किया कि धातुए अमुक अमुक तत्त्वोंके मेलसे वनी हैं। किसी दार्शनिककी यह राय पाई जाती है कि धातुओंमें पार्थिव तत्त्व प्रधान होता है। वादके किसी ग्रन्थमें लिखा है कि सोना अग्निसे, चादी चन्द्रमासे, पारा शिवसे, ताम्र सूर्यसे, वग इन्द्रसे, सीसा (नाग) वासुकिसे और लोहा यमराजसे उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात्‌के ज्योतिष ग्रन्थोंमें सात धातुओंका सम्बन्ध सात ग्रहोंसे भी वतलाया गया है। यह भिन्न भिन्न विचार हमें किसी निश्चय पर नहीं पहुचाते जिस तरह हम धातुओं की तात्त्विक स्थितिके सम्वन्धमें किसी निश्चय पर नहीं पहुच पाए, यही हाल मिश्र निवासियों तथा अरव निवासियोंका था।

इसके पश्चात् रसायन विद्या का प्रवेश यूनानमें हुआ। वहुतोंके विचार है कि रसायन विद्याको यूनानियोंसे अरव वालोंने सीखा, किन्तु इसकी इतिहास द्वारा पुष्टि नहीं होती। प्रत्युत इतिहास से ज्ञात होता है कि यूनान वालोंसे बहुत पहिले ही अरव वासियोंको रसायन विद्याका ज्ञान हो चुका था। यूनानका दर्शनवाद भी इस विद्याके वहुत पीछे का है।

यूनानमें रसायन विद्या

यूनानमें दर्शन सम्वन्धी विचारोंका उदय ईस्वी सन् ६०० वर्ष पूर्व हुआ। उस समय थेल्स नामक एक यूनानी हुआ जिसने सवसे पूर्व सृष्टि रचना पर

* वंग तुल्य स्वरूपा च द्रुतिर्भवति निर्मला। रसकामधेनु

विचार करते हुए वतलाया कि सृष्टि जलसे उत्पन्न हुई। ईस्वी ५५० वर्ष पूर्व एक और एनाक्सीमेसियस नामक यूनानी हुआ जिसने वतलाया कि सृष्टि जलसे नहीं वायुसे उत्पन्न हुई। उसने वायुको सूक्ष्म और आदि तत्त्व सिद्ध किया। फिर ईस्वी ५०० वर्ष पूर्वके लगभग हीरेक्लीटस नामक एक और यूनानी विद्वान् हुआ जिसने वतलाया कि सृष्टि अग्निसे उत्पन्न हुई। इसके वाद ईस्वी ४५० वर्ष पूर्वके लगभग एम्पीडोक्लीज नामक एक और यूनानी दार्शनिक हुआ, जिसने अनेक युक्तियोंसे सिद्ध किया कि सृष्टि जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी नामक चार तत्त्वोंसे प्रादुर्भूत हुई। इसके कोई १५० वर्ष वाद अर्थात् ईस्वी ३२५ वर्ष पूर्व सुकरात नामक एक प्रसिद्ध दार्शनिक हुआ जिसका शिष्य विश्व-विख्यात अफलातू (प्लेटो) हुआ। अफलातूके समयमें ही अरस्तू (अरिस्टोटल) नामक एक और प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक हुआ। यह सव चारतत्त्ववादी थे, किंतु इनमें अरस्तु आगे वढ गया। उसने उक्त तत्त्वोंमें शीत, ऊष्ण, तर, शुष्क नामके चार गुणों की कल्पना की तथा एक और अदृश्य तत्त्व ईथरकी कल्पना ससारके सामने रखी।

इन अन्तिम दार्शनिक सुकरात अरस्तू, अफलातूके समयमें रसायन विद्याका प्रचार यूनानमें काफी होचुका था, इसीलिए इस विद्या पर इन दार्शनिकोंके भी विचार मिलते हैं। इनके ग्रन्थोंसे पता चलता है कि यह लोग इस वातको मानते थे कि एक धातु दूसरी धातुमें वदल सकती है तथा अल्प मूल्यकी धातुओंकी सोना चांदीमें वदल जाने की पूरी सम्भावना है। यही नहीं, यह लोग दार्श-निक होकर भी मन्त्र, तन्त्र, जादू टोनोंमें विश्वास रखते थे।

रसांकुशी विद्या

मन्त्र तन्त्रमें विश्वास रखने वाले व्यक्ति प्राय: देवी देवताओंको मानने वाले हुए है। रसायनी तो प्राय. मन्त्र-तन्त्र विद्या पर विश्वास रखते थे और उन लोगोंको जव रसायन विद्यामें सिद्धि मिलनेमें कठिनता दिखाई दी तो वह देवताओंसे सहायताके लिये प्रार्थना भी करते रहे।

यह बात मिश्र, अरब, यूनान और भारतमें सब जगह एक सी पाई जाती है। भारतीय रसायनियोंमें इसकी पुष्टि रसाकृष्णी विद्यासे होती है। ज्ञात होता है कि ८वीं और ९वीं शताब्दीके मध्य कोई रसांकुश नामका सिद्ध हुआ जिस ने सबसे पहले पारदको अग्नि स्थायित्व देनेके लिये मन्त्रोंकी रचना की और पारदको बाधने व रोकने के लिये मन्त्रोंका प्रयोग किया। उसीने बलि, होम, अनुष्ठानादिके विधानोंकी नींव रखी, जो आजतक हमारे रसग्रन्थोंके साथ लगी चली आरही है। रसायन विद्यासे मन्त्र विद्याका गठ जोड़ा उन सिद्धों आचार्यों की कृपाका परिणाम है जो इस पर विश्वास रखते थे। जिस तरह भारतीय रसायनी तान्त्रिक थे, उसी तरह मिश्र, अरब और यूनानके रसायनी भी मन्त्र, तन्त्रमें बहुत विश्वास रखते थे तथा रसायनवादमें वह मन्त्र, तन्त्रसे काफी सहायता लेते थे और भारतीय तान्त्रिकोंकी तरह वह मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, टोना, टोटका आदिके समस्त मायाजालिक कार्य किया करते थे।

यह रसायन-विद्या अरबों और यूनानियोंके द्वारा जब इटली, जर्मनी, इगलेण्ड आदि देशोंमें पहुची तो वहा इस गोरखधन्धेमें काफी लोग लग गए, किंतु इस विद्याका अधिक प्रचार वहा दशवीं शताब्दीके बाद हुआ। इतिहासमे ज्ञात होता है कि १०६३ ईस्वीमें एक पौल (Paull) नामक जर्मनी निवासी ईसाईने यह घोषणा की कि मैंने यूनानके रसायनियोंसे सोना बनानेकी विद्या सीखी है। उस समय समस्त यूरोपीय देश ईसाइयतके प्रभावमें आचुके थे। रोमन एम्पायर पर पोपोंका राज्य था और उन्हींका प्रभाव समस्त योरुपमें व्यापक हो रहा था। जगह जगह उन्हींकि न्यायालय उन्हींकि कानून वर्तमान थे। जिस समय यह विद्या योरुपमें फैली ईसाइयोंने इसे अपने धर्मके विरुद्ध समझा। यही नहीं, मन्त्र, तन्त्र-विद्या भी ईसाई धर्मके विरुद्ध बात थी। ज्ञात होता है कि वहांके तान्त्रिक कुछ एसे अमानुषी कृत्य भी किया करते थे जिसके कारण साधारण जनता इनसे भय खाती थी और इनके विरुद्ध थी। इन तान्त्रिकोंका

विलायतमें रसायन विद्या

पता लगने पर वह लोग ईसाई चर्चोंमें इनकी शिकायत पहुचा देते थे। उस समय प्रचलित प्रथाके अनुसार धर्म विरोधी काम करनेके कारण जब कोई ऐसा व्यक्ति पकड़ा जाता था तो उसे आम अदालतमें नहीं, बल्कि चर्च न्यायालय (इंक्विजेशन) के सामने पेश किया जाता था और जब तक वह विचाराधीन रहता था उसे चर्च न्यायालय निर्धारित एक विशेष प्रकारकी कोठड़ियोंमें बन्द रखा जाता था। उस समय अपराध मनवानेके लिये उस पर रैक नामक एक महान् पीड़ा दायक यन्त्रका समय समय पर उपयोग किया जाता था। जब चर्च न्यायालयके सामने वह अपना अपराध स्वीकार करलेता था तो धर्मविरोधी कार्यका प्रायश्चित्त उसे जीता जला कर पूरा किया जाता था। जिसका साधारण अपराध भी होता वह भी वर्षों कारागारकी हवाखानेसे नहीं बच पाता था।

१२१४—१२९४ ईस्वी में रोजरबेकन नामक एक अगरेज पादरी हुआ, जिसको किसी तरह रसायन विद्याकी ठरक लग गई। वह बिचारा पादरी होनेके कारण इस विद्याकी ठरक लुक छिप कर पूरी किया करता था। समय पाकर इस बातका पता अन्य पादरियोंको भी लग गया। एक पादरी भीतरही भीतर उससे द्वेष भी रखता था उसने बड़े पादरीके पास उसकी शिकायत करदी। पादरी होकर ईसाई धर्मके विरुद्ध काम करे! उसे गिरफ्तार कर लिया गया और चर्च न्यायालय के सामने उपस्थित किया गया। अभियोग चला और सिद्ध हुआ. पादरी होनेके कारण उसे जीता तो नहीं जलाया गया, किंतु यावज्जीवन कारावासका दण्ड दिया गया। वह विचारा दस वर्ष तक जेलकी यातनाए सहता हुआ वहीं मर गया। उसने जो बयान दिया था, उससे पता लगता है कि वह यह मानता था कि पारदको विधिसे संस्कृत किया जाय तो वह उत्तम सक्रमणशील खोट (बीज) बन सकता है, जो कई कोटि गुणा धातुको सुवर्णमें परिणत कर सकता है।

इसी प्रकार इटलीका पैडुआ शहर निवासी ब्रनो नामक एक दार्शनिक रसायनी हुआ। किसी तरह उसके इस कामका पादरियोंको पता लग गया। जब

वह पकड़ा गया और चर्च न्यायालयके सामने पेश किया गया तो उसे ६ वर्ष की जेल यातना देनेके पश्चात् जीता जला देनेकी सजा दी गई; जो इसी तरह पूरी की गई। उस समय इस तरह इटली, जर्मनी, इगलैण्ड आदि देशोंमें जिन आदमियोंको मारा गया व जीता जलाया गया, इनके एक दो नहीं, प्रत्युत काफी प्रमाण मिलते हैं। उस समय तो यहा तक सख्ती हुई कि जहा कहीं किसी तान्त्रिक या रसायनीका पता लगा, लोग उसका घर वार तक भस्मसात् कर डालते थे। ऐसे व्यक्तियोंको मारडालने पर कोई सुनवाई न होती थी। फिर भी इस सकट-पूर्ण युगमें वहा पर जीवनकी वाजी लगा कर इस टरकको पूरा करने वाले अनेक व्यक्ति हुए।

उत्ताप नापने वाला व्यक्ति

जिस समय रोजरवेकन इङ्गलैण्डमें हुआ उन्हीं दिनों ईस्वी सन् ११९३-१२८२ में जर्मनीमें अलवर्ट मैगनस नामका एक रसायनी हुआ। जिसने रसायन विद्या पर प्रयोग करते हुए अनेकों नई वातें मालूम की थीं। इनका विश्वास था कि समस्त धातुए पारा गन्धक और जलन तत्त्वके भिन्न भिन्न अनुपातमें वनी है। सवसे पहिले इसीने इस वातको मालूम किया था कि पारा, सखिया आदिको अग्नि पर रखनेसे कितने उत्ताप पर इनमें परिवर्तन आता है? तथा कौन कौन सी धातुए कितने उत्ताप पर पिघलती है? उसने उत्तापकी मात्राको नापनेकी भी चेष्टा की और पारद, वग आदि कुछ धातुओंके द्रव से वाष्प वननेकी उत्ताप मात्रा निकाली। हमारे यहा सैंकड़ो वर्षोंसे धातुओं को गलाते, फूकते चले आए है। पारेको अग्निपर रख कर रससिंदूर आदि अनेक रस वनाते चले आए हैं। कई वैद्योंने मेरों पारा अग्निपर रखकर उड़ा दिया, पर आज तक किसीने यह जाननेकी चेष्टा नहीं की कि पारा कितने उत्ताप पर जाकर उड़ता है और सीसा कितने उत्ताप पर जाकर गलता है। हजारों वार वैद्य रागा, सीसा, यशद भस्म करते समय यह भी देख चुके है कि तीव्र अग्नि लग जाने पर सम्पुटके भीतर वन्द रागा, सीसा आदि उड कर गायव होगए, किंतु

उन्होंने इनके उड़जानेके कारण पर कभी विचार नहीं किया, न अग्निकी मात्रा को समझने की ही चेष्टा की। अबभी सैकड़ों ऐसे वैद्य व रसायनी यहां विद्यमान है जो पारा, सखिया, सिंगरफ, हरताल आदिको किसी न किसी वनस्पतिमें घोट या उसके नुगदेमें रख कर अग्नि द्वारा भस्म करनेकी चेष्टा करते रहते है, जिसका परिणाम प्राय· उन्हें यही मिलता रहता है कि जब देखो सम्पुट खाली मिलता है। वह आजतक इस बातको समझ नहीं पाये कि कितनी अग्नि पर ये वस्तुए उड़ती हैं और उनको रोकनेके लिए कितने उत्ताप पर कितने दबावकी आवश्यकता है। ऐसी ही अनेक त्रुटिया थीं जिनके कारण हम इस विद्यामें अधिक आगे न बढ़ सके।

तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ में रेमण्ड लल्ली नामक एक और रसायनी योरुप में हुआ। जिसने इस बात का दावा बाधा था कि यदि कहीं पारेका समुद्र मेरे सामने हो तो मैं उसे सुवर्णमें परिणत कर सकता हू। वह यह भी दावा वांधता था कि मैं हरएक निकृष्ट धातुको सुवर्णमें बदल सकता हू। इसके रसायनी विद्या पर लिखे कुछ लेख भी मिले हैं जिसमें पारेका खोट (वीज) वनाकर धातु वेधन (क्रामण) करनेकी विधिका उल्लेख है। वहा उसने कोटिवेधी पारद का भी उल्लेख किया है। इन्हीं समयोंमें उधर गेवेर नामक एक और रसायनी हुआ जिसके लिखे रसायन विद्या पर अनेक लेख मिले है। उन लेखोंमें इसने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि अनेक सस्कार युक्त बुभुक्षित पारद तथा विशुद्ध गन्धक को भिन्न भिन्न अनुपातोंमें मिलानेसे भिन्न भिन्न धातुए बन सकती है। वह लिखता है—"किसी धातुमें विशुद्ध पारदकी मात्रा जैसे २ बढ़ाते चले जायें वैसे वैसे वह धातु मूल्यवान् धातुमें परिणत होती चली जायगी।" इसने आयुर्वेदीय रसाचार्यों जैसे ही पारद शोधनके अनेक सस्कार बतलाये है। उनमें मर्दन, स्वेदन, ऊर्ध्वपातन, परिस्रवण, उत्थापन, नियमन आदिके सस्कार भी है। इससे भिन्न उपरस, महारसोंमें परिगणित वस्तुओंमेंसे कइयोंकी सशोधन अवक्षेपण, विभाजन, स्फटकीकरण आदि की कुछ रासायनिक विधियां भी दी हैं।

इसने इस विद्याको नया रूप देने तथा समुन्नत करने में काफी काम किया। इन्हीं दिनों फ्रान्समें अर्नोल्ड विलत्रोवानस नामक एक और रसायनी हुआ, जो किसी अरबी रसायनीका शिष्य तथा जीवर पद्धतिका अनुयायी था, इसने रसायनकी ठरक पूरी करते समय सबसे पहिले शुद्ध मद्य प्रस्तुत करनेकी विधि आविष्कृत की।

हमारे यहा मद्य प्रस्तुत करनेका विधान बहुत पुराना है। मद्यका उल्लेख वेदों तक में आया है। किन्तु हम आज तक परिस्रुत जलसे मद्यको भिन्न करने मे समर्थ नहीं हुए। कई वैद्य तीन तीन चार चार बार उसे परिस्रुत करके कुछ तीक्ष्ण मद्य प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु उसमें जलका अश २५-३० प्रतिशत अवश्य रहता है। इस जलको मद्यसे किस तरह भिन्न किया जाय ? इसको हमारे वैद्य और रसायनी नहीं जान पाये।

यह किसीसे छिपा नहीं कि आधुनिक रसायन शास्त्रमें शुद्ध मद्य, क्षार और तीव्र अम्लों (तेजाबों) का महत्त्व इतना बढ़ा हुआ है कि बिना इनकी सहायताके कोई रसायन शास्त्री किसी पदार्थको न तो नष्ट कर सकता है न नया बना सकता है। वास्तवमें यह तीनों चीजें आधुनिक रसायन शास्त्रकी जान है। हमारे रसायनी और वैद्य इन तीनों चीजोंको आरम्भिक रूपमें तो बना सके, किंतु इनको विशुद्ध प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे, तभी तो वह इसमें अधिक उन्नति न कर सके।

ईस्वी १४वीं और १५वीं शताब्दीके मध्य योरुपमें रसायन विद्याके ज्ञाताओं का कुछ प्रभाव बढ़ गया था। उस समय वहाकी कुछ सरकारोंसे इन्हें रसायन की ठरक पूरी करनेके लिये राज्य सहायता भी प्राप्त होने लगी थी। जिन व्यक्तियोंने सरकारको आश्वासन दिया था कि रसायन विद्यासे हम राज्यको काफी सोना, चादी बना कर दे सकेंगे, वर्षों राज्याश्रयसे मौज उड़ाते रह कर जब एकभी व्यक्ति असली सोना बनाने में सफल न हो सका और सरकारी कर्मचारियोंको इनकी पोल मालूम हो गई, इनका बनाया हुआ सोना, चादी

मिश्रित धातुओंका एक रूपही सिद्ध हुआ तो कई इनमेंसे पकड़े जा कर जेलमें ठूस दिए गये, कई भाग गये।

सन् १४६२--१५४०ई०में स्विटजरलैण्ड निवासी प्यारासेल्सस नामी एक रसायनी हुआ। इन्हीं दिनों जर्मनीमें अर्फड्राफ और वेलिस वेलिंटाइन नामी रसायनी हुए। यह दोनों अपने समयके अच्छे रसायनी तथा तान्त्रिक भी थे और इन दोनोंने लग भग आधी उमर इसी रसायन की टरकमें गुजारी। प्यारा-सेल्सस २२ वर्ष तक अनेक प्रकारके रसायन विषयक प्रयोग करनेके पश्चात् अन्तमें इस परिणाम पर पहुचा कि रसायन विद्याका व्यसन धन और समयको नष्ट करने वाला है। उसने घोषणा की कि रसायन विद्याके व्यसनमें पड़ना तथा पारस मणिकी खोजमें भटकना समय, शक्ति और धनका दुरुपयोग करना है। इसने रसायन विद्याके लिए तय्यार की हुई अनेक भस्मों खोटों और अनेक यौगिकों को--जो इसके पास इतने समयमें संगृहीत होचुके थे--शरीर पर उपयोग करनेका साहस किया। धीरे धीरे इसने पारद यौगिक (रसकपूरादि) गन्धक, सीसा, लोहा, तुत्थ, अफीम, मद्य, सिरका, क्षारादि पदार्थोंका दैहिक उपयोग मालूम किया और उन्हें लेखवद्ध करता रहा। इसने और भी अनेक बातें मालूम कीं, उनमें से एक दो बातोंको हम उदाहरणरूप उपस्थित करेंगे।

हाईड्रोजन का आविष्कार--इस व्यक्तिने जेवरकी वताई विधिसे तीव्र गन्धकाम्ल तय्यार किया और उसे जंल डालकर हल्का घोल वना कर एक वोतलमें भर कर उसमें यशदके पत्र डाल दिए, इससे उसे एक ओर तो तलमें यशदका गन्धेत् प्राप्त हुआ दूसरी ओर यशद गन्धेत् वनते समय उस वोतलसे एक वायव्य उठता प्रतीत हुआ। उसने इस वायुकी परीक्षा ली और मालूम कर लिया कि यह वायु साधारण हवासे भिन्न है।

उस समय तक सारे योरूपमें त्रिदोष-सिद्धान्त प्रचलित था। जितने भी डाक्टर हकीम थे सब त्रिदोष सिद्धान्तके आधार पर रोग का निर्णय करते थे। प्यारासेल्सस ही पहिला व्यक्ति हुआ जिसने चिकित्सा करते हुए **"दोष धातु मलं मूलं हि शरीरम्"** पर अविश्वास किया। उसका विश्वास था कि मनुष्यका शरीर कुछ तत्त्वोंके रासायनिक सयोगसे बना है, जब इसकी रासायनिक रचनामें कोई व्याघात आता है तब मनुष्य रोगी हो जाता है अत रासायनिक प्रक्रियाके ठीक करनेसे ही मनुष्यकी बीमारी जा सकती है। उसने इसी आधार पर त्रिदोष-सिद्धान्तका खण्डन किया और इसकी असारता सिद्ध की; तब से ही योरुपसे त्रिदोषवादकी अवनति होने लगी। जर्मनीमें वेसिल विलेण्टाइन भी इन्हीं समयोंमें पादरी होते हुए अनेक रासायनिक प्रयोग करते रहे, इनकी लिखी कई पुस्तकें मिलती है। उनमेंसे एक पुस्तकमें सुरमा, सुरमी, यवक्षार, सज्जी-क्षार आदि कई ओषधियोंके शरीर पर उपयोग व उनके गुण बतलाये है। इसी ग्रन्थमें गन्धकाम्ल, शोरकाम्ल और लवणाम्लके भी गुण तथा उपयोग बतलाये हैं। इन्होंने सबसे पहिले शोरकाम्ल, लवणाम्लके योगसे अम्लराज बनानेकी विधि दी है, जिसमें सुवर्ण गल जाता है।

त्रिदोष वादका अन्त

इनके ही समकालीन ऐग्रीकोला नामक एक और रसायनी हुआ। जो रसायन-विद्यामें काम आने वाली धातुओं व उनके खनिजों पर काफी समय तक अनुसन्धान करता रहा और इसने उक्त विषय पर बहुतही उत्तम मौलिक पुस्तक तय्यार की। इसकी उक्त पुस्तकने खनिज विज्ञान और धातु विज्ञानको जन्म दिया। इसकी पुस्तकमें अनेक व्यावहारिक रसायनकी ऐसी विधिया दी है जिनको आजतक व्यवहारमें लाया जाता है।

ईस्वी १५६० मे लिबेवियस नामक एक और रसायनी उत्पन्न हुआ। इसको यह धुन सवार हुई जिस किसीको उस समय तक जितना भी रसायन व पदार्थ विद्याका ज्ञान हो चुका था, उसका सग्रह किया जाय। उस

समय तक जो कुछ भी रसायन विद्या सम्बन्धी ज्ञान उसे जहा भी कहींसे प्राप्त हुआ उसको लेखवद्ध करता रहा। जिसे उसने १५७५ ई. में अलकीमिया नामक मासिक पत्रमें क्रमसे प्रकाशित करना आरम्भ किया, पश्चात् उसे पुस्तक का रूप देदिया। उस समय इसकी यही सबसे अच्छी रसायन शास्त्र सम्बन्धी पुस्तक समझी गई। इसने इस पुस्तकमें रसायनमें काम आने वाली अनेक ऐसी भस्मों व यौगिकोंकी चर्चा भी की है जिनका उपयोग रोगियों पर किया जा चुका था। इसके पश्चात् १५७७-१६४४ ई० में एक वान्हेल्मो नामक विद्वान् हुआ जिसने चार तत्त्व वादका खण्डन किया। यह कहताथा कि अग्नि जड़ पदार्थ नहीं, न पृथ्वीको तत्त्व कहा जा सकता है। वह वायु और जल को तत्त्व मानता था। वह भिन्न भिन्न अम्लोंमें धातुए डाल कर उन्हें उसमें घुलाता रहा और धातुओंके तेजावोंमें घुलते समय उसमेंसे जो वायुए निकलती थीं उनकी परीक्षा लेता रहा। उस परीक्षामें इसे लवणजन, उदजन आदि वायुओंके रूप साधारण हवासे भिन्न ज्ञात हुए, इसीसे इसने इनका नाम गैस दिया। इससे पहलेके रसायनियोंका यह विचार था कि धातुए अम्लमें घुल कर नष्ट हो जाती हैं। इसने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध करदिया कि धातुए अम्लोंमें घुल कर नष्ट नहीं होतीं, प्रत्युत यौगिक रूपमें वदल जाती है और प्रयत्न करने पर फिर इन्हें पूर्व रूपमें लाया जा सकता है। यह व्यक्ति इस तरह अम्लोंमें धातुए तथा अन्य पदार्थ घुला कर एक ऐसा घोल प्राप्त करना चाहता था जिसमें हर एक वस्तु घुल जाय और वह घोल जिस धातु पर डाला जाय उसे सुवर्णमें वदल दे, पर ऐसा घोल वह वना न सका। इसने अपने इन प्रयोगोंमें हजारों रासायनिक ऐसे घोल वना डाले जिनका उपयोग आजके रसायन शास्त्री कर रहे हैं। वादमें वह ऐसे घोलके वनानेमें लगा जिसका हरएक रोग पर व्यवहार किया जा सके और उससे हरएक वीमारी दूर हो जाय, इसमें भी इसे सफलता न मिली।

ईस्वी १६०३-१६६८ में एक और ग्लौवर नामक रसायन विद्या प्रेमी

हुआ, जो रसायनकी टरकमें अनेक वस्तुओंको मिलाता व तोड़ता रहा। इसने अपने इन प्रयोगोंमे पवनियम् पवनेत्, सैंधजम् गन्धेत् (ग्लौवर लवण) आदि कई ऐसे यौगिक तय्यार किये जिनका औषधके रूपमें आज तक उपयोग होता है। सैंधजम् गन्धेत् को तो आज तक उस आविष्कर्त्ताके नामसे (ग्लौवर साल्ट) ही पुकारा जाता है। वास्तवमें इसने प्राचीन रासायनिक प्रयोगों में वहुत उन्नति की और कई नई नई रासायनिक विधिया मालूम कीं, एक नयाही प्रयोगका मार्ग प्रस्तुत किया। इसकी वतलाई हुई कई प्रायोगिक विधियां आधुनिक रसायन-शास्त्रमें आज भी व्यवहृत होती हैं।

ईस्वी १६२७-१६६१ इङ्गलैण्डमें रावर्ट वायल नामक एक अगरेज विद्वान हुआ जो लगभग २५—३० वर्ष तक रसायन सम्वन्धी प्रयोग करता रहा। इसने Sceptical Chemist नामक वहुत अच्छी रसायनकी प्रायोगिक पुस्तक लिखी।

पञ्चमहाभूतोंका अन्त

इसकी इस पुस्तकने योरुपमें पञ्चमहाभूत-वादकी जड़ें खोखली करदीं और एक नए ही रूपमें तत्त्व पदार्थ और यौगिक को उपस्थित किया।

उस समय तक लोगों को मौलिक पदार्थ और यौगिक पदार्थोंके विभेदका ज्ञान वहुत कम था। हमारे यहा तो दर्शनवादी आजतक भी मौलिक तत्त्व और उससे वने यौगिक पदार्थोंका भेद न वतला सके, न लक्षण वना पाए। उसने वतलाया कि "तत्त्व-यौगिक पदार्थके उस अशका नाम है जिसे उन पदार्थोंसे पृथक् किया जा सकता हो।" उसने वतलाया कि मौलिक तत्त्व चार या पाच नहीं है, प्रत्युत इनकी सख्या निर्द्धारित नहीं की जा सकती। आगे उसने वतलाया कि वह समस्त पदार्थ मौलिक तत्त्वोंकी श्रेणीमें आ सकते हैं जिन्हें विभाजित न किया जा सके और यौगिक वह है जो इन मौलिकोंसे वन सकते है। पदार्थोंकी रचनाके सम्वन्धमें उसका विचार था कि मौलिक तत्त्वों के परमाणु—जो अत्यन्त सूक्ष्म रूप होते है—जव परस्पर एक दूसरेके सन्निकट आते हैं तो उनमें रासायनिक मेल हो जाता है, तव पदार्थों की रचना

होती है। अर्थात् यौगिक पदार्थ बन जाता है और जब यह परमाणु उस पदार्थ से अलग होते हैं वह पदार्थ मिट जाता है। इस व्यक्तिने सबसे पहिले परमाणु-वादकी नींव डाली, किंतु यह उसकी परिभाषा न दे सका। परमाणुवादके जन्म लेनेके पश्चात् पञ्चतत्त्ववादका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया। हमारे यहां भी जबसे प्रायोगिक परमाणुवाद आया तबसे नामका पञ्चमहाभूत वाद रह गया है, प्रयोगवादमें तो परमाणुवादकी ही तूती बोलती है। इस व्यक्तिने अपने जीवन में सैंकड़ों नई नई बातें ढूढ़ निकालीं। उनमें से एक यह भी थी कि हवा रहित स्थानमें पदार्थ नहीं जलते, पर बारूदको यदि हवा शून्य स्थानमें गरम किया जाय तो यह जलने लगता है। इससे वह इस परिणाम पर पहुचा कि जो तत्त्व हवामें विद्यमान हैं वही तत्त्व शोरेमें विद्यमान हैं, इसीसे बारूद शून्य में जलने लगता है। यही नहीं, इसने वायव्य सम्बन्धी नियम भी बनाये जो आज तक उसके नामसे प्रसिद्ध हैं। इस व्यक्तिने लण्डनमें रायल सोसायटीकी स्थापना की। इसके समयमें आकर विद्वानोंकी रुचि रसायन-विद्यासे बिलकुल हट गई और पदार्थ विद्याकी ओर आकृष्ट हुई। जो विद्वान् प्रयोग करनेमें लगे थे वह इस इच्छासे अब प्रयोगों की ओर नहीं झुके कि सोना, चादी बनाई जाय, प्रत्युत पदार्थ-विद्याका अनुसन्धान इसलिये चल पड़ा कि कई व्यवसाय उसकी सहायतासे काफी चल निकले थे और अनेक पदार्थ यथा—मद्य, भिन्न भिन्न प्रकारके अम्ल (तेजाब), क्षार, लवण, तथा और अनेक खनिज व कज्जल यौगिक जो चिकित्सा तथा अन्य व्यवसायके काममें आने लगे थे इनकी माग काफी बढ़ गई थी। यह सब पदार्थ व्यावसायिक दृष्टिको लेकर बनने लग पड़े थे। एलोपैथी चिकित्साकी नींव यद्यपि इससे पूर्व पड़ चुकी थी तथापि इन नए नए पदार्थों के बाहुल्यने अनुसन्धानका मार्ग अधिक प्रस्तुत कर दिया था। लोग नित्य नये यौगिकोंका दैहिक तथा व्यावहारिक उपयोग ढूढने व मालूम करने लग पड़े थे।

ईस्वी १७८२ में जान डाल्टन नामक एक और अंगरेज विद्वान् हुआ

जिसने पञ्चमहाभूत-वादका विश्वास—जो पाश्चात्य देशोंमें विद्यमान् था—उसे जड़से उखाड़ फेंका। उसके समय तक जो अनुसन्धान हो चुके थे तथा पदार्थ विद्या सम्बन्धी ज्ञान विज्ञान बढ़ चुका था, उन सबकी उसने जानकारी प्राप्त की। वह एक बड़ा मेधावी, दूरदर्शी विद्वान् हुआ। उसने सृष्टि-रचना व पदार्थ-रचना पर काफी विचार किया और अपने तथा पूर्वके अनुसन्धान व अनुभवके आधार पर एक नए सिद्धान्तकी कल्पना की। जिसका नाम उसने परमाणु-वाद रखा।

इस व्यक्तिने सबसे पहिले तत्त्व शब्दकी परिभाषा बनाई। मूल पदार्थ सम्बन्धी निम्न लिखित बातें उसके अनुभवमें आईं —

१ मौलिक या तत्त्व पदार्थ का सूक्ष्मतम रूप होना चाहिए।

२. प्रत्येक मौलिक पदार्थ का परमाणु अपने सजातीय परमाणुसे कार्य व्यापार व गुणमें समान धर्मी होना चाहिए।

३. मौलिक पदार्थ के परमाणुको किसी भी रासायनिक प्रक्रियामें टूटना न चाहिये। परमाणु, अछेद्य, अभेद्य अविनाशी होना चाहिए।

४ किसी मौलिक तत्त्वके परमाणुकी दूसरे मौलिक तत्त्वके परमाणुसे आकृति, मात्रा, गुण, धर्म में अवश्य भिन्नता होनी चाहिए।

५ पदार्थोंकी रचनाके समय मौलिक तत्त्वोंके परमाणुओंको परस्पर मिलना चाहिए किंतु उनका पूर्व रूप नष्ट नहीं होना चाहिये।

उसने अपने समय तक जाने गए मौलिक तत्त्वों की सख्या ७० निर्द्धारित की। जिनमें से उदजन, ऊष्मजन, लवणजन आदि कुछ वायव्योंकी तथा कज्जल, सुहागा, संखिया, गन्धक आदि कुछ धातुओंकी और सोना, चादी, तांबा, लोहा आदि समस्त धातुओंकी मौलिक तत्त्वोंमे गणना की।

जिस समय उसके द्वारा निर्द्धारित यह सिद्धान्त विद्वानोंके सामने आये इसकी परिभाषा और वर्णन शैलीने विद्वानोंकी रुचि अपनी ओर खींचली। यद्यपि उस समय तक किसी यौगिक पदार्थको तोड़ते तोड़ते उन्हें परमाणु

रूप तक लाने, तथा उनकी मात्रा आदिको तोलने, नापनेके सूक्ष्म साधन न थे। उसने जो कुछ सिद्धान्त निर्द्धारित किए थे वह बहुत कुछ प्राथमिक प्रयोगों तथा अपने अनुभवके आधार पर थे, तथापि वह परमाणु-वाद विद्वानों की उत्सुकताको बढ़ानेमें काफी कारगर सिद्ध हुआ। थोड़े ही समयमें इस डाल्टनके परमाणु-वादकी चर्चा सारे योरुप मे फैल गई।

इसके एक वर्ष बाद १७८३ में किरवान नामक एक और विद्वान् हुआ। इसने भी परमाणु-वाद पर अपने कुछ विचार प्रकट किए, किंतु यह किसी सिद्धान्त तक न पहुच सका।

ईस्वी १७८६ मे इसी तरह हिगिन्स नामक एक और विद्वान्‌की परमाणु-वाद सम्बन्धी प्रायोगिक चर्चा पाई जाती है, किंतु यह इसमें अधिक मार्ग-प्रदर्शकका काम न कर सका।

ईस्वी १७४३-१७९४ में लवेशिए नामक एक फ्रासीसी विद्वान् हुआ जिसने इन मौलिक तत्त्वोंकी स्थिति पर काफी अनुसन्धान किया तथा उसने इन सूक्ष्म पदार्थोंको नापने तोलनेकी सूक्ष्म विधिया तथा तराजू आविष्कृत की।

हमारे यहा त्रसरेणुसे मानका आरम्भ किया गया है किसीने ३० त्रसरेणु का एक परमाणु किसीने ६० त्रसरेणुका एक परमाणु माना है। किन्तु किसीभी विद्वान् ने यह नहीं बतलाया कि इसको तोला और नापा किस तरह गया है? हा, व्यावहारिक तोल राई, सरसोंसे अवश्य पाई जाती है, जो आगे चल कर प्रसृति, द्रोणी आदि आनुमानिक तुलाओंकी ओर लेजाती है। यदि हम आज विलायती सूक्ष्म तुलाओं और नापकोंको हटा दें तो किसीभी सूक्ष्म वस्तु को सही मात्रा मे निकाल लेंगे, यह सशयास्पद बात है। इस व्यक्तिने प्राणप्रद या ऊष्मजन नामक वायु का आविष्कार किया और बतलाया कि—

(१) पदार्थ ऊष्मजनकी विद्यमानता मे ही जलते है।

(२) पदार्थके जलने मे ऊष्मजनका व्यय होता है, और जलने वाले

पदार्थ बढ़ जाते है। जितना भार बढ़ता है उतनेही भारमें वह वायु हवा में से घट जाता है।

(३) जलने वाले पदार्थोंका कुछ भाग जलते समय प्राय अम्लोंमे बदल जाता है, परन्तु धातुए जलकर भस्मों (ऊष्मिद) मे बदल जाती है।

हमारे यहा धातुओंकी भस्में उस समय से बनने लगीं जबसे रसायन-वाद में धातुओंका उपयोग होने लगा, किन्तु धातुओंके भस्म बननेमें क्या चीज मिलती है। जिससे वह भस्में बन जाती है, इस पर किसी व्यक्तिने विचार नहीं किया।

लवेशिये ने ही बन्द बर्तन में हवा भरकर उसमें पारद गरम किया और उसकी पहले तथा पीछे तोल निकाली। गरम करने में पारदके ऊपर लाल वर्णकी पारद भस्मकी तह जम गई, उसने उस बन्द बर्तनकी हवा तोली तो उसका पाचवा भाग घट गया, फिर उसने उस पारदकी लाल भस्म भिन्न करके उसको तोला और उसको शून्यमें फिर गरम किया तो उसमें से हवा का पाचवा भाग—जो उसके साथ मिला था—भिन्न होगया; इससे वह इस परिणाम पर पहुचा कि हवाका ऊष्मजन वायु गरम करने से इसमें मिलता है और हवा शून्यमें गरम करने से यह फिर निकल जाता है। इस लवेशियेके समय में भिन्न भिन्न देशोंमें अनेकों विद्वान् हुए जिन्होंने पदार्थ विद्या सम्बन्धी अनेकों आविष्कार किये और नये नये नियम व सिद्धान्त ससारके सामने उपस्थित किये।

उन्नीसवीं शताब्दी का आरम्भ होतेही पाश्चात्य देशोंकी विचारधारा एकाएक स्वतन्त्रताके साथ आगे बढ़ी। इस सदीमें आकर वह प्राचीन रसायन विद्या एकदम लुप्त होगई और उसके स्थान पर नवीन रसायन शास्त्रका बड़े वेगसे निर्माण होने लगा। इस समयमें आकर पदार्थ-विद्या सम्बन्धी जितनी चौमुखी उन्नति—रसायन-शास्त्रकी हुई, और नई नई बातोंके जितने अनुसन्धान और आविष्कार हुए उन सबका यहा वर्णन देना ग्रन्थ सीमासे बाहरकी बात है।

१८०६ ईस्वी में फ्रासीसी विद्वान् गैलूसाकने परमाणुओं की ठीक ठीक मात्रा निकाली तथा उसने 'स्थिरअनुपात' नामक सिद्धान्तको जन्म दिया और वायव्य पदार्थोंके रासायनिक सयोगका सरल आनुपातिक नियम निकाला। इससे भिन्न उसने सूक्ष्म अदृश्य पदार्थोंको नापने तोलनेकी विधियों का आविष्कार किया।

१८११ ईस्वीमें इटालियन विद्वान् अवोगाड्रोने वायव्य रूपधारी पदार्थोंके दबाव प्रसार व उत्ताप प्रभाव आदिको जाना तथा अणुभार व वाष्पीय घनत्व सम्बन्धको बतलाया और इस पर कई सिद्धान्त निर्द्धारित किये। इन्हीं दिनों एक फ्रासीसी विद्वान् जेक्सथेनार्ड हुआ जिसने कज्जल रसायनकी नींव डालकर रसायन-शास्त्रकी एक नई शाखा स्थापित की।

१८१५ ईस्वीमें इगलैण्ड में प्राउट नामक एक विद्वान् हुआ, जिसने उदजन नामक वायुको शुद्धरूपमें लाकर तोला और मात्रा निकालकर सिद्ध किया कि यह समस्त तत्त्वोंसे हल्का तत्त्व है। उसकी कल्पनामें यह बात आई कि समस्त तत्त्वोंके परमाणु इसी तत्त्वके कारण बने है। इसी विद्वान् ने १८२४ ईस्वी में पता लगाया कि मनुष्यके पेटमें भोजन पचाने वाले कई प्रकारके रस निकलते हैं। उनमें से आमाशयमें से जो रस निकलता है उसमें लवणाम्ल भी होता है जो भोजन के कुछ भागको पचानेका कार्य करता है।

हम आज तक भोजनके पचनेकी प्रक्रियाको तिलप्रमाण अग्नि द्वारा—जो ग्रहणी नामक कलामे रहती है—होना मानते चले आरहे है। परन्तु इस अग्निकी उपस्थितिको हम किसी प्रकार सिद्ध करने में समर्थ नहीं हुए।

१८१९ ईस्वीमें डूलाग पेटिट आदि कुछ विद्वान् हुए जिन्होंने परमाणुके आन्तरिक तापको मालूम किया और उसकी स्थिर मात्रा निकाली।

१८२९ ईस्वी मे डोबरनियर नामक विद्वान् हुआ जिसने तत्त्वोंको उनके गुणानुसार कई भागोंमें विभक्त किया।

इन्हीं दिनों हैम्फ्रीडेवी नामक एक अंग्रेज विद्वान् हुआ जिसने सर्व प्रथम

उक्त रसायन-शास्त्रकी प्रायोगिक विधियोंमें विद्युत् शक्तिका उपयोग ढूढ निकाला। इसीने सबसे पहिले विद्युत् विश्लेषीकरण विधिमे क्षारीय धातुए प्राप्तकीं।

निमक, सज्जीखार, यवक्षार, चूना आदि पदार्थ भी किसी धातुके यौगिक होंगे, इनके निर्माणमें किसी धातुने भाग लिया होगा यह बात स्वप्नमें भी किसी दार्शनिक व्यक्तिके विचारमें न आई थी। जिन धातुओंकी प्राप्ति की सम्भावना पूर्वके किसी युगमें न हुई थी वह विद्युत्-शक्तिके उपयोगसे इस व्यक्तिने सम्भावित कर दिखलाई।

रसायन-शास्त्रमें जबसे विद्युत्-शक्तिके उपयोगका आविष्कार हुआ तबसे मानो प्रकृतिके रहस्य-पूर्ण विश्वका भाडा ही फूट गया। जिस विश्वकी जटिल रचनाका किसी और तरह पता लगना असम्भव था उसे इसनेही हस्तामलकवत् कर दिखलाया। इस व्यक्तिने ही वतलाया कि जिस लवणजन वायुको यौगिक माना जाता था वह यौगिक नहीं प्रत्युत मौलिक पदार्थ है।

१८२० ईस्वी मे वरथोले नामक एक फ्रासीसी विद्वान् हुआ जिसने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि एक तत्त्व जव दूसरे तत्त्वसे मिलता है तो उनमें परस्पर मिलने के लिए एक रासायनिक स्नेह (प्रीति) काम करता है। इसी स्नेह के कारण तत्त्वोंके परमाणुओं के मेल से अणुओंकी रचना होती है। इसीने सवसे पहिले लवणजन वायुका यह गुण मालूम किया कि वर्णिक पदार्थ इसके प्रभावसे निर्वर्ण हो जाते है। इसीके समयमें प्राउस्ट नामक एक दूसरा फ्रासीसी विद्वान् हुआ जिसने वरथोलेके अनेक कथनोंका खण्डन किया और इसने रासायनिक रचना में 'स्थिर सगठनका नियम' स्थापित किया। इसका और वरथोलेका शास्त्रार्थ वहाके कई मुख्य पत्रोंमें वर्षों तक चलता रहा। इसके समयमे आकर रसायन-शास्त्र सम्बन्धी विचारोंकी खूव चर्चा हुई। जिन वातोंको रसायनी छिपा छिपा कर रखते थे और कभी वताते तक न थे उस समय उनमेभी महत्त्वकी खोजें भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्रकाशित होने लगीं और हर एक विद्वान् अपने अपने आविष्कारोंको प्रकाशित करके यश

प्राप्त करने लग पड़ा; उस समय किसी एक देशमें ही नहीं, प्रत्युत इटली, फ्रांस, इंगलैण्ड, रूस, यूनान आदि समस्त देशोंमें इस विषयके—एक नहीं—कई-कई पत्र निकलने लग पड़े।

१८३२ ईस्वीमें एक जां-जेकोब-बरजेल्यूस नामक विद्वान् स्वीडनमें प्रादुर्भूत हुआ। जिसने परमाणुओंकी आपेक्षित मात्रा निकालनेमें महान् कार्य किया। परमाणु एक ऐसी सूक्ष्म वस्तु है जिसे किसी तरह भी आंखोंसे देखा नहीं जा सकता, न उन्हें एक एक करके तोला ही जा सकता है। इस विश्वमें जितने भी पदार्थ बनते रहते है यह सब भिन्न भिन्न तत्त्वोंके परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे ही बनते है। इनका मिलना किसी एक नियमसे होता है और इस सम्मेलनमें दो या तीन तत्त्वके परमाणु जब मिलते है तो उनका अनुपात निश्चित होता है। पदार्थको मिलाते तथा उस पदार्थको विश्लेषित करते समय इस अनुपातको जाना जा सकता है। बरजेल्यूस जब पदार्थोंको विश्लेषीकरण विधि द्वारा एकसे दूसरे रूपमें लाता था उस समय तत्त्वोंके परिवर्त्तन से जो पदार्थोंकी मात्रा बदलती थी उसको तोल नापकर वह तत्त्वोंकी ठीक-ठीक परमाणु मात्रा निकालनेमें सफल हुआ। उसने इस तरह कई सहस्र पदार्थोंको विश्लेषित करते समय—जब वह एक रूपसे दूसरे रूपमें जाते थे—उनकी मात्रा मालूम की और इस रासायनिक हेरा फेरीमें उसने उन मूल तत्त्वोंकी सापेक्षित परमाणु-मात्रा मालूम कर ली। यही नहीं, उसने सबसे अधिक कार्य यह किया कि हैम्फ्रीडेवीके बताए विद्युत् विश्लेषीकरण प्रक्रियामे अधिक काम किया और यह बतलाया कि प्रत्येक तत्त्व दो प्रकारकी शक्ति रखते है, एक ऋणात्मक और दूसरी धनात्मक। जो तत्त्व ऋणात्मक शक्ति संयुक्त होते है वही धनात्मक तत्त्वसे मिलते है। कई तत्त्व उसने उभयशक्ति-सम्पन्न भी मालूम किये। जो तत्त्व उभयशक्ति-सम्पन्न थे उसने देखा वह तत्त्व किसी पूर्ण धनात्मक तत्त्व से जब मिलते है उस समय वह ऋणात्मकका आचरण करते है और जब ऋणात्मकसे मिलते है तो धनात्मकका आचरण करते है।

वरजेल्यूसकी प्रयोगशालासे वोलर, मिटशरले आदि कुछ ऐसे विद्वान्‌भी निकले जिन्होंने रसायन शास्त्रमे काफी उन्नति की। इनका वनाया 'समरूपक नियम' आज तक प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्य भाग तक पहुचते पहुचते योरूपमें इतने वैज्ञानिक विद्वान् उत्पन्न होगए कि १०-११ सदीमें इतने कीमियागरभी नहीं उत्पन्न हुए होंगे। उन सबोंका यदि सक्षिप्तमें ही आविष्कारोंका परिचय दिया जाय तो कई सौ पृष्ठ इसीमें लग सकते है। जिस तरह ग्रीष्मकाल आने पर सूर्य बड़े प्रचण्ड वेगसे तपने लगता है उसी तरह उन्नीसवीं सदी का मध्य भाग जब आया तो उन पुराने रसायनियोंका एक तरहसे लोप होगया और इन नए रसायन शास्त्रियोंका प्रचण्ड तेज सारे योरूपमें तपने लग पड़ा। यह उन्नति यहीं आकर समाप्त नहीं हुई, प्रत्युत आगे इन्होंने इतने वेगसे उन्नति की कि जिसका वर्णन करना सूर्यको दीपक दिखाना है।

१८६४ ई० मे न्यूलेण्ड्स नामक एक अङ्गरेज विद्वान् ने तत्त्वोंको सप्त स्वरवत् विभाग वना कर सप्तकमें वाटा। इसकी देखा देखी १८६९में एक मण्डलीफ नामक रूसी विद्वान्‌ने अपनी कल्पना द्वारा तत्त्वोंकी आवर्त सविभाग नामकी ऐसी सारणी वनाई जो आज तक सर्वमान्य हो रही है। इस विद्वान्‌ने ऐसा अच्छा उनके गुण धर्मानुसार विभाग वनाया जो वहुत कुछ सही उतरा। इसने अपने इस विभाग द्वारा सिद्ध किया कि तत्त्वों की सख्या ८० नहीं, ९२ होनी चाहिए। उस समय तक ८० के लगभग तत्त्वोंका वोध हो चुका था, उसने खाली कोष्ठकोंके स्थान पर अज्ञात तत्त्वोंके होने की कल्पना की। उसने जिन १२ तत्त्वोंकी ओर सङ्केत किया था, तथा उनके जो परमाणुभार आदि वतलाए थे खोज करते हुए वह मिल गए। इसतरह उसकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। १८९५ ई० में उसके वतलाए उन शून्य समूह तत्त्वोंका भी पता लग गया, जो निर्गुण व शक्तिशून्य होनेके कारण साधारणतया नहीं जाने जा सकते थे। इस तरह १९वीं शताब्दीके समाप्त होते होते इन नए रसायनियोंने मानव समाजकी काया पलट दी। कहा वह प्राचीन समयके

रसायनी जिन्होंने केवल अल्प मूल्यकी धातुऐं प्राप्त कर उन्हें उच्च मूल्यकी धातुओंमें बदलनेकी चेष्टा करते हजार वर्ष व्यतीत कर दिए, पर उन्हें सामूहिक सफलता न मिली। इधर दो सदीमें ही इन नए रसायनियोंने—जैसे-जैसे अपने विचार बदले—वह विश्वके हरएक पदार्थको अदलने बदलनेमें सफल होगये। जिसका परिणाम यह हुआ कि वह उस परिवर्तनीया पदार्थ विद्याको प्राप्त करनेमें समर्थ होगए जिससे सब कुछ बनता है और धीरे-धीरे वह पदार्थोंके मूलभूत तत्त्वों तक जा पहुचे।

आधुनिक पदार्थ विद्या या रसायन शास्त्र वास्तवमें रसायनी विद्याका ही एक परिवर्तित रूप हैं। पूर्व कालिक रसायनी एक धातुको दूसरी धातुमें बदलना चाहते थे। यह नये रसायनी उन सात धातुओं तकही सीमित न रहे, प्रत्युत विश्वके प्रत्येक प्राप्त पदार्थोंको बदलनेमें लग गए, जैसे जैसे यह इसमें सफल होते गए आगेसे आगे बढ़ते चले गए।

इन पाश्चात्य नये रसायनियोंने जिस बातको पकड़ा उसे प्रत्यक्ष देखने व दिखानेकी चेष्टा की। इस विश्वका कौनसा पदार्थ किस तरह बनता है और उसे कैसे तोड़ा या जोड़ा जा सकता है? इस बातको वह प्रयोगोंसे देखने व समझने मे समर्थ हुए। मनुष्य शरीर, वृक्ष, निमक, शर्करा, मिट्टी, पत्थर, जल, हवा आदि इस विश्वके समस्त पदार्थ किस तरह बने है? किन तत्त्वोंसे बने है? इसका उन्होंने प्रत्यक्षीकरण किया। हम अपने पूर्व विचारोंके कारण आजतक इस पदार्थ विद्याकी अवहेलना करते आरहे है, पर हम यह नहीं जानते कि पदार्थोंके मूलभूत तत्त्वोंको जाननेका कौनसा सही मार्ग है। हम इसे किस तरह सही तौरपर जान सकते है? जबतक हम उनके द्वारा बने पदार्थोंको सही रूपमें न जानेंगे तबतक हम कभी सच्चाईको नहीं पा सकते। क्योंकि पदार्थोंके साथ उन मूलतत्त्वों का सीधा सम्बन्ध है, जिनसे वह बने है। जबतक हम पदार्थ विद्याको नहीं जानते कभीभी उन मूलतत्त्वोंको नहीं पासकते। इसीलिये जो व्यक्ति इस विश्व के मूल पदार्थोंको जानना चाहते है उन्हें पदार्थ विद्या अवश्यही जाननी चाहिए।

जिनको रसायन शास्त्र नहीं आता वह न पदार्थोंके मूलतत्त्वोंको जान सकते हैं न प्रकृतिमें हुई उनकी रचनाको ही समझ सकते है।

हमारे रसशास्त्रसे भी इस पदार्थ विद्याका घना सम्बन्ध है। हम जितनेभी कूपीपक्व रस निर्माण करते है वह वास्तवमें कुछ मौलिक पदार्थोंके ही यौगिक रूप होते हैं—जो उनमे बनते हैं। रससिन्दूर, रसकपूर, लोहभस्म, चांदीभस्म आदि यह सब वस्तुए वास्तवमें मौलिक पदार्थोंके बने यौगिक रूप है। यह सब किस तरह बनते है? इसको जानना भी रसायन-शास्त्र या पदार्थ विद्याका विषय है। जबतक हम इसे सही तौरपर मालूम नहीं कर लेते कभी भी एक जैसे गुण, धर्म व एक रूपके यौगिक तय्यार नहीं कर सकते। वैद्यों द्वारा बनाई भस्में व रस सदा एक जैसे एक रूप गुण वाले क्यों नहीं बनते? इसका कारण यही है कि हम पदार्थ विद्यासे अनभिज्ञ है। केवल कुछ साधारण परम्परा-प्राप्त इन वस्तुओंके बनानेकी विधिमात्र जानते है, उसके आधार पर बनाते चले आरहे है। इसीलिए जब कभी इनके बनानेमें त्रुटि उत्पन्न होती है—हम पदार्थ विद्यासे अनभिज्ञ होनेके कारण—उन त्रुटियोंको दूर नहीं कर सकते। इस त्रुटिको दूर करनेके लिए हमें आधुनिक पदार्थ विद्याको अच्छी तरह पढ़ना व क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। तभी हम सही सही पदार्थोंको बना सकेंगे, अन्यथा नहीं।

अब हम अगले अध्यायमें पदार्थ-रचनाके उन तात्विक नियमों पर प्रकाश डालेंगे और संक्षेप में यह बतलावेंगे कि विश्व पदार्थोंकी रचना किस तरह होती है? तथा हमारे रस इन पदार्थ-विद्याके नियमानुसार किस तरह बनते हैं?
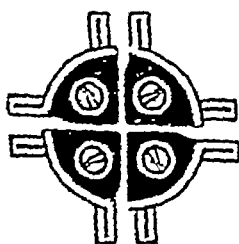
दूसरा अध्याय

प्रमाण और परीक्षा

मनुष्यको जब कोई ऐसी वस्तु मिलती है जिसे वह नहीं जानता किन्तु उसे जानने की उत्कट इच्छा होती है तो उस वस्तुको अपने किसी वयोवृद्ध अधिक बुद्धिमान् मनुष्यको दिखाता है यदि वह भी नहीं जानता तो वह सब मिलकर उसे अपनी अपनी भौतिक इन्द्रियोंकी सहायतासे जानने की चेष्टा करते हैं। कोई उसको अपने स्पर्शसे मृदुता, कठोरता, खुरदरेपनको देखता है, कोई उसे तोड़ता, मरोड़ता, खींचता, पीटता हुआ उसके भञ्जनशील, घनवर्द्धनीय आदि गुणोंको जानता है, कोई उसे चखकर उसका स्वाद देखता है कोई उसे अग्नि जल आदि में डाल कर ज्वलन शीलता, अज्वलन शीलता और घुलन, अघुलन शीलताको देखता है। इस तरह वह सब उस वस्तुके सम्बन्धमें परीक्षा लेकर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते है।

हमारे यहां दर्शन शैलीमें अथवा यों कहिए कि विशेष क्रियात्मक ज्ञानके अभावमें इस तरह हम भौतिक इन्द्रियोंकी सहायतासे जिन वस्तुओंके सम्बन्धमें जो जानकारी प्राप्त कर लेते है उसे प्रत्यक्ष कहते है। इस तरहका प्रत्यक्ष यदि किसी पूर्व पुरुषने किया हो और वह उस वस्तुके सम्बन्धमें अपना कोई निर्णय दे रहा हो तो उसे हम आप्त प्रत्यक्ष या आप्त प्रमाण कहते है। हमारी विद्यमान परिपाटीमें इस तरहके साधनों द्वारा हुए हुए निर्णयोंको सर्वोपरि सही माना जाता है और किसी निर्णयके समय इस भौतिक इन्द्रियजन्य ज्ञान या साधनको मुख्य स्थान दिया जाता है।

हमारे यहां रस-वादका जबसे आरम्भ हुआ इसमें व्यवहृत होने वाले पारद, बलि, हरिताल, अभ्रक आदि अनेक द्रव्योंको जिन्हें उपयोगमें लाया गया, उन वस्तुओंकी असलीयत उनके भौतिक रूप, गुण आदिको जाननेके जितने साधन बतलाए गये हैं वह सब ऐसे ही भौतिक साधनों या परीक्षाओं तक सीमित दिखाई देते हैं।

पारदके सम्बन्धमें बतलाया गया है कि जो द्रव रूप, भारी हो, चञ्चल हो, जिसके भीतर नीलिमा झलके तथा बाहर अत्यन्त उज्ज्वल, श्वेत, स्वच्छ, आभा, प्रभा युक्त हो वह ठीक है और जिस पारे पर मैल की तह लगी हो, आभा, प्रभा जिसकी मन्द पड़ गई हो वर्णमें पाण्डुपन आगया हो, थाली आदि में डाल कर बहाने पर पीछे मैलकी या अत्यन्त गाढ़ेपनकी पूछ छोड़ जाय वह पारा अच्छा नहीं होता। इसी तरह अभ्रकके सम्बन्धमें बतलाया गया है कि जो अभ्रककी डली देखनेमें भारी दृढ़ हो, अग्निमें डालने पर जैसी की तैसी ही बनी रहे, न फूले न उसके कण बिखरें, वर्णमें श्याम अच्छे चमकदार सूक्ष्म पत्र हों वह वज्र अभ्रक है। हम ऐसे साधनको प्रत्यक्ष या भौतिक साधन कहते हैं।

रसवादके जो भी ग्रन्थ हैं उनमें वस्तुओंके रचना, रूप, गुण, धर्म, अच्छे, बुरे, नकली, असली देखने जाननेके जितने भी साधन दिखाई देते हैं सबके सब उक्त भौतिक परीक्षाओं तक सीमित है।

दूध रक्खे रक्खे फट जाता या बिगड़ जाता है। आसव खुली बोतलमें पड़ा पड़ा खट्टा हो जाता है, हरा कसीस, सुहागा, तुत्थ कुछ दिन खुले पड़े रहें तो उनके रवे अपने आप टूट जाते है और यह सब भुर भुरे हो जाते हैं, धातुओं पर पड़े पड़े मैल ऐसी चढ़ जाती है कि उनकी आभा प्रभा मिट जाती है, लोहा में जंग लग जाती है, यह सब विकार किस तरह उत्पन्न होते है? हमारे साधन भौतिक इन्द्रियों तक सीमित रहनेके कारण हम आज तक इन उत्पन्न होने वाली खराबियोंको अपने प्रत्यक्ष साधनों द्वारा नहीं देख पाए। वास्तवमें हमारे

यह साधन इतने निर्बल हैं कि हम इनसे किसी वस्तुकी सही आन्तरिक स्थितिको जानना चाहें तो किसी तरह भी नहीं जान सकते । जिह्वासे हम स्वाद लेकर इतना तो वतला देते है कि निम्बूरस, दधिरससे अधिक खट्टा है। शर्करासे शहद अधिक मीठा है किन्तु, यह बात हमारी जिह्वा वतानेमें असमर्थ है कि दधिरस से निम्बूरस या निम्बूका सत्त्व कितने गुणा अधिक खट्टा है, या शर्करासे शहद या गुड़ कितने गुणा अधिक मीठा है। हाथके स्पर्शसे उष्ण, शीतका अनुभव तो बता सकते हैं किन्तु, हमारी स्पर्शेन्द्रिय यह वतलानेमें असमर्थ है कि अमुक वस्तुसे अमुक वस्तु का वाह्य उत्ताप मात्रामें कितना न्यूनाधिक है।

पदार्थ अक्षर है या नश्वर ? वास्तव में हमारे प्रत्यक्ष प्रमाण सीमित हैं। उनका कार्य व्यापार मर्यादित होनेके कारण ही हम आजतक यह नहीं जान पाए कि पदार्थ अक्षर है या नश्वर। हम सब अपनी वाह्य इन्द्रियोंसे देखते हैं कि तालाबका पानी धीरे धीरे सूख रहा है, कुछ दिनमें तालाव पानीसे रहित हो जाता है। वड़े वड़े हरे भरे जगल अग्निकी लपटोंमें पड़ कर भस्मसात् हो जाते है। जहां कल खूब हरियाली थी वहां कुछ राखका ढेर रह जाता है। वह राख भी हवा से उड़ कर या पानीमें घुल मिल कर उस स्थानसे मिट जाती है।

इस चराचर जगत्में हम अनेक चीजोंको वनता, विगड़ता या उत्पन्न होता, मिटता देख कर हमने यह समझ लिया कि यह विश्व तथा इस विश्वके पदार्थ सब नश्वर हैं। विश्वकी इस स्थितिको हम इस तरह हजारों वर्ष पूर्वसे देखते व मानते चले आ रहे है। वास्तवमें हमारे यह साधन इतने निर्वल और अनिश्चित हैं कि जिनमें उत्पन्न हुई भ्रान्तिको हम इन्हीं साधनोंकी सहायतासे दूर नहीं कर सकते। हम विश्वमें जिन पदार्थोंकी उत्पत्ति विनाशके दृश्यको अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखते है यदि हम इसको किसी तरह रोक थाम कर पुन: देखने में समर्थ हो जाते तो सम्भव है कि हमें यह दृश्य और ही रूपमें दिखाई देते, किन्तु हम इधर आगे वढनेमें असमर्थ रहे। विदेशवासी रासायनी

प्राप्त प्रत्यक्ष प्रमाण या इन भौतिक साधनों तक ही सीमित न रहे, वह कृत्रिम साधन ढूढने लगे, जिसमें उन्हें सफलता मिली। वह पदार्थोंकी उत्पत्ति विनाश की स्थितिको रोक कर देखनेमें समर्थ हुए तो उन्हें पता लगा कि हम विश्वके जिन पदार्थोंका विनाश देखते हैं इनमेंसे अनेकोंका विनाश रोका जा सकता है और चेष्टा करने पर उन्हें फिर पूर्वरूपमें लाया भी जा सकता है। जैसे— जल, पारा, वह्नि आदि। जलको या पारदको खुले अग्नि पर रखनेसे यह उड़ते है, इनकी वाष्प बनती है, इन्हें रोका न जाय तो यह अन्तर्ध्यान हो जाते है, यदि इन्हें बन्द वर्तनमें गरम किया जाय और इनकी वाष्पको किसी एक निश्चित मार्गसे निकलने दिया जाय और उस वाष्पको निकलनेके स्थान पर शीतल किय जाय तो पानी या पारा अपने पूर्व रूपमें पुन उतने ही प्राप्त हो जाते है जितने उस वर्तनमें गर्म करनेके लिये डाले गये थे।

इसीतरह लकड़ी, तेल, मोम बत्ती, गोंद, कोयला आदि पदार्थोंको भी जलावें और इनको भी उक्त विधिसे रोक कर उक्त ज्वलनशील अंशसे यह चाहें कि इनसे पुन· लकड़ी, तेल, मोमबत्ती, कोयला आदि प्राप्त हो जाय तो हम कितनी भी चेष्टा करें इसमें सफलता नहीं मिलती। किसी तरह भी यह वस्तुए हमारे प्रयत्नसे पूर्वरूपमें नहीं आतीं। तो क्या इन पदार्थोंका पूर्वरूप नष्ट होने से इनका पदार्थत्व मिट जाता है? पूर्वकालमें इस बातको जाननेके साधन प्राप्त न हो सके थे, पर नव्य विचार धारियोंने यह ढूढ लिये। ऐसे बन्द वर्तन तय्यार किये कि जिनमें इन चीजोंको बन्द करके सुरक्षित जलाया जा सका और उस ज्वलनशील वस्तुके प्रादुर्भूत अंशांशोंको सुरक्षित रूपमें सञ्चित भी किया जा सका तो इन्हें सग्रह करने पर ज्ञात हुआ कि वृक्षके सुखाने पर जलादि जो पदार्थ उससे भिन्न हुए, तथा लकड़ी को जलाने पर धुआ, वाष्प, कज्जल, राख आदि जितने भी पदार्थ उससे निकले उन सब निकलने वाले पदार्थोंकी मिश्रित मात्रा उतनी ही उतरी जितना कि वह जलानेमे पूर्व वृक्षका भाग था। इसीप्रकार मोमबत्ती, कोयला आदिको सुरक्षित जला कर देखा गया, सबसे वही एक

परिणाम प्राप्त हुआ । कोई भी वस्तु मात्रामें अपने मूल अंशसे कम नहीं उतरी ।

एक पदार्थ अपने पूर्वरूपको छोड़ कर किन्हीं दूसरे रूपोंमें चला जाय और उसके उस रूपको विशेष विधियोंसे जब देखा तोला व नापा जा सके तो ऐसी स्थितिमें उस पदार्थके पूर्वरूपको नश्वर मानना या कहना उन प्रयोग कर्ताओंको उचित न जंचा । उन्हें इसप्रकारके रूप परिवर्तनकी स्थितिको देखकर इस नश्वर शब्द की परिभाषा युक्तियुक्त न जची । क्योंकि पूर्वके पदार्थोंसे जो नए सूक्ष्म पदार्थ प्राप्त हुए उनकी नश्वरताकी भी जांच की गई, वह भी केवल रूप परिवर्तन करते पाए गये । इसीलिये पदार्थोंके इस तरह परिवर्तनका नाम उन्होंने रूप परिवर्तन दिया और उन्होंने परीक्षाओं द्वारा पदार्थके निम्न लिखित लक्षण निर्द्धारित किए ।

पदार्थ लक्षण—(१) जो वस्तु अवकाशमें कुछ न कुछ स्थान घेरती हो ।
(२) जिसमें कुछ न कुछ मात्रा (भार) पाई जाती हो
उसकी पदार्थ संज्ञा है ।

हमारी प्राचीन पद्धतिमें हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं था जिसके द्वारा हवा या हवामें विद्यमान वाष्प या वायु रूप पदार्थको तोल या नाप सकते । न हम ऐसे सुरक्षित पात्र ही बना सके थे कि जिसमें नष्ट होने वाले पदार्थोंके अंशको सुरक्षित रख कर तोला नापा जा सके, इसीलिए हम भौतिक इन्द्रियोंसे परेकी वस्तुको अपने संरक्षणमें लाकर उसकी परीक्षा न कर सके, इसी कारण विश्वके पदार्थोंको नश्वर समझ लिया ।

इस पूर्वकी शताब्दीमें आकर सूक्ष्म तुलाओं सुरक्षित पात्रों व अनेक साधक यन्त्रोंकी सहायतासे हवा तथा हवामें विद्यमान अनेक अदृश्य पदार्थोंको सुरक्षित पात्रोंमें बन्द करके जब रखा जा सका और उन्हें तोला नापा जा सका तो उनके पदार्थत्वका ठीक ठीक बोध हो पाया । इस तरह पदार्थका दृश्यमान जगत्से तिरोहित हो कर अदृश्य सूक्ष्म रूपमें जानेकी **स्थितिको अब** जाना व

समझा गया तो वहां भी अदृश्य सूक्ष्म पदार्थसे आगेके प्राप्त होने वाले सूक्ष्म पदार्थोंको भी देखने व जाननेकी चेष्टा की गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि वह विद्वान् पदार्थोंके उन रूपों को विच्छेदित करते करते पदार्थके ऐसे अदृश्य सूक्ष्म रूप तक जा पहुचे, जहा पहुच कर वह पदार्थ लाख चेष्टा करने पर भी फिर तोड़ा व नष्ट न किया जा सका। इसीको विद्वानोंने पदार्थका परम-अणु रूप (परमाणु) संज्ञा दी। इस बातको खूब अच्छी तरह जाचा व समझा गया कि परमाणुको एकाएक नष्ट नहीं किया जा सकता। तब निश्चय किया गया कि विश्वमें पदार्थोंके परम-अणु रूप यही हैं। यह नश्वर नहीं, प्रत्युत अच्छेद्य, अभेद्य, अक्षर, अविनाशी है। इसी समयसे पदार्थोंकी नश्वरताका सिद्धान्त विद्वानोंकी दृष्टिसे गिर गया।

पदार्थ और शक्ति—विश्वमें दो बातें दिखाई देती है—एक तो जिसमें परिवर्तन आता है दूसरे वह जिसकी सहायतासे परिवर्तन आता है। पदार्थों में जिसकी सहायतासे परिवर्तन आता है वह पदार्थसे भिन्न सत्ता है, किन्तु परीक्षाओंसे देखा गया कि उसमें पदार्थोंके लक्षण नहीं पाये जाते।

(१) न तो वह अवकाशमें स्थान घेरती है।

(२) न उसमें मात्रिकता पाई जाती है।

इसकी परीक्षा अनेक विधियोंसे ली गई, हम इसको एक उदाहरण दे कर समझावेंगे। लोहे की एक गेंदको हवा-शून्य स्थानमें तोला गया, फिर उसे वहीं तपाया गया। जब वह अत्यन्त रक्त तप्त हो उठा उसी स्थितिमें उसे फिर तोला गया, किन्तु पूर्वकी और अन्त की मात्रामें जरा भी अन्तर नहीं पड़ा।

पदार्थोंमें इस तरह जिस सत्ता द्वारा रूप परिवर्तन होते देखे गये उसके विद्वानोंको पाच रूप मिले। उत्ताप, प्रकाश, विद्युत्, आकर्षण और प्रकृति। इन सबमें निम्न लिखित एक से लक्षण पाए गए।

(१) यह मात्रा रहित होते हैं । (२) अवकाशमें स्वतन्त्र स्थान नहीं घेरते । (३) पदार्थाश्रित रहते हैं । (४) सदा गतिशील हैं ।

इनमेंसे किसी सत्ताके लगनेसे ही पदार्थमें रूप व अवस्था परिवर्तन होते रहते हैं, इसीलिए इन सबको पदार्थोंमें लगी रहने, परिवर्तन लाने, अवस्था बदलनेकी सत्ता रखनेके कारण शक्तिके नामसे अभिहित किया गया ।

यह देखा गया है कि विश्वमें जितने भी अवस्था व रूप परिवर्तनके कार्य दृश्य या अदृश्य रूपमें होते रहते हैं वह सब शक्तिके प्रभावसे ही होते हैं । पदार्थोंके किसी रूपकी स्थिति भी इस शक्तिके सतुलन पर निर्भर है । जब तक पदार्थके अनुकूल शक्तिका सतुलन बना रहता है उस पदार्थका अस्तित्व बना रहता है, जब सतुलनमें अन्तर पड़ता है उस पदार्थका वह रूप मिट जाता है और उससे नए नए पदार्थोंका प्रादुर्भाव हो जाता है । इस प्रकार विश्वके समस्त पदार्थ समय समय पर शक्तिके प्रभावसे बदलते बदलते रहते हैं, न पदार्थ नष्ट होता है न शक्ति । शक्तिकाभी रूपान्तर ही होता है, वह नष्ट नहीं होती । इस तरह शक्ति और पदार्थ दोनों अविनाशी पाए गए ।

अवस्था और परिवर्तन—बरफको जब उत्तप्त किया जाय तो वह पिघल कर जल बन जाता है, जलको उत्तप्त किया जाय तो वह वाष्प बन कर उड़ने लगता है और हवामें मिलता जाता है, किन्तु जल वाष्पको पुनः ठण्डा किया जाय तो यह फिर जलमें परिणत हो जाता है । इस जलको और ठण्डा करे तो यह फिर जम कर बरफ बन जाता है । किंतु इसके इन परिवर्तनों में इसका असली रूप सबमें निहित रहता है जो उत्तापको सतुलन पर लानेसे उसको उसी जलके रूपमें प्राप्त किया जा सकता है । जिसतरह जलमें अवस्थाका परिवर्तन देखते हैं इसी तरह चादी, सोनामें भी शक्ति द्वारा अवस्थाका परिवर्तन दिखाई देता है । इन धातुओंको गलानेसे वह द्रव हो जाती हैं और उन्हें तीव्रतर अग्नि दी जाय तो वह वाष्प बन कर उड़ने लगती है, किंतु इनके वाष्प को भी शीतल किया जाय तो उससे फिर वही धातु प्राप्त हो जाती है ।

इसमें भी पदार्थकी अवस्था बदलती है। देखा गया कि विश्वके समस्त पदार्थ शक्ति की सहायतासे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें चले जाते हैं। इस तरहके परिवर्तन मे पदार्थके वास्तविक रचना-रूपमें कोई परिवर्तन नहीं आता। वाह्य-रूप अवश्य वदल जाता है, किंतु उनके आन्तरिक रचना रूपमें जरा भी अन्तर नहीं आता। इसीलिये विद्वानोंने इस स्थितिका नाम अवस्था परिवर्तन रखा।

भौतिक परिवर्तन—हवा या हवामे विद्यमान अन्य अनेक वायुएं जिन्हें पहिले संग्रह करना कठिन था, उनको पात्रोंमें संग्रह करनेके साधन निकाले गये, फिर उनको शीतलीभवन क्रिया पर चाप प्रभावसे संकुचित करनेकी चेष्टा की गई तो हवा सदृश्य पदार्थ द्रव रूपमें आगए और इन द्रवोंको अत्यधिक शीतली भवन में रख कर चाप प्रभाव दिया गया तो वे ठोसमें परिणत हो गए। अर्थात् वे अदृश्य जगत् से दृश्य जगत् मे आगये। इन प्रयोगोंसे यह परिणाम प्राप्त हुआ कि विश्वके समस्त पदार्थ शक्तिके न्यूनाधिक प्रभावसे ठोस, द्रव और वायु तीनों अवस्थामें आ जा सकते है। इस प्रकारके परिवर्तन केवल पदार्थके वाह्य आकृतिमें होते है। इन परिवर्तनोंको हम सब सैकड़ों क्या हजारों वर्षोंसे देखते हुए भी साधन विहीन इसकी महत्ताको न समझ पाए।

जिस तरह हमने जल आदिमें अवस्था परिवर्तनका एक दृश्य देखा इसी तरह फिटकरी, सुहागा, निमक, खाड आदिको जलमें घोल देते है तो वह भी जलमें घुलकर द्रव रूपको प्राप्त हो जाते है। किंतु जब हम जलको उड़ा देते है तो हमको फिर वही फिटकरी सुहागा, निमक, खाड आदि पदार्थ जैसे पूर्व रूपमे थे, प्राप्त हो जाते हैं। इस परिवर्तनको भी अवस्था परिवर्तन का नाम दिया जा सकता है। किंतु स्वतन्त्र नहीं, यहा तो उक्त पदार्थके कण जलमें घुलनशील होनेके कारण जलमें घुल कर मिल गए। यह अवस्था परिवर्तन इनके घुलन शीलता धर्मके कारण आया, इसीलिये ऐसे पदार्थोंके परिवर्तनों को विद्वानोंने अवस्था परिवर्तनकी श्रेणीसे भिन्न न मान कर इनको भी भौतिक परिवर्तनके अन्तरगत ही माना।

रासायनिक परिवर्तन—विद्वानोंने कुछ ताम्रचूर्ण और कुछ वलि-चूर्णको मिला कर उसे रक्ततप्त किया और उसे फिर अग्निसे निकाल कर देखा तो न उसमें उन्हें ताम्र चूर्ण मिला न वलि। पारेके साथ भी वलि मिला कर तपाया गया तो यहां भी उन्हें न पारा मिला न वलि। प्रत्युत ताम्र वलिके स्थानमें एक नीलाभा काला पदार्थ तथा पारद वलिके स्थानमे एक लाल चमक युक्त कण रूप पदार्थ दिखाई दिया। 'जिस तरह विद्वानोंने जलमें खाड घोल कर उसे फिर गरम करके जल उड़ा कर फिर खांड प्राप्त कर ली थी, इसी तरह वह ताम्र वलि और पारद प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे। इनको जलमें घोलने की चेष्टा की, यह नहीं घुले। इन्हें फिर अग्निपर रखकर तपा तपा कर पृथक् पृथक् करने की चेष्टा करने लगे, किंतु इस तरह भी वह इनको तोड़ कर इनसे ताम्र पारद व वलि नहीं प्राप्त कर सके। इनको बहुतेरा पीसा, छाना, उड़ाया किंतु इन्हें पूर्णरूपमें न तो पारद मिला, न वलि, न ताम्र। हजारों पदार्थोंमें इसी तरहके ऐसे स्थिर परिवर्तन देखे गए जिन्हें फिर पूर्वरूपमे नहीं लाया जा सका। ऐसे परिवर्तनोंको उल्लिखित खाड, फिटकरी आदि परिवर्तनोंसे भिन्न माना गया और इनका नाम रासायनिक परिवर्तन दिया।

भौतिक परिवर्तन के चिह्न—जो पदार्थ शक्तिके सम्पर्कमें आकर अपनी प्रकृति, गुण, स्वभाव, मात्राको विना बदले ही भिन्न भिन्न अवस्थामें जा सकते हों तथा वाह्य आकार व अवस्थाको वदलकर पुन. पूर्व रूपमें लाए जा सकें उन्हें भौतिक परिवर्तनके चिह्न मानना चाहिये। पानीके ससर्गसे खाड, फिटकरी में ऐसे ही परिवर्तन होते हैं।

रासायनिक परिवर्तनके चिह्न—जो पदार्थ शक्तिके प्रभावसे अपनी प्रकृति, गुण, धर्म, तन, मात्रा, घन, वर्ण, तापको वदल दें, जिसके द्वारा वने हुए उस स्थिर रूपको साधारणतया पुन पूर्वरूपमें लाना कठिन हो उसे रासायनिक परिवर्तन कहते है। ताम्र वलि और पारद वलि सम्मिलन से ऐसे ही परिवर्तन हुए हैं। इन दोनोंके मेलसे ताम्रभस्म और सिंगरफ नामके जो पदार्थ वनते है वह अपने

पूर्वके मूल पदार्थ से प्रकृति, रूप, गुण, धर्म, तन, मात्रा आदि समस्त वातोंमें भिन्न होते है।

इस तरह होने वाले प्रत्येक पदार्थोंके परिवर्तनोंमें यह किस तरह जाना जाय कि किसमें कौनसे परिवर्तन होरहे है। इस बातकी वारीकीसे जांच होने लगी। ज्ञात हुआ कि भौतिक परिवर्तन और रासायनिक परिवर्तनमें विल्कुल विभिन्नता द्योतक भित्ति खड़ी करना तो वड़ा कठिक काम है तथापि अनेक वातें ऐसी जानी गई हैं जिनके द्वारा उक्त परिवर्तनोंका अन्तर स्पष्ट होजाता है।

उत्ताप वढ़ना या घटना—विना बुझा हुआ चूना की डलीको आप जलमें डाल दें, थोड़ी देरमें जल अपने आप गरम होता दिखाई देगा, फिर वह जल धीरे धीरे इतना अधिक गरम हो जायगा कि उसमें उवाल उठेगा और उससे धुआ व वाष्प निकलने लगेगा। चूनाके जलमें डालनेसे उसमें जल प्रभावसे जो परिवर्तन होता है इसीसे चूना की प्रकृति व मात्रामें अन्तर आ जाता है।

इसी तरह शुद्ध वलि ऽ२ लोह चूर्ण ऽ४॥ सेर दोनों को किसी लोह खरलमें डाल कर उसमें कुमारी रस छोड़ कर घोटना आरम्भ करें। थोड़ी देर इस सघर्षणसे उससे उत्ताप सजनन होगा और धीरे धीरे इतनी गर्मी वढ़ेगी कि खरल रक्तताप हो उठेगा। इस गर्मीकी वृद्धिको देख कर माना जा सकता है कि लोह वलिके मेलसे, यहा रासायनिक परिवर्त्तन हो रहा है, इसीसे लोह की स्वय अग्नि नामक भस्म वन गई।

नमक और शोरा मिला कर इसे जलमें डाल दीजिए जलका उत्ताप एकाएक घट जायगा, जल वहुत शीतल हो जायगा। जलका इस तरह शीतल होना इस वातका चिह्न है कि शोरा नमकके मिलनेसे कोई न कोई इसमें रासायनिक परिवर्तन हुआ।

दो तीन पदार्थों के मिलने पर उत्तापका वढ़ना या घटना उन पदार्थोंमें होने वाले रासायनिक परिवर्तनका चिह्न है।

(२) पदार्थोंका तन परिवर्तन—१ तोला नीला थोथाको ९९९ तोला शुद्ध पानीमें घोल कर इसका तन नापें। दूसरी ओर १तोला शोराको एक हजार तोला जलमें घोल कर इसका भी तन नापें फिर दोनों घोलोंको एक नपनेमें एकत्र करके इन दोनोंका मिश्रित तन नापें। होना तो यह चाहिये कि दोनों के तन योगके बराबर इस मिश्रणका तन बनना चाहिए किंतु नहीं, इस मिश्रणके तनमें ७·५ की वृद्धि हो जाती है। इनका तन इस तरह बदलना भी रासायनिक परिवर्तनका द्योतक है।

(३) पदार्थका तलछट देना—चूना जलमें घोल कर उसका स्वच्छ जल तय्यार करिए, उस स्वच्छ जलमें एक नली डुबो कर उसका एक सिरा मुहमें डाल कर जलमें फूक मारिए, वह जल दूधिया वर्णका होता चला जायगा, थोड़ी देरमें वह सफेदी नीचे बैठ जायगी। इस तरह किसी घुले पदार्थमें किसी दूसरे पदार्थका मिश्रण करने पर तलछट उत्पन्न हो जाय तो उन घुले पदार्थोंमें रासायनिक परिवर्तन हुआ ऐसा मानना चाहिये। तलछटका बनना रासायनिक परिवर्तनका चिह्न है।

(४) वायुसञ्जलन—खड़िया मिट्टी पर लवणाम्ल डालनेसे उससे कर्बन द्विऔक्साइद नामक वायु निकलता है। इसी तरह हल्के बलिकाम्लमें बहुत पतले यशद पत्र डालनेसे उस पात्रमेंसे भी उदजन वायु निकलता है जिसको गुब्बरोंमें भरते है। दो पदार्थोंके मिलनेसे किसी वायुका सञ्जनित होना यह भी उक्त पदार्थोंमें रासायनिक परिवर्तनका होना सिद्ध करता है।

(५) वर्ण बदलना—गीले चूनेमें कत्था मिलानेसे चूनेका रग लाल हो जाता है। इसी प्रकार जहरमोहरापत्थरको जलमें घिस कर उस पर हल्दी रगड़ने से उसका भी रग लाल हो जाता है। मिश्रित पदार्थोंका वर्ण परिवर्तन होना इस बातका द्योतक है कि इन दोनोंके मिलनेमें रासायनिक परिवर्तन हुआ।

उक्त विभेदोंसे भिन्न और भी अनेक रासायनिक परिवर्तनके चिह्न है।

यथा—नमीदार हवामें लोहा रख देनेसे उसमें जंग लग जाता है, साम्भर नमक पसीज जाता है, बिना बुझा हुआ चूना फूल उठता है, सुहागा, तुत्थ आदि पदार्थ जो रवादार होते हैं पेड़ पड़े भुर भुर हो जाते हैं। फास्फुरिकाको खुली हवा में रखने पर वह जल उठता है यह समस्त परिवर्तन भी रासायनिक परिवर्तनके चिह्न हैं।

बलि शोरा मिला कर या पोटास मनसिल मिला कर उस पर चोट मारने से एकाएक जोरका धड़ाका उठ कर धुआं धुआ हो जाता है यह प्रक्रिया भी रासायनिक परिवर्तनका द्योतक है।

जलमें थोड़ा सा नमक घोल कर उस जलमें प्लाटिनमके छड़ द्वारा विद्युत सचालन करनेसे उस जलमे लवणजन वायु सञ्जनित होता है, यह भी रासायनिक परिवर्तनका द्योतक है। इस प्रक्रियासे नमककी सैंधजम धातु प्राप्त की जाती है। बलिकाम्ल मिले जलमें प्लाटिनम युक्त-विद्युत् सञ्चालन प्रक्रियासे दोनों तारोंके सिरों पर दो प्रकारके वायुओंके बुल बुले उठने लगते हैं। इससे जलके अणुओंका विच्छेद होता है और उसमे उदजन, ओषजन नामक जलके दोनों मूलतत्त्व अपने वायुरूपमें प्राप्त होते है। इसतरह जलका विच्छेद होना रासायनिक परिवर्तनका चिह्न है। यहा इस जल यौगिक पदार्थसे उसके दोनों मौलिक पदार्थ प्राप्त होते हैं।

हम पारा, बलिसे रससिंदूर बनाते है, रससिंदूरका बनना रासायनिक परिवर्तनका चिह्न है। रससिंदूरमें न तो पारेके गुण होते हैं न बलिके, न इसका पारेका रूप होता है न बलिका। इसीतरह तोलने पर इसका अणु भार न पारेके अणुके बराबर होता है न बलिके। न इसके अणुका तल ही उक्त [illegible]के तलमें मिलता है। रासायनिक परिवर्तनका अभिप्राय है दो चार [illegible] पदार्थोंमें मिल कर किसी ऐसे नए पदार्थका निर्माण होना है जो मूल [illegible]र्थसे हर बातमें बिल्कुल भिन्न हो।

मौलिक और यौगिक

हम रससिंदूर, रसकपूर, रसमाणिक्य, ताम्रभस्म, लोहभस्म आदि अनेक पदार्थोंका निर्माण सैकड़ों वर्षोंसे कर रहे हैं। इस रचनामें हम दो पदार्थो के मेलसे तीसरा पदार्थ अपने हाथसे वनाते चले आए है और स्पष्टतया यह भी देखते चले आए है कि तीसरा वनने वाला पदार्थ पूर्वके मूल भूत पदार्थोंके रूप, गुण स्वभावसे भिन्न है। ऐसी स्थितिमें हम यह समझ न सके कि जिन पदार्थोंके मेलसे तीसरे पदार्थोंकी रचना होती है वह वास्तवमें मौलिक होंगे।

हमने वृक्षोंको भूमि पर उगता तथा जल सेचनसे उसे वृद्धि पाता हुआ देख कर यह अनुमान तो कर लिया कि वृक्षकी रचना पृथ्वी, जल, वायु आदि तत्त्वोंसे हुई और इन्हींसे यह वृद्धि पा रहे है। इसी तरह चराचर इन पाच तत्त्वोंसे उत्पन्न हुए और इनके अशाशसे ही वृद्धि पारहे हैं। पर जिन तत्त्वोंसे हमने प्रत्यक्षमें अन्य पदार्थ वनाए उन पदार्थोंकी मौलिकता को हम जरा भी समझ न पाए। इनके समझनेका श्रेय भी उन्हीं पाश्चात्य रासायनियोंको प्राप्त हुआ, कितना आश्चर्य है।

सबसे पहिले जान डाल्टनने मौलिक तत्त्वोंकी नीव डाली और धीरे धीरे यह सिद्धान्त वहा से फैलता हुआ हम तक पहुचा, तव हमारी आखें खुलीं और हमे अपनी यह भूल प्रत्यक्ष में दिखाई दी।

प्रत्यक्षमें जिन पदार्थोंसे अन्य पदार्थ वनते दिखाई दें या जिनके परस्पर मेलसे तीसरे पदार्थ वनते पाए जाय और वनने वाला पदार्थ रासायनिक परिवर्तनके पश्चात् प्राप्त हो तथा उसकी रचना, गुण, धर्म, मात्रा, तन आदि सव अपने रचकसे भिन्न हों, ऐसे रचक पदार्थको ही मूल पदार्थ या तत्त्व कहना चाहिये, न कि अनुमान-जन्य अन्य पदार्थोंको। जिन विद्वानोंने अनेक धातुओं अधातुओं और वायुओंके मेलसे या चार अम्लों तथा अन्य द्रव्योंकी सहायतामें अनेकानेक पदार्थ वनाए उन्हें इन वनने वाले और वनाने वाले पदार्थोंकि

बीच एक रेखा खड़ी दिखाई दी। इसीलिये जिन पदार्थोंसे अन्य पदार्थोंकी रचना होती पाई गई ऐसे पदार्थोंको मौलिक संज्ञा दी तथा जो पदार्थ इन मौलिक पदार्थोंसे बनते पाये गये उनको यौगिक संज्ञा दी। उन्होंने धीरे धीरे अपने प्रयोगोंके आधार पर इन्हें विश्वके पदार्थोंमें से भिन्न भिन्न छांटना आरम्भ किया, आरम्भमें जान डाल्टनको इस विश्वके पदार्थोंमें से ७०के लग भग मौलिक तत्त्वोंका पता लगा था, बादमें धीरे धीरे २२ और तत्त्व जाने गये। आज तक कुल ९२ मौलिक तत्त्वोंका ज्ञान हुआ है। इन तत्त्वोंसे अन्य पदार्थ तो बन सकते हैं किन्तु वह किसी अन्य पदार्थसे नहीं बन सकते, इसीलिये इन्हें मूलतत्त्व या मौलिक पदार्थ माना गया। यह सारी बातें अनेकानेक परीक्षाओं द्वारा जांच कर निर्धारित की गई।

इस समय तक जितने भी मौलिक पदार्थ जाने गये हैं उन्हें श्रेणी विभागानुसार तीन भागोंमें बांटा गया है। (१) धातु तत्त्व, (२) अधातु तत्त्व, व (३) वायवीय।

यह समस्त तत्व परस्पर एक दूसरेसे तल, मात्रा, घन, वर्ण, ताप तथा गुण, धर्म, स्वभाव, प्रभावमें काफी अन्तर रखते हैं। हम इनको मात्रा सहित एक सारणी द्वारा व्यक्त करते हैं।

धातु तत्त्व और उनके संकेत तथा मात्रा

धातु तत्त्व	संकेत	परमाणु मात्रा	धातु तत्व	संकेत	परमाणु मात्रा
अर्बियम	अ Er.	१६७.७	इटर्बियम्	इट Yb.	१७३.५
अश्मन	अ. sp.	१२०.२	ईट्रियम	ई. Yt.	८९.३३
अल्यूमीनियम्	अलु. Al.	२६.९७	एक्टीनियम्	एक Ae.	२२१.६
आयोनियम्	आ. IO.	२३००	काडमियम्	का. Cd.	११२.४०
ओसमियम	ओ. OS.	१९०.६	कैलसियम्	कै. Ca.	४०.०७
इरीडियम्	इ Ir.	१९३.१	कोलम्बियम्	को. Cb.	९३.१
इण्डियम्	इन In.	११४.८	कोबाल्टम्	कौ. Co.	५८.९७

धातु तत्व	संकेत	परमाणु मात्रा	धातु तत्व	संकेत	परमाणु मात्रा
क्रोमियम्	क्रो. Cr.	५२·०	प्रेजियोदेमियम्	प्रेज.Pr.	१४०·९
गदलीनियम्	ग. Gd.	१५७·३	विस्मिथम्	वि. Bi.	२०९·०
गैलियम्	गै. Ga.	७०·१०	वेरियम्	वे. Ba.	१३७·३७
जर्मेनियम्	ज. Ge.	७२·५	वेरिलियम्	वेरि. Be.	९·१
जिरकोनियम्	जि. Zr.	९०·६	ब्रह्मम्	ब्र. BO.	२३९·०
टिटेनियम्	टि. Ti.	४८·१	मेग्नीजियम्	मे. Mg.	२४·३२
तगस्तनम्	त. W.	१८४·०	मैंग्नेजम्	मैं. Mn.	५४·९३
तन्तुलम्	तन्. Ta.	१८१·५	मोलिवदेनियम्	मो.MO.	९६·०
ताम्रम्	ता. Cu.	६३·५७	मैसुरियम्	मै. Me.	?१५·०
तिरवियम्	ति. Tb.	१५९·२	यशदम्	य. Zn.	६५·३७
थूलियम्	थू. Tm.	१६८·५	युरेनियम्	यु. U.	२३८·२
थोरियम्	थो. Th.	२३२·१५	यूरोपियम्	यू Eu.	१५२·०
थैलियम्	थै. Tl.	२०४·०	रजतम्	र. Ag.	१०७·८८
दिस्प्रोजियम्	दि. Dy.	१६२·५	रुवीडियम	रु. Rb.	८५ ४५
दीर्घमलम्	दी. Di.	९९·५	रूथेनियम्	रू Ru.	१०१ ७
नायकम्	ना. NO.	१८७·५	रेडियम्	रे Ra.	?२६·०
निकिलम्	नि. Ni.	५८·६८	रेनियम्	रेनि Re.	१७५·७५
नियोदियम्	नियो.Nd.	१४४·३	रोडियम्	रो. Rh.	१०२·९
पारदम्	पा. Hg.	२००·६	लीथियम्	ली. Li.	६·९४
पांशुजम्	पां. K.	३९·१०	लुटेसियम्	लु Lu.	१७५·०
पलादियम्	प. Pd.	१०६·७	लैन्थेनम्	लै. La.	१३९ ०
पोलोनियम्	पो. PO.	२१०·०	लोहम्	लो. Fe.	५५.८४
प्रकाशम्	प्र. Rt.	२२८·१	वंगम्	वं. Sn.	११८·७
प्लाटिनम्	प्ला. Pt.	१९५·२	वैनाडियम्	वै. V.	५१·०

धातु तत्व	संकेत		परमाणु मात्रा	धातु तत्व	संकेत		परमाणु मात्रा
समेरियम्	स.	Sa.	१५०'४	सुवर्णम्	सु	Au.	१६७ २
सिलीनियम्	सि.	Se.	७६ २	सैंधजम्	सैं.	Na.	२३'०
स्ट्रासियम्	स्ट्रा.	Sr.	८७ ६ ३	स्केण्डियम	स्के.	Sc.	४५'१
सीजियम्	सीजि	Cs.	१३२ ८१	हाफनियम्	हा	Hf.	१७८'६
सीरियम्	सीरि	Ce	१४० २५	होलियम्	हो.	Ho.	१६३ ५
सीसम्	सी	Pb.	२०७ २				

अधातु तत्त्व

धातु तत्व	संकेत		परमाणु मात्रा	धातु तत्व	संकेत		परमाणु मात्रा
नैलिका	नै.	I.	१२६'९२	वलिका	व.	S.	३२.०६
कज्जलिका	क	C.	१२ ०	ब्रोमीनिका	ब्रो.	Br.	७९ ९२
टेलूरिका	टे	Te.	१२७ ५	शैलिका	शै.	Si.	२८'६
टङ्कणिका	ट	B.	१० ९	सोमलिका	सो	As.	७४'९६
फास्फुरिका	फा	P.	३१ ०४				

वायवीय तत्त्व

धातु तत्व	संकेत		परमाणु मात्रा	धातु तत्व	संकेत		परमाणु मात्रा
आर्गन	आ.	A	३९'९	नूतन	नू	Nt.	२२२ २
उदजन	उ	H.	१'००८	नोनजन	नो	F.	१९'००
ऊष्मजन	ऊ	O.	१६	लवणजन	ल.	Cl.	३५'४६
जेनोन	जे	Xe.	१३० २	पवन	प	N.	१४'००८
क्रिप्टन	क्रि	Kr.	८२ ९२	हिमजन	हि	He.	४'००
नीयन	नी	Ne	२० २०				

नोट—हमने धातुओंमें अम् तथा अधातुओंमें इका और और वायवीय तत्त्वोंमें अन् प्रत्ययका प्रयोग किया है ताकि समझनेमें सुविधा हो।

धातु लक्षण—आयुर्वेदज्ञोंने भी धातु व पदार्थोंके लक्षण किये है। वह कहते हैं—(१) जो आभा प्रभा युक्त हो, (२) घन वर्द्धनीय हो, (३) जिसके वर्तन वन सकते हों उसे धातव पदार्थ कहना चाहिये। किंतु परीक्षासे यह परिभाषा अपूर्ण सिद्ध हुई, इसीलिये इसमें सशोधन हुआ और निम्न परिभाषा वनी।

(१) जिनमें घनता व दृढ़ता अधिक हो।

(२) जो आभा प्रभा युक्त हो।

(३) न्यूनाधिक विद्युत व ताप वाहक हो।

(४) विना रासायनिक परिवर्तनके किसी द्रवमें न घुलनेवाला हो, उसको धातव पदार्थ कहा।

कुछ ऐसी भी धातुए पाई गई है जो घुलनशील है और उनके कण (रवा) भी वनते हैं, इसीलिए इनको उपधातु सज्ञा दी गई। यथा—नैलिका

अधातु लक्षण—(१) जो धातुवत् चमकदार न हो। (२) जिनकी रचना कण युक्त (रवादार) हो। (३) जो ताप व विद्युत वाहक न हो। (४) जो घन वर्द्धनीय व दृढ़ न हो। (५) जल, मद्यादि द्रवमें विना रासायनिक परिवर्तनके घुलनशील हो उसे अधातु कहा।

वायवीय लक्षण—(१) जिसे खुले मुहके वर्तनमें न रखा जा सके।

(२) जो अवकाशमें प्रसारणशील हो।

(३) जो साधारण ताप, चापकी स्थितिमें द्रव न हो सके।

(४) जो विशेष शून्यतम ताप व चाप पर जाकर ही द्रवमे परिणत हो उसे वायवीय सज्ञा दी।

पदार्थ रचना के नियम

सृष्टि रचनाकी कल्पना हमने अवश्य की थी, किंतु यह रचना किस क्रम से हुई इसका वास्तविक ज्ञान हमको नहीं हो सका था। जिन व्यक्तियोंने उक्त तत्त्वोंकी खोज की उन्होंने इस वातको जानने का भी प्रयत्न किया कि इन

तत्त्वोंसे पदार्थ-रचना किस तरह हुई ? वह पदार्थोंको तोड़ते समय ऐसे ढग काममें लाते रहे, जिनके द्वारा विद्यमान मौलिक तत्त्वोंको ठीक ठीक जाना जा सका। उन्हें ज्ञात हुआ कि—

(१) जिन मूल पदार्थोंसे सृष्टिकी रचना होती है उन मौलिकोंका वास्तविक रूप अत्यन्त सूक्ष्म है। जिसकी परमाणु सज्ञा है।

(२) भिन्न भिन्न तत्त्वोंके परमाणुओंमें उनकी अस्तित्व द्योतक पाच बातें होती है—तन, घन, मात्रा, वर्ण और ताप।

(३) पदार्थोंके अणुओंकी रचनामें भिन्न भिन्न तत्त्वोंके परमाणु ही भाग लेते है।

(४) परमाणुओंसे अणु बनते है और अणुओंसे पदार्थ। वास्तवमें पदार्थ अणु समूहका नाम है। अणुओंमें पदार्थके समस्त गुण, धर्म, विद्यमान होते हैं। अणुओंके टूट जाने पर उस पदार्थका अस्तित्त्व मिट जाता है और फिर उससे विच्छिन्न हुए मौलिक अपने तात्त्विक रूपमें आजाते है। यह परमाणु पदार्थ विद्या (रसायन शास्त्र) की सीमामे अच्छेद्य, अभेद्य, अक्षर, अविनाशी है।

(५) पदार्थ रचनाके समय कुछ सजातीय कुछ विजातीय परमाणु ही परस्पर मिलते है। उस मिलन कालमें कोई भी परमाणु टूटता या विभक्त नहीं होता, प्रत्युत वह अपने वास्तविक रूपमें ही विद्यमान रह कर एक दूसरेसे ऐसे तल्लीन हो जाते है कि उस स्थितिमें उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं रहता, वह उस अणु रूपमें बिलकुल अन्तर्हित हो जाता है। इस प्रकार कुछ सजातीय कुछ विजातीय परमाणु मिल कर जब अपने रूप, गुणको बिलकुल गवा बैठते हैं उसी स्थितिका नाम है नये पदार्थकी रचना।

जल इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। जलके एक अणुमें उदजनके दो परमाणु और ऊष्मजनका एक परमाणु मिला हुआ होता है, इन दोनोंके मेलसे जलका एक अणु बनता है। उदजनका यह गुण है कि उसमें कोई चीज नहीं जलती, किंतु ऊष्मजनकी विद्यमानतामें या यों कहो वायुकी उपस्थितिमें यह प्रकाशरहित

नीली ज्वाला देकर एक धड़ाकेका शब्द करता हुआ जल उठता है और पानीके अणुओंकी रचना करता है। दूसरा वायवीय ऊष्मजन इसकी विद्यमानतामें प्रत्येक दहनशील पदार्थ बड़ी तीव्रतासे जलते हैं। इसका जहा अभाव हो वहा कोई भी ज्वलनशील पदार्थ नहीं जल सकते अर्थात् पदार्थोंको जलाना ऊष्मजनका धर्म है। किन्तु इसके एक परमाणुके साथ जब उदजनके दो परमाणु मिलकर पानीका एक अणु निर्माण करते है तो वह जल इन दोनोंका विपरीत धर्मी बनता है। जल एक ऐसा पदार्थ है जो जलती हुई अग्निको बुझा देता है। जहा कहीं भी ऊष्मीकरण हो रहा हो वहा जल डाला जाय तो प्रायः ऊष्मीकरण बन्द हो जाता है।

इस विश्वमें जो पदार्थोंकी बहुरूपता दिखाई देती है इसका कारण यही है कि भिन्न भिन्न तत्त्वोंके भिन्न भिन्न अनुपातमें मिलने से उनके रूप, गुण, स्वभाव, प्रभाव आदि सबमें अन्तर उत्पन्न होजाता है। प्रकृतिमें विभिन्नताका मूल कारण यही बात है। परमाणुओंसे अणुओंकी रचना तथा उन अणु समूहसे पदार्थोंका दृश्य रूप किसी नियमसे बना है या अव्यवस्थित क्रमसे ? इस बात की विद्वानों द्वारा बड़ी खोजें हुई हैं, उनकी खोजमे निम्न लिखित परिणाम प्राप्त हुए।

निश्चित अनुपातका नियम—हम पारद बलिको मिलाकर कज्जली करते है इस कज्जलीको बनाने में या तो पारदके बराबर बलि डालते है या द्विगुण डालते हैं और उसको खरल करके कज्जली बना लेते है, किंतु हमें यह पता नहीं है कि कज्जली बननेमें पारदके कितने भागके साथ कितने भाग बलिकी आवश्यकता है अर्थात् पारदके कितने परमाणुके साथ बलि के कितने परमाणु मिलने पर कज्जलीका एक अणु बन सकता है, इसका हमें आजतक प्रयोगिक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ।

परीक्षाओंसे पता लगा है कि पारदके एक परमाणुसे बलि या गन्धकका एक परमाणु जब परस्पर रगड़के द्वारा मिलता है तो कज्जलीका एक अणु बन

जाता है। अर्थात् पारदके २०० भागके साथ वलिका ३२ भाग मिला कर उसमें रगड़ा जाय तो ठीक कज्जली बनेगी।

कज्जलि निर्माणके लिए यदि कोई व्यक्ति १०० भाग पारदमें १०० भाग वलि देकर यह चाहे कि इससे ठीक कज्जलिके अणु बन जाय तो यह रासायनिक विधिमें कभी सम्भव नहीं। इसमें ८४ भाग वलि अवशिष्ट रह जायगा। अर्थात् पारदके एक परमाणुसे वलि का एक ही परमाणु मिलेगा। इस प्रकार वैद्योंकी बनी कज्जली देखनेमें तो अवश्य काली हो जाती है किंतु परीक्षासे देखा गया है कि सारी वलि पारेके साथ नहीं मिलती इसमें अधिक भाग वलि चूर्णका मिश्रित रहता है। जिसे कज्जल-द्वि-वलिकाइद (कार्बन-बाई-सलफाइड) के घोलमें डाल देनेसे वह वलि—जो यौगिकमे परिणत नहीं हुआ उस घोलमें घुल कर पृथक् हो जाता है और शुद्ध कज्जलिके अणु शेष रह जाते हैं।

इसी तरह जब हम सम भाग पारद वलिकी कज्जलिको काचकूपीमें डाल कर अग्नि पर चढ़ा देते हैं तो यहा भी जो वलि भाग अधिक रहता है वह जल कर उड़ता रहता है, रससिंदूर भी उसी परिमाण पर बनता है जिस परिमाण पर कज्जली बनी है अर्थात् रससिंदूरमे भी पारेका एक परमाणु वलिके एक परमाणुसे ही मिलता है, अधिक वलि या गन्धक या तो पृथक् होकर शीशीके मुह पर लगा रह जाता है या जल कर उड़ जाता है।

हमारे रसशास्त्री रससिंदूर द्विगुण वलि जारित, चतुर्गुण वलि जारित तथा षट्गुण, शतगुण वलि जारित तय्यार करते हैं और वह देखते है कि द्विगुणसे चतुर्गुण वलि जीर्ण पारद (रससिंदूर) अधिक गुण करता है, इससे इस की अणु रचनामें अवश्य अन्तर आता होगा, किंतु परीक्षासे जब देखा गया तो अणु रचनामें कोई अन्तर नहीं मिला। सम, द्विगुण, चतुर्गुण, षट्गुण, शतगुण समस्त रससिंदूरमें पारदके एक परमाणुसे वलि का एक परमाणु ही संयुक्त हुआ पाया गया।

इसी प्रकार ताम्र भस्म बनाते समय ताम्रके एक परमाणुमें वलिका एक

परमाणु अर्थात् ताम्रके ६३½ भागके साथ बलिका ३२ भाग मिलानेसे ताम्र बलि-काइद नामक ताम्रकी भस्म बनती है। यदि कोई यह चाहे कि ताम्रके ४० भागसे बलिके ३२ भाग मिला कर उसकी भस्म बना लें तो यह कभी सम्भव नहीं। अवशेष बलि यदि सुरक्षित जलाया जाय तो भिन्न प्राप्त हो जायगा, अन्यथा जलकर उड़ जायगा। इस प्रकारकी परीक्षा हजारों चीजोंपर होनेसे यह परिणाम प्राप्त हुआ कि—प्रकृतिमें एक ही रंग, रूप, गुण, धर्मके पदार्थ भिन्न भिन्न तत्त्वोंके एक निश्चित अनुपातमें मिलनेसे बनते हैं। वह पदार्थ चाहे प्रकृतिमें बने हों अथवा कृत्रिम बनाये गये हों सब जगह एक निश्चित अनुपातका नियम काम करता दिखाई देता है, इसमें जरा अन्तर नहीं आता। उक्त पंक्तियोंको पढ़ कर कुछ पाठक यह शङ्का कर सकते हैं कि रससिंदूर सम, द्विगुण, चतुर्गुण जब बनाया जाता है तब क्रमसे उनके गुणोंमें वृद्धि दिखाई देती है। यदि द्विगुण, चतुर्गुण, षट्गुण, शतगुण सब एक ही रूपके एक ही मात्राके यौगिक हों तो इनके गुणोंमें वृद्धि नहीं होनी चाहिए। कज्जली तथा रससिंदूर तो रूप, गुण, स्वभाव, प्रभावमें उससे भी ज्यादा अन्तर रखते है फिर इनकी रचना, रूप व गुण, स्वभाव किस तरह एक हुए? कहां कज्जली एक पिष्टि रूप कहां रवा रूप रससिंदूर। उक्त शङ्काका उत्तर ढूंढ लिया गया है। हम प्रसङ्गवश उसकी चर्चा कर देना अनुचित नहीं समझते।

परमाणु गठन और गुण वृद्धिका कारण

रसायन शास्त्रकी सीमामे परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य है, किंतु इसकी सीमासे परे—भौतिक शास्त्रकी सीमा जहासे लगती है—वहां पहुच कर परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य नहीं रहते। यहां आकर वह रूप परिवर्तन करते देखे जाते है। रसायन शास्त्र की सीमामें तो पदार्थ के अणु टूट कर परमाणुके रूपमें चले जाते हैं और फिर वही परमाणु कुछ विजातीय परमाणुओं से मिल कर पुन अणुरूप धारण करते है, इसीसे नयेसे नये पदार्थ बनते रहते है। इस तरह उनका रूप परिवर्त्तन अणु और परमाणु तक सीमित रहता है। किन्तु

भौतिक जगत्में वह परमाणु पदार्थसे शक्तिमें रूपान्तरित होतेहैं और शक्ति पदार्थ में रूपान्तरित होती देखी जाती है, यहा पदार्थ और शक्तिका अन्योन्य सम्बन्ध पाया जाता है।

प्रयोगोंसे इस बातको दिखाया जा सकता है कि जब परमाणु टूटते है तो उनमें से दो प्रकारकी प्रकृति कणिकाए निकलती हैं। जिनमें से एक का नाम है धन प्रपराणु और दूसरी का नाम है ऋण प्रपराणु। यह दोनों ही उस विश्व कर्त्ता प्रकृति शक्तिके दो रूप हैं। इनमें से धनमें धन विद्युत रहता है और ऋणमें ऋण विद्युत पाया जाता है। धन स्त्रीका आचरण करता है, ऋण पुरुष का।

देखा गया है कि—विश्वमें प्रकृतिके यह दोनों रूप व्यापक है और जब तक एकाकी रहते है सदा गति शील पाए जाते हैं। यदि कहीं पदार्थोंकी अवरोधक शक्तिसे धन प्रपराणुओंकी गतिमें बाधा पड़ जाय, यह एका एक किसी ऐसे पदार्थमें जा टकरावें जहा यह उस पदार्थको भेदन कर आगे न जा सकें, तो उस स्थितिमें इनके आस पास व्यापक ऋण प्रपराणु इनको घेर लेते हैं। उस समय दोनों का पारस्परिक स्नेहाकर्षण ऐसा अद्भुत चक्र बाधता है कि कुछ धन प्रपराणु उन ऋण प्रपराणुओंके बीचमें घिर जाते है और ऋण प्रपराणु उनको केन्द्रमे लेकर आप उसके आस पास एक विशेष सीमाके भीतर चक्कर काटने लगते हैं। इस तरह परमाणुका प्रादुर्भाव होता है।

उद्‌जन नामक तत्त्व जो विश्वमे सबसे तल, मात्रामे हल्का और छोटा पाया गया है पता लगा है,—कि इस तत्त्वके परमाणुमें एक धन प्रपराणु केन्द्रमें या मध्यमे होताहै और एक ही ऋण प्रपराणु उसको कुछ अन्तरसे घेरे हुए उसके आस पास सदा चक्कर काटता रहता है। इसी तरह पारदके परमाणुमे२००धन प्रपराणु केन्द्र या मध्यमें होते है तथा ८० ऋण प्रपराणु उनको घेरे हुए उसके आस पास चक्कर काटा करते हैं। इसीतरह बलिके परमाणुमें ३२ धन प्रपराणु केन्द्रमें होतेहैं तो १६ ऋण प्रपराणु उसको घेरे हुए सदा चक्कर काटते रहते है। यह भी ज्ञात

हुआ है कि पारद और बलिके एक परमाणुमे जितने धन प्रपराणु होंगे ठीक उतने ही अन्य परमाणुओंमें होंगे। जब तक धन प्रपराणुकी वह निश्चित सख्या बनी रहेगी पारदके परमाणुका अस्तित्त्व बना रहेगा। जब कभी किसी प्रबल शक्ति द्वारा धन प्रपराणु पारस्परिक आकर्षण प्रीतिको त्याग कर उस शक्ति प्रभाव से अपना बन्धन तोड़ बाहर निकल जांय या उनके समूहमे कुछ और आ घुसें तो इन दोनों स्थितियोंमें वह पारदका परमाणु अपना अस्तित्व गवा कर उस तत्त्वका परमाणु बन जायगा जिसमें उतनी सख्या धन प्रपराणुओंको धारण करने वाले तत्त्वकी होगी। यह भी जाना गया है कि जब किसी परमाणुके भीतरसे धन प्रपराणु निकलने लगते हैं तो उसके साथ ही उस अनुपातमें ऋण प्रपराणु भी उसके प्रीत्याकर्षणसे उन्मुक्त हो निकल भागते है या परमाणुको छोड़ कर उनके साथ ही सीमोल्लघन कर जाते हैं, इसीसे उस परमाणुकी तात्त्विक स्थिति तथा उसका रूप, तन, मात्रा आदि सब बदल जाते है।

यदि शक्ति द्वारा किसी परमाणुके भीतर इस प्रकारकी हलचल मचाई जा सके और उस परमाणुके भीतर धन प्रपराणुओंकी अधिकाधिक सख्याको स्थापन किया जा सके तो एक हल्का हीन तत्त्व भारी व

एक धातुका दूसरे धातुमें परिवर्त्तनका रहस्य

उच्च धातु तत्त्वमें परिणत हो जायगा। ताम्र जिसके परमाणु में ६३ धन प्रपराणु है यदि इनकी सख्याको बढा कर १९७ तक पहुचाया जा सके तो वह परमाणु ताम्रका न रहकर सुवर्ण के परमाणुमें बदल जायगा। इसीतरह नाग (सीसा) जिसके परमाणु में २०७ धन प्रपराणु होते हैं, यदि किसी प्रबल शक्तिके द्वारा इनकी इस सख्यामे से १० धन प्रपराणु निकाल सकें तो यह भी सुवर्णके परमाणुमें बदल जायगा।

गुण परिवर्तनका कारण—जब उक्त स्थितिका ज्ञान हुआ तो इस बातकी खोज की जाने लगी कि किसी तत्त्वके परमाणुके भीतर दोनों सजातीय

और विजातीय प्रपराणुओंकी स्थिति किस विधानमें है । तथा एक तत्त्वके परमाणुके भीतर जो स्थापन क्रम पाया जाता है क्या यही ढङ्ग दूसरे तत्त्वके परमाणुमें भी विद्यमान है या इसमें कुछ अन्तर रहता है । बड़े सूक्ष्म अनुसन्धानोंके पश्चात् इस बातका पता लगा है कि एक तत्त्वके जितने भी परमाणु होते हैं सबोंमें धन प्रपराणुओं के केन्द्रमें बैठनेका ढग तथा उनके आस पास चक्कर काटने या दोलन गतिमें हिलने वाले ऋण प्रपराणुओंका क्रम एक ही तरहका होता है । इसी कारण एक तत्त्वके परमाणु रूप, तन, मात्रा, गुण, स्वभावमें जरा भी अन्तर नहीं रखते । किन्तु दूसरे तत्त्वके परमाणुकी गठन और धन प्रपराणुओंके केन्द्रमें बैठनेका क्रम उस पूर्व तत्त्वके परमाणुओंसे बिलकुल भिन्न होताहै ।

सिद्धान्तत· यह बात पाई गई कि जहा किसी तत्त्वके परमाणुओंमें विभिन्नता होती है वहा उसके रूप, तन, मात्रा, गुण, स्वभाव सबमें ही विभिन्नता उत्पन्न होजाती है । किसी तत्त्वके परमाणुमें धन प्रपराणुओंकी सख्या निश्चित रहती है, यह नहीं बदलती । इसके पश्चात् ऋण प्रपराणुओंके सम्बन्धमे जब इनकी सख्या व गति पर अनुसन्धान हुआ तो ज्ञात हुआ कि शक्ति प्रभावसे इनकी सख्या में एक सीमातक घटी बढ़ी हो सकती है और यही नहीं जब इनकी सख्यामे अन्तर आता है तो इनका स्थान भी बदल जाता है और इनकी गति विधिमें भी कुछ हेर फेर हो जाता है । जब शक्ति प्रभावसे कुछ ऋण प्रपराणु एक सीमासे दूसरी सीमामें जा पहुचते है तभी इनकी गति बदलती है, उस समय उसके गुण, स्वभावमें वृद्धि होती है । कई बार इनकी सख्या बढने पर गुणोंका हास भी होता है, किंतु उसका वास्तविक गुण, धर्म नहीं बदलता । वह वहीका वही रहता है, जो अन्य उसी रचना रूपके अणुओंमे विद्यमान होता है ।

इस परिवर्तनका प्रभाव जितना परमाणु पर नहीं पड़ता उससे अधिक उन परमाणुओंसे बनने वाले अणुओं परपड़ता है और इस तरह पदार्थके उन अणुओं के गुणोंमे वृद्धि होती पाई जाती है ।

अणुओंकी रचनामें परमाणुओंका अनुपात नहीं बदलता, किंतु उस अणुके रचक परमाणुओंके भीतर ऋण प्रपराणुओंकी एक दो सख्या बदलने से उनकी भ्रमण गति वदल जाती है उसके कारण पदार्थके अणुका रूप परिवर्तन न होते हुए भी गुणोंमें कुछ वृद्धि या सूक्ष्म परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं।

रससिंदूरके सम द्विगुण, चतुर्गुण, षड्गुण बलि जीर्णमें जो गुणवृद्धि होती है उसका प्रधान कारण यही है। पारदके साथ बलि या गन्धकके पुनः पुन. जारण करनेसे उसकी अणु रचनामें तो कोई अन्तर नहीं पड़ता, किंतु उत्ताप (शक्ति) का बारम्बार एक ही यौगिकके उस गठन पर बराबर प्रभाव पड़ने या बने रहनेसे ऋण प्रपराणुओंकी कुछ सख्या निकल जाती है उससे उनका भ्रमण पथ वदल जाता है, इसीसे उस पारद यौगिकमें गुण वृद्धि देखी जाती है। यही बात सहस्र पुटी अभ्रक पर भी लागू हो सकती है यदि उसके भीतर ठीक शक्तिके उपयोग से ऋण प्रपराणुओंकी सख्या वदल रही हो।

यह भी जाना गया है कि परमाणुके भीतर ऋण प्रपराणुओंकी सख्या कुछ सीमा तक ही घट, वढ सकती है। अधिक न्यूनाधिकता तभी होती है जब केन्द्रमें कोई विचलन होता है और जब केन्द्रमें विचलन होने लगे तो उस समय उस तत्त्वके बदल जानेका भय होता है।

कज्जलि और रससिंदूर समान यौगिक है, किन्तु इनकी गठनमें अन्तर है। सघर्ष या चाप देकर बनाए गए यौगिक और उत्ताप देकर बनाए गए यौगिक की परस्पर गठन भिन्न रहती है इसीसे इसके रूप, गुणमें अन्तर रहता है। यह सूक्ष्म बातें रसायन-शास्त्रकी गहन अनुसन्धानों से सम्बन्ध रखती है, इनकी प्रायोगिक खोजमें जो तल्लीन रहे वही इनके रहस्यको जान सकता है।

गुणाक अनुपातका नियम—जब हम सात या दस पुटी वग भस्म को उत्तम बनाना चाहते है तो सब प्रथम शुद्ध वग या उसकी भस्मके बराबर हरताल मिला कर कुमारी रसमें घोटकर टिकिया बनाते है और उसे सुखाकर पीपल त्वक्के चूर्णमे रख सम्पुट कर जब अग्नि देते है तो वह प्रथम

वगकी टिकिया काले भूर वर्णकी प्राप्त होती है। यह वास्तवमे वलि या गन्धक के साथ वगका एक यौगिक वनता है जिसे वगसवलिकाइद या स्टेनस सल्फाइड कहते है। आगे फिर हम इसे हरताल न देकर केवल कुमारी रस या निम्बू रसमे घोट कर टिकिया वनाय सुखा कर पुन पुन. पीपलत्वक् चूर्णमे रख कर अग्नि देते रहते है तो इससे वह वगस वलिकाइदका यौगिक वगसऊष्माइदमें वदल जाता है और उसका वर्ण खड़िया मिट्टी सा कुछ पीताभास्वेत हो जाता है। और जव हम स्वर्ण वग वनाते है तो उस समय पारदके साथ वगको मिला कर और उसको शुद्ध करके पुन उसके वरावर वलि और नौसादर मिला कर खूव पीसकर आतशी शीशीमें भर कर उसको अग्नि देते है तो इस प्रक्रियामें वगके वहुत सूक्ष्म पत्रों या कणों के रूपमें सुनहरे वर्णकी भस्म वनती है। यह भस्म भी वग वलिके साथ एक दूसरा यौगिक वनाती है। जिसे वगक वलिकाइद या स्वर्ण वग कहते है। परीक्षाओंसे देखा गया है कि प्रथम वगके हरताल वाले यौगिकमें एक परमाणुमे वलि या गन्धकका एक परमाणु मिलता है परन्तु इस दूसरे यौगिकमें वगके एक परमाणुसे वलिके दो परमाणु मिलते है इसीसे दोनोंके रग, रूप, तन, मात्रा व गुणोंमे काफी अन्तर होता है। इससे ज्ञात हुआ कि एक तत्त्वका परमाणु दूसरे तत्त्वके परमाणुसे एक दो या इससे भी अधिक मात्रामें सम्मिलित हो सकता है। इस वातको पूरी तरह जव जाननेकी चेष्टा की गई तो ज्ञात हुआ कि एक ही तत्व दूसरे तत्वसे कई मात्राओं, सख्याओंमें मिल सकते है।

जिस तरह वगके साथ दो भिन्न मात्राओं सख्याओंमें वलि सम्मिलित होते पाया गया, इसी तरह ऊष्मजनसे भी यह दो भिन्न मात्राओंमें सम्मिलित होते पाया गया। यथा—

वंगस ऊष्माइद—जव हम उक्त कथित हरताल योगकी वगभस्म वनाते है और फिर उसे खाली निम्बू रस या कुमारी रसमें घोटकर टिकिया वनाय पीपल त्वक् चूर्णके साथ रखकर अग्नि देते चले जाते है तो ७-८

अग्नि देने पर वह भस्म कुछ अरुण या पीताभा स्वेत बनती है । वास्तवमें उसे सूखे पीपल त्वक् के साथ रखकर जब जब अग्नि देते है तो इस अग्नि प्रभाव में उस बगके यौगिकमें हेर फेर होता चला जाता है । वलि तो बगसे निकल कर वृक्ष छालके सैंधजम, पाशुजमके साथ मिलकर बलिकाइद बनाता है और उस वृक्ष छालका ऊष्मजन बगके साथ मिलकर बगस ऊष्माइद बनाता है । यह प्रक्रिया ७ से १० आंचमें जाकर धीरे धीरे पूरी होती है । इसमें बगके एक परमाणुसे ऊष्मजनका एक परमाणु मिलता है ।

बंगक ऊष्माइद—जब हम बगके बारीक बारीक पत्र बनाकर उन पत्रों को बबूलकी कोंपल या भागकी पत्तीके चूर्णमें रखकर बड़ी मन्द अग्नि द्वारा भस्म बनाते है तो यह धानकी खीलवत् स्वेत वर्णकी भस्म बनती है, इस भस्म में बगके एक परमाणुके साथ ऊष्मजनके दो परमाणु मिलते है ।

इस तरह एक तत्त्वके परमाणु किसी दूसरे तत्त्वके परमाणुके साथ सम, द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण, पञ्चगुण, षट्गुण सख्यामें मिलते पाए जाते है । जब भी किसी तत्त्वके परमाणुका दूसरे परमाणुसे मिलन होगा उनका अनुपात १,२,३, ४की निष्पत्तिमें ही होगा । कभी सवाया, ड्येवढाकी निष्पत्ति नहीं देखी जाती । अर्थात् परमाणु टूटकर आधा ड्येवढा होकर नहीं मिलता । जब मिलेगा पूरी सख्यामें और अपनी पूरी मात्रामें १, २ के गुणन फलमें ही मिलेगा । इसी बातको देखकर इस यौगिक रचना सिद्धान्तको गुणक अनुपातका नाम दिया गया ।

हमारे यहां जितनी भी भस्में या कूपीपक्व रस बनते है उनमेंसे कूपीपक्व ताम्र, स्वर्ण बग और रससिंदूर आदि कुछ यौगिक ही बिल्कुल शुद्ध यौगिक होते हैं । अन्य भस्में या कूपीपक्व रसोंमें कई अन्य यौगिकोंका मिश्रण हो जाता है । कइयोंमें वानस्पतिक क्षार और लवणोंकी मात्रा काफी पाई जाती है । वानस्पतिक रसों, चूर्णोंके साथ रगड़ कर जिन धातुओंकी भस्में अधिक बार अग्नि देकर बनाई जाती है उनमें वानस्पतिक क्षार लवणोंकी क्रमसे मात्रा बढ़ती जाती है । कोई धातु भस्म किन किन तत्त्वोंका यौगिक बनती है और उसमें कौन कौन

से क्षार या लवण मिले रहते हैं इनको देखने जाचनेकी विधि क्या है ? तथा इनकी मात्राए व संख्याए कैसे जानी जाती है ? इन बातोंकी चर्चा इस ग्रन्थमें नहीं हो सकती। इस विषयका विस्तृत वर्णन आपको हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थमें मिलेगा।

व्युत्क्रम अनुपातका नियम—कोई क तत्त्वका परमाणु ख तत्त्वके परमाणुसे जिस संख्यामें यौगिक बनाता है यदि वह क तत्त्वका परमाणु किसी अन्य च तत्त्वके परमाणुसे उसी संख्यामें मिलकर उसी संख्यामें यौगिक निर्माण करे तो ऐसे निश्चित संख्यामें परस्पर अदल बदल होने वाले तत्त्वोंको व्युत्क्रम अनुपातमें मिलना कहते है।

हमारी भस्मों व कूपीपक्व रसोंमें इसके कोई उदाहरण नहीं दीखते। किंतु आधुनिक रासायनिकोंने जो नयेसे नये यौगिक निर्माण किए है वहासे लेकर इसके कई उदाहरण दिये जा सकते है। किंतु हम पाठकोंको इस विषयकी लम्बी चौड़ी व्याख्याओंके झमेलेमें डालना नहीं चाहते, केवल इतना ही बतला रहे है कि मौलिकोंसे यौगिक निर्माणके लिये आधुनिक रासायनिकोंको प्रयोग करते करते कई ऐसे नियमोंका ज्ञान हुआ और इस बातका बोध हुआ कि सृष्टिमें पदार्थोंकी रचना एक नियमके भीतर होती है। पदार्थ-रचनामें अव्यवस्था या अनियमितता कहीं नहीं पाई जाती।

रासायनिक क्रियाओंमें ताप चाप और उत्प्रेरकोंका प्रभाव

यह देखा जाता है कि कूपीपक्व रस निर्माणके समय जो रासायनिक क्रिया होती है उसको आरम्भ करने और उसे क्रिया फल तक पहुचनेमें तापक्रमका किसी मात्रामें बना रहना अत्यावश्यक होता। रसवादमें बिना तापके कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होते।

किसी पदार्थके अणु जो एक दूसरेसे परस्पर सलग्न हो द्रव्य रूप धारण किये रहते है, ताप प्रभावसे उनके अणुओंमें विचलन देखा जाता है यह जैसे जैसे अधिक ताप प्रभाव में आते है ठोस से द्रव अवस्थामें

परिणत हो जाते हैं। यदि उस पदार्थ के अणुओं पर जब तक उत्तापकी मात्रा वही पड़ती रहेगी पदार्थ द्रवावस्थामें बना रहेगा। यदि उत्ताप प्रभाव बढ़ा दिया जाय तो उसके अणु अधिक विचलित हो उठेंगे और उस द्रवरूपके पृष्ठतनावको तोड़ कर भागने लगेंगे। जब कोई पदार्थ इस अवस्थामें आ जाय तो इसे वायवीय अवस्था कहते हैं। जब तक उस पदार्थ पर पड़ने वाला उत्ताप घटेगा नहीं तब तक वह पदार्थ उसी अवस्थामें बना रहेगा। सूर्यमें जितने भी धातव पदार्थ है, वहा उत्ताप बहुत अधिक है इसी लिए वह सबके सब वायवीय अवस्थामें है। पृथ्वी यद्यपि शीतल हो चुकी है तथापि इसके गर्भमें अभी भी इतना अधिक उत्ताप है कि समस्त धातव पदार्थ द्रव रूपमें है। जब यह देखा गया कि सोना, चादी, पारा आदि धातुए उत्ताप प्रभावसे पिघलती है और फिर वह उत्ताप प्रभावसे द्रवमें तथा वाष्प या वायवीय रूपमें चली जाती है तो इस बातको जानने की चेष्टा की गई कि कौन कौन सी धातु कितने उत्ताप पर पिघलती है और कितने उत्ताप पर जाकर वाष्प रूपमें परिणत होती है और वह कितने उत्ताप व दबाव पर भिन्न भिन्न यौगिक निर्माण करती है। इन बातोंकी प्रायोगिक जाच बड़ी सूक्ष्मतासे कीगई जिसको हम एक सारणी द्वारा व्यक्त करते है।

नाम धातु	द्रवणांक शतांशमें	क्वथनांक शतांशमें	नाम धातु	द्रवणांक शतांशमें	क्वथनांक शतांशमें
अञ्जनम्	६३०	१४४०	कैलसियम्	शू ७८०	
अलुमीनियम्	शू ६५७	१८००	जर्मेनियम्	५८०	
इरीदियम्	२२९०	२५५०	जिरकोनियम्	१३००	२०००
औस्मियम्	२२००	३७५०	तगस्तनम्	३०८०	३७००
काडमियम्	३२२	७८०	टिटेनियम्	१५००	
क्रोमियम्	१४८९	२२००	तन्तुलम्	शू. २९१०	३६००
कौवाल्टम्	१४६४	२७५०	ताम्रम्	१०८४	२३१०

नाम धातु	द्रवणाक शतांशमें	क्थनाक शतांशमें
थैलियम्	१६९	
निकलम्	१४५२	२३३०
पलादियम्	१७१०	२४५०
पारदम्	३८२	६७५
पाशुजम्	शू.६२·०४०	७५८
प्लाटिनम्	१७१०	२४५०
प्रीजियोदीमियम	९४०	
विस्मिथम्	२६९	२४२०
वेरियम्	८५०	
वेरीलियम	८५०	
मैग्नजम्	१२०७	१९००
मैग्नीशियम्	शू ६३३	११२०
मोलिवडेनियम्	२२०५	३२००
यशदम	४१९·०	९१८·०
रजतम्	९६२	१९५५
रुबीडियम्	शू ३९·००	६९६
रुथेनियम्	वा १९००	२५२०
रोडियम्	१९०७	२५००
लीथियम	शू.१८०·१	१४००

नाम धातु	द्रवणांक शतांशमें	क्थनांक शतांशमें
लैन्थेनम्	८१०	
लोहम्	१५०५	२४५०
वगम्	२३२	२२७०
वनाडियम्	१६२०	२५००
समेरियम्	१३५०	
सीसम्	३२७	१५२५
सीजियम्	शू.४५०	६७०
सीरियम्	शू.६२३	९२१
सैंधजम्	शू.९५.६	८७७
स्ट्रांशियम्	९००	
स्वर्णम्	१०६३	१९५५
सोमलिका	शू.२००	
वलिका	११४·०५	४४४·५
टंकणिका	२०००·०२५	
नैलिका	११४·२	१८४·३५०
स्फुरिका	शू.४४ १	२८७

कज्जलिका और शैलिका यह दोनों तत्त्व द्रव नहीं होते।

जब धातुओं और अधातुओंके द्रवाक क्थनाकको जाना गया तो इस बात को जाननेकी चेष्टा की गई कि कौन कौनसे तत्त्व कितने उत्ताप पर किस तत्त्व से मिलकर यौगिक निर्माण करते हैं।

देखा गया कि कुछ धातु व अधातु तत्त्व हवामें रखनेसे जलने लगते

और वह जलकर ऊष्माइदमें परिणत हो जाते हैं। जैसे सैंधजम्, पाशुजम्, कैलसियम्, फास्फुरिका आदि। ऐसे तत्त्व बिना उत्तापके दूसरे तत्त्वोंके साथ सरलता से सयुक्त होजाते है। किंतु कुछ धातु, अधातु तत्त्व ऐसे भी हैं जिनको मिलाकर बन्द बर्तनमें तपानेसे ही वह यौगिकमें परिवर्तित होते है। जैसे पारद वलिसे रससिंदूर और ताम्र बलिसे ताम्र भस्म। बग, चांदी आदि कुछ धातुए ऐसी भी है जिनको खुली हवामें साधारण उत्ताप देने पर उनकी ऊष्माइद नामक भस्में प्राप्त होती है। हमने तो इन धातुओं, अधातुओंकी भस्में बनाने की क्रियायें किसी और प्रयोजनसे की थीं, हमारा प्रायौगिक पथ किसी और उद्देश्यको लेकर था। इसीलिए हमने उक्त बातोंको न तो समझनेकी चेष्टा की, न ऐसे कोई शङ्काशील कारण ही सामने आए जो इन बातोंको जाननेके लिए उत्प्रेरित करते। तभी तो हमारा ज्ञान सात धातुओं और वलि, टङ्कण आदि कुछ अधातुओं तक सीमित रहा। उन नए रासायनिकोंके विचारका दृष्टिकोण बदल चुका था, उनके प्रत्येक प्रयोग जिज्ञासाको लिए हुए होते थे। इसीसे उन्होंने अनेकानेक धातु, अधातु तत्त्व खोज मारे और उन्होंने इनके मेलसे अनेकानेक यौगिक बना डाले।

उन्होंने देखा कि प्राय एक धातु दूसरी धातुके साथ मिलकर कोई यौगिक नहीं बनाती, हा इनके मिश्रण अवश्य बनते है। प्राय धातुए अधातु तत्त्वों और वायुओं के साथ मिलकर अनेक यौगिक बनाती है।

धातुए कज्जलिका, बलिका, नैलिका, फास्फुरिका, लवणजन, नोनजन, पवन और ऊष्मजनके साथ मिलकर यौगिक बनाती है। इस यौगिक निर्माण में कहीं तो तत्त्वोंका आन्तरिक ताप सहायक होता है कहीं बाहरसे न्यूनाधिक ताप पहुचानेकी आवश्यकता होती है। चादी, सोना, प्लाटिनम आदि कुछ धातुओंको छोड़कर अन्य धातुए हवामें पड़ी पड़ी ऊष्मजनके साथ सयुक्त होती रहती है, कई मन्द गतिसे, कई तेजीसे होती है। वग, नाग, चादी आदि धातुए कुछ उत्ताप पर अधिक वेगसे ऊष्मजनसे सयुक्त होने लगती है। कई बहुत अधिक

उत्ताप पर जाकर यौगिक बनाती है। यौगिक रचनाके लिए मौलिक पदार्थों की स्थिति और उनके आन्तरिक तथा वाह्य उत्ताप प्रभावका पूर्ण ज्ञान हो तो उनके यौगिक निर्माणमें यह जाना जा सकता है कि इनको लगभग कितने तापकी आवश्यकता होगी, इस वातका पता पहिले हो और पदार्थ रचनाके समय तापकी मात्राका ठीक ठीक ज्ञान हो तो पदार्थकी रचना करते समय उसके विगड़नेका भय नहीं होता।

वैद्य सैकड़ों वर्षों से कूपीपक्व रस निर्माण करते आ रहे है, किंतु उन्हें उत्तापकी मात्राका सही ज्ञान नहीं कि कौन कौनसे रस कितनी मात्राके उत्ताप पर वनते है। इसी कारण वहुत वार कूपीपक्व रस उड़कर लगते ही नहीं, कई वार तीव्र अग्नि लग जानेसे शीशीका मुह वद हो कर शीशिया टूट जाती है, फिर वह विचारे हाथ मलते रहजाते है। इसीलिये कूपीपक्व यौगिक निर्माणमें ताप-रासायनका परिज्ञान अवश्य होना चाहिए। इस समय ताप-रासायनमें वहुत अधिक उन्नति हो चुकी है और हजारों लाखों प्रयोगोंके अनुभव पर पता लगा है कि कुछ मौलिक तत्त्वोंके मिलने पर जब नए यौगिकोंका निर्माण होता है तव उस समय रासायनिक परिवर्तन के समय उक्त तत्त्वोंके अन्तस्थ तापमें भी परिवर्तन होता है और उनके द्रवाक क्वथनाक भी वदल जाते है।

स्वयमग्निरस निर्माण करते समय लोहके साथ गन्धक मिलाकर कुमारी रस डालकर जव रगड़ते है तो ऊष्मजनकी विद्यमानतामें वलिके परमाणु लोहके परमाणुसे मिलते समय इतना उत्ताप उत्पन्न करते है कि खरल उत्तप्त हो उठता है। इस प्रकार पदार्थ रचनाके समय उनके भीतरसे जो रासायनिक परिवर्तनके समय ताप निकलता है इसे प्रक्षेपित ताप कहते है। जहा रासायनिक क्रिया तीव्र होती है वहा ताप भी काफी मात्रामें निकलता है, जहा मन्द होती है वहा ताप भी मन्द गतिसे प्रक्षिप्त होता है।

पानीमें शोरा और नमक मिलाकर डाला जाय तो जल और भी शीतल

हो जाता है, यहां भी रासायनिक परिवर्तन होता है। यहा तापका क्षेपण न होकर शोषण होता है। शोरा और नमकके जलमें मिलने से जो रासायनिक परिवर्तन होता है वह जलके तापको अभिशोषित करलेता है इसीसे जलका ताप घट जाता है।

पदार्थोंकी रचनामें जो तापका क्षेपण या शोषण होता है उसको सरलता से आप माप सकते है और देखा गया है कि पदार्थोंको निश्चित मात्रामें लेकर उन्हें किसी विशिष्ट अवस्थामें लाकर पदार्थ रचनामें प्रयुक्त कराया जाय तो सदा उनसे एक ही मात्रामें तापका शोषण या क्षेपण होता है; इसी तरह पदार्थ रचनामें शक्तिका क्षेपण या शोषण होता रहता है विनाश नहीं। इसीलिए इस नियमको शक्तिकी अविनाशिताका नियम कहते ।

कौन कौनसे कूपीपक्व रस कितने उत्ताप पर जाकर यौगिक बनाते है। इस बातको बहुत अच्छी तरह समझना, चाहिए तभी निश्चित और हानि रहित प्रतिवार एक जैसे कूपीपक्व रस मिल सकते है, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे।

चाप—पदार्थोंकी रासायनिक रचनामें चाप या दबावका विशेष महत्व है अनेक मौलिक ऐसे है जिन्हें केवल उत्तापकी सहायतासे यौगिकमें परिणत करनेकी चेष्टा करें तो वह यौगिक नहीं बनाते, किन्तु उन्हें विशेष दबावमें रखकर फिर उन पर उत्तापका प्रभाव डाला जाय तो वह यौगिकमें परिणत हो जाते है। यथा—पारद, सोमल भस्म, हरताल भस्म आदि।

हमारे रसशास्त्रोंमें मृगमूषा, इष्टिकागर्त, दृढमूषा बनानेके जो विधान दिए गए है और बतलाया है कि इन दृढमूषाओंमें पारद, सोमल आदि को वनस्पतियोंके साथ रखकर दृढ़तापूर्वक बन्द करके उन्हें एक निश्चित मात्राकी अग्नि (कुक्कुटपुट-गजपुटादि की) दी जाय तो इनकी भस्में बनजाती है। थोड़े उत्ताप पर वाष्पीभूत होने वाली वस्तुओंके इस प्रकार भस्म बनानेका रहस्य चाप प्रभाव है। इस समय अनेक धातुओंकी वलिकाइद नामक भस्में केवल अधिक दबाव पर साधारण उत्ताप द्वारा बनाई जा रही है। इस बातको जब कोई देखना चाहे—रसायन-शाला में जाकर देख सकता है।

चाप द्वारा साधारण अग्नि पर किस प्रकार भस्में बनती है इसका विस्तृत वर्णन आपको हमारे लिखे "भस्म विज्ञान" नामकग्रन्थमें प्राप्त होगा। इसका इस ग्रन्थसे अधिक सम्बन्ध न होनेके कारण इस विषयको यहीं छोड़ा जारहा है।

मूल पदार्थोंसे यौगिक पदार्थ बनानेके लिये या एक यौगिकको दूसरे यौगिकमें परिणत करनेके लिये ताप और चापकी ही अत्यन्त आवश्यकता होती है। अनेक यौगिक ऐसे देखे गए है कि जिन पर भारी चाप न पड़े तो वह किसी विशेष यौगिकमें परिणत ही नहीं होते।

शुद्ध कोयला या कज्जल एक साधारण पदार्थ है और मणिराज हीरा भी शुद्ध कज्जल ही है। यह हजरत हीरा बनतेही तब है जब कज्जलको तीव्र उत्तापमें महान् चापके अन्दर खूब जोरसे चापा जाता है। पृथ्वी गर्भमें जहा वज्र (हीरा) की उत्पत्ति हुई है, पृथ्वी जब उत्तप्तसे शीतल होनेकी स्थितिमे आई उस समय जहा कज्जल विद्यमान था—पृथ्वीकी सकोचन शील स्थितिके कारण वह इतना दबा कि कज्जलके परमाणु घुटकर वज्रके अणुओंमे परिणत होगए। जिसकी आभा प्रभाको देखकर हमारे रसायनी यह न समझपाए कि यह उपलमणि है या कोयला। यह भ्रम इस शताब्दी पूर्व तक ही नहीं था, प्रत्युत आज भी वैद्य समुदायमें काफी पाया जाता है और इसे कई वैद्य अबभी कोयला मानने के लिये तय्यार नहीं, यह हममें कितनी भारी प्रायोगिक त्रुटि है।

जिस हवामें हम श्वास लेते है जिसको हमारे यहा "स्पर्शवान् वायु" कहा है अर्थात् जिसे हम स्पर्शसे जान सकते है किन्तु देख नहीं सकते, उसे आधुनिक रासायनिक वर्तनमें वन्द करके तापको घटाते हुए शून्यसे बहुत नीचे लेजाकर उसपर चाप प्रभाव बढ़ाते चले जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जैसे जैसे हवा अधिक सीतली भवनमें जाकर दबती है उसके अणु अति निकट आते चले जाते हैं और एक स्थिति ऐसी आती है जहा पर पहुच कर वह अणु चाप प्रभावसे इतने सघन होजाते हैं कि वह द्रव रूपमें आजाते है और यदि इसी तरह तापकी न्यूनता और चापकी अधिकताका प्रभाव पड़ता रहे तो वह हवा

ठोस रूप तक धारण कर लेती है। इसतरह वह अदृश्यसे दृश्य रूपमें आजाती है। रसायन शास्त्रमें इस तरह चापका महत्त्व वहुत बढ चुका है।

उत्प्रेरक—जब विदेश वासी रसायनी नित्य नए से नए पदार्थोंकी रचना करनेमें लगे हुए थे, उन्हें कई पदार्थों में रासायनिक रचना करते समय यह दिखाई दिया कि कुछ धातव तत्त्व ऐसे हैं जिन्हें यौगिक निर्माणके लिए प्रयुक्त किया जाय तो वह आसानीसे यौगिकमें परिणत नहीं होते। यदि किसी में कुछ रासायनिक क्रिया हो भी रही हो तो वह बहुत मन्द गतिसे चलती है, इस त्रुटिके कारण उसे जल्दी यौगिक रूपमें परिणत नही किया जा सकता। किंतु प्रयोग कालमें ज्ञात हुआ कि कुछ तत्त्व या पदार्थ ऐसे भी हैं जो परस्पर मिलने वाले तत्त्वोंके साथ कुछ मिला दिए जांय या रख दिये जाय तो, उनकी विद्यमानतामें यौगिक बनाने वाले पदार्थ—जो यौगिकमें परिणत नहीं होना चाहते—या मन्दाग्निसे यौगिकमें परिणत होरहे थे—वह बड़ी तीव्रतासे यौगिक में परिणत होने लग जाते हैं। यह भी दिखाई दिया कि जो तीसरा पदार्थ सम्मेलन कराने के लिए उसमें मिलाया गया था उसमें कोई विकार नहीं आता, वह जैसाका तैसा ही रहता है।

नकली नीलका आविष्कारक एक वार नैप्थलीन (जिसे फिनाइलकी गोली कहते हैं) को वलिकाम्ल के साथ गरम करके उसे थैलिकाम्लमें परिणत करना चाहता था। जब थोड़ी मात्रामें नैप्थलीनको वलिकाम्लके साथ मिला कर गरम करते थे तो उसमें थोड़ा सा थैलिकाम्ल वनकर आगे रासायनिक क्रिया वन्द हो जाती थी। वह बिचारा प्रयोग कर्त्ता वड़ा परेशान था और उसकी समझमें नहीं आता था कि यह रासायनिक क्रिया थोड़ी सी चलकर क्यों वन्द होजाती है और आगे क्यों नहीं चलती? वह देख चुका था कि नैप्थाको थैलिकाम्लमें यदि कहीं वड़ी मात्रामें परिणत किया जा सके, तो उसके लिये मनोंकी मात्रामें नकली नील तय्यार कर देना वाये हाथका काम था, क्योंकि बाकी रासायनिक प्रक्रिया को वह आसानीसे पूरी कर चुका था। एक वार वह

बैठा हुआ हाथमे पारे वाला थर्मामीटर लिए उस घोलकी ताप मात्रा देख रहा था, कि कितने उत्ताप पर वलिकाम्लको ऊष्ण रखनेसे नैप्थासे थैलिक ग्रम्ल वननेकी प्रक्रिया अच्छी चलती है। ऐसे समय हाथको पीछे हटाते समय पीछे रखे हुए वर्तनकी ठोकर उसकी कोहनी पर लगी, और थर्मामीटर उसके हाथसे छूटकर उस रासायनिक प्रक्रिया वाले घोलमें जा गिरा और वहा गिरकर टूट गया। थर्मामीटरका पारा वलिकाम्ल व नैप्थाके घोलमें जा मिला तो क्या दिखाई दिया कि उसमें एका एक बड़े वेगसे रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ हो गई है और थोड़ी देरमें देखते देखते सारा नैप्था थैलिकाम्लमें परिणत हो गया, वह मारे खुशीके उछल पड़ा। जब उस घोलमें से पारा निकाला गया तो वह जैसा का तैसा ही उसे प्राप्त हुआ, उसमें किसी प्रकारका कोई विकार न आया।

हमारे यहा भी कई वार वैद्य स्वर्ण भस्म वनानेकी इच्छासे अत्यन्त शुद्ध स्वर्ण लेकर उसकी जब कज्जलि द्वारा भस्म बनाना चाहते है तो दस दस पन्द्रह पन्द्रह आचें देने पर भी उनमे स्वर्णकी भस्म नहीं वनती और उनको इस वातका पता नहीं चलता कि यह क्या वात है। वास्तवमें बात यह है कि स्वर्ण ऐसी धातु है जो अपने विशुद्ध रूपमें रहकर यह जल्दी यौगिक में परिणत नहीं होती। किंतु यदि इसको गलाकर इसमें दशाश या इससे भी कम सीसा (नाग) मिला दिया जाय और इसको फिर शोधन विधिसे तप्त करके शोधन द्रव्योंमें बुझा लिया जाय फिर इसे कूटकर चूर्ण वनाकर कज्जली मिलाकर घोट, वहुत थोड़ी अग्नि विना सम्पुटके दें तो दो चार पुटमें ही इसकी भस्म वन जाती है। यहा पर इसमें जो सीसा डाला जाता है वह साथमें ऊष्माइद वनाता और उसकी उपस्थितिमें स्वर्ण कज्जलीके वलिसे मिल कर वलिकाइद नामक यौगिकमें परिणत हो जाता है।

ज्ञात हुआ कि रासायनिक प्रक्रियामें इस प्रकार सहायता देने वाले जो पदार्थ उनमें मिलाए जाते हैं वह वास्तवमें उनपदार्थोंकी रासायनिक प्रक्रियामें स्वय

कोई भाग नहीं लेते। किंतु रासायनिक क्रियाओंमें भागलेने वालेको उनकी उपस्थितिसे उत्तेजना या उत्प्रेरणा मिलती है। तभी वह आसानीसे यौगिकमें परिणत हो जाते हैं।

जहा दो मौलिक पदार्थ परस्पर मिलें और उनमें रासायनिक क्रिया न चलती हो तो वहां कुछ साधारण मात्रामें तीसरा पदार्थ ऐसा डाल दिया जाता है जो इनके यौगिक बनानेमें सहायता दे सके—पर, वह तीसरा पदार्थ पुनः अपने असली रूपमें जैसेका तैसाही बना रहे तो ऐसे तीसरे पदार्थको रसायन-शास्त्रमें उत्प्रेरक या उत्तेजक पदार्थ कहते है।

रसकपूर निर्माणकी दो प्रक्रियायें प्रचलित है, एक पुरानी जिसमें वलिकाम्ल का उपयोग नहीं होता, दूसरी नई बलिकाम्ल वाली। पहिली प्रक्रियामें ईटका चूर्ण, गेरु, खटिका, रेहमिट्टी, फिटकरी, नमकसैंधव, बल्मीकमृत्तिका और भाण्डरञ्जन मृत्तिका—अर्थात् वह मिट्टी जिसमें टङ्कण, फिटकरी, सफेदा या सिंदूर और रेत मिलाकर बर्तन रगने या काच सदृश्य तह चढानेका मसाला कुम्भकार काममें लाते है—तथा पारा इन सबको मिला कर घोटकर इन्हें शीशीमें भरकर अग्नि देते हैं तो पारा लवणके लवणजन वायुके साथ सम्पृक्त होकर रसकपूर नामक यौगिकमे परिणत हो जाता है। इसमें फिटकरीका धातु अलुमीनियम जो ऊष्माइदमें रहता है उत्प्रेरकका काम करता है। इसी तरह आधुनिक समयमें वलिकाम्लके साथ पारदको मिलाकर गरम करते है तो इससे पारदस-वलिकेत बन जाता है फिर इसको निकालकर उसमें बराबर नमक तथा थोडासा मैंगनीजद्वि-ऊष्माइद मिलाकर फिर बन्द बर्तनमें रखकर तपाते है तो पारद वलिको छोड़कर लवणके लवणजन वायुसे सपृक्त होने लगता है, यहा मैंगनीज द्विऊष्माइद उत्प्रेरकका काम करता है और वह मैंगनीज नीचे तहमें जैसे का तैसा ही पड़ा रहता है।

उत्तेजक या उत्प्रेरक पदार्थोंका आज इस समय इतना महत्त्व बढ गया है कि अनेक रसायनी इनकी खोज करते रहते है। कई जटिल तत्त्व या यौगिक जो किसी इच्छित यौगिकमें परिणत नहीं होते—इस बातकी खोज कीजाय कि कोई

ऐसा उत्प्रेरक या उत्तेजक मिले जो—इसके साथ संलग्न कराने पर उसे शीघ्र यौगिकमें परिणत करदे। इससे उन्हें जटिल यौगिक निर्माणमें बड़ी सफलता मिली है। हमारे रसवादमें जहां धातुओंसे भस्मोंका निर्माण होता है अनेक वानस्पति क्षार, लवणोंके अंश उत्प्रेरकका काम करते हैं, जिसको जानने की ओर हमारा ध्यानही नहीं गया है। कूपी-पक्वरस निर्माणमें रसकपूर, दारचिकना, स्वर्ण वंग आदिमें उत्प्रेरक पदार्थ मिलानेकी आवश्यकता होती है। स्वर्ण वंग बनाने मे पारद उत्प्रेरक का काम करता है। उत्प्रेरक या उत्तेजक पदार्थकी खोज की जाय तो हमें ऐसे भी उत्प्रेरक पदार्थ मिल सकते हैं जो सीसा या पारदकी परमाणु रचनाको बदल सकते हैं। यदि इसमे सफलता मिले तो रसायन विद्या का यहांसे एक नया अध्याय आरम्भ हो सकता है।

रसवाद और रसायन शास्त्र

सम्भव है उक्त उपोद्घातको पढ़ने पर भी कुछ वैद्योंके विचार निम्न लिखित हों। यथा—

हमारी रस-वादकी शैली और आधुनिक रसायन शास्त्रकी शैली यह दोनों भिन्न हैं। इनके प्रयोगके मार्ग और हमारे प्रयोगके मार्ग बिलकुल पृथक् हैं, इसीलिए हमारे रस-वादका आधुनिक रसायन शास्त्र द्वारा सही अन्वेषण नहीं किया जा सकता और नाहीं आयुर्वेदिक रस, भस्मोंकी वस्तु स्थितिका आधुनिक रसायन शास्त्रकी पद्धतिसे सही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। आधुनिक रसायन शास्त्र—वस्तुकी बाह्य बनावटको चाहे बतला दे, किंतु उसकी आन्तरिक रचना, रूप, गुण व धर्मको यह नहीं जान सकता और भस्में बनने पर जो उनमें विशेषताएँ उत्पन्न होजाती है उनको जानने समझनेका इसके पास कोई साधन नहीं।"

इस प्रकारके विचार व धारणा जिन व्यक्तियोंके अन्दर स्थान पा रही है, वास्तवमें वह विद्यमान समयके रसायन शास्त्रकी अनेक शाखाओंसे अनभिज्ञ हैं,

उन्हें पता नहीं है कि इस समय इस विभागने कितनी उन्नति की है और यह क्या कुछ कर सकता है, इसी कारण उक्त धारणा है । वास्तवमें रसायन शास्त्रका बिस्तार इतना अधिक हो गया है कि यह साधारण रसायन, ऐन्द्रिक रसायन, अनैन्द्रिक रसायन, भौतिक रसायन, ताप रसायन, विद्युत रसायन, वनस्पति रसायन, जीव रसायन आदि अनेक विभागोंमें बटकर एक एककी सीमा इतनी विस्तृत हो गई कि यह सब एक दूसरेसे भिन्न लगते है । पर वास्तवमें यह सब एक शास्त्रसे ही निकले है और इन सबके कार्य व्यापार भी एक दूसरेको बड़ी सहायता पहुचाते है । जिस जटिल समस्याको एक शास्त्र हल नहीं कर सकता, कई बार यह अन्य शास्त्र मिलकर हल कर डालते है। इसके सैकड़ों प्रमाण दिए जासकते है । हमारे कई रस, भस्म वास्तवमें ऐन्द्रिक, अनैन्द्रिक दोनों पदार्थों के मिश्रण होते है फिर इनके मिश्रणमें जो भावना व पुट लगते रहते है उनकी स्थिति भावना व पुट देनेके बाद प्रतिवार कुछ न कुछ बदलती रहती है । इसकी आरम्भिक और बदलने वाली स्थितिका साथ साथ हमने आजतक न तो कोई अन्वेषण किया न किसीसे कराया ही है । अबतक हम यही करते रहे है कि किसी गवर्नमेण्टकी प्रयोगशालामे साधारण रसायनी के पास विश्लेषणार्थ कुछ भस्में भेज देते है और वह इनके साधारण मूल घटक निकाल कर बता देता है कि यह अमुक अमुकका यौगिक है । इससे न तो उस भस्मकी वास्तविक रचना का कोई ज्ञान होता है न उनमें विद्यमान वानस्पतिक क्षार, लवणोंकी विद्यमानता तथा उनके शरीर पर होने वाले प्रभाव का ही पता चलता है । इसीसे प्राप्त परिणाम सन्तोषप्रद नहीं होते । यदि किसी आयुर्वेदिक रस, भस्मोंको जबसे वह बनने लगते है और जब जाकर वह तय्यार होते हैं उस समय तक रसायन शास्त्रके भिन्न भिन्न विभागों द्वारा साथ साथ उनकी जांच कराई जाय और अन्त तकका सारे विभागोंका परिणाम एकत्र करके फिर उनको मिलाया जाय और फिर उस पर विचार किया जाय तो उसका सही परिणाम प्राप्त होसकता है । मेरे विचारमें इस तरह आयुर्वेदीय

रस-भस्मोंके सूक्ष्मसे सूक्ष्म गुण, स्वभाव, प्रभाव व रूप, रचनाको अच्छी तरह जाना व समझा जा सकता है। भारतमे अभी तक कोई भी ऐसी प्रयोग शाला नहीं जहा रसायन शास्त्रके प्रत्येक विभाग द्वारा आयुर्वेदीय ओषधियोंकी जाच की जाती हो यह एक बड़ी भारी कमी है। इस कमीको जब तक दूर नहीं किया जाता आंशिक अनुसन्धानसे परिणाम निकालना ससारको धोखा देना है।

मेरे विचारमे वैद्यो द्वारा या सरकार द्वारा केवल आयुर्वैदिक ओषधियोंकी रासायनिक जाच पड़तालके लिए एक बहुत बड़ी प्रयोग शाला स्थापित होनी चाहिए, जिसमें कम से कम साधारण रसायन, अनैन्द्रिक रसायन, ऐन्द्रिक रसायन, भौतिक रसायन, ताप रसायन, जीव रसायन, वनस्पति रसायन आदिके मुख्य मुख्य विभाग तो अवश्य ही होने चाहिए, तब उनके द्वारा आयुर्वेदिक ओषधियों पर सब मिलकर काम करें और उनकी जाचके जो परिणाम एकत्र हों उसके आधार पर जो नतीजा निर्धारित किया जाय वह सही हो सकता है और उससे इसकी सही सही स्थितिका पता लग सकता है, अन्य और कोई मार्ग नहीं दीखता।

हमने अकेले अपनी शक्ति द्वारा जो किया है उसे वैद्य समाजके कल्याणार्थ उनकी सेवामें उपस्थित कर रहे हैं। सम्भव है हमारी इस कृतिमें कुछ भूलें रह गई हों। कहीं हमारे प्रयोगोंमे त्रुटिया भी हों। जिसको बताने या दिखाने पर दूर किया जा सकता है, तथापि मेरे द्वारा जो कुछ इस विषय पर रखा गया है वह वैद्योंके लिये यदि पथ प्रदर्शक बना तो मैं अपने प्रयत्नको सफल समझूंगा।

आयुर्वेद का हितेच्छु—
हरिशरणानन्द

कूपीपक्क रस-निर्माण विज्ञान

प्रथम अध्याय
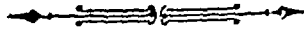
रसायन-शाला

रसायनस्य शालायाः प्रकारं वच्मि पूर्वतः ।
विनाधारं क्रिया काचित सिद्धिन्नायाति कर्हिचित ॥

रसायनसार ।

अर्थ—पारदादिसे रासायनिक औषध बनानेका स्थान और उनके प्रकार सबसे प्रथम कहता हूं, क्योंकि विना स्थान या आधारके कोई क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती ।

आयुर्वेदीय चूर्ण, गुटिका, तैल, घृतादि निर्माणके लिए विशेष स्थान न भी ढूंढा जाय तो वैद्य इन औषधियोंको घरमें या अपने चिकित्सालयके समीप ही किसी छोटेसे छोटे स्थानमें बैठ कर एक चट्ट मूसली और एक दो खरल, साधारण चूल्हे कढाईसे सारा काम आसानीसे चला सकते हैं, किन्तु रसों, भस्मोंके निर्माणका काम घरमे या औषधालयमें नहीं हो सकता। इसमें बड़े खटरागकी आवश्यकता होती है। प्रथम तो पारद, गन्धक आदिके संशोधनार्थ ही कई प्रकारके चूल्हे (भट्टी) व पात्र आदि की आवश्यकता होती है, इससे आगे जब कूपीपक्व-रस निर्माण करनेकी आवश्यकता होती है तब उसके लिए भट्टी और ईंधन आदि काफी खर्च होते हैं। इससे भिन्न कई बार देखा जाता है, नए अनभिज्ञ कार्य कर्ताओंसे बलि पिघलाते समय उसमें अग्नि लग जाती है और उसका धुआं उठकर सारे स्थानमे भर जाता है यदि घर में या जनसमूहमें यह काम हो रहा हो तो वहां उस बलिके धुएंसे कइयोंके दम घुटने लग जाते हैं। श्वासके रोगीको तो इसका धुआं लगते ही दम उखड जाता है। इसी तरह कई बार बंग, नाग संशोधन करते समय कई वैद्य उसे अत्यन्त उत्तप्त पिघली हुई अवस्थामेंही कांजी, तक्र आदिमे बुझानेके लिए छोड़ देते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि यह धातुएं जब अपनी द्रवावस्थासे अधिक उत्तप्त हो जाती हैं और उन्हें एकाएक सीतल किया जाता है तो वह कांजी, तक्रमें पड़ते ही बड़े वेगसे तिड़क कर उछलती हैं और उसके कण गोलीवत् आकर लगते हैं, इससे कई वैद्य घायल हो जाते हैं।

कई वैद्य साधारण चूल्हे पर घरमे ही कूपीपक्व रस चढ़ा देते हैं और मल्ल सिंदूर, समीर पन्नग रस आदि बनाने लगते हैं। इनके निर्माणमें प्रायः सावधानी न रखी जाय तो शीशियां टूट जाती हैं और उसका धुआं सारे मकानमे भर जाता है। गन्धक, सोमल आदि इतने विषाक्त पदार्थ हैं कि इनके वाष्पोंकी २-३ प्रतिशत मात्राएं हवाको दूषित कर देती हैं। इनकी दो तीन प्रतिशत मात्रा हवामे विद्यमान हो तो उससे ही स्वास्थ्यको हानि पहुचती है। परन्तु जब शीशी टूट

जाती है और इनकी दबी हुई वाष्प निकल कर सारे मकानके वायुमण्डलमे भर जाती है उस समय तो अत्यन्त भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए कोई रासायनिक औषध निर्माण करते समय वैद्यको घरमे नहीं बनानी चाहिए।

रसायनशाला निर्माणके लिए कहां स्थान होना चाहिए

आतङ्क रहिते देशे सर्व वाधा विवर्जिते।
सर्वौषध युते देशे मिष्ट कूप समन्विते॥
मनोरमे धर्म राज्ये समृद्धे नगरे शुभे।
पवित्रोपवने रम्ये भूपत्याज्ञा समन्विते॥
धरणी धर सहिता॥

अर्थ—आतङ्क भय व बाधा रहित स्थानमे जहां समस्त उपयोगी व आवश्यक द्रव्य मिलते हों, जहां शुद्ध जल विद्यमान हो, जहां रमणीक, मनोहर बाग बगीचे हों और राजा धर्म-परायण हो, समीपका शहर भी समृद्ध शाली—ऐसा हो जहां सब आवश्यक चीजें मिल सकती हों, वहां राजाज्ञा प्राप्त कर रसायन शालाका स्थान बनावें।

रासायनिक औषध निर्माणका काम बड़ी सावधानीका काम है। जिस स्थान में चोर, डाकू आदि का भय बना रहता हो, या जहां गर्मी, सर्दी, वर्षा, आंधी का भय अधिक हो वहां रसायन-शाला बनाकर कोई रसायनी काम नहीं कर सकता। इसीलिए जन-समूहसे दूर निरापद स्थानमे अपनी आवश्यकताके अनुसार स्थान चुनना चाहिए और अच्छे समृद्ध नगरके पास रसायन शाला होने से वहांसे हरएक द्रव्य आसानीसे प्राप्त हो सकते है। शास्त्रकार यह भी कहता है कि देश भी ऐसा होना चाहिए जहां पर समस्त वनस्पतियां भी मिलती हों। हमारे रसायन-वादमे अनेक हरी, ताजी वनस्पतियोंकी अत्यन्त आवश्यकता होती है यदि वह स्थान समीप हो जहां वनौषध जल्दी प्राप्तहो सकें,

तो इच्छित वस्तुएं औरभी आसानीसे बन सकती हैं। मीठे जल या हल्के जलकी भी रासायनिक विधियोंमें बड़ी आवश्यकता रहती है। वैद्योंको स्मरण रखना चाहिए कि इस समय किसी रासायनिक कामके लिए जो भी जलका उपयोग किया जाता है, वह अत्यन्त शुद्ध होता है। कूप जलोंमेंभी वह कितनेही सुमधुर क्यों न हों—कुछ न कुछ खनिज व प्राणिज अशुद्धियां रहती ही हैं, इसीलिए इस समय किसी भी रासायनिक प्रक्रियामें उपयोजित करनेके लिए जलको परिश्रुत कर लेते हैं। परिश्रुत किया हुआ जल बिलकुल शुद्ध मीठा और हल्का समझा जाता है, इससे उतर कर वर्षाका जल होता है।

पूर्व समयमें जलकी शुद्धताके रहस्यका ज्ञान था, तभी उन्होंने औषध निर्माणमें मीठे जल लेनेका आदेश किया। राजाज्ञा प्राप्त करनेके सम्बन्धमें जो कहा है, उससे कई सुविधाएं मिलती हैं और कई समयों पर रसायन-शालाका संरक्षण भी राज्य सहायतासे चलता रहता है।

रसायनशाला का स्थान कैसा बनना चाहिए ?

इस पर हमारे ग्रन्थकारों ने काफी विचार किया था।

यथा—वह कहते हैं

सुविस्तीर्णे चतुर्द्वारे ह्येकद्वारेऽथवा दृढे।
समान भूमिका देशे कुड्यावरण संयुते॥
तत्र शाला प्रकर्तव्या रस संस्कार सिद्धये।
विस्तारे च तथा दीर्घे हस्तानां पञ्च विंशतिः॥
प्रमाणं कथितं तस्या भित्तिमानं करोन्मितम्।
तत्र वै नव कोष्ठानि कर्तव्यानि समानि वै॥
तेषां मानं सप्त सप्त हस्तानां राज्य वैद्ययोः।
बहिर्द्वाराणि शालायाः कर्तव्यानि च द्वादश॥

मध्य कोष्ठेपि द्वाराणि विधेयानि च द्वादश।
एकमेकं तथा द्वारं कोण दिक्कोष्ठ सन्धिषु॥
कपाटार्गल युक्तानि द्वाराणि सुदृढ़ानि वै।
ईशानात् षष्ठ कोष्ठानां गोपनं धूम मार्गयुक्॥
मध्य कोष्ठोपरि पुनः कुर्याद्द्वाराणि द्वादश।
तदुपरि गोपनं कार्यं वितानं परितस्तथा॥
गोपनोपरि द्वाराणि सकपाटानि कारयेत्।
कोष्ठभित्तिषु पात्राणां स्थापनार्थं च कारयेत्॥
स्थानानि लघु दीर्घाणि परिलिप्तानि सर्वतः।
शालायाः परितस्तस्याः स्थण्डिलं कारयेत् समम्॥

धरणीधर सहिता।

अर्थ—रसायन शाला अच्छे विस्तारके स्थानमे बनानी चाहिए। जिसके चार द्वार या एक बड़ा दृढ़ दरवाजा हो अर्थात् कोठी जैसी बनावटका स्थान हो, जिसका भीतरी स्थान अत्यन्त समतल स्वच्छ हो और उस रसायन शाला के चारों ओर चहार दीवारी बनी हुई हो। इस रसायन शालाका स्थान कितना लम्बाई चौड़ाईमे बनाया जाय ? इसके सम्बन्धमे शास्त्र कहता है कि उसके अन्दरका स्थान ३६३/४ फुट वर्गमे हो और उसकी दीवारें १३/४ फुट चौड़ी दृढ़ बनी हों और उस रसायन शालाके बराबर आसपास ६ कोठड़ियां दस दस फुट वर्गकी बनी हुई हों। इसके दरवाजे १२ हों, अर्थात् जिस तरह कोठीके आस पास कमरे उसके साथ सटकर बनाए जाते हैं जो कोठीके भीतरी भागसे दरवाजों द्वारा मिले रहते हैं, ऐसे हों। दरवाजे भी चटकनीदार कपाटोंसे लगे हों अर्थात् प्रवेश करनेके बाद वह स्वयं मिल जाने वाले हों। इस रसायन शालामे ६ कोठरियोकी दीवारमे धुआंकश अंगीठियां या चिमनियां निकली हुई हों और उस रसायन शालाके कमरे ऐसे बने हुए हों, जिनमें काफी रोशनदान लगे हुए हों अर्थात् जिसके द्वारा भीतर तक काफी प्रकाश

पहुच रहा हो। रोशनदान पर भी ऐसे चल कपाट लगे होने चाहिए कि जब चाहें उन्हें बन्द कर सकें। प्रयोगके लिए उपयोगी चीजोंके रखनेके लिए दीवारोंमें इलमारियां भी हों। इस समय दीवारमे इलमारी नहीं बनाई जाती, अब तो वस्तुओं को रखनेके लिए भिन्न इलमारियें लगाई जाती है। प्रयोग के यन्त्र तुला, सूक्ष्म दर्शक यन्त्र आदि तथा सामानको रखनेके लिए प्रयोग शालामें ही चौतरफा चौरस चबूतरे बने हों। इस समय चबूतराके स्थान पर लकड़ीके या पुख्ता मेजकी कतार बनाई जाती है जिन पर-यन्त्र या सामान सजाए जाते है और उन्हीं पर प्रयोग होते रहते हैं।

शास्त्रकारका उपरोक्त वर्णन इतना स्पष्ट है कि आधुनिक समयकी अच्छी से अच्छी रसायन शालाका यह नकशा बहुत उत्तमतासे खींच देता है।

आगे ग्रन्थकार कहता है कि इस रसायन शालामे किस किस प्रयोगके लिए कहां कहां स्थान बनावे। इसका वह निम्न लिखित वर्णन देता है।

वह्नि कर्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाण कर्म च।
नैऋत्ये शस्त्र कर्माणि वारुणे क्षालनादिकम्॥
शोषणं वायु कोणे च वेध कर्मोत्तरे तथा।
स्थापनं सिद्धवस्तूनां कुर्यादीशान कोणके॥

धरणीधर संहिता।

अर्थ—गैसीय चूल्हे, स्पिरिट लम्प या कोक भट्टी आदि पर रखकर चीजों का शोधन, द्रावण या पाक करना, बनाना आदि कर्म रसायन शालाके आग्नेय कोणमें करे और कूटना, पीसना, घोटना आदि का काम दक्षिणके कोणमे बनावे। छेदन, भेदन आदिके शस्त्र कर्मका स्थान नैऋत्य कोणमे हो, रवा बनाने, धोने, छानने आदिके लिए पश्चिमके कोणमें स्थान हो और पदार्थोंको सुखाने, फैलाने आदिके लिए वायुकोणमे स्थान हो। धातुओंके संकरीकरण वेधन व यौगिक निर्माणके लिए उत्तर कोणमे स्थान हो तथा सिद्ध की हुई वस्तुओंके रखनेके लिए ईशान कोणमे स्थान हो।

उक्त रसायन-शाला स्थापन करनेका यह विधान जिस समयका दिया गया है उस समय रसायन-शाला और प्रयोग-शाला दोनोंही एक थे। जहां प्रयोग होते थे, वहीं वैद्य रासायनिक वस्तुएंभी तैयार करलेते थे। अब आकर—जहां दोनों विभागोंका विस्तार खूब बढ़ा—रसायन-शाला अथवा रासायनिक द्रव्यों को तय्यार करनेका स्थान और उन बने हुए रासायनिक द्रव्योंको जांचने, उनकी परीक्षा करने तथा नए आविष्कार करने के लिए प्रयोग शालाका स्थान भिन्न कर दिया गया। प्रयोग शालामें तो अब केवल रासायनिक औषधियोंकी जांच, परीक्षा, व पड़ताल तथा नए रासायनिक रचनाके पदार्थोंका आविष्कार होता रहता है। यह प्रयोग शाला अब उन रसायन-शालाओं या यों कहिए उन रासायनिक वस्तु तय्यार करने वाली फेक्टरियो, कारखानोंके साथ एक ओर लगी होती है। जितने भी भारतमे क्या विदेशोंमे जो कुछ द्रव्य कारखानों मे तय्यार करते है वह जांचके लिए अपनी प्रयोगशाला (लवोर्टरी) मे भेजकर उसकी समय समय पर जांच करते रहते है। रसवादमे प्रयुक्त होने वाले कूपीपक्व रस व भस्मोंकी जांच व परीक्षाके लिए रसायन-शालामे एक प्रयोग शाला अवश्य होनी चाहिए। चाहे वह छोटी हो या बड़ी, अपने कामका विस्तार देख कर उसके अनुसार बनानी चाहिए।

रसायन-शाला बनानेके साथही प्रयोग शाला प्रथम बननी चाहिए और उस प्रयोग शालाके लिए निम्न लिखित उपकरण व परीक्षणार्थ द्रव्योंका संग्रह होना अत्यावश्यक है।

प्रयोग शालाके उपकरण—(१) सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र, (२) सूक्ष्म तुला (वालसे सूक्ष्म वस्तु तोलने वाली तराजू), (३) स्प्रिट लम्प या स्टोव या गैस लम्प, (४) इन लम्पों पर रखने वाले तिपाए, चौपाए चूल्हे, (५) बुन्सन दीपक, (६) परीक्षण नलिकाएं, (७) रबड़ नली, (८) नलिका रखने की रैक, (९) अग्नि सह कई प्रकारकी कांच कूपियां, (१०) अग्नि सह कांच के बड़े चौरस बर्तन व प्यालिएं, (११) कांचकी लम्बी नालियां, (१२) कांच

के कीप, (१३) कांचके बड़े जार व गिलास, (१४) कांचके नपने (मथ्यरग्लास) (१५) चीनीके प्याले व बड़े बर्तन, (१६) पोर्सलेयडकी अग्नि सह प्यालियां, (१७) वायु (गेस) वाहक नालियां, (१८) कांचकी शलाका, (१९) द्रव परिश्रावक यन्त्र, (२०) उत्ताप रोधक यन्त्र, (२१) उत्ताप मापक यन्त्र, (२२) घनता मापक यन्त्र, (२३) प्लाटिनमकी तार या पतरी, (२४) कांचकी परीक्षण प्लेटें, (२५) फुकनी, (२६) छुरी, चम्मच, (२७) परीक्ष नली होल्डर (२८) त्रिमटियां, सन्नी, चिमटा, (२९) पात्र धोने वाले कई प्रकारके ब्रुश, (३०) कांच वाला रेगमाल, (३१) शुद्ध कज्जलके टुकड़े, (३२) चीनी या कांचके गोल खरल, (३३) निःक्षेप धोने वाली बोतलें, (३४) लिटमस पेपर, (३५) पिपेट, (३६) ब्यूरेट, (३७) प्रयोग नलिकाओं व शीशियोंके विशेष विशेष प्रकारके कार्क, (३८) कांच काटने वाली रेती, (३९) फिल्टर पेपर या छन्ने कागज, (४०) वैरोमीटिर, (४१) हाइड्रोमीटर, (४२)

प्रयोग शालामें प्रयुक्त होने वाले रासायनिक द्रव्य—

रस, भस्मों, ऐन्द्रिक, अनैन्द्रिक पदार्थोंकी परीक्षाके लिए इस समय निम्न लिखित रासायनिक द्रव्योंका उपयोग प्रयोग शालाओंमे होता है।

(१) बलिकाम्ल (गन्धकका तेजाब), (२) पवनाम्ल (शोरेका तेजाब), (३) लवणाम्ल (निमकका तेजाब) (४) चुक्राम्ल (सिरकेका तेजाब) (५) पवनियम लवणाइद (अमोनियम क्लोराइड) (६) पवनियम कज्जलेत (अमोनियम कार्बोनेट) (७) पवनियम अग्जलेत (८) पवनियां (अमोनियां) (९) पवनियम बलिकेत (अमोनियम सल्फेड) (१०) पवनियम चुक्रेत (अमोनियम असिटेट) (११) पवनियम पवनेत (अमोनियम नाइट्रेट) (१२) पवनियम मोलिबनेत (अमोनियम मोलिबडेट) (१३) पीत पवनियम बलिकाइद (यलो अमोनियम सल्फाइड) (१४) वेरियम लवणाइद (१५) मीस चुक्रेत (लेडअसीटेट) (१६) पांशु क्रोमेत (पोटाशियम क्रोमेट) (१७) पांशु लोहस श्यामाइद (पोटाशियम फेरिक सायनाइड) (१८) पांशु लोहक श्यामाइद (पोटाशियम

चित्र नं० २ व ३
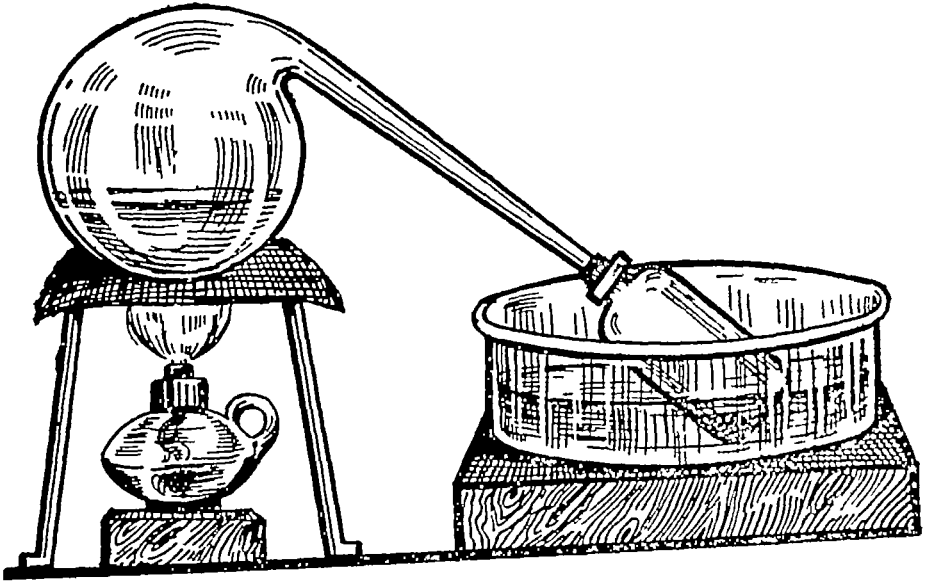
स्प्रिट चूल्हा पर पारद उड़ाया जारहा है
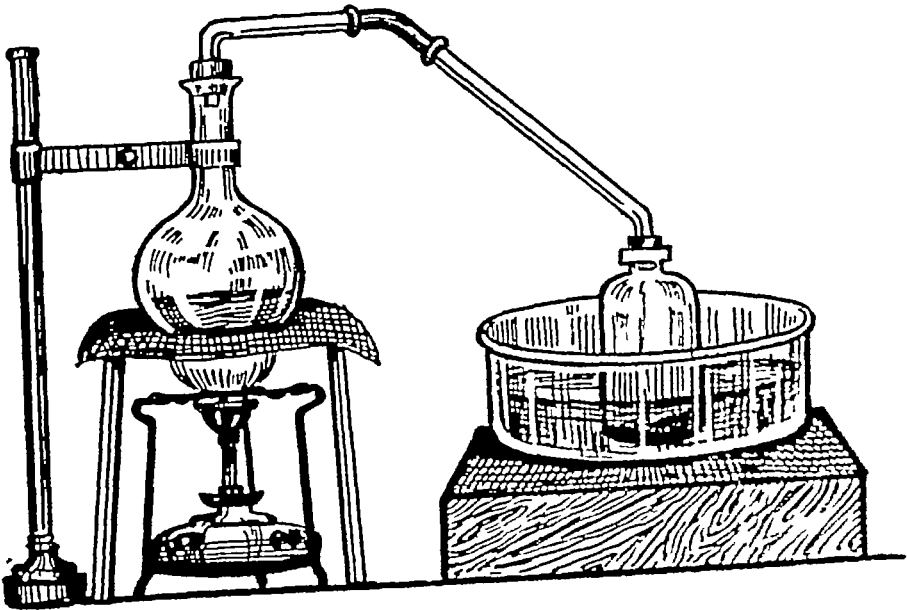
स्टोव चूल्हा पर शंखद्राव बन रहा है

(प्रयोग शालाके कुछ नव्य उपकरण)

चित्र नं० १

कांच की वक्र नालियां

कांच का पात्र

10
9
8
7
6
5
4
3
2
1

500
400
300
200
100
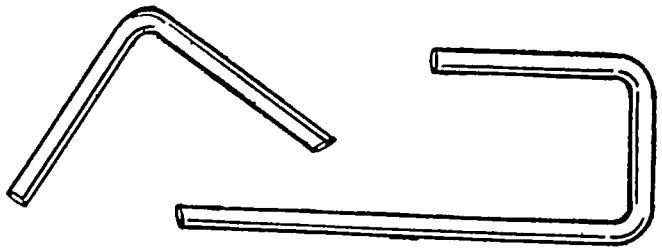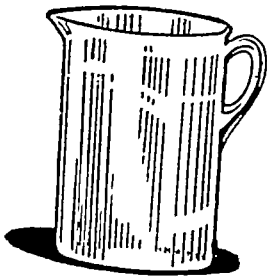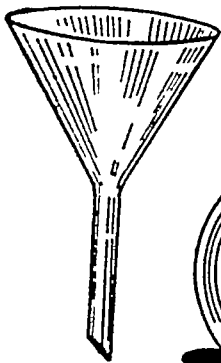
कांच की कीप

काच का जार
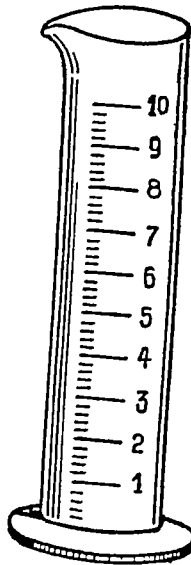
नपना गिलास
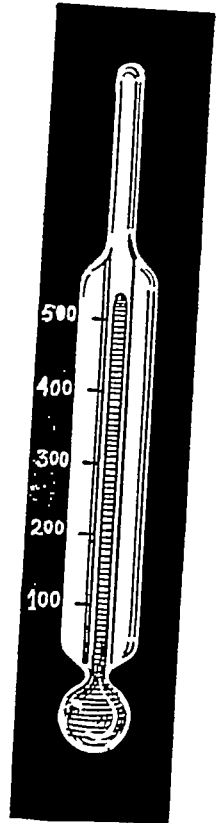
छोटा पाइरोमीटर

(प्रयोग शालाके कुछ उपकरण)

फेरिस सायनाइड) (१९) पांशु बलि श्यामाइद (पोटाशियम सल्फो सायनाइड) (२०) सैंधउद फास्फुरेत (सोडियम हाइड्रो फास्फेट) (२१) पारदिक लवणाइद=रसकपूर (मरक्यूरिक क्लोराइड) (२२) बंगस लवणाइद (स्टैनिस क्लोराइड) (२३) रजतपवनेत (सिलवर नाइट्रेट) (२४) केलसियम लवणाइद (२५) लोहिक लवणाइद (फेरिक क्लोराइड) (२६) कोबाल्ट पवनेत (कोबाल्ट नाइट्रेट) (२७) पांशु नैलाइद (पोटाशियम आयोडाइड) (२८) सैंधउदेत (कास्टिक सोडा=सोडियम हाईड्रेट) (२९) पांशु श्यामाइद (पोटाशियम सायनाइड) (३०) पांशुपरमांगनेत (३१) सैंध बलि बलिकेत (सोडियम सल्फो सल्फेट=हायपो) (३२) सोमलस ऊष्माइद (आर्सेनियस आक्साइड) (३३) औग्जलिक अम्ल (३४) सैंध कज्जलेत (सोडियम कार्बोनेट) (३५) पांशुद्वि-क्रोमेत (पोटाशियम डाइक्रोमेट) (३६) लोहस पवनियम बलिकेत (फेरस अमोनियम सल्फेट) (३७) टंकण (३८) द्रावण मिश्रण (Fusion-mxture) (३९) मैंग्नीजद्विऊष्मिद (मैंग्नीज डाई आक्साइड) (४०) पांशुजम नैलाइद (पोटाशियम आयोडाइड) (४१) फेहलिंग घोल (४२) लिटमस पेपर घोल (४३) नारङ्गी मिथाइल का घोल (४४) फिनोल नप्थलीन का घोल (४५) नैस्लर का घोल (४६) नीला थोथाका घोल (४७) चूनेका घोल (४८) नैलिका और नैलिकाका घोल (४९) सैंध उदेतका घोल (५०) ब्रोमीनिका और ब्रोमीनिकाका घोल (५१) लवणजनका घोल (५२) बलि ऊष्माइदका घोल (५३)उदबलिकाइदका घोल (५४) रजत पवनेतका घोल (५५) हल्दीके कागज (५६) मेग्नेशियाका मिश्रण । इत्यादि—इनमे जिन घोलोंका नाम आया है वह प्रायः उसी समय ताजे बनाकर परीक्षामे प्रयुक्त किए जाते है और इन घोलोंकी एक विशेष तनुता व सांद्रता की समर्थक मात्रा होती है, उसी मात्रामे वह घोल तय्यार किए जाते हैं । इनकी सारणी प्रत्येक प्रयोग शालामे लटकाई होनी चाहिए । उक्त रासायनिक द्रव्योंका उपयोग किस प्रकार ऐन्द्रिक, अनैन्द्रिक पदार्थोंको देखनेके समय किया जाता है ? यह

इस ग्रन्थका विषय नहीं। इस विषयका विशेष ज्ञान तो किसी प्रायोगिक रसायन विज्ञानके अनुशीलनसे हो सकता है। हमने तो यहां पर केवल प्रयोग-शालामें संग्रहीत होने वाले द्रव्योंका प्रसंग वश उल्लेख दे दिया है। हमारे कुछ रस वैद्य इन प्रयोगशालाओंमें वर्णित द्रव्योंके नाम पढ़कर यह शंका करें कि यह तो विलायती या विदेशी वह वस्तुएं हैं जिनका हमारे रस वैद्य नाम तक नहीं जानते, उनका हमारे रस-वादसे क्या प्रयोजन? यह तो कभी भी हमारे काम नहीं आ सकते। पाठको! अब, ऐसा समझना भूल है। इसमें कोई संशय नहीं कि जिन चीजोंके ऊपर नाम गिनाए गए हैं यह द्रव्य विदेश वासियोंके आविष्कृत हैं और अधिकतर विदेशसे ही आते हैं। इतना होते हुए भी आप जब तक इनके उपयोगको नहीं जानते तभी तक आपको यह निरर्थक दिखाई देते हैं। किंतु जिनका आप उपयोग जानते हैं—जैसे पारद, बलि, हरताल, मनःशिला, सिंगरफ आदि—यह सब विदेशी वस्तुएं होने पर भी आपके लिए महान् लाभ-प्रद हो रही हैं। यदि इसी प्रकार आप जब इनके द्वारा अनेक सन्दिग्ध द्रव्योंकी परीक्षा लेने और उन्हें वास्तविक रूपमें समझनेमें समर्थ होजांयगे, उस समय यह द्रव्य आपको सार्थक दिखाई देने लगेंगे।

संसारके बड़े से बड़े विचारवान् इसी नियमका अनुसरण करते आरहे हैं। जो व्यक्ति किसी वस्तुका उपयोग नहीं जानते, वह वस्तु चाहे कितनी ही उपयुक्त, पूर्ण मूल्यवान् क्यों न हो उनके लिए निरर्थक होती है, किंतु जब उसका वह उपयोग जान लेते हैं और वह उनके नित्यके काममें आने लगती है तब वह सार्थक हो जाती है। यही बात इन द्रव्योंके उपादेयता अनुपादेयता के सम्बन्धमें लागू समझनी चाहिए।

८५ अनेक बार किसी धातुकी भस्म बनाकर रख देते हैं और उस पर नाम नहीं लिखते कुछ दिनके बाद स्मरण नहीं आता कि यह कौन सी भस्म है? कोई रस निर्माण करके यदि उस पर नाम न लिखा जाय तो उसे नहीं पहिचाना जा सकता कि यह कौन सा रस है। ऐसी दशामें वैद्योंके

पास उन रसों भस्मोंको फेंक देने के सिवाय और कोई चारा नहीं रहता। यदि उनके पास अपनी प्रयोगशाला हो और वह वस्तु परीक्षणकी आधुनिक विधि जानते हों तो वह उस ओषधकी हानिसे बच सकते है और बड़ी आसानीसे उसे पहिचान कर पुनः उसे उपयोगमे ला सकते हैं। आधुनिक रसायन-शास्त्रने इस ओर बहुत अधिक उन्नति करली है, हमे भी इस उपयोगी अंशको पूरी तरह सीखना व जानना चाहिए।

रस-निर्माण शाला

पहिले समयोंकी अपेक्षा अब रासायनिक औषधियोंका उपयोग बहुत बढ़ गया है। कुछ समय से वैद्य क्वाथों, चूर्णों की अपेक्षा रसोंका उपयोग बहुत अधिक करने लग पड़े है। पहिले जिन रसोंका उपयोग भयावह समझा जाता था आज वह उपयोगमे निरापद सिद्ध होरहे है, इसीलिए इनकी मांग बढ़ गई है। एक समय वह था कि जब वैद्य इन रसों भस्मोंको पांच दस तोला की मात्रामे तय्यार किया करते थे। आज उन्हीं वैद्यों द्वारा सेरों रस, भस्में खपती दिखाई देती हैं, इसीलिए इनको व्यवसायिक मात्रामे बनानेकी आवश्यकता दिखाई दे रही है। इसी त्रुटिको दूर करनेके लिये सरल सुगम विधियों से कम खर्च पर कूपीपक्व रस तय्यार करने के साधन जानने आवश्यक हुए। कूपीपक्व-रस-निर्माणके लिये कैसा स्थान होना चाहिये ? तथा इस काममे किन किन उपकरणोंकी आवश्यकता है ? प्रथम हम इनका विस्तृत वर्णन देंगे।

स्थान—रस निर्माणार्थ रसायन शालाके समीप ही स्थान होना चाहिये।

स्थान २८-३० फुट कम से कम लम्बा और लग भग १८-२० फुट चौडा हो। इस स्थानमे कोठडियां नहीं होनी चाहियें, प्रत्युत खुला बरामदा एक ही लम्बाईमे हो। इसके एक ओर लम्बाईके भागमे दीवार होनी चाहिये और इसके तीन ओर बिल्कुल खुला रहना चाहिये, ताकि खुली हवा सदा आती रहे। दीवार सदा उत्तर या दक्षिण दिशाकी ओर बनानी चाहिये और स्थानके छतकी

ऊंचाई १८-२० फुटसे कम नहीं होनी चाहिये। छत जितनी अधिक ऊंची होगी गर्मी उतनी ही कम लगेगी। छत यदि एस्वेस्टसकी नालीदार चादरकी डाली जाय तो गर्मीका प्रभाव और भी कम हो सकता है। यह स्थान बरामदानुमा स्टेशनके प्लेटफार्म जैसा हो तो बहुत अच्छा है। जिस ओर दीवार बनाई गई हो उस ओर दीवारके साथ लगाकर भट्टी बनानी चाहिए दीवार बनाते समय उसमें धुआंकशका मार्ग—जैसे दीवारकी अंगीठीमें रखते हैं ऐसा—पांच-पांच फुटका फैसला छोड़ते हुए रख दिया जाय तो फिर भट्टियोंके लिए धुआंकश चिमनियां भिन्न लगानेकी आवश्यकता नहीं होती। यदि दीवारमें धुआंकश चिमनी लगाई जाय तो नीचे आकर कमरों वाली अंगीठीका सा आकार प्रत्येक धुआंकशके नीचे बना देना चाहिए, यह हवा खींचने का मार्ग होता है इसके बाद भट्टी दीवारसे आगे की ओर हटकर भिन्न बनानी चाहिए।

भट्टी कैसे बनानी चाहिए ?

भट्टियोंके प्रकार—एक ही भट्टी सब तरहके काम नहीं दे सकती, प्रत्येक विशेष कामके लिए भिन्न भिन्न प्रकार की भट्टी बनानी चाहिए—इसी बातको शास्त्रकार कहता है—

यथा—सत्व पातन कोष्ठीं च गार कोष्ठीं सुशोभनाम्।
भूमि कोष्ठीं चलत्कोष्ठीं—इत्यादयः॥

रसेन्द्र चूड़ामणि।

अर्थ—कूपीपक्व-रस-निर्माणके समय निम्न लिखित भट्टियोंकी प्रायः आवश्यकता होती है।

(१) धातु शोधनार्थ भट्टी, (२) धातु द्रावणार्थ या सत्व पातनार्थ भट्टी, (३) गार कोष्ठी या भरत् कोष्ठी अर्थात् सिकता यन्त्र भट्टी, (४) भूमि कोष्ठी अर्थात् तप्त खल्ल भट्टी, (५) चलत्कोष्ठी अर्थात् चलायमान् भट्टी, (६) अर्क परिश्रुत भट्टी यह समस्त भट्टियां भिन्न भिन्न कार्य भेदके अनुसार अथवा न्यूनाधिक अग्नि देनेके लिए भिन्न रूपाकृति की बनाई जाती हैं।

अब हम इन भट्टियोंका संक्षेपमें वर्णन करेंगे—

(१) धातु शोधनार्थ भट्टी—यह भट्टी ऐसी बनानी चाहिए जैसी लोहारोंकी लोहा तपानेकी होती है। यह १ फुट ऊंची गहरी, १० इंच चौड़ी २ फुट लम्बी गहरी, बनी होती है जो बाहरसे नालाकृति गोल होती है। इसके एक ओर धौंकनी (भस्त्रिका) लगी होती है, जिसका मुंह पृथ्वीके भीतरसे होकर भट्टीके मध्यमें पहुंचता है। धौंकनीकी जगह आजकल छोटे छोटे लोह निर्मित पंखे लगा दिए जाते है जिन्हें पहिए द्वारा फिराने पर बड़े बेगकी हवा भट्टीमे प्रवेश करती है। इस भट्टीके भीतर लम्बाईके अन्तमे धुआंकश चिमनी लगी रहती है जिसमेसे होकर धुआं बाहर निकल जाता है। ऐसी भट्टीमे लकड़ीके तथा पत्थरके दोनों प्रकारके कोयले जलाए जाते है। देखो चित्र नं०४

इस भट्टीमे धातुओंके पत्र बना कर या बंग, सीसा आदिको किसी लोह निर्मित करछी (लोह पात्र) में डाल कर उस भट्टीमें रख देते है और उसके चारों ओर कोयला चुनकर पंखा या धौंकनी चलाते है, इससे शीघ्र ही उक्त धातुएं उत्तप्त लाल होकर या पिघलकर द्रव होजाती हैं। जब यह लाल या द्रव हो जाती हैं इन्हें शीघ्र निकाल लेना चाहिए और शोधक द्रवोंमे बुझा देना चाहिए। बंग और नाग जब द्रवावस्थासे अधिक उत्तप्त किए जाते है और इन्हें अधिक रक्त तप्त बुझाया जाता है तो यह बड़े वेगसे तिड़क कर उछलती है। इसीलिए यदि यह ज्यादा उत्तप्त हो चुकी हों तो इन्हें भट्टीसे बाहर निकाल कर कुछ ठण्डा कर लेना चाहिए फिर द्रवावस्था जितना उत्ताप रहने पर उन्हें बुझाना चाहिए, तब यह नहीं तिड़केंगी।

(२) धातु द्रावणार्थ या सत्त्व पातनार्थ भट्टी—धातुओंको गलाने के लिए जैसा रोटी पकानेका चूल्हा होता है ऐसा चूल्हा बना कर इसमे भस्त्रिका या पंखाकी नालीको जमीनके भीतरसे नहीं ले जाते, प्रत्युत बाहरसे ही उस नलीका अगला मुंह कुठालीके मध्य लाकर रख देते हैं ताकि हवा उस कुठाली पर रखे हुए कोयलोंको वेगसे प्रज्वलित करे और कुठालीमे उत्तापकी

मात्राको तीव्रतर बढ़ाती चली जाय। जितने वेगसे हवा कोठालीके कोयलों पर लगती है उतना ही तीव्र उत्ताप उत्पन्न होता रहता है, यहां तक कि कोठालीके मध्य २ सहस्र शतांशका उत्ताप हो सक्ता है। देखो चित्र नं० ५

इस भट्टीमे धातुओंको गलाने तथा सत्व पातन करनेका काम किया जाता है। ज्यादा कामके लिए भूमिमे गर्त बना कर उसमे कुठाली जमानेका स्थान बना कर वहां भी धातुएं गलाई जाती हैं। यह दूसरे आकारकी होती है।

(३) भूमि कोष्टी अर्थात् तप्त खरल भट्टी—

> **अजा शकृत्तुषाग्निश्च भूगर्ते त्रितयं क्षिपेत्।**
> **तस्योपरि स्थितिं खल्वं तप्त खल्व मितिस्मृतम्॥**
>
> रसरत्नाकर वादि खण्ड।

अर्थ—बकरीकी मेंगनी, धान, बाजरा आदिके तुष (भूसी) को भूगर्तमे भरकर उसे सुलगा दें और उस पर खरल स्थापन करें, उसे तप्त खरल कहते हैं। इसी का परिस्कृत रूप भूमि कोष्ठी है। तप्त खरलके लिए भरभूजे जैसी भट्टी बननी चाहिए। क्योंकि जब पिष्टि रूप पारद हो तो उसे तप्त खरलमें डाल कर रगड़नेसे स्वेदन होना रहता है, इसी से तप्त खरल होने के कारण पारद में द्रवता आ जाती है। यही बात शास्त्रकार कहता है। यथा—

> **तदन्तर्मर्दिता पिष्टिः क्षाररस्लैश्च संयुता।**
> **प्रद्रवत्यति वेगेन स्वेदिता नात्र संशयः॥**
>
> धरणीधर संहिता।

अर्थ—तप्त खरलमें पारदकी पिष्टिको क्षार, अम्ल वर्ग युक्त स्वेदन और मर्दन करनेसे पिष्टी शीघ्र पिघल जाती है।

तप्त खरलकी साधारण संस्कारोंमे अधिक आवश्यक्ता नहीं होती। विशेष संस्कारों मे अवश्य होती है। विशेष संस्कार जो करना चाहें उन्हें तप्त खरल भट्टी अवश्य बनानी चाहिए। यह भट्टी बिलकुल वैसी ही बनानी चाहिए

जैसा भरभूजेका दाना (अन्न) भूननेका भाड़ (भट्ठी) होता है। यह भट्ठी भूमि खोद कर नीचे दो फुट गहरी और २-२½ फुट चौड़ी गोलाईदार बनाई जाती है, जिस पर दाने भूनने वाला तो अपनी कड़ाही बिठा देता है, वैद्यको उसके स्थान पर खरल बिठा देना चाहिए। इस भट्ठीमे एक ओर धुआँ निकलने का मार्ग बनाकर उसमें धुआँकश चिमनी लगा देनी चाहिए। देखो चित्र नं० ६

इस भट्ठीका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमे घास, फूस, तुष, बकरीकी मेंगनी आदि कोई वस्तु जला दें तो इसकी अग्नि दो दो तीन तीन दिन तक एक जैसी बनी रहती है। इस भट्ठी पर रखा हुआ खरल एक जैसे उत्ताप पर कई कई दिन रखा जाकर उस तप्त खरलमे स्वेदन और मर्दन बहुत अच्छी तरह किया जा सकता है। यदि इस भट्ठीकी ऊपरी सतह पर एक एक ईंट चारों ओर अग्निजित्‌की लगा दी जाय तो इसका पृष्ठतल बिलकुल गरम नहीं हो सकता।

वारुणी यन्त्र अर्थात् अर्क परिश्रुत भट्ठी—

कूपीद्वय मुखं तिर्यक्कृत्वैकाधोऽग्नि दीपनम् ।
ततः द्वार द्रवोऽन्यस्यां पतेद्वारुणिकं च तत ॥

अर्थ—दो कूपियोंके लम्बे मुखोंको मिला कर उन्हें तिरछा रख कर एक के नीचे अग्नि जलावे तो उसमे से द्रव भाग उड़ कर दूसरे सीतल पात्रमे संचित हो जाता है।

इस भट्ठी पर चार पांच काम लिए जा सकते है। (१) क्वाथ करना, (२) अम्ल (तेजाब) चुआना जैसे शंखद्राव शुद्ध वलिकाम्ल, पवनाम्ल आदि बनाना, (३) वानस्पतिक अर्क परिश्रुत करना, (४) आसवोंसे मद्य परिश्रुत करना। गर्भ यन्त्र भी इसी पर चढ़ाया जाकर उससे तेल सारादि निकाले जा सकते है।

इस भट्ठीका आन्तरिक भाग जितना नीचे वृत्ताकार चौड़ा हो उतना ही ऊपर तक एक जैसा वृत्ताकार खुला होना चाहिए। इस भट्ठीका मुंह प्राय.

एक या सवा फुट व्यासका रखा जाता है यदि बर्तन ज्यादा बड़ा हो तो इससे भी बड़ा मुंह रखा जा सकता है। यदि यह लकड़ीकी भट्ठी बनानी हो तो लकड़ी लगानेका एक ही मार्ग बनाना पड़ता है। नये विधान की लकड़ी की भट्टियोंमे जाली लगाकर उसे दोहरा भी कर देते है। देखो चित्र नं० ७

यदि पत्थरके कोयलोंकी बनानी हो तो इसमे नीचे एक हवा प्रवेशका खुला द्वार तथा दूसरा कोयला डालनेका द्वार बनाना पड़ता है। देखोचित्र नं०८

यह भट्टिया आम हलवाइयोंकी दूकानों पर बनी होती हैं। वैद्य जहां चाहें देख कर बनवा सकते हे।

चुल्ली कोष्ठी अर्थात् भट्ठी लक्षण

कोष्ठी चुल्ली यन्त्र विधि प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये।
अष्टादशांगुलोत्सेध प्रमाणायाम वेष्टनाम्॥
वल्मीकाकार वद्वृत्ता मधोभागो वृहत्तराम्।
कोष्ठीवच्छुषिरामन्तः पञ्च गुल्फाग्रसंयुता॥
प्राकाराग्रे यथा गुल्फास्तथा गुल्फांश्च कारयेत्।
मूलभागे प्रकुर्वीत वह्निद्वारं च कारयेत्॥
द्वादशांगुल विस्तारं सतुरस्रं समन्ततः।
स द्वारा चुल्लिका कोष्ठी रसज्ञेषु इयं मता॥

देवीयामले।

अर्थ—शिवजी पार्वतीसे कहते है, हे प्रिये! कोष्ठी चुल्ली अर्थात् भट्ठी यन्त्र बनाने की विधि तुम मुझसे सुनो। वह कैसी बनानी चाहिए? कहतेहैं—

१८ अंगुल प्रमाण उठा हुआ उसका घेरा होना चाहिये और उसकी बाह्य बनावट वल्मीकाकार गोल होनी चाहिए, नीचेसे उसका घेरा बड़ा होना चाहिये और अन्दरका भाग कोठावत् खाली होना चाहिये। वह खाली स्थान पांच गुल्फ अर्थात् २० इञ्चके बराबर होना चाहिये, जिस तरह गुल्फ अर्थात् घुटनेके आगेकी गोलाई होती है इस तरह भट्ठीके भीतरकी गोलाई गहराईदार

चित्र नं० ६ | चित्र नं० ७
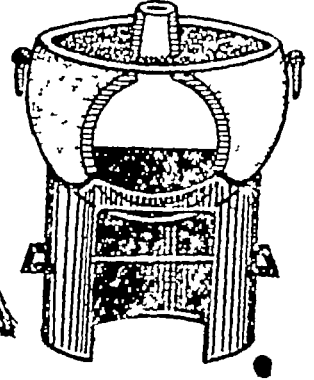
वह सरल भट्ठी | लकड़ीके कोयलेका चूल्हा

नं० ७ लकड़ी के कोयले का चूल्हा या भस्त्रकोष्ठी हमने यहां पर लोहे का बना हुआ दिखाया है । प्राचीन काल मे यह मिट्टी का ही बना होगा । इसकी जाली भी जहां चूल्हे के मध्य सींक का निशान है—वहां पर मिट्टी की ही होगी, जिस पर कोयले जलाये जा सकते है ।
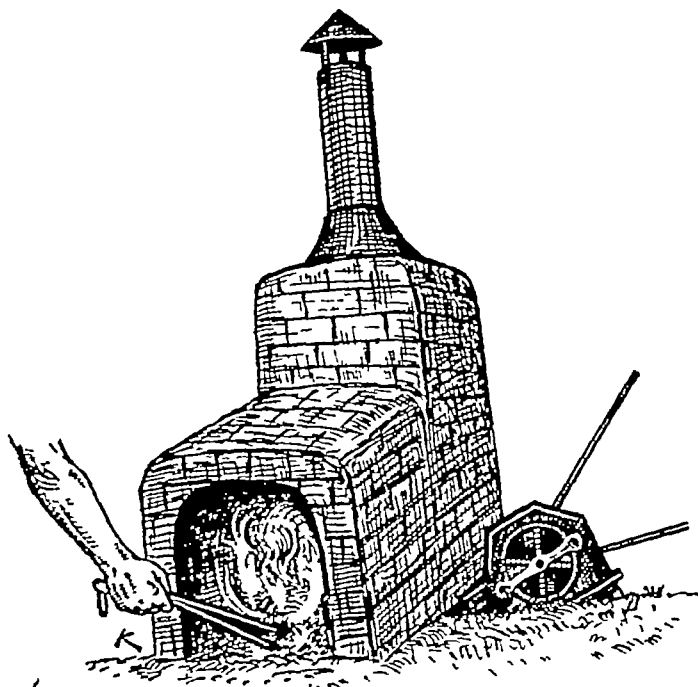
चित्र नं० ४

धातु शोधनार्थ भट्ठी
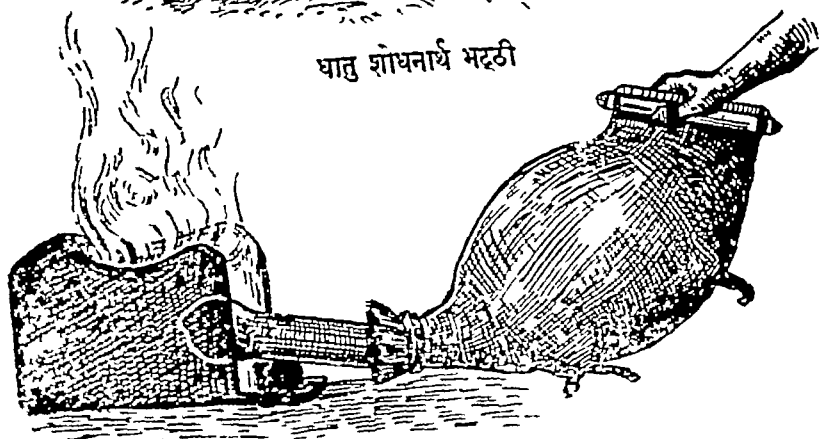
सत्व पातनार्थ भट्ठी

चित्र नं० ५

होनी चाहिए। उस भट्ठीके नीचेके भागमें अग्नि देनेके लिए मुंह बना होना चाहिए। उस मुंहकी परिधि १२ अंगुल प्रमाण गोल रहनी चाहिए। ऐसे मुंह वाली गोल भट्ठीको रस-ज्ञाता वैद्य चुह्लिका कोष्ठी कहते है।

देखो चित्र नं० ७ प्राचीन चुह्लिका कोष्ठी।

प्रायः देखा जाता है कि वैद्य लोग भट्ठी बनानेकी ओर ध्यान ही नहीं देते, न भट्ठीकी रचनाके रहस्यको ही वह समझते है। वास्तवमें कूपीपक्व रस-निर्माणके लिए भट्ठी ही सबसे पहली ऐसी चीज है जिसके निर्माण और उसके उपयोगकी विधिको अच्छी तरह समझ लिया जाय तो अग्निकी मात्राको वैद्य स्वाधीन रख कर इच्छित रस बना सकते है। जो वैद्य भट्ठी निर्माणके रहस्य को नहीं समझते वह इच्छित उत्ताप पर किसी रसको अग्नि दे ही नहीं सकते। भट्ठी यन्त्र केवल पात्र रखनेके उद्देश्यको लेकर ही नहीं बनाया जाता, प्रत्युत इसके बनानेमे निम्न लिखित बातोंकी ओर सदा ध्यान रखना पड़ता है।

(१) भट्ठीकी ऊंचाई इतनी रहनी चाहिए कि जलती हुई लकड़ियोंकी ज्वाला का उत्ताप चढ़ी हुई औषधके मध्य भागमें सदा लगे।

(२) भट्ठीके भीतर लकड़ीके जलनेके समय हवाका प्रवेश पूरी तरह व इच्छानुसार होता रहे।

(३) भट्ठीके भीतर धुआं न उत्पन्न होने पावे। आवश्यक हो तो इसकी निकासीका भट्ठीकी पिछली ओर एक छोटासा मार्ग रख दें और उसे धुआंकश चिमनी से जोड़ दें।

(४) उत्तापका प्रसार नीचे न होकर ऊपरको ही अधिक हो।

(५) भट्ठीकी आकृति व मुंह ऐसा हो जिसकी गर्मी बाहर बैठे आदमी को बहुत कम लगे।

उक्त पांचों बातों की उपरोक्त शास्त्रवर्णित लक्षण से बहुत अंशोंमें पूर्ति होती है। जिसकी हम विस्तृत व्याख्या करेंगे।

चित्र नम्बर ६ मे लकड़ी पर बनानेकी पक्की भट्ठी देखिए। इसमे जो लकीर का चिन्ह 'क' दिया है वह भट्ठीके भीतरकी गहराई और उसकी आन्तरिक रचनाको बतला रहा है। नीचे भट्ठी चौडी है और ऊपर क्रमसे तंग होती हुई वल्मीकाकार उतनी रह गई है जिस पर वालुका पात्र पूरी तरह बैठ जाय।

चित्र६ मे देखो 'ख' अर्ध चन्द्राकार भट्ठीके मुहके पासका स्थान और इस भट्ठी मे वालुका यन्त्र 'ग' स्थान तक भट्ठीके भीतर उतर जाना चाहिए, ताकि उसे आंच पूरी पूरी लग सके।

लकड़ी की भट्ठीमे धुआं ज्यादा बनता है, इसलिए भट्ठीकी पिछली तरफ २–२½ इञ्चका धुआं निकलनेका मार्ग बना दिया जाता है और उस मार्गका मुंह चिमनीके साथ जोड़ देते है इससे जो धुआं भट्ठीमे उत्पन्न होता है वह चिमनीके मार्गसे ऊपर उठकर दीवारके मार्गसे बाहर चला जाता है, देखो चित्र नं० ६ मे 'घ'

जहां तक हम समझते है पहिले समयमे गारा ईटसे ही चूल्हा या भट्ठी बनाने की प्रथा चली आई थी, अब आकर इसमे अधिक सुधार हुआ है। इस शताब्दी मे आकर इस बातका पता चला कि कुछ मिट्टी उत्ताप रोधक होती है। यदि उस का लेप या कोट अन्दर चढा दिया जाय तो भट्ठीकी दीवारको भेदकर उत्ताप बहुत कम बाहर जा सकता है। धीरे धीरे उस उत्ताप रोधक मिट्टीकी ईटें बनने लगीं, इस मिट्टी मे सबसे बड़ा गुण यह है कि यह जहां लगी हुई हो उस भट्ठीके उत्तापको अपनेमे-से होकर बाहर फैलने नहीं देती। इसीलिए, जो उत्ताप चारों ओर फैलकर घट जाता है वह घटने नहीं पाता और उस उत्ताप का प्रवाह इच्छित स्थानकी ओर ही अधिक रहता है। अतएव भट्ठी बनाने मे इसी मिट्टीकी ईटोंका अधिक उपयोग करना चाहिये। इस मिट्टीमे एक और सबसे बडा गुण यह है कि यह तीव्र उत्ताप सहन कर लेती है, जल्दी पिघलती नहीं। इसीलिए इसको अग्निजित् मिट्टी या फायर क्ले कहते है।

इस समय जितनी भी भट्ठी बनवानीं चाहियें फायर क्ले की मिट्टी की ईंटें और इसी मिट्टी का गारा लेकर बनवानीं चाहियें । इसकी बनी भट्ठी से निम्न लिखित लाभ देखे जाते है ।

(१) भट्ठी के पास बैठे हुए आदमीको जरा भी गर्मी नहीं लगती ।

(२) जितना उत्ताप हम लकड़ी या कोयले जला कर उत्पन्न करते है वह वृथा नष्ट नहीं होता ।

(३) थोड़े ईंधनसे अधिक काम हो जाता है । इसीलिए "सस्ता रोवे बार बार महंगा रोवे एक बार" की कहावत चरितार्थ कर—अधिक कीमत खर्च करके फायरक्लेकी भट्ठी एक बार बनवा लेनी चाहिए, फिर सारी उमरके लिए झगड़ा समाप्त हो जाता है ।

लकड़ी जलाने और पत्थरका कोयला जलानेके लिए दोनों ही भट्ठी इससे बहुत अच्छी बन सकती हैं । भट्ठियां जितनी भी बनें इसी अग्निजित् मिट्टीकी बननी चाहिऐं ।

लकड़ीकी भट्ठी की रचना—कूपीपक्व-रस-निर्माणके लिए जब भट्ठी बनानी हो तो सबसे प्रथम उस पात्रको सामने रखना चाहिए जिसमे बालु भरकर बालुका यन्त्र बनाना हो ।

पहिले जब लकड़ियां काफी मिलती थीं और सस्ती थीं, लोहा उस समय महंगा था, हम सब मिट्टीकी नांद ही बालुका यन्त्रके लिये इस्तेमाल करते थे। किंतु अनुभवसे ज्ञात होता है कि मिट्टीकी नांद बालुका यन्त्रके लिये इतनी अधिक उपयोगी चीज नहीं है । मिट्टीकी नांद एक तो देरमे उत्तप्त होती है, इसीसे अधिक अग्नि जलानी पड़ती है तब कहीं जाकर बालुका उत्तप्त होती है । दूसरे यदि रात्रिको अग्नि देने वाला सो जाय और अग्नि बुझ जाय तो यह जब ठण्डी होजाती है तो फिर देरमे गरम होती है । सारांश मिट्टी कम उत्ताप वाहक होती है, इसीलिये ज्यादा ईंधन खर्च करती है । जो बालुका यन्त्रके पात्र अच्छे उत्ताप वाहक होते हैं उनके भीतरसे होकर बालुका भी शीघ्र उत्तप्त हो उठती

है, तभी तो कूपीपक्व रसोंको जल्दी उत्ताप पहुंच जाता है और वह जल्दी तय्यार हो जाते हैं।

वालुका यन्त्रके लिये लोहेका पात्र सबसे अच्छा रहता है। १॥ सूत मोटी चादरका बना डोल कम से कम लकड़ीकी अग्निमे २५—३० बार तक चढ़ सकता है और पत्थरके कोयले पर भी १०—१२ बार तक काम दे सकता है।

हम वालुका यन्त्रके लिये लोहेके डोल भिन्न भिन्न आकृतिके—जैसी छोटी बड़ी शीशी चढ़ानी हो उस शीशीकी आकृतिके—बनवाते है। लोहेके डोल बहुत बड़े नहीं होने चाहियें, प्रत्युत इतने बड़े होने चाहियें कि शीशी और डोलमे एक इञ्च का अन्तर रहे। अर्थात् एक इञ्च रेता शीशीकी कमरके पास होना चाहिये और डोलकी रचना जैसी चित्र नं० ८ मे दिखाई है ऐसी होनी चाहिये। डोलमें दोनों ओर कुण्डे लगवाने चाहियें, देखो चित्र नं० ८ (ख)। कुण्डे लगवाने से उसे चढाने उतारनेमे सुविधा रहती है और कभी अकस्मात् शीशी फूट भी जाय तो उस डोलको बड़ी आसानीसे उतारा जा सकता है।

जब डोल बन जाय तो उस डोलके कमरकी नाप लेकर भट्टीके ऊपरी मुहकी गोलाई बनानी चाहिए। हमने तो भिन्न भिन्न नापके डोलोंके लिये भिन्न भिन्न लोह इंग्लानके कड़े बनवा कर वह भट्टीके मुंह पर बिठा दिए है। इन कड़ोंसे भट्टीका मुह कभी नहीं टूटता। दूसरे बर्तन (डोल) भी भट्टीपर ठीक फिट बैठ जाता है। यह लोहेके कड़े इतनी परिधिके होने चाहिए कि जिसमें डोल आधेके लगभग भट्टीके भीतर उतर जाय, देखो चित्र नं० ८ (क)।

इस तरह शीशीकी आकृतिको लेकर डोल बनवाना चाहिए। देखो चित्र नं० ८ में लोह निर्मित डोल जिसमे शीशी रखी हुई दिखाई गई है और डोलके कमर तक आजाने वाला लोह कड़ा इतना बड़ा है जो भट्टीके मुंह पर बराबर ठीक बैठ जाता है।

भट्टीकी भीतरी आकृति—लकड़ी जलाने वाली भट्टीका आकार तो जैसा शास्त्रकार बतलाता है वैसा बनाना चाहिए अर्थात् भट्टी भीतर नीचेसे

चौड़ी खुली गोल हो और ऊपरको जैसे जैसे उठती जाय वल्मीकाकार तंग होती चली जाय, मुंह पर उतनी ही रह जाय जिस पर लोहेका कड़ा ठीक फंस जाय। नीचेसे खुली और ऊपरसे तंग भट्ठी रहनेका यह लाभ है कि जहां पर लकड़ियां जलती हैं वहां स्थान खुला होना चाहिए, किंतु ऊपर जहां ज्वाला जाती है वह स्थान संकुचित होगा तो ज्वालाका उत्ताप उस संकुचित सीमामे ही अधिक पड़ेगा।

रसकपूर निर्माणकी जो भट्ठियां सूरतमे लगी है वह इसी आकृतिकी बनी है जैसी शास्त्र ने बतलाई है किन्तु उनकी ऊंचाई और परिधि बड़ी है। इस प्रकारकी अधिक विस्तृत और ऊंची भट्ठी बनानेका कारण यह है कि रसकपूर बहुत मन्द अग्नि पर उड़ने लगता है। यदि अग्नि तीव्र लग जाय तो ऐसी दशा मे उस बर्तनसे उसकी वाष्पें लीक करने लग जाती हैं या उस यौगिकका लवणजन वायु टूट कर भिन्न हो जाता है और उसका पारा भिन्न होने लग जाता है, इसीलिये ऊंचे आकारकी भट्ठीमे अग्नि कम लगती है। एक आधी लकड़ी ही जला देने पर रस-कपूरको उड़ाने वाला उत्ताप वहां बना रहता है।

रससिन्दूर, समीर पन्नग, मल्लसिन्दूर आदि पाकके लिए दो फुट ऊंची भट्ठी होनी चाहिए। तथा रस कपूर, दारचिक्ना निर्माण के लिये २॥ फुट ऊंची भट्ठी होनी चाहिये। रस-सिन्दूर वाली भट्ठी पर रस-कपूर, दारचिकना नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि इस पर अग्नि की मात्राका अधिक ध्यान रखना पड़ता है, यह बात वैद्योंको सदा ध्यानमे रखनी चाहिए।

गारकोष्ठी—भरत्कोष्ठी या सिकता यन्त्र भट्ठी—

कई वैद्य इस गारकोष्ठी या भरत्कोष्ठी यन्त्रको किसी और रूपकी भट्ठी समझते होंगे। वास्तव मे उक्त भट्ठी आधुनिक नव्य भट्ठियोंके आकारकी होती है, ऐसा शास्त्रका संकेत है। जिस भट्ठीको गारकोष्ठी रसेन्द्र चूडामणिकारने कहा है उसीको रसरत्न समुच्चयकारने भरत्कोष्ठी कहा है। इसीको रसकामधेनु-

कारने रसेन्द्र चूडामणिका पाठ बता कर सिकता यन्त्रके नामसे वर्णन किया है। यथा—

कोष्ठिकाऽधो बहुच्छिद्रा गर्तस्योपरि कोष्ठिका।
भाण्डस्थ वालुका कण्ठ लग्ना तत्सैकतं भवेत् ॥

रसकामधेनु।

यहां पर शास्त्रकार वालुका यन्त्र का वर्णन करता हुआ गारकोष्ठी या झरत्कोष्ठी अर्थात् जालीदार दो खाने वाली भट्टीका वर्णन देरहा है। यहां गर्तका अभिप्राय भट्टीके भीतरके गर्तसे है। यह वास्तवमे नव्य कूपीरस निर्माण जैसी भट्टी का वर्णन है। देखो चित्र नं० १०

भट्टीके मध्य भागकी जालीमे बहुत छेद डालना और फिर उस छेद वाले चक्रके ऊपर भट्टीके अवशेष भागकी पूर्ति करना और उसके ऊपर वालुका यन्त्र का स्थापन विद्यमान भट्टीका चित्र अङ्कित करता है और इस भट्टीसे यहभी सिद्ध होता है कि जिसने यह यन्त्र बनाया उसने इसमे लकड़ीके कोयले जलाने वाला वालुका यन्त्र बनाया था। बहुछिद्र वाली मिट्टी या लोहेकी जालीके डालनेका विधान कोयलेकी भट्टीके लिये ही हो सकता है, लकड़ीके लिये नहीं। यह ठीक है कि उस समय पत्थरके कोयले नहीं थे, किन्तु लकड़ीके कोयले तो आसानी से मिल सकते थे। यह सिकता यन्त्र उसी लकड़ीके कोयलेका है।

इस भट्टीमें निम्न लिखित सुधार और कर देना आवश्यक है एकतो धुआं निकलनेका मार्ग जैसा कि चित्र नं० ६ मे दिखाया गया है यह तो रहे, इससे भिन्न एक और भट्टीके ऊपर छत्राकार चिमनी लटका देनी चाहिए ताकि जो बलि कूपीपक्व रस निर्माण करते समय जलने लगता है वह उस छत्राकार चिमनीके भीतर होकर दीवारके अगीठी वाले मार्गसे होकर बाहर निकल जाय। इस छत्राकार चिमनीके लटकानेसे जितना भी बलि, सोमल आदिका धुआं बनता है वह रस शालामे नहीं फैलने पाता। हवा उसे ऊपरको खींच कर चिमनी मार्गने बाहर कर देती है। यह छत्राकार चिमनी वालुका यन्त्रसे४-६ अंगुल ऊंचा रखकर लटकाना चाहिए।

इस भट्ठी पर स्वर्णमाक्षिक आदि उपधातु भी भूनी जायं तो वलि धुएं के लगनेका भय नहीं होता ।

किन्तु, मालूम होता है कि इस यन्त्रपर रसनिर्माणका कार्य किसी २ वैद्यने ही किया होगा । वास्तवमें लकड़ी जलाने वाली भट्ठी पर काम करने की प्रथा पूर्वकालमे अधिक चल पड़ी थी, जबकि भारतमे जंगलोंकी बहुतायत थी । लकड़ी सस्ती भी मिल जाती थी, किंतु इस समय जबकि एक रुपए की डेढ़ दो मन लकड़ी मिलती है इस पर रस निर्माण करना अब तो बहुत द्रव्य साध्य काम हो रहा है । इसीलिये हमने इस प्राचीन आविष्कारके उद्धारकी चेष्टा की और यह जानने में लगे कि क्या हमारे कूपीपक्व-रस किन्हीं दूसरे ज्वलनशील वस्तुओंके उत्ताप पर बन सकते है ? और यदि कहीं पत्थरके कोयले, गैसके चूल्हे, विद्युत् भट्ठी आदिमे कूपीपक्व-रस निर्माण किए जायं तो क्या इनके गुणोंमे अन्तर तो नहीं आता ?

हम १९१५ ई. मे इस विषयके अनुसन्धानमे लगे । उस समय हम जिस किसी वैद्यसे पत्थरके कोयलेकी भट्ठी पर कूपीपक्व-रस-निर्माणकी बात कहते थे, वह उसका पहिला उत्तर यही देता था—कि यह शास्त्राज्ञा विरुद्ध बात है । दूसरे सब से बड़ी विरोधी बात यह सामने लाई जाती थी कि पत्थरके कोयले या गैसके जलाने पर जो अग्नि उत्पन्न होती है उस अग्निके रूप व गुणमे अन्तर होता है । इसीलिये उस पर बने कूपीपक्व-रस शुद्ध लकड़ीकी अग्नि पर बने रसकी कभी बराबरी नहीं कर सकते । लकड़ीके बने और पत्थरके कोयले पर बने रसोंके गुणोंमे अवश्य ही अन्तर होगा । हमने इन विरोधी बातोंकी कोई परवाह न करके गुप्त रूप से इसकी परीक्षा करनी चाही । पत्थरके कोयलेकी सबसे पहिली भट्ठी हमने सरमौर स्टेटकी नाहन नामक राजधानीमे बनाई । वहां हमारा रहना निरन्तर २-२½ वर्ष तक हुआ, वहां हम उस समय चिकित्साका काम करते थे । वहां जो भी कूपीपक्व-रस बनाए उनका उपयोग स्वयम् किया, तथा अन्य वैद्योंको भी वह रस बिना मूल्य देकर उनसे [illegible] गुणावगुणकी जानकारी प्राप्त करने

की चेष्टा की। जिन वैद्योंको हम यह रस देते थे—'उन्हें यह कभी नहीं बतलाते थे कि यह पत्थरके कोयले पर बने हैं'। क्योंकि सच बात बता देने पर सब से बड़ा यह डर था कि सम्भव है वैद्य इन रसोंको अशास्त्रीय रीति पर बना समझ कर अपने रोगियों को कभी न दें।

इस तरह ५ वर्ष तक लगातार गुप्त रूपसे हमारे द्वारा और बीसों वैद्योंके द्वारा इन रसोंका उपयोग जारी रहा। किन्तु किसी भी वैद्यने यह शिकायत नहीं की कि यह गुण नहीं करते। हमारे अनुभवमे भी यही बात आई कि लकड़ी पर बने और पत्थरके कोयले पर बने रसोंके गुणोंमे जरा भी अन्तर नहीं होता। एक दो बार हमने यह भी किया कि रस निर्माणार्थ जो कज्जली तय्यार की थी उसको दो भागोंमे बांट कर दो शीशियोंमे डाल कर बालुका यन्त्रमे रख कर एकको पत्थरके कोयलेकी भट्ठी पर बनाया, दूसरेको लकड़ीकी भट्ठी पर। पत्थरके कोयलेकी अग्नि तीव्र होती है, इसलिये वह रस जल्दी बन गया। किंतु लकड़ीकी भट्ठीका रस देरसे बना। दोनोंके रंग, रूप और गुणमे कोई अन्तर नहीं मिला। वैद्य समुदाय जो इस बात पर विश्वास बनाये बैठा है कि लकड़ी की अग्निका उत्ताप और होता है तथा पत्थर के कोयलेका उत्ताप और, यह धारणा वास्तवमे भ्रान्ति पूर्ण सिद्ध हुई।

किसी ज्वलनशील वस्तुका हवाके ऊष्मजनकी उपस्थितिमे जलना अग्नि उत्पन्न करना है। बढ़े हुए उत्तापके जाज्वल्यमान रूपका नाम अग्नि है। अग्नि कोई और मूर्तिमान वस्तु नहीं। वास्तवमे जैसा कि हम उपोद्घातमे बतला चुके है कि उत्ताप, विद्युत्, प्रकाशादि यह सब शक्तिके ही भिन्न रूपान्तर है। उत्ताप जब किसी अज्वलनशील पदार्थके आश्रित होकर बढ रहा हो और उस पदार्थमे उत्तापकी मात्रा ५०० शतांशके लगभग हो गई हो तो उस पदार्थ का वर्ण लाल होना आरम्भ होजाता है। यदि उत्ताप ७०० शतांश पर पहुंच जाय तो वह पदार्थ धुंधला रक्तवर्ण दिखाई देने लगता है। यदि उत्ताप ८०० शतांश तक जा पहुचे तो उसकी लालिमा कुछ स्पष्ट भासने लगती है जिसको
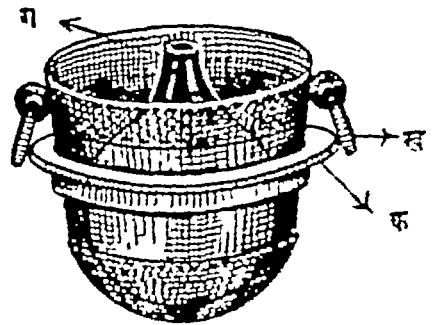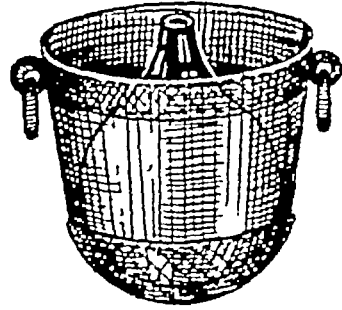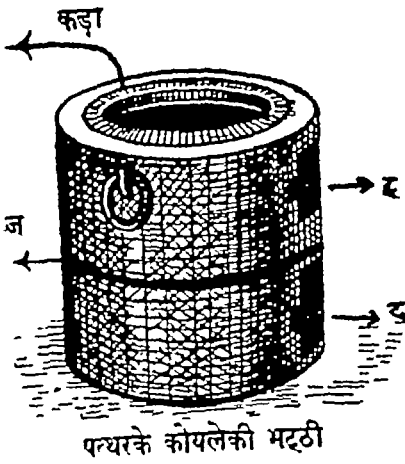
चित्र नं० ८

पत्थरके कोयलेकी भट्ठी

लोह निर्मित डोल (नाँदी)

काच की कूपी दृढ मिट्टी चढ़ी होने के कारण पिघलने पर भी नहीं टूटी

लोह निर्मित डोल जिसपर इन्जाने का कड़ा चढ़ा हुआ

चित्र नं० ९
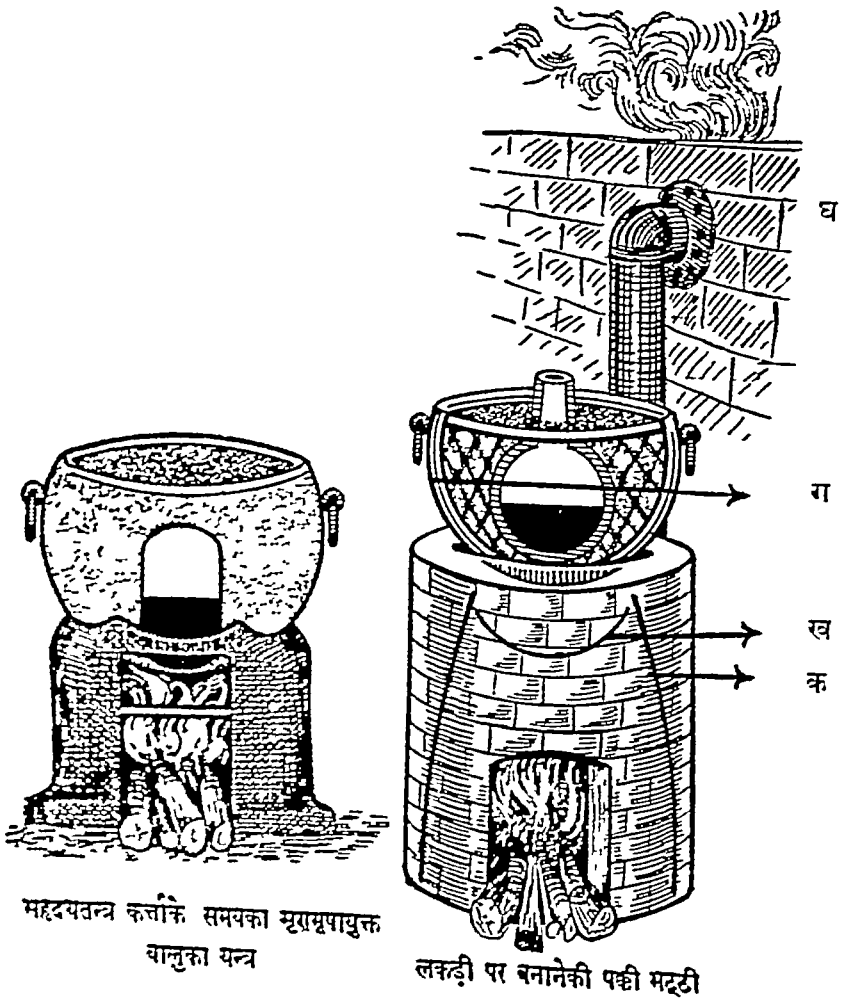
महदयतन्त्र कर्त्ताके समयका मृण्मूषायुक्त वालुका यन्त्र

लकड़ी पर बनानेकी पक्की भट्ठी

चेरी रक्त वर्ण कहते है। यदि वह उत्ताप बढ कर १००० शतांश पर पहुंच जाय तो उस पदार्थका वर्ण आभा प्रभा युक्त रक्त हो जाता है और कहीं उस पदार्थका उत्ताप बढ कर १२०० शतांश होजाय तो उसका प्रकाश चमकीला नारंगी वर्ण होजाता है और इससे भी अधिक उत्ताप बढ कर १३०० शतांश तक जा पहुंचे तो वह पदार्थ स्वेत प्रकाश देने लगता है। यदि कहीं उस पदार्थका और अधिक उत्ताप बढकर १४०० शतांश तक पहुंचे तो वहां से अति चमकीला श्वेत प्रकाश निकलता दिखाई देता है और वहां पर १५०० शतांश का उत्ताप हो जाय तो वह बिलकुल दहकता हुआ श्वेत प्रकाश रूपमें दिखाई देगा। इससे सिद्ध हुआ कि किसी पदार्थ पर उत्तापके बढ़ने से उत्तप्त पदार्थ से निकलने वाले प्रकाश का वर्ण बदलता चला जाता है। और यह परीक्षाओं से देखा गया है कि ५०० से ८०० शतांश का जहां उत्ताप रहता है वहां से उत्तापकी ही अधिक किरणें निकला करती हैं, जिसके इस रूपका नाम हमने अग्नि रख रक्खा है। वास्तव में अग्नि उत्ताप का ही एक पर्याय है और जो तीन प्रकारकी अग्नि शास्त्र ने मानी है उनका सम्बन्ध धार्मिक कृत्यों के लिये है। उन भेदोंका रस-शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं।

यहां तो देखना यह है कि कूपीपक्व रसों की रासायिक रचनाऐं कितने उत्ताप पर ठीक ठीक होती हैं। जैसा कि हम पिछले उपोद्घात में बतला चुके हैं कि रासायनिक परिवर्तन के लिये उत्ताप एक साधन है। अनेक पदार्थों के यौगिक निर्माण मे उत्ताप से सहायता मिलती है। कई पदार्थ तो बिना उत्ताप की सहायता के यौगिक मे परिणत ही नहीं होते। इसीलिये उन्हें यौगिक मे परिणत करने के लिये—वह उत्ताप चाहे लकड़ी के ज्वलनशीलता से मिल रहा हो या कोल गैस के या किसी अन्य गैस के जलाने से, या पत्थर के कोयले को जलाने से प्राप्त हो रहा हो—सब का उत्ताप उसे यौगिक मे परिणत कर देगा, यदि वह ठीक मात्रा मे दिया गया हो।

दो चार वस्तुयें जो परस्पर मिलने वाली हों उन्हें चाहे किसी ज्वलन-शील वस्तु के उत्ताप पर रखा जाय वह अवश्य यौगिक निर्माण करेंगी और उनकी रचना व रूप मे भिन्न भिन्न ज्वलन शील वस्तु के कारण कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब तक किसी निर्मित वस्तु के रचना रूप में अन्तर न पड़े, उसके गुण स्वभाव में कभी अन्तर नहीं आ सकता, यह सिद्धान्त की बात है। मरक कम्पनी का विद्युत भट्ठी में बना हुआ रस-सिंदूर (जो मकर-ध्वज के नाम से बिकता है) उतना ही गुण करता है जितना कि हमारा लकड़ी पर बनाया हुआ रस-सिन्दूर, इस मे जरा अन्तर नहीं देखा जाता। इसका कारण यही है कि दोनों के यौगिक एक हैं। वैद्योंको—लकड़ी से इतर अन्य ज्वलन शील वस्तुएं काम नहीं दे सकतीं, अब—यह भ्रम निकाल देना चाहिये।

आज बीस वर्ष से हम अपने कारखाने में पत्थर के कोयलों पर समस्त कूपीपक रस बनाते और बेंचते चले आरहे है। एक वर्ष मे अब समस्त रसों की तैयारी की औसत सात, आठ मन के लगभग होती है। यह सारे के सारे रस भारत के प्रत्येक प्रान्त के वैद्यों के पास भेजे जाते हैं और वह इनका उपयोग बराबर कर रहे हैं। भट्ठियों के चित्र भी प्रतिवार के सूचीपत्रों में बराबर दिये रहते हैं। खपत अधिक बढ़ जाने के कारण अब कुछ दिन से विद्युत भट्ठियों पर अधिक रस निर्माण का अनुभव लिया जारहा है। अभी छोटी छोटी विद्युत भट्ठियां बनाई गई है। जिनके चित्र इन्हीं भट्ठियोंके साथ आपको आगे देखने को मिलेंगे। देखो चित्र नं० ११ नीचे। यहभी काफी उपयोगी दिखाई देरही हैं। इसीलिये वैद्योंको अपनी सुविधाके अनुसार विना संकोच के जहां जैसी सुविधा हो वहां वैसी भट्ठी लगाकर कूपीपक रस-निर्माण करने चाहिये। कलकत्ता, बम्बई मे गैस सस्ती पड़ती वहां गैसीय भट्ठी लग सकती है। देखो चित्र नं० ११ गैसीय भट्ठी। अन्य स्थानों या छोटे छोटे शहरों में पत्थर का कोयला लकड़ी से सस्ता पड़ता है, वहां पत्थर के कोयले

की भट्ठी लगानी चाहिये। जहां विद्युत सस्ता हो वहां विद्युत की भट्टी लगा लेनी चाहिये। यह काम तो द्रव्य की बचत को तथा समय की बचत को देख कर करना चाहिये, न कि अन्ध परम्परा के आगे सिर झुका कर।

प्रत्येक प्रकार की नव्य भट्ठियां बहुत ही उपयोगी हैं। इन पर कूपीपक्व रस निर्माण करने पर द्रव्य और समय दोनों की काफी बचत होती है इस लिये हम इनका वर्णन क्रमसे करेंगे।

पत्थर के कोयले की भट्ठी—पत्थर के कोयले की भट्टी कई दृष्टि से लाभदायी है। प्रथम तो अग्नि तीव्र होती है, दूसरे खर्च कम होता है। तीसरे रसभी शीघ्र बनते हैं। रस-निर्माण मे जितना अधिक समय लकड़ी की भट्ठी पर लगता है पत्थर के कोयले की भट्टी मे इसका चौथाई समय भी नहीं लगता। इस तरह यह कई दृष्टि से लाभदायी सिद्ध हुई है। कुछ व्यक्ति शंका करेंगे कि जो रस ३ दिन मे बनने वाला हो उसे यदि एक दिन मे बना लिया जाय तो वह कभी उतना गुण नहीं करेगा, यह वास्तव में भ्रम है। इस भ्रमका निवारण हम आगे प्रसंगवस करेंगे।

पत्थर के कोयले की भट्टी चल और अचल दो प्रकार की बन सकती है। चल भट्टीको जहां चाहो उठाकर रख लो और वहीं उसपर लोह धातुका डोल चढाकर रस तय्यार करलो। देखो चित्र नं० ११। पत्थरके कोयले की भट्टीमे रस तय्यार करने पर कोई बाधा नहीं पहुंचती। इसीको शास्त्रकारने चलत् कोष्ठी के नामसे उल्लेख किया है। हम यहांपर सबसे पहिले चल भट्टीका वर्णन देकर फिर अचल भट्टी का वर्णन देंगे।

पत्थर के कोयले की चल भट्ठी—बाजार में कास्टिक सोडा के, संखिया के, कई प्रकार के रंग के छोटे बड़े लोहे के गोल पीपे या ढोल मिल जाते हैं। यह होते भी कई साइजके हैं। छोठी भट्टी के लिये छोटा और बड़ी भट्टी के लिये बड़ा ढोल लेना चाहिये। छोटी भट्टी के लिये एक हण्डर वेट का या २ हण्डर वेट का तथा बड़ी भट्टी के लिये चार हण्डर वेट का

ढोल ठीक होता है। वह ढोल एक तरफ से बन्द और एक ओर से थोड़ा या अधिक खुला होता है उन ढोलोंको लोहारके पास लेजाकर उनके दो मुंह बनवा लेने चाहिये। एक तो हवा जाने के लिये तथा जो राख संचित होजाती है उसे निकालने के लिये। दूसरा मुंह कोयला डालने के लिये। हवा जाने वाला नीचे का मुह तो पेंदे के साथ लग कर लग भग छः इंच या सात इंच चौरस बनवाना चाहिये। छोटी भट्ठी का मुंह ५ इंच चौरस होना चाहिये और ऊपर का मुंह ४ इञ्च या ५ इंच चौरस हो। ऊपर का मुह भट्ठीके ऊपर ऊंचाई से कुछ नीचे अर्थात् ३ इंच नीचे हटाकर बनवाना चाहिये। देखो चित्र नं० ८ (छ)

मुंह कट जाने पर उनके ढकने लोहार से ऐसे फिट बनवाने चाहिये कि वह पूरे पूरे बन्द होजायं। ढकने होंगे तो इस भट्ठी मे इच्छानुसार अग्नि कम ज्यादा की जा सकती है। ढकने न होंगे तो आप उत्ताप पर अपना अधिकार नहीं रख सकेंगे। और भट्ठी को उठाने के लिये दोनों ओर कुण्डे भी लगवा लेने चाहिये। भट्ठी बन जाने पर २॥-३ इंच व्यास का एक छेद धुआं निकलने के लिये पीछे की ओर ऊपर बनवा लेना चाहिये, और इस भट्ठी के मध्य मे देने के लिए लोहे के सरिये की एक गोल जाली बनवानी चाहिये। देखो चित्र नं० ८ (ज)

यह जाली इतने बड़े व्यासकी हो जो उस ढोलके भीतर फिट आसके। यह सामान बन जाने पर अग्निजित् ईंटें और अग्निजित् मिट्टी का गारा मगाकर किसी राजसे इस भट्ठी की २-२॥ इच मोटी गोल चुनाई करवानी चाहिये। अन्दर से इसकी परधि या व्यास इतना आना चाहिये जितना ऊपर फिट करने के लिये इंगलार्न का कड़ा बना हुआ है। देखो भट्ठी नं० ८ मे कड़ा अथवा जिस पर आपका लोहे का बना बालुका यन्त्र वाला डोल उस व्यास पर फिट बैठ जाय, इतनी परधीकी भीतरसे भट्ठी बनवानी चाहिये। देखो चित्र नं० ८ को।

नीचे से ईंटों की चुनाई करते हुए वहां तक आना चाहिये जहां पर आकर नीचे के दरवाजे का ऊपर का सिरा समाप्त होता है। देखो चित्र नं० ८ में ज का स्थान, यह स्थान नीचे के मुंह के सिरेसे आकर लगता है वहां जाली भीतर बिठाकर उस पर फिर आगे ईंटों की चुनाई करानी चाहिये। जालीके सींखचे दरवाजों की ओर लम्बाई मे हो—इस तरह जाली बिठानी चाहिए। आड़ी जाली बिठाने पर कोयला झाड़ने मे और राख गिराने मे कठिनता होती है। ईंटें जितनी कम चौड़ी गोलाईदार लगाई जायेंगी उतनीही भट्ठी हल्की बनेगी। जाली से लेकर भट्ठी का ऊपर का किनारा कमसे कम १० बारह इंच लम्बा रहना चाहिये ताकि कोयले काफी आ सकें। और जहा जाली लगी है वहां से ४-५ इंच ऊपर उठकर कोयला डालने का सकपाट दरवाजा लगा हो। देखो चित्र ८की भट्ठी छ। इस भट्ठी मे पीछे की ओर एक धुआंकश २-२॥ इंच व्यासका गोल मुंह बनाकर बाहर निकाला गया हो जो भट्ठी के भीतरके धुएंको बाहर पहुंचादे, देखो चित्र नं०९ मे घ धुआंकश चिमनी। उस भट्ठीके मुंहपर इस तरहकी चुनाई करते हुए जब भट्ठीके ऊपर पहुचें तो उसके मुंह पर इंग्लानका बना हुआ कड़ा बिठादें। देखो चित्र नं० ८मे कड़ा। कड़ा लगानेसे दो लाभ है—एकतो भट्ठी जल्दी टूटती नहीं। बार बार बर्तन चढ़ाते उतारते रहिये, भट्ठीको कोई जुम्मस नहीं आवेगी। दूसरे बालुका यन्त्रके पात्र भी उस पर बिलकुल ठीक बिठाए जा सकते हैं। ऐसी भट्ठी तय्यार होने पर इसे लगे हुए कुण्डोंके द्वारा उठा कर जहां चाहो रख लो। इस भट्ठी पर सख्त गर्मीके दिनोंमे इसके पास बैठ कर कूपीपक्व रस तय्यार करते रहो, आपको उसके उत्तापकी गर्मी नहीं सतावेगी। यह कितना बड़ा आराम है। देखो चित्र नं० १० की भठ्ठिया।

पत्थरके कोयलेकी अचल भट्ठी—यह भट्ठी रसायन शालाके स्थान में—जहां पर धुआंकश अंगीठियां लगाई गई है—उस अंगीठीकी दीवारसे १॥ फुट दो फुट आगे को हटाकर बनानी चाहिये। यह भट्ठी बाहरसे ३ फुट

चौरस चबूतरामें होनी चाहिए और भट्टीके भीतरकी गोलाई वालुका यन्त्रके लोह डोलकी गोलाई या भट्टीपर लगने वाले इंग्लार्न के कड़ेकी गोलाईमे ही हो और चल भट्टीके सिद्धान्त पर बननी चाहिए, अर्थात् एक सकपाट दरवाजा या मुंह हवाको जानेके लिये और एक कोयला डालनेके लिये। तीसरे दीवारकी ओर भट्टीके पीछे तीन इञ्च गोल धुआंकशका सुराख होना चाहिए, जो चिमनीके साथ लगा कर उस चिमनीको दीवारके धुआंकश अंगीठीके पोल मार्गसे जोड़ देना चाहिये, ताकि इस भट्टीका धुआं उस अगीठीके रास्ते से दीवारके ऊपरको चला जाय। देखो चित्र नं० ६ घ इस भट्टीमे भी अग्निजित् ईंटें लगानी चाहियें।

यह भट्टी बन जानेके बाद अंगीठीके सिरके ऊपर एक और बड़े घेरेदार धुआकश चिमनी लगानी चाहिए, देखो चित्र नं० १०

इस चिमनीकी नालीको भी दीवारके मध्य भाग तक पहुंचाकर उस अंगीठी के रन्ध्रसे मिला देना चाहिए जिसमे से धुआं बाहर दीवारके ऊपर जाता है। इस धुआकश चिमनीके सिरपर लगानेका यह लाभ है कि जब कूपीपक्व रसकी शीशी जल उठती है और उसका वलि जलने लगता है तो उसकी वाष्पें रसायन शाला में न फैलें—उसे रोकनेके लिए लगाते है। इससे धुआं चिमनीके रास्तेसे अंगीठी मार्गमे होकर ऊपर पहुंचना रहता है और वह दीवारके रास्ते बाहर निकल जाता है। इससे भट्टी पर काम करने वालेको वलिके धुएं का कोई कष्ट नहीं होता। कई वार शीशीका मुंह बन्द होकर अकस्मात् शीशी टूट भी जाय तो ऐसी दशामे उसकी उठी हुई बहुत सी वाष्प उस चिमनीके रास्ते सीधी ऊपर की ओर खिच जाती है उसका धुआं रसायन-शालामे नहीं फैल सकता। जब कभी शीशी टूट जाय तो भट्टीके नीचे और ऊपरके दोनों दरवाजे बन्द करके फिर वालुका यन्त्र सहित शीशीको भट्टीके ऊपरसे आसानीसे उतारा जा सकता है। ऐसी भट्टियों पर इस तरह मालकी हानि होनेसे बचाया जा सकता है। यह दोनो प्रकारकी भट्टियां वालुका यन्त्रके साइजके अनुसार एक दो या अधिक जितनी आवश्यकता हो बनवा लेनी चाहिएं।

"**वायवीय या कज्जल भट्टी**—जिन शहरोंमें कज्जल यौगिक वायु (गैस) को संग्रह रख कर उसे वायवीय नालियोंके द्वारा जलानेके लिए विक्रय किया जाता है वहां यह कोल वायवीय भट्ठियां भी लगाई जा सकती है। यह दो प्रकार की होती है एक 'तल वाही' रन्ध्र वाली, दूसरी पार्श्ववाही वायवीय रन्ध्र वाली। पार्श्वरन्ध्र वाली भट्ठी इस चित्रमें दिखाई गई है। देखो चित्र नं० ११ गैस वाली भट्ठी।

जिस समय चुटकियां घुमाकर गैस छोड़ा जाता है उस समय उसको दिया सलाई दिखाई जाती है तो जलती हुई दियासलाईके पास आतेही वह कज्जलवायु भकसे जल उठता है और थोड़ी देरमे वह वालुका यन्त्रको रक्त तप्तकर देता है। इसमें उत्तापकी मात्राको जानने के लिये पायरोमीटर नामक यन्त्रका उपयोग करते है, ताकि यह ज्ञात होता रहे कि वालुका यन्त्रमे कितना उत्ताप पड़ रहा है। देखो चित्र नं० ११ गैस वाली भट्ठी मे लगा पायरोमीटर।

इसमें गैस या वायु प्रवाह को कम करनेसे उत्ताप घट जाता है और उसके बढ़ा देनेसे उत्ताप बढ़ जाता है, इस भट्ठीमे झंझट कम होता है। खाली बालुका यन्त्रको टिकानेके लिये तथा बालुका यन्त्रको सीधे रखनेके लिये तिपाये या चौपाये चूल्हे तथा वालुका यन्त्रको दबाए रखनेके लिये दो चार चटखनियां काफी होती हैं। इन भट्ठियों पर किस आकारके पात्रमें कितना माल डाल देने पर कितनी देरमें यौगिक तय्यार हो जाता है? इसको प्रथम एक दो बार जांचना होता है। फिर आंख मींचकर रस बनाते चले जाइये, बड़ी आसानीसे कूपीपक्व रस तय्यार हो जाते है। बम्बई कलकत्ता जैसे शहरोंमें—जहां हरएक गली कूचेमे गैस पाइप पहुंचे हुए हैं यह भट्ठी लगाई जा सकती है। इन शहरोंमें जितनी प्रयोग शालायें हैं वह प्रायः इन्हीं कज्जल वायु प्रवाहके चूल्हों पर अनेक रासायनिक औषधियोंकी जांच करती रहती हैं। किन्तु पत्थरके कोयलेसे यह महंगी पड़नेके कारण लोग व्यवसायिक रूपमे इसे बहुत कम काम मे लाते हैं।

विद्युत भट्ठी—यह भट्ठी भी हमने स्वयम् निर्माण की है जिसकी विधि निम्न है। विद्युत भट्ठी बनानेके लिये सबसे पहिले वह मिट्टी तय्यार करनी चाहिए जो विद्युत व उत्ताप वाहक न हो। हमने तो हल्की पीत खड़िया मिट्टी लेकर इसको खूब कूट छान कर तय्यार किया, फिर इस मिट्टीका अष्टमांश एस्बेस्टस चूर्ण तथा अष्टमांश स्वेत अभ्रक का बहुत बारीक चूर्ण इसमे मिलाकर इसे पानीमे भिगोकर २४ घंटे पड़ा रहने दिया, अगले दिन इसे खूब कूट कर इसका गोला बनवा कर मिट्टीके बर्तन बनाने वाले कुम्हारको ले जाकर दे दिया, कि इसको चाक पर चढ़ाकर लोटाके आकारमे १ इञ्च मोटा दलदार लोटासा बना दो, जिसका व्यास शीशीके व्यासके आकारसे कुछ ही बड़ा हो। बर्तन बन जानेपर सुखाने के लिए रहने दिया। दूसरे दिन जब यह कुछ सूख गया (ठिठुर गया) तो इसको बीचो बीच लोहेकी बारीक तारसे काट कर दो भागोंमे विभक्त कर दिया। फिर जिस व्यासकी आकृतिकी विद्युत तारकी कुण्डली उसमे बिठानी है उसी आकारमे उस पात्रके भीतर कुण्डलाकृति चक्करदार गहराई बना ली—ताकि विद्युत तारकी कुण्डली उसके बीचमे घुसाकर फंसाई या बैठाई जा सके। फिर उसके दोनों ओर दो दो छेद कर दिए जहांसे तार बाहर निकल सकें। देखो चित्र नं० ११ मे विद्युत भट्ठी का आधा भाग।

जब पात्रको इस तरह तय्यार कर लिया तो इसके बिलकुल सूख जाने पर इसे फिर कुम्हारके पास ले जाकर दे दिया कि वह इसे अपने आवामे रखकर तीव्र अग्निमे पका दे।

कुम्भकारकी भट्ठीमे आंच तीव्र नहीं होती, इसीलिए यह पात्र पूरी तरह न पक सके तो उसके विद्युत सञ्चारके समय टूट जानेका डर रहताहै। इसीलिए यहां अच्छा प्रबन्ध न हो तो किसी ईंट पकाने वाले भट्ठेमे इसे रखकर वहां ईंटोंके साथ पकवा लेना चाहिए। या जहां चीनीके बर्तन बना कर पकाए जाते हैं वहां भेजकर इसको पकवा लेना चाहिए। ऐसी भट्ठी तय्यार हो जाने पर इस
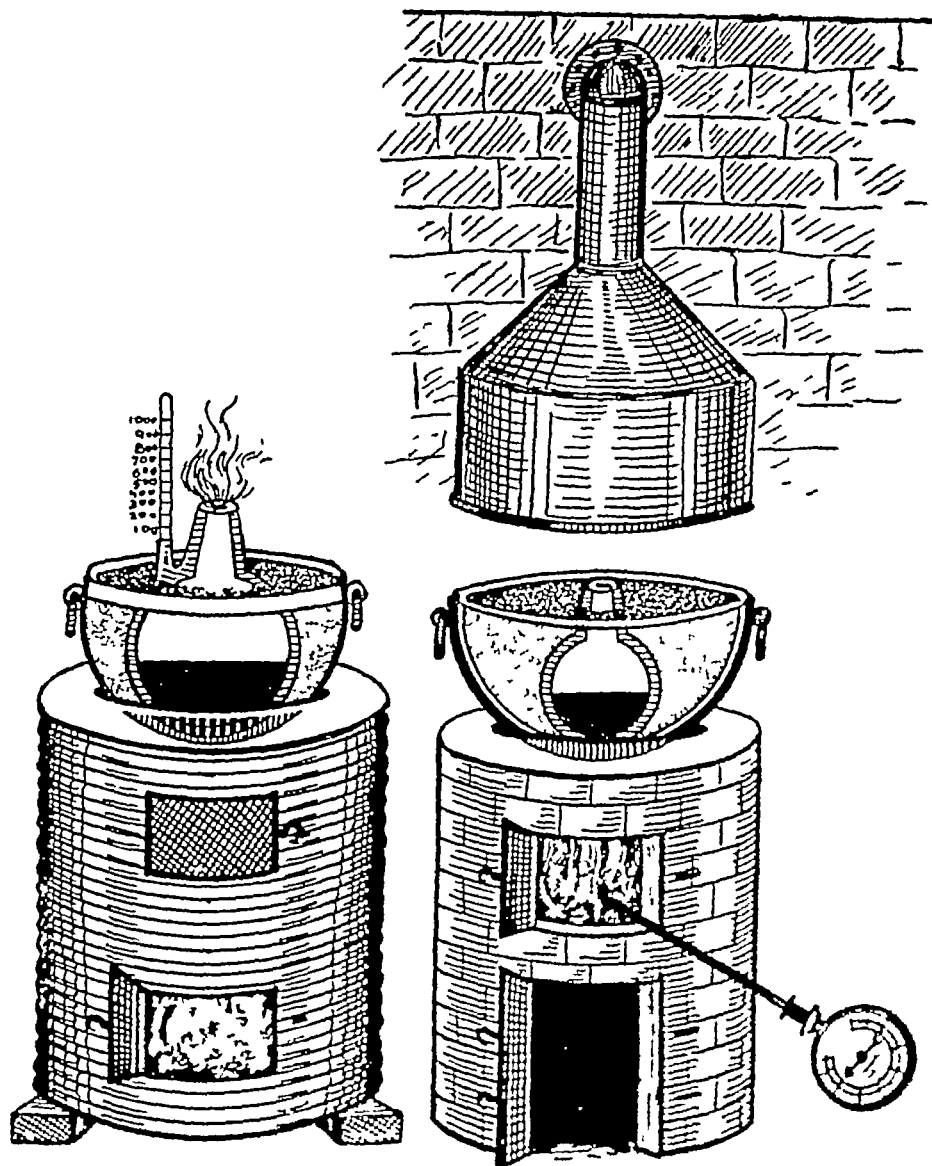
चित्र नं० १०

पत्थरके कोयलेकी भट्ठी   पत्थरके कोयलेकी भट्ठी

चित्र नं० ११

गैस वाली भट्ठी
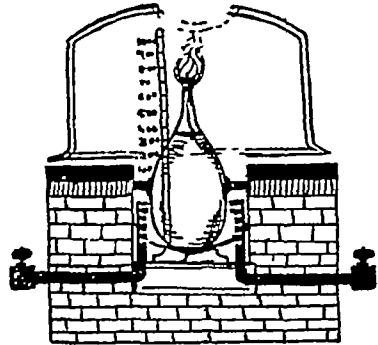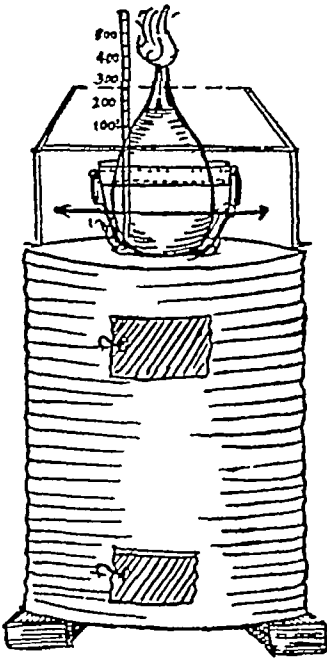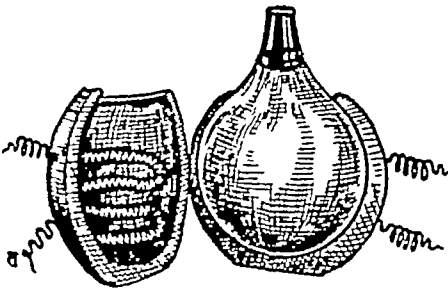
बिजलीकी भट्ठीका अर्ध भाग जो खोल कर दिखाया गया है

बिजली की स्वनिर्मित भट्ठी
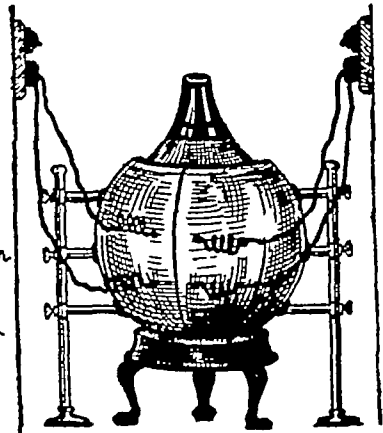
मिट्टीमें अब विद्युतका सञ्चार नहीं होता। यह पात्र बहुत अच्छा विद्युत व ताप रोधक बन जाता है। अब विद्युत वाहक कुण्डलीके लिये तार लेना चाहिये। कुण्डली बनानेके लिये दो प्रकारकी तारें आती है, जिनमे से एकतो यूरीका वायर और दूसरीको निकरम वायर कहते हैं। इनमे से ताप उत्पादनार्थ निकरमवायर नम्बर २२ की तार लेना चाहिये। भिन्न भिन्न नम्बरके तारोंकी कितनी लम्बाई लेने पर कितने बड़े व्यासकी कुण्डली—कितने उत्तापको उत्पन्न करनेके लिये बनानी चाहिये, तथा मन्द मध्य और तीव्र उत्तापको रखनेके लिये उस कुण्डली के किस किस स्थान पर रेग्युलेटर तारें लगाकर किस तरह उसे विभाजित करना चाहिये, यह बातें यहां ठीक २ नहीं बताई जा सकतीं। यह बातेंतो तापकी मात्राको देखकर उसके अनुसार पात्रकी आकृति और तारोंके कुण्डली या चक्र तथा उसकी लम्बाई आदिसे सम्बन्धित है। जिसे विद्युत शास्त्र ज्ञाता आसानीसे बतला सकते है। यह भट्टी जब बनानी हो किसी विद्युत शास्त्र ज्ञाताकी सहायता अवश्य लेनी चाहिये।

इस पात्रमें जब तारोंकी कुण्डली बिठाकर उसके दोनों सिरे बाहर निकाल कर उसका सम्बन्ध स्विच तथा रेग्युलेटर से कर दिया जाता है तो उन पात्रों के बीचमें वह आतशी शीशी—जिस पर दृढ मिट्टी चढ़ी हो—रखकर फिर दोनों पात्रोंको मिला कर एक कर दिया जाता है, देखो चित्र नं० ११ बिजली की स्वनिर्मित भट्टी। इसके मध्यमे जो सन्धि रहती है उसमे एक छोटेसे मार्गसे बालु या रेत भर दिया जाता है। बालु या रेत मिट्टी रहित साफ होनी चाहिये। फिर इस पात्रको एक लोहेके यन्त्र पर बिठा कर चटकनियों से कस देते है देखो चित्र नं० ११—नीचे के चित्रोंमे विद्युत यन्त्र।

उत्तापको देखने के लिये इस विद्युत भट्टीमे पायरोमीटर लगाना पड़ता है। जब भट्टी तयार हो जाय तो इसमे शीशी जमा कर इसे ही बालुका यन्त्र बना लिया जाता है, भिन्न बालुका यन्त्रके पात्रकी आवश्यकता नहीं होती। यदि भिन्न बालुका यन्त्र बनाकर उसे विद्युत भट्टीमे रखा जाय तो इसके लिए

बहुत बड़ी विद्युत भट्ठीकी आवश्यकता होती है और उस पर खर्च भी बहुत आता है, तथा विद्युत शक्ति भी अधिक खर्च होती है।

हमारी उक्त बनाई भट्टी एक तो बहुत छोटी है दूसरे इसमें विद्युत खर्चा भी कम आता है। तीसरे कूपीपक्व रस भी जल्दी तय्यार हो जाते हैं। क्योंकि विद्युत उत्तापके और शीशीके मध्य बहुत थोडा अन्तर रहता है, इसीलिये उत्ताप की मात्रा भीतर तक जल्दी फैल जाती है और रसको ठीक उत्ताप मिलने पर जब वह यौगिकमें परिणत होता है तो उड़कर शीशीके गले पर लगने लग जाता है। गलेके आस पास उत्ताप कम होता है, क्योंकि वहां शीशी नंगी होती है, इसीलिए माल और अधिक ऊपर नहीं जाता।

पत्थरका कोयला—वैद्यगण अभी तक पत्थरके कोयले पर काम नहीं करते, इसलिये उन्हें पता नहीं कि कौन सा कोयला इस भट्ठीके लिये चाहिये। क्योंकि पत्थरका कोयला एक प्रकारका नहीं होता, प्रत्युत भिन्न २ कामोंके लिए तीन-चार प्रकारका आता है। प्रायः बाजारमे यह कोयला निम्न लिखित नामोंसे बिकता है। कच्चा कोयला (कोक) हार्ड कोक, साफ्टकोक। इनमेसे वैद्योंको साफ्टकोक लेना चाहिए। साफ्टकोक भी दो प्रकारका होता है एक हल्का फूल सा दूसरा भारी ठोस। हल्का झावांदार साफ्टकोक कूपीपक्व रसके लिये सदा व्यवहारमें लाना चाहिये। हार्डकोक कभी काममे नहीं लाना चाहिए। क्योंकि एक तो हार्डकोक देरमे सुलगता है दूसरे इसकी अग्नि बहुत तीव्र असह्य होती है, इसीलिए कोयला लेते समय कोयलेकी जातिको देख व समझ कर लेना चाहिए, ताकि रसोंके बनानेमे कोई कठिनता न उत्पन्न हो।
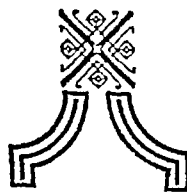
दूसरा अध्याय

अन्य उपकरण

भट्ठियां बन जानेके बाद उन पर चढ़ने वाले या रखे जाने वाले पात्रों पर विचार करना चाहिये। हम उसी क्रम से इस पर विचार करेंगे, जिस तरह भट्ठियों पर विचार कर आये है—

सत्वपातन पात्र व धातु द्रावण पात्र

शास्त्रोंमे सत्वपातनार्थ व धातुद्रावणार्थ पात्रके लिए मिट्टीमे कई अन्य वस्तुएं मिलाकर दृढ़ मूसा या कुठाली बनानेकी बहुत अच्छी विधियां बतलाई है। जिस समय हमारे देशमें न तो विदेशसे दृढ़ मूषा या कुठाली आती थीं, न यहां इन्हें कोई व्यवसायिक रूपमे बनाता था, तब तकतो प्रत्येक वैद्यको स्वयम् भिन्न भिन्न आकृतिकी मूषा व कुठालियां स्वयम् बनानी पड़ती थीं, किन्तु जबसे विदेशी कुठालियां आकर यहां बिकने लग गईं तब से वैद्योंने सत्वपातनके लिये या धातुद्रावणके लिये दृढ़ मूषा निर्माण करना छोड़ दिया। इस समय तो देशी और विदेशी दोनों प्रकारकी छोटी और बड़ी हरएक आकारकी कुठालियां काफी

सस्ती मिल जाती हैं, इसीलिये यह विद्या लुप्त होती जा रही है। किन्तु हम उसके बनानेकी विधिको प्रमाण देकर उस प्रथा को बनाए रखना चाहते हैं—

मृदस्त्रिभागो लवणाद्द्विभागौ भागश्च निर्दग्ध तुषोपलादेः।
किट्टार्ध भागं परिकुट्य वज्र मूषां विदध्यात् खलु सत्त्वपाते॥

रसकामधेनु।

अर्थ—मिट्टी तीन भाग, निमक २ भाग, जले हुए तुष एक भाग व राख एक भाग, मण्डूर आधा भाग इन सबको गीला कर खूब कुटाई करे, जब देखे कि यह सब एक जान होगये है इनकी मूषा या कुठाली बनाकर धूपमें सुखाले।

सत्वपातनके लिए कुठाली बनानी हो तो बहुत बडी बनावे और धातुएं गलानी हों तो जितनी धातु हो उसके अनुसार कुठाली की रचना कर ले।

एक सरल विधि—खड़िया मिट्टी जिसमें अभ्रकके कण चमकते रहते हैं देखनेमें वह बदामी रंगकी होती है। उसकी टिकियां १० पन्द्रह तोलेकी बनी हुई आती है, उसको कूट कर छान लें और उसमें रुई डाल कर उसे पानीसे सान कर गोला बना—उसकी हथौड़े से इतनी—कुटाई करें कि रूई मिट्टीमें मिल जाय, इसकी इच्छानुसार मूषा या कुठाली बना लें, यह धातु गलाने और सत्वपातनके लिये काममें लाई जा सकती है। नहीं तो १ नम्बरसे लेकर १० नम्बर तककी बडी कुठालियां तथा धातु द्रावणार्थ छोटी कुठाली बाजार में आम मिल जाती हैं। जहां से चाहो खरीद कर उसी समय उनको व्यवहारमें लाया जा सकता है।

भूमिकोष्ठी पात्र—

खल्वं लोहमयं शस्तं मर्दकं चैव लोहजम्।
तदभावे शिलोत्थं वा योग्यं खल्वं च मर्दकम्॥

रसरत्नाकर वादिखण्ड।

अर्थ—तप्त खल्व के लिये खरल लोहेका होना चाहिये और मूसली भी लोहेकी हो, यदि लोह खरल न मिले तो उसके स्थान पर पत्थर का

खरल ले या किसी और चीजका जो काम दे सकता हो उसे लेवे और उसी चीजका मूसला भी हो।

इस खरलकेही अनुसार भट्टीका ऊपरी भाग हो जहां खरलको बैठाना है। खरलके अनुसार ऊपरका घेरा होना चाहिए ताकि वह उस पर जमाकर बैठाया जासके, उसे उस पर फिट बिठा देवे और जब आवश्यकता पड़े इससे कामले।

सिकता यन्त्र पात्र—

पञ्चाढक वालुका पूर्णे भाण्डे निक्षिप्य यत्नतः।
पच्यते रस गोलाद्यं वालुका यन्त्र मीरितम् ॥

रसेन्द्र चूड़ामणि।

अर्थ—कांच कूपी या मूषा का गोला रखकर जिस पात्रमे पाच आढ़क बालु आसके ऐसे पात्रमे बालु भरकर रसको सिद्ध करे। ऐसे यन्त्रको बालुका यन्त्र कहते है इसीको सैकत यन्त्र भी कहते है।

बालुका यन्त्रके लोह पात्र पर कुछ विचार—

कुछ वैद्योंकी यह धारणा पाई जाती है कि लोहका पात्र—जो बालुका यन्त्रके लिए लिया जाता है उस पात्रमे शास्त्र विधानके अनुसार अग्नि नहीं लग सकती। वह अग्नि पर चढते ही जल्दी उत्तप्त हो जाता है और जल्दी ही कूपीपक्क रसको तीव्र अग्नि लगने लगती है। शास्त्रकी जो यह आज्ञा है कि मन्द, मध्य और क्रमसे तीव्र अग्नि देना चाहिए, यह शास्त्र विधान इससे पूरा नहीं होता। इसी धारणाके आधार पर रसायनसारके कर्ताने भी इसकी निन्दा की है। यथा—

लोह नांदी न निर्मेया वालुका यन्त्र कर्मणि।
मृन्मयी यत्न संसिद्धा विधेया सिद्धि हेतवे ॥

रसायनसार।

अर्थ—वालुका यन्त्रके लिए लोहकी नांदी न बनावे। मिट्टीकी ही नांदी लेकर उससे यत्न पूर्वक कार्यकी सिद्धि करे।

इसी प्रसंगमे उक्त ग्रन्थकारने बतलाया है "कि लोह पात्रके वालुका यन्त्रमें बने चन्द्रोदयादि गुण नहीं कर सकते।" क्या यह मत ठीक है ? यह विचार बिलकुल एक पक्षका है। जिस व्यक्तिने लोहके डोल बनवाकर उसको वालुका यन्त्रमें उपयोग ही न किया हो, वह वैद्य यह कहनेका कैसे साहस कर सकता है कि इसमें मन्द, मध्य, तीव्र अग्नि नहीं लग सकती। न इस लोह पात्रमे बने रसही गुण कर सकते हैं।

लोहेके डोलोंमें वालुका यन्त्र बना कर पत्थरके कोयलेकी भट्ठी पर उसे चढ़ा कर जितनी कम से कम अग्नि चाहो दी जा सकती है और जब चाहो तीव्र से तीव्र तर अग्नि दे सकते हो। अग्निको मन्द, तीव्र रखना भट्ठीकी रचना और उसके हवा मार्ग के प्रवेश द्वारको न्यूनाधिक खुले रखने पर निर्भर है। भट्ठीका द्वार जितना कम खोला जायगा उतनी ही कम अग्नि लगेगी, इसमें लोह पात्रका कोई दोष नहीं।

जो रस निर्माण कर्ता लकड़ीकी अग्निको स्वाधीन नहीं रख सकते, अर्थात् उत्ताप पर उनका एकाधिकार नहीं रहता, उन्हें यह दोष दिखाई देते है। इसीलिए वह पात्रको दोषी समझने लगते हैं, या उनसे उस पर रस नहीं बनते होंगे।

यदि लोह पात्र और मृत्तिका पात्रकी तुलना की जाय तो लोह पात्रकी अपेक्षा मिट्टीके पात्र अवश्य त्रुटि पूर्ण सिद्ध होते हैं। एक तो मिट्टीकी नांद उत्तापकी इतनी अच्छी वाहक नहीं होती, इसीलिये उसके नीचे पेंदेमे छेद करना पड़ता है। छेद करनेका यही अभिप्राय है कि शीशीके तलमे अग्नि अधिक लगे। मिट्टीकी नांद बहुत कम उत्ताप वाहक होती है, इसीलिये अधिक ईंधन खर्च करना पड़ता है, यह एक बड़ा भारी दोष है, दूसरे कम उत्ताप लगनेके कारण जो रस एक दिनमें तय्यार होने वाला हो उसे बननेमे कई २ दिन लग जाते है, यह दूसरा भारी दोष है। तीसरा इसके टूट जानेका सदा भय रहता है। कई वैद्य यह कहेंगे कि शास्त्राज्ञा तो यह है कि—

क्रमतश्च त्रिचतुराणि पंचकानि वा वासराणि ज्वालन ज्वालया पाचनीयमिति । रसेन्द्रचिन्तामणि ।

अर्थ—विधि पूर्वक तीन चार या पांच दिन तक अग्नि देता रहे। जब किसी कूपीपक्व रसोंका तीन, चार या पांच दिन पकानेका विधान हो फिर वह रस एक दिनमें किस तरह पक सकता है ? यह बात बहुतसे वैद्योंके समझमें नहीं आ सकती। वैद्य, शास्त्रप्रमाण विरुद्ध बात पर एक तो विश्वास ही नहीं करते। दूसरे उन्हें सबसे बड़ा भय यह लगा रहता है कि कहीं रस कच्चा न रह जाय। यदि ऐसा हो तो लाभ की अपेक्षा हानि होनेका अधिक भय रहता है। उन्हें तो इतना साहस नहीं होता कि स्वयम् किसी सचाईको देखें, इसीलिये वह शास्त्र मार्गसे वाहर जानेका साहस नहीं करते।

किन्तु हमने यह साहस किया और लोह पात्र बनाये।

लोह नांदी कैसी हो ?

पांच आढ़क अर्थात् २३ सेरसे ऊपर रेता नांदीमे डालनेके लिये शास्त्र आदेश करता है, इतना रेता बड़ी नांदीमे ही आ सकता है। यह तो आप जानते ही होंगे कि जितनी बड़ी नांदी होगी और जितना अधिक रेता होगा उतना ही वह अधिक देरमे तपेगा और उसके लिये ईंधन भी उतनाही अधिक जलाना चाहिये। यदि इतनी बड़ी नांदी लेनी हो तो उसमें रखने वाली शीशी भी घड़ेके बराबर होनी चाहिये और उसमे कूपीपक्व रस भी २० सेर डाला जाय, तब तो इस नांदीसे सबका सम्बन्ध ठीक बंध जाता है, किन्तु जहां शीशी हो पाव भर रसकी या आध सेर रस डालने वाली, वहां उसके रखनेके लिये नांदी हो इतनी बड़ी कि जिसमें २०–२५ सेर रेता भरा जाय, यह क्या असम्बद्ध बात नहीं ? इस पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुंचे है कि शास्त्रवर्णित नांदी पात्र शीशीके अनुसार नहीं है। यही नहीं, बारम्बार प्रयोग करते रहने पर हमें यह ज्ञान हुआ है कि बालुका यन्त्रके लिये बड़े पात्रकी कोई आवश्यकता नहीं।

पात्र शीशीके अनुसार हो—शीशीकी गोलाईसे पात्र पौना या १ इञ्च गोलाईमे बड़ा होना चाहिए। हमने पहिले तो एक सूत मोटी चद्दरके गोल पेंदेके डोलवत डोल बनवाये। जिनकी ऊंचाई १० इञ्च और व्यास ऊपरसे ७–८ इञ्च तथा पेंदेकी गोलाई शीशीकी गोलाईवत् रखी, डोल तो ठीक बने, किन्तु प्रयोगोंसे पता लगा कि पतली चादरके डोल दो तीन वार चढ़ाने के वाद जल जाते है और टूट जाते हैं। इसके वाद नीचेका तला २–२½ सूत मोटा तथा ऊपरका भाग पौना सूत या आधा सूत मोटी चादरका लगवा कर बनवाया। यह डोल १५-२० वार तक काम देने लगे। हम आज तक यही पात्र काममे लाते हैं। देखो चित्र न० ८ लोह निर्मित डोल।

कांचकी शीशियां एक जैसी नहीं होतीं, इसलिये हमने यह डोल भी छोटी शीशियोंके लिए छोटे और बड़ी शीशियोंके लिये बड़े बनवाए और हरएक डोलके दोनों ओर–उन्हें उतारने चढ़ानेके लिये–कड़े लगवाये हैं ताकि इन्हें आसानीसे उतारा व चढ़ाया जा सके। इन डोलोंकी गहराई उतनी ही रखी है जितनी ऊची शीशीकी होती है अर्थात् शीशीकी गर्दन डोलके बराबर ही रहती है। देखो चित्र नं० ८ (ग)

इन डोलोंमे जितनी जल्दी चाहो कूपीपक्व रस तय्यार कर सकते हो। सेरों रस हम इन पर ५–६ घंटेमे उतार देते हैं। यह डोल भट्ठी पर चढ़ाते समय आधे भट्ठीमे उतार देने चाहिये अर्थात् जहां कड़ा लगा हुआ है वहा तक भट्ठीके भीतर चला जाना चाहिये देखो चित्र नं० ६ (ख)

डोल या वालुका यन्त्र भट्ठीके भीतर आधा चला जाय तब उसे बिठा देना चाहिये ताकि पात्रको चारों ओर से पूरी पूरी अग्नि लग सके।

इस पात्रकी कुछ विशेषतायें—

एक तो इस लोह पात्रके जल्दी टूटनेका भय नहीं होता, दूसरे यह उत्ताप वाहक अच्छा होनेसे जल्दी गरम होकर रेता और शीशीको उत्तप्त कर देता है, इसीसे कूपीपक्व रस जल्दी तय्यार हो जाते हैं। तीसरे हल्का होनेके

कारण इसे उतारने चढ़ानेमे कठिनता नहीं होती। यदि अकस्मात् शीशी टूटभी जाय तो इसे शीघ्र उतार सकते है। चौथे यह पात्र अग्निवाहक होनेके कारण भट्ठीसे उतरते ही जल्दी ठण्डे होजाते है। इसीलिये मालकी हानि बहुत नहीं हो पाती। इसतरह से यह वालुका यन्त्रके लिये लोह पात्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

कूपीपक्क रस निर्माणके लिये शीशी कैसी होनी चाहिये ?

कई वैद्य कहेंगे कि शीशीके लेनेमें कोई विशेषता देखनेकी क्या जरूरत ? काम करते करते हरएक बातकी विशेषताका पता लगता चला जाता है। कूपीपक्क रसके लिये शीशीका चुनाव भी सावधानीसे करना चाहिये। क्योंकि इसमे भी कई गुण दोषोंका पता काम करने पर लगता है।

वैद्योंका प्रायः यह ख्याल पाया जाता है कि आतशी शीशी किसी विशेष कांचकी बनी होती है, जो जल्दी अग्नि पर टूटती या गलती नहीं। वह विशेष प्रकार की बढ़िया मोटे दलकी आतशी शीशी ढूंढते फिरते हैं, फिर गर्दन भी जिसकी खूब लम्बी हो, उसे वह पसन्द करते हैं। हम भी आरम्भमे कुछ ऐसे ही विचारके पोषक थे, किन्तु भट्ठियोंपर रस उतारते उतारते पता लगा कि हम बहुत भूल पर थे।

क्या आतशी शीशियां विशेष प्रकार की भी आती है ? खोज करने पर ज्ञात हुआ कि कुछ आतशी शीशियां विशेष अग्निसह विलायत और जर्मनीसे आती हैं। जिनमे अम्लराज डाल कर अग्नि पर चढ़ा देते है और उसमे सुवर्ण गलाया जाता है या पारद आदिको परिश्रित करनेके लिएभी अग्निसह वैक्रान्तकी विशेष शीशियां आती है, इन्हें अग्नि परभी चढाया जाता है, यह शीशियां अधिक मूल्यवान् होती हैं। हम एक बार यह शीशियां बम्बईसे लाये और इन पर रस उतारे किन्तु, रस तय्यार होने पर इन्हें तोड़ना पड़ा। एक शीशी एकही बार काम आई। दो दो रुपए एक एक शीशी पर खर्च किए और चढ़ी एक बार, बहुत महंगी दिखाई दी। हमने फिर देशी बनी हुई आतशी शीशी लेनी

आरम्भ कीं, यह शीशियां अच्छे मोटे दलकी होती थीं। इन्हें जब जब भट्टी पर चढ़ाया जाता पत्थरके कोयलोंकी अग्नि तीव्र होती है—मोटा काच होनेके कारण वह नीचेसे गल जाती थी। दूसरे जो कपरौटी उस समय इन शीशियोंपर चढ़ाते थे, वह कांच गलने पर उस माल (रस) को साध नहीं सकती थी, इस तरह रसकी हानि होती थी। हम इसपर अनुभव लेने लगे। हमने काचकी आतशी शीशी बनाने वालेसे कहा कि तुम बहुत पतली हल्की काचकी शीशी बनाकर लाओ, जिसका तल अत्यन्त पतला कागजकी तरह हो। उसने कहे अनुसार शीशी तय्यार कर दी। हमने उस पर विशेष प्रकारकी मिट्टी बना कर विशेष विधिसे चढ़ाई और उसको सुखाकर अग्नि पर चढ़ाया। कांच अत्यन्त पतला था, गला तो अवश्य, परन्तु वह बहुत पतला होनेके कारण बह न सका। उसी स्थान पर लगा रह गया। किन्तु मिट्टी दृढ़ चढ़ी हुई थी, इसीलिये मालको कोई हानि न पहुची। कूपीपक्व रस बनता रहा, जब शीशी उतार कर तोड़ी गई तो शीशीके गलने परभी मिट्टीकी दृढ़ताने उसे सुरक्षित रखा, इस बातका ठीक बोध मिट्टी उतारने पर हुआ। देखो चित्र न० ८ तबसे ही हम आतशी शीशी पतले तलकी लेने लगे।

शीशीकी गर्दनभी लम्बी नहीं होनी चाहिये—कूपीपक्व रस निर्माण करते समय इस बातका भी पता चला कि जो रस बनते हैं वह कूपीके बहुत ऊंचाई पर जाकर नहीं लगते, प्रत्युत तलसे कोई तीन चार इञ्च ऊचाईपर जाकर शीशी के आसपास लगने लग जाते है, अधिक तीव्र अग्नि हो तो उस समय रस पांच इञ्चकी ऊचाई तक उड़कर पहुंचते है। हां, बलि नौसादर आदि अवश्य अधिक ऊपर जाकर लगते है। यदि शीशी की गर्दन लम्बी हो तो बलि, नौसादर आदि पदार्थ उस लम्बी गर्दनके मार्गमें भर कर गर्दनका सारा रास्ता दूर तक रोक लेते हैं, इससे प्राय· शीशी टूट जाती है। क्योंकि शीशीको यह बलि व नौसादर आदिकी वाष्पही अधिकतर तोड़ देती है। यदि बलि, नौसादर आदि जो यौगिक निर्माणसे अधिक उस शीशीमें विद्यमान रहते है वह निकल जायं

और फिर शीशीका मुंह निर्मित रसों द्वारा बन्द भी हो जाय तो प्रायः उसकी वाष्पें शीशीको नहीं तोड़तीं प्रत्युत वह आसपास वहीं जमती चली जाती है। हां ! अकस्मात कहीं मात्रासे अधिक अग्नि देदी जाय तो बात और है।

बारम्बार रस तय्यार करते रहनेसे यह परिणाम प्राप्त हुआ कि शीशीकी अधिक लम्बी गर्दन हानिकर है। इसीलिये हमने लम्बे गर्दनकी शीशी इस्तेमाल करनी बिलकुल छोड़ दी। हमारी रसायन शालामे अब तो १ इंच गर्दन की शीशियां प्रयोगमे आती है, उन्हें हम स्वयम् आर्डर देकर बनवाते है और वह बहुत पतली होती है। देखो चित्र नं० ८ मे डोलके भीतर रखी हुई छोटी गर्दनकी और पतले तलकी शीशी। यह कूपीपक्व रस निर्माणमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। दूसरे हम यह शीशियां लेते भी साधारण कांचकी है। अनुभवसे देखा गया है कि यह शीशियां किसी भी कांचकी बनी हों, सब ठीक होती हैं और अच्छा काम देती है।

कांच कूपीका व्यवहार कबसे हुआ ?

इस बातका जब अनुसन्धान किया जाय तो इसकी खोज से प्राचीन रस वादके इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और ग्रन्थोंकी प्राचीनता व अर्वाचीनताको समझनेका एक अच्छा प्रामाणिक सुगम साधन हाथ आजाता है।

हमने जहां तक खोज की है उस खोजसे इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि रसवादमे कांचकूपीका उपयोग ईस्वीकी दसवीं शताब्दीमे हुआ। इससे पूर्वके लिखे रसवादके ग्रन्थोंमे कांचकूपीका उपयोग नहीं पाया जाता। इससे पूर्वके ग्रन्थोंमे कूपीपक्व रस मृत्तिकाके बने अन्ध मूषामे रखकर तुषाग्निमें निर्माण किये जाते थे या तुला यन्त्रमें रखकर उसे बालुका यन्त्रमे पचाते थे। बालुका यन्त्रका विधान भी ९वीं शताब्दीके ग्रन्थोंसे आरम्भ होता है। ८वीं शताब्दीके ग्रन्थोंमे बालुका यन्त्रका भी उल्लेख नहीं मिलता। उन समयोंमें पारद गन्धक

कज्जलीको या अन्य धातु अधातु मिश्रणको पिष्टि कहते थे और इस पिष्टिकी भस्म बनानेके लिये गर्भ यन्त्रका उपयोग करते थे। यथा—

गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिका भस्म कारकम्।
चतुरंगुलं तु दीर्घेण विस्तारेण तु त्र्यंगुलम्॥
मूषां तु मृण्मयी कृत्वा सुदृढां वर्तुलां बुधः।
विंशभागानिल्लोणस्य भागमेकन्तु गुग्गुलोः॥
सुश्लक्ष्णां पेषयित्वा तु तोयं दत्वा पुनः पुनः।
मूषालेपं दृढं बध्वा लोणार्धां मृत्तिकां बुधः॥
करीषं तुषाग्निना भूमौ मृदु स्वेदेन स्वेदयेत्।
अहो रात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मताम व्रजेत॥

रसेन्द्र मगल।

अर्थ—पिष्टीको भस्म करनेके लिये गर्भ यन्त्रका वर्णन करता हूं। मिट्टी को कूटकर सुदृढ गोल चार अंगुल लम्बी और तीन अंगुल चौड़ी मूषा बनावे। उसमें पिष्टी रख कर उसके मुहको ढक्कनेसे पूरा पूरा ढक कर १०भाग मिट्टी, २० भाग निमक और एक भाग गुग्गुल मिला कर खूब कूट कर उससे मूषाकी सन्धिका लेपन करे। फिर उसे भूधर यन्त्रमें रख कर मृदु अग्निसे ४ प्रहर या १२ प्रहर स्वेदन करे तो पारद भस्म हो जाता है

वालुका यन्त्रका विधान रस हृदयमें मिलता है। किन्तु रससिंदूर बनानेके लिये या गन्धक जारणके लिये उस समय तक उन्हें भी कांचकूपी प्राप्त नहीं हुई थी। इसीलिये गोविन्द भगवत् पादाचार्यने बलि जारणका विधान अन्धमूषामें दिया। यथा—

तद्बीजं लघुमात्रं रसराजे संस्कृते पूर्वम्।
मूषायां खलु दत्वा दशगुणं च गन्धकं दाह्यम्॥
अथवा वालुका यन्त्रे सुदृढं चतुर्दशांगुल मूषायाम्।
मध्ये सूतं कृत्वा लघुतर पुट योगतां पिहिता॥

रसहृदय।

अर्थ—पहिले संस्कृत किए हुए पारदमे थोड़ा थोड़ा बलि मूषामे देकर उस पारदमे दशगुणा तक गन्धक जारण करे। अथवा १४ अंगुलकी लम्बी मूषा बना कर उसके मध्य पारदको डाल कर सम्पुट कर वालुका यन्त्रमे उस मूषाको रखकर लघु पुट द्वारा बलि जारण करे।

ज्ञात होता है कि छोटी मूषा टूट जाती होगी, इसलिये १४ अंगुलकी लम्बी मूषा बना कर उसमे बलि जारण करनेकी विधि बताई।

रस हृदय तन्त्रके पश्चात्‌के ग्रन्थोंमे कांचकूपीका उल्लेख मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि कांचकूपीका उपयोग दशवीं शताब्दीमें आकर—जब कि भारतमें कांचके बनने बनानेका व्यवसाय आरम्भ हुआ अथवा कांचके पात्र अरब, मिश्र, फारस आदि देशोंसे यहां आकर विकने लगे—उस समयके रसायनिकों द्वारा इसका उपयोग हुआ।

कांचका आविष्कार हमारे देशका नहीं, यह बात सदा पाठकोंको ध्यानमे रखनी चाहिये। इसका आविष्कार मिश्र, अरब, मेसोपोटामिया आदि देशोंमे हुआ और वहीं सबसे पूर्व इसके बर्तन व बोतलें तथा कूपियां बनने लगीं। और जब वहांके रसायनिकों द्वारा इनका उपयोग चल पड़ा, तब धीरे धीरे इन की चर्चा अन्य देशों तक फैली। धीरे धीरे इनका प्रचार भारतमे भी होगया। हमारे यहां जब तक कांच नहीं आया था तब तक किसी किसीने लोहेकी कूपी अवश्य बनाई थीं। यथा—

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशांगुल मानतः।
वक्त्रद्वय मुखं नालं तन्मुखे परिविन्यसेत्॥
एकस्यां सूतकं शुद्ध मन्यस्यां शुद्ध गन्धकं।
सूतकस्याधस्तोयं गन्धाधो वह्नि दीपनम्॥
अनेन च क्रमेणैव षड्गुणं गन्धकं दहेत्।

रसेन्द्र मंगल।

अर्थ—१२ अंगुल लम्बी पेंचदार लोहेकी दो मूषा बनावे उस मूषाके एक भागमें शुद्ध पारद, और दूसरे भागमें शुद्ध बलि रख कर उसको बन्द कर देवे और जिस ओर मूषामें पारा हो उसके तल भागमें जलका स्पर्श बना रहे तथा गन्धक वाले भागके नीचे अग्नि जलावे। इस प्रकार पारदमें ६ गुणा गन्धकका जारण करे।

ज्ञात होता है कि हमारे देशमें जब तक कांच नहीं आया था, कूपीपक्व रस दृढ़ मृत्तिकाकी मूषा या लोह मूषामें बनाते थे। किसी किसीने चांदी, सोनेकी कूपी या मूषाका भी उपयोग बताया है। जब कांचकी कूपियां मिलीं तो और सबोंका उपयोग जाता रहा ! कांचकूपी वालुका यन्त्रके लिए सबसे अच्छी सिद्ध हुई। फिर भी किसी किसी ग्रन्थकारने प्रथाको बनाये रखा और निम्न लिखित वस्तुओंके पात्र लेने का आदेश दिया। यथा—

काच मृत्तिकयोः कूपी हेम्नोऽयस्तारयोरपि।

रसकामधेनु।

अर्थ—कांच, मिट्टी, सोना, लोहा और चांदीकी कूपी होती है।

हमने पेंचदार लोह निर्मित कूपिया भी बनवाई है, किन्तु यह अधिक दिन नहीं चलतीं। बलि प्रभावसे यह बलिकेतमें परिणत होती रहती हैं, उसके जल्दी बलि यौगिकमें परिणत हो जानेके कारण इस कूपीकी पपड़ियां उतर उतर कर वह जल्दी टूट जाती है, इसीलिए कांचकूपीसे सस्ती किसी धातुकी कूपी नहीं पड़ती।

वैद्योंको यह वहम छोड़ देना चाहिए कि आतशी शीशी विशेष अग्नि सह कांचकी ही बनी होती है। कांच कितना भी रद्दी देसी किसमका क्यों न हो सबकी कूपिया काम दे जाती है। उस पर रस बनाते समय जरा भी फिकर नहीं करना चाहिये। हां ! उस पर केवल दृढ़ कपरौटी मिट्टीका कोट अवश्य चढ़ा होना चाहिये, जो कांचकी निर्बलता को अपनी सबलतासे साधे रख सके।

कांचकूपीका लाभ—कांचकूपी होनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें रस चढ़ानेसे रसोंका पृष्ठ भाग सुन्दर सुचिक्कण बनता है जो अन्य पात्रमे नहीं बन सकता। दूसरे कांचकी शीशी रस निर्माणके समय एकाएक टूटती भी नहीं। मृण्मूषाके अधिक टूटने और तिड़कनेका सदा भय रहता है, इससे वाष्पशील रसोंके लीक कर जानेका भय बना रहता है।

शीशी पर कपरौटी (मिट्टी) चढ़ाना—प्रायः इस समय जिनको देखो आतशी शीशियों पर फटे पुराने कपड़ेके टुकड़े इकट्ठे करके मुल्तानी मिट्टी या गाजनी मिट्टी—जो बहुत चिकनी होती है—उसमे कपड़े सान कर उस कपड़े की सात तह चढ़ा देते है। प्रायः ऐसी कपरौटीकी शीशी अग्नि पर जाकर दृढ़ नहीं रहती। उसका जब कपड़ा जल जाता है तो उस कपरौटीकी तह फट जाती है और कहीं भीतरसे वाष्पका जरा जोर पड़े तो शीशी फौरन टूट जाती है, इसीसे प्रायः वैद्योंसे अनेक कूपीपक्व रस नष्ट होजाते है।

शास्त्रकार कहता है कि वालुका यन्त्रके लिये कांचकूपी पर दृढ़ अग्निसह मृत्तिका चढ़ानी चाहिये। यथा—

वालुका यन्त्र कूप्यन्तु मृत्तिकया दृढाग्नि सहं कार्यम्।

रसपद्धति टीका।

अर्थ—वालुका यन्त्रमे चढ़ने वाली कूपी पर ऐसी मृत्तिका चढानी चाहिये जो दृढ़ उत्तापका सहन कर सके।

पूर्वकालमे कैसी दृढ मिट्टी कांच पर चढती थी? इस पर ग्रन्थकार कहता है—

तुषं भाग द्वयं ग्राह्यं भागेकं वस्त्र खण्डकम्।
मृदं च त्रिगुणी कृत्य जलं दत्वा विमर्दयेत्॥
नरकेशं समं कृत्वा किञ्चित्तावत्प्रकुट्टयेत्।
यावत् सिक्थ समाभासं मृत्पिण्डं जायते तथा॥
यथा न शुष्कतामेति तथा यत्नं समाचरेत्।

एवं सप्त दिनादूर्ध्वं मृद योगे प्रयोजयेत् ॥
कूपिकादि विलेपार्थं यन्त्रादेश्च भिषक् क्रमात् ।

शैवाल भट्ट्य मते ।

अर्थ—धानके तुष (भूसी) दो भाग, रूई १ भाग, मिट्टी ३ भाग इन तीनोंको भिगो कर रखदे, फिर इसमे सिरके बाल बारीक बारीक काट कर थोड़े से मिला कर इसको खूब कूटे । इस मिट्टीकी कुटाई इतनी करे कि सब चीजें मिलकर मोम जैसी चिकनी एक रूप बन जायं। फिर इस मिट्टीको सूखने न दे, सात दिन तक भीगी रहने दे, बीच बीचमे फिर भी कुटाई करता रहे, फिर इसे काममें लावे। इसे शीशी पर चढ़ावे या अन्य मूषा आदि पात्र बनावे। मालूम नहीं वैद्य लोग ऐसे निश्चित दृढ़ विधानको छोड़ कर आधुनिक कपड़ मिट्टीकी रद्दी प्रथाको कैसे अपना बैठे ।

यहां पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ग्रन्थकारका मृत्तिका कहनेसे मुलतानी मिट्टी का अभिप्राय नहीं है, बल्कि ग्रन्थकारने मिट्टीके सम्बन्धमे भी खूब छान बीन कर किस मिट्टीको ग्रहण करना इसका भी निर्देश किया है । यथा—

स्निग्धा पिच्छली गुर्वी कृष्णा मृत्सर्व पूजिता ।
पीता वा तद्गुणैर्युक्ता सिकतादि विवर्जिता ॥

टोडरा नन्द ।

अन्यच्च—मृत्तिका पाण्डुरस्थूला शर्करा शोण पाण्डुरा ।
चिराध्मानं सहा साहि मूषार्थे मति शस्यते ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—मूषा बनाने या कपरौटी चढ़ानेके लिये मिट्टी कृष्णवर्णकी भारी, चिकनी, ल्हेसदार जिसमें रेता ककड़ न हो ऐसी लेनी चाहिये। ऐसी मिट्टी न मिले तो पीली मिट्टी जो उक्त गुणोंसे युक्त हो वह लेवे ।

मिट्टी पीलाई लिये हुए या ललाई लिए हुए हल्की पीले वर्णकी हो जिस मे कुछ बालु विद्यमान हो और जो अधिक अग्निको सह सके ऐसी मिट्टीकी मूषा बनावे या आतशी शीशी पर चढ़ावे ।
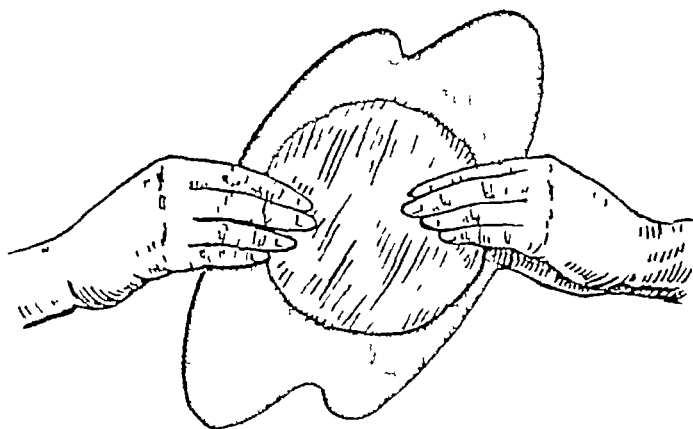
कपरौटी मिट्टी की टिकिया

पृष्ठ ४६ चित्र नं०
१२–१३

कपरौटी मिट्टी तय्यार करना और शीशी पर चढ़ाना।
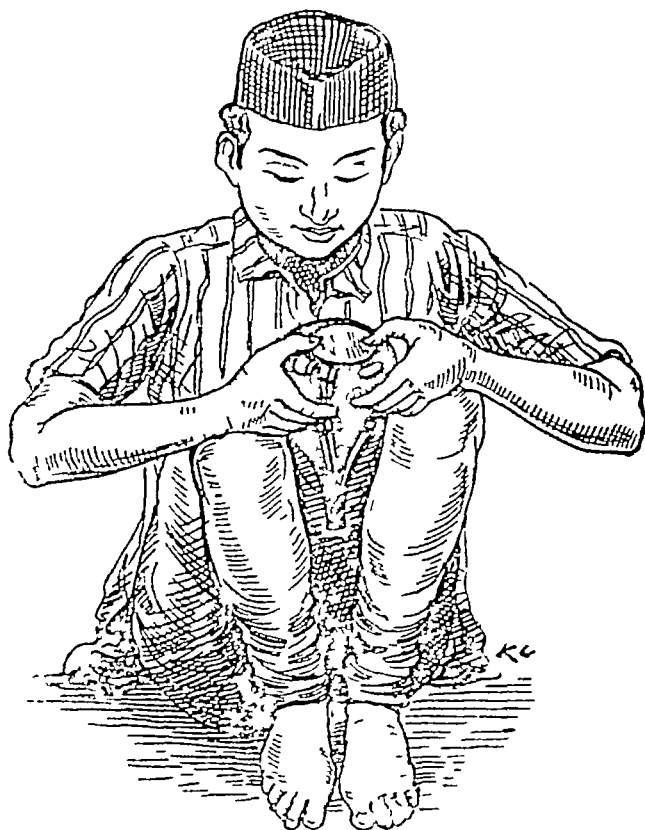
शीशी पर कपरौटी चढ़ाने की विधि

मिट्टी बहुत प्रकारकी होती है, किन्तु कपरौटीके लिये या मूषा निर्माणके लिये जो मिट्टी शास्त्रकारने बतलाई है, ज्ञात होता है वैद्योंने उसे समझनेमे गलती खाई है। चिकनी लेसदार पाण्डुवर्ण मिट्टीको—वह मुल्तानी या गाजनी मिट्टी—जिसके परतदार टुकड़े बाजारमे मिलते हैं—समझ लिया। वास्तवमें ग्रन्थकारका इसकी ओर सकेत नहीं था, यह पांडुवर्ण वह मुल्तानी मृत्तिका नहीं, प्रत्युत इससे भिन्न वह मिट्टी जिसकी मूषा निर्माणमे आवश्यकता पड़ती है इसकी ओरही शास्त्र का संकेत था। इस मिट्टीको पीलीमिट्टी, घरियामिट्टी, खड़ियामिट्टी आदि कहते है। इसीका अंगरेजी नाम केओलीन या पोटरीक्ले है। यह चीनीके बर्तन बनानेके काम आती है या सुनार लोग इसकी घरिया भी बनाते हैं। इस मिट्टीकी बाजारमें टिकियां मिलती है या चौरस कटी हुई बड़ी बड़ी २५—३० सेरकी ईंटें होती हैं। यह खड़िया मिट्टी आम मिल जाती है। इसमे अभ्रकके कण चमका करते हैं, पीसने और छानने पर भी अभ्रकके कण निकलते हैं, इसे अग्निमें पकाओ तो यह पक कर सफेद हो जाती है। कपरौटी चढ़ाने के लिये इसी मिट्टीको लेना चाहिए और मूषा या घरिया बनानेके लिये इससे भी अच्छी मिट्टी अग्निजित् मिट्टी होती है जो वर्णमे भूरी, पीली होती है। इसी अग्निजित् मिट्टीका वर्णन शास्त्रकारने काली मिट्टीके नामसे किया है। पर अब तो मूषा (घरिया) बनानेके लिये मिट्टीकी आवश्यकता नहीं होती, बाजारसे बनी बनाई मूषा मिल जाती है।

कपरौटीकी मिट्टी कैसे तय्यार करनी चाहिये ?—

शास्त्रकारने तो इस मिट्टीमे तुष, घोड़ेकी लीद, वस्त्र, सन, लोहकिट्ट आदि मिलाकर उसे कूटकर मिट्टी तय्यार करनेका जरा कठिन सा विधान बतलाया है, जो प्रयोगमे बहुत ही अच्छा व दृढ सिद्ध होता है। किन्तु हमारे अनुभवमे इससे भी सरल विधिसे बनी कपरौटी मिट्टी निम्न लिखित आई है।

उत्तम कपरौटी विधानकी मिट्टी तय्यार करना—एक सेर खड़िया मिट्टी पीलीको कूटकर छलनीमे छानलें, फिर इसमे ८—१० तोला रूई

मिलाकर इस मिट्टीको सानें, जब रूई मिल जाय तो पानी डालकर फिर इसकी कुटाई इतनी अधिक करें कि रूई मिट्टीमे मिलकर एक जान हो जाय। यदि इसको एक दो दिन भीगी रहने दें तो इसमें और भी दृढ़ता बढ़ जाती है। यदि ताजी ताजी कूट कर बना लें, तब भी यह काम दे जाती है। इस कूटे हुए मिट्टीके लोंदेको बना कर गीले कपड़ेसे ढंक रखें। जब जरूरत हो इसकी मूषा या शीशी पर कपरौटी चढ़ा लें।

कपरौटी निम्न लिखित रीतिसे चढ़ानी चाहिये—२—३ तोला मिट्टीको लेकर उसकी बहुत पतली रोटी बना लेनी चाहिये, जितनी पतली अंगुलियोंसे दबा कर रोटी बन सके उतना ही अच्छा है। देखो चित्र १२

मिट्टीकी रोटी—जब यह रोटी बनजाय तो शीशीका मुंह नीचेकी ओर करके शीशीको दोनों घुटनोंके मध्य दबा कर शीशीके पेंदेको जरा पानी चुपड़कर उस पानी लगे स्थान पर यह मिट्टीकी रोटी रखकर अंगूठेसे इस मिट्टीको शीशी पर बिठा व फैला देना चाहिए। देखो चित्र नं० १२ आगेभी अंगूठेसे जरा दबाकर मिट्टीकी रोटीके किनारोंको फैलाते रहना चाहिए। जब एक टिकिया उस शीशीपर चढ़ कर फैल जाय तो उसके बगलमें दूसरी टिकिया रखकर और उस प्रथम चढ़ी टिकियाके साथ मिला कर इसे चढ़ाना चाहिये। इस तरहसे शीशी पर उसकी तह नीचेसे फैलाते हुए शीशीकी ग्रीवाकी ओर बढ़ना चाहिए। बहुत पतली कपरौटी हो तो इसके सूख जाने पर दूसरी बार एक और पतली तह इसी पर और चढ़ा देनी चाहिए और मिट्टीके सूख जानेपर जहां जहां रन्ध्र पड़ जायं वहां और मिट्टी लगा कर लेप कर देना चाहिये। यदि मिट्टी चढ़ा देनेके बाद वह कुछ घण्टा रखी रखी ठर जाय या अर्ध शुष्क हो जाय उस समय—आप चाहें तो किसी चिकने कटोरेसे या कांचके चिकने तलसे उस शीशीकी मिट्टीको धीरे-धीरे घर्षण करते रहें तो उसपर बहुत बढ़िया पालिशभी होजाती है और शीशी पर मिट्टी ऐसी बैठ जाती है कि रस तय्यार होनेके बाद शीशी तोड़ने पर भी वह मुश्किलसे शीशीको छोड़ती है। ऐसी शीशियां यदि तीव्र अग्नि लग

कर गल भी जायं तो मिट्टीकी तह जुम्मस नहीं खाती । वह दृढ़ताके साथ जैसी की तैसी बनी रहती हैं । हमने बहुत बार देखा है कि अत्यन्त पतले तल वाली कांचकी शीशी यदि चढ़ाई जाय और वह गल जाय तो शीशी तोड़ने पर नीचे कांचका नामोनिशान नहीं मिलता । किन्तु ऐसी दशा होने पर भी कूपीपक्व रस बिलकुल ठीक उतर आते है, रसोंकी जरा हानि नहीं होती ।

कांच जब गलता है तब तल भागमें ही—जहां आंच खूब लगती है गलता है । एक बार हमने एक मोटे तलकी शीशी चढ़ा दी, वह गल गई और गल कर उसमे बड़े बेढंगे रूपकी सिकुड़न पड़ गई । शीशी तोड़नेसे पूर्व हम मिट्टीको भिगो कर उसकी तह प्रथम भिन्न कर लेते है । मिट्टी उतारने पर शीशीके अन्दरसे जो आकृति दिखाई दी उसका चित्र चित्रकारसे बनवाया, इस चित्रको पाठक देखें, शीशीमे माल तो ऊपर लग चुका है, खाली नीचे शीशीका भाग गल कर सिकुड़ गया है देखो चित्र नं० ८ ।

कपरौटी मिट्टी इतनी दृढ़ होती है कि इसकी एक तह भी आतशी शीशी पर चढ़ा दी जाय तो फिर रसकी हानिका भय नहीं रहता । आजकल हमारे कारखानेमे अब तो एक ही तह मिट्टीकी शीशी पर चढ़ाई जाती है और मिट्टीकी कुटाई दो तीन घण्टे कुल कराई जाती है मिट्टीके लोंदेको नरम रखा जाता है । ऐसा क्यों करते हैं ?

पहिले जब मिट्टीकी अधिक कुटाई करके खूब दृढ़ मिट्टी चढ़ाते थे तो जब रस तय्यार हो जाता था और शीशीको तोड़ना पड़ता था, तो शीशी परसे मिट्टीको छुड़ाना कठिन हो जाता था । शीशीकोमिट्टी इतनी दृढ़तासे चिपक जाती थी कि छुटती न थी । रस तोड़कर निकालते समय बहुत कुछ मिट्टी और कांच उस रसमे मिल जाता था । किन्तु जबसे मिट्टीकी थोड़ी कुटाई कराकर उस नरम मिट्टीकी इकहरी तह चढ़ा देते हैं, तबसे कूपीपक्व रस तय्यार हो जाने पर शीशीकी मिट्टीपर पानीकी धार डालकर उसे भिगो देते है और उसके भीग जाने पर चाकूसे खुर्च देते हैं, तब वह मिट्टी आसानीके साथ शीशीसे भिन्न होजाती है

और जब शीशी खाली रह जाती है तो उसे पुनः जलसे धोकर बिलकुल मिट्टी रहित करके फिर तोड़ते हैं। इससे शीशीमें से रस निकालने में सुविधा रहती है। मिट्टी और कांच उसमें नहीं मिल पाते।

क्या सारी शीशी पर मिट्टी चढ़ानी चाहिये ? बहुतसे वैद्य सारी शीशी पर मिट्टी चढ़ाते हैं, बल्कि गर्दन तक मिट्टीसे लपेट देते हैं। वास्तवमें सारी शीशी पर मिट्टी चढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं। गलेसे दो तीन अंगुल नीचे तक मिट्टी चढ़ानी काफी है। जहां पर आकर माल जमता है उससे ऊपर मिट्टी न चढ़ी हो तो कोई हानि नहीं। क्योंकि जब किसी शीशीका मुंह बन्द हो जाने पर शीशी टूटती है तो वह ऊपरसे ही नहीं टूटती, प्रत्युत फटती है, जिसकी दरारें दूर दूर तक फैल जाती हैं। यदि नीचेका तल भाग दृढ़ हो और ऊपरका भाग भी दृढ़ हो तब भी दबी हुई वाष्पके चापसे शीशी अवश्य फूट जाती है। वाष्प दबाव तो इतना प्रबल होता है कि लोहेके दृढ बायलरों को तोड़ डालता है फिर मिट्टीकी शीशी की क्या शक्ति कि उसे रोक सके। इसीलिए, मिट्टीकी दृढ़ताकी जो आवश्यकता होती है वह तल भागके लिए ही होती है, जहां आंच लग कर शीशीके पिघल जानेका सदा भय रहता है। पिघलने वाले स्थान पर यदि मिट्टी दृढ़ चढ़ी हो तो कांचके गलने पर वस्तु बाहर नहीं जाती।

लोह डोलमें बालु कितना डालना चाहिये ?—जब शीशीपर मिट्टी चढ़ जाय और उसको सुखा कर उसमें कूपीपक्व रस डाल दिया जाय तो उसे डोलके बीचोबीच रख कर छना हुआ बालु उस शीशीके आसपास डाल देना चाहिए। बालु या रेत स्वयम् ही चारों ओर फैल कर उस शीशी और डोलके मध्य भागको पूर्ण कर देता है। शीशीके आस पास बालु इतना भरना चाहिए कि शीशीकी गर्दनसे दो तीन अंगुल नीचे रहे। शीशीके गले तक कभी रेत नहीं भरना चाहिए, प्रत्युत जहां तक मिट्टी चढ़ी हो वहीं तक बालुसे ढकना चाहिए। ज्यादा बालु होने पर यदि शीशी टूट जाय तो शीशीको उस बालु

के दबावसे जल्दी निकालना कठिन हो जाता है। दूसरे अधिक बालु भरा हो तो जब शीशी टूटती है गरम बालु उसकी दरारोंके मार्गसे अन्दर घुस जाती है, इससे सारा माल उस बालुमें मिल जाता है। यदि कुछ शीशी नंगी हो और टूट भी जाय तो उसे निकालनेमें आसानी होती है। इसीलिए बालुका यन्त्र निर्माणमें सब काम विचार पूर्वक करने चाहिएं।

भट्टियों का उपयोग

यदि भट्टी लकड़ी जलाने वाली हो तो उसके मध्य भी अब सीखें डाल कर उस पर अग्नि जलाना बहुत अच्छा है। जाली बना कर उस पर छोटे छोटे लकड़ीके टुकड़े डाल कर जलानेसे इसका उत्ताप चूल्हाकृति भट्ठी की अपेक्षा बहुत अधिक रहता है। किन्तु लकड़ी जलाने के लिए भट्ठीकी जालीसे ऊपरका भाग कोयलेकी भट्टीकी अपेक्षा ऊंचा रहना चाहिए। और भी स्मरण रखना चाहिए कि लकड़ी जलनेके लिये हवाकी अधिक आवश्यकता होती है। यदि चूल्हेमें या भट्टीमें जाली पड़ी हुई हो तो भूमिके साथ लगकर जलने वाली लकड़ियोंकी अपेक्षा उसको अधिक हवा मिलती है, इसलिए वह अधिक जलकर ज्यादा उत्ताप उत्पन्न करती है। देखा गया है कि चूल्हा-कृतिकी अपेक्षा मध्य जालीदार चूल्हेमे रस निर्माण करते समय कम लकड़ी का खर्चा होता है। किन्तु इन चूल्होंमे धुआं निकलनेके लिये पीछे जरा बड़ा धुआंकश अवश्य लगा होना चाहिए। इससे चूल्हेमे धुआं नहीं भरता और आंच बराबर एक जैसी लगती रहती है। इस पर बालुका यन्त्र इस तरह बिठाना चाहिए कि बर्तनका आधा धड़ (भाग) उस चूल्हेके भीतर चला जाय। अर्थात् चूल्हेके ऊपरका आकार इतना बड़ा होना चाहिये जिसमें बालुका यन्त्र का डोल उसके भीतर आधा घुस जाय। फिर इसमें अग्नि जला कर रस सिद्ध करना चाहिये।

अग्नि पर अधिकार—कूपीपक्व रस निर्माण के समय यह बहुत ही आवश्यक बात है कि अग्नि या उत्ताप पर पूरा पूरा अधिकार रखा जाय। जब

तक अग्नि या उत्ताप पर अधिकार न रखा जायगा रसोंके निर्माणमें सदा बाधा बनी रहेगी।

चूल्हे पर रस बनाते समय उसके मुंह पर एक किवाड़ लोहेका लगा होना चाहिये या भिन्न बना होना चाहिये। ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसे उसके मुंह पर रखा जा सके। जब अग्नि तीव्र हो रही हो और उसे कम करनेकी आवश्यकता हो तो उस समय लकड़ी निकाल कर दरवाजा चूल्हेके मुंह पर लगा देना चाहिये। दरवाजा जितना खुला रहेगा उतनी ही कम उसमे हवा प्रवेश कर सकेगी। जितनी कम हवा जायगी, उतनी ही कम अग्नि जलेगी। कम हवा प्रवेश होने पर उत्ताप घट जायगा। इसको नापनेके लिये आरम्भमें वैद्यको पायरोमीटर अर्थात् तीव्र अग्नि मापक यन्त्रका प्रयोग करना चाहिये। इससे उत्तापकी मात्राका अच्छा अनुभव हो जाता है।

तीव्र अग्नि मापक यन्त्रका उपयोग—तीव्र अग्नि मापक यन्त्र दो प्रकार के आते हैं। एक तो चूल्हेके भीतर या जहां अग्नि जल रही हो वहां लगानेके। देखो चित्र नं० १० भट्टीके भीतर लगा हुआ यंत्र। दूसरे छोटे आते हैं जो एक लोह नाली या चोंगीमें पिरो कर बालुका यन्त्रमें नीचे तक पहुंचा कर खड़े कर दिये जाते हैं। वह बालुकाके उत्तापको बतलाते रहते हैं। यह यन्त्र विशेष धातु मिश्रणके बने होते हैं। भिन्न भिन्न कूपीपक्व रसोंको निर्माण करते समय भिन्न भिन्न मात्राके उत्तापकी आवश्यकता होती है। कौन रस कितने उत्ताप पर यौगिक निर्माण करता है और कब वाष्पीभूत होता है? इस बातका ज्ञान प्रत्येक वैद्यको अच्छी तरह होना चाहिए।

रस सिन्दूर २६० शतांश पर यौगिक बनाता है और इससे कुछ अधिक अर्थात् २७०—७५ शतांशके उत्ताप पर वह उड़ने लगता है और कूपीके गले पर जाकर लगने लगता है। यौगिक बन जाने पर जब वह उड़ रहा हो, इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उत्तापकी मात्रा २७०, २७५ शतांशसे अधिक न बढ़े, क्योंकि जब उत्ताप अधिक बढ़ जायगा तो उसकी वाष्प अधिक

वेगसे उठने लगेगी और वह शीशीके गलेसे ऊपर की ओर जाकर जमने लगेगी। यदि ऐसी दशामे शीशीका मुंह बन्द होजाय और अग्नि तेज बनी रहे तो शीशीके टूटनेका भय बना रहता है। क्योंकि जहां पर उन वाष्पोंके जमने के स्थान तक जब उत्ताप बढ़ जाता है तो वह वाष्प वहां न जमकर बाहर निकलने के लिये जोर मारता है, ऐसी ही स्थितिमें शीशियां फूट जाती हैं। यदि इस बातका ध्यान रखा जाय कि जब मुंह बन्द हो रहा हो तो ऐसे समय उत्ताप को घटा दे।

उत्तापको घटाने के लिये कोयले निकालने की आवश्यकता नहीं, केवल भट्टीका या चूल्हेका दरवाजा कुछ बन्द कर देना काफी है, बस उत्ताप घट जायगा। इस तरह शीशीके टूटने या रसके बिगड़नेकी कभी सम्भावना नहीं रहेगी, रस निरापद तय्यार होगा।

पत्थरके कोयले की भट्टीका उपयोग—पत्थरके कोयलेकी भट्टी उक्त बातोंका ध्यान रख कर ही बनाई जाती है। पत्थरके कोयलोंकी अग्नि अति तीव्र होती है और हवा इसको काफी मिलती रहे तो जहां पत्थरके कोयले जल रहे हों वहां उत्तापकी मात्रा ७००–८०० अंश तक बढ़ जाती है। इसीलिये उत्तापको स्वाधीन रखनेकी इच्छा से इसके हवा प्रवेश मार्ग पर चल द्वार लगा देते हैं। जब उत्ताप अधिक बढ रहा हो और उसे कम करनेकी आवश्यकता दिखाई दे तो उन द्वारोंको खिसका कर जितना चाहें बन्द कर सकते है। यदि उस हवाद्वारको बिलकुल बन्द कर दिया जाय तो भट्टीमे उत्ताप की मात्रा यहां तक घट जाती है कि कोयले ठण्डे पड़ जाते हैं।

गैसकी भट्टीका उपयोग—गैसकी भट्टीमें उत्तापकी न्यूनाधिकता गैस के प्रवाह पर निर्भर होती है। गैस प्रवाहको न्यूनाधिक करनेके लिये गैसकी नली के दोनों ओर पेंचदार दो चुटकियां लगी होती है, जिन्हें घुमानेसे गैसका न्यूनाधिक प्रवाह किया जा सकता है। जितना कम गैस या ज्वलनशील वायु छोड़ा जायगा उतना ही कम उत्ताप उत्पन्न होगा। ज्वलनशील वायुका प्रवाह जितना

अधिक बढ़ा दिया जायगा उतना ही अधिक भट्टीमें उत्ताप बढ़ जायगा, देखो चित्र नं० ११ दोनों ओर लगी चुटकी और गैस भट्टी।

विद्युत भट्टीका उपयोग—विद्युत भट्टीमें भी विद्युत धाराके प्रवाहको न्यूनाधिक करने पर उत्तापकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है। इसको अधिकारमें रखनेके लिये विद्युत यन्त्रमें धाराको कई स्थानोंमें विभक्त करके छोड़नेके लिये रेगुलेटर लगाए जाते हैं, जिन पर नम्बर १—२—३—४ लगे होते हैं। जिस तरह विद्युत पङ्खोंको चलाते समय रेगुलेटर हत्थीको एक नम्बर पर कर देनेसे पङ्खा बहुत धीमा चलता है। २ नं० पर हत्थी रखनेसे उससे तीव्र चलने लगता है और ३ नं० पर हत्थी रखनेसे और तीव्र तथा ४ नं० पर अति तीव्रतर होजाता है। यही बात विद्युत भट्टीमें है रेगुलेटरके नंबर घटाने, बढ़ानेसे उत्ताप न्यूनाधिक होता रहता है। विद्युत भट्टी निर्माण करने पर इस बातको प्रथम जान लेना चाहिए कि यह विद्युत भट्टी कितना अधिक उत्ताप दे सकती है तथा भिन्न भिन्न २ नम्बरों पर हत्थी रखनेसे कितना कितना भट्टीमें उत्ताप सञ्जनित होता है। इस बातका एक बार पूर्ण ज्ञान हो जाने पर और इस बातका पता रहने पर कि कौन सा रस कितने उत्ताप पर यौगिक बनाता है फिर इस भट्टीमें शीशी चढ़ा कर उसी मात्राके उत्ताप प्रद नम्बर पर रेगुलेटरकी हत्थी टिका कर विद्युत धारा छोड़ देनेसे अपने आप रस तय्यार होते रहते हैं। ऐसे समय आप कोई दूसरा काम करते रहिये, रस समय पर तय्यार हुआ मिलेगा। कभी शीशी टूटने, फूटने या रसके अपक्व रहनेका कोई भय न रहेगा। विद्युत भट्टी वास्तवमें सबसे उपयोगी चीज है, इससे अच्छी कोई भी भट्टी नहीं है। इससे उतर कर ज्वलन शील कज्जल वायु भट्टी है, उसमे उतर कर पत्थरके कोयलेकी भट्टीका नम्बर आता है और सबसे पीछे लकड़ीकी भट्टी रहती है।

रस निर्माणमें किस बातकी ओर अधिक ध्यान रखनेकी आवश्यकता है?—कूपीपक रस निर्माणमें सबसे अधिक इस बातकी ओर ध्यान रखनेकी आवश्यकता रहती है कि जब तक रस बन रहा हो उसे

जिस मात्रापर उत्ताप मिल रहा है उतनाही मिलता रहे। यदि उत्तापकी मात्रा बढ़ जायगी तो उसका वाष्पी भवन बढ़ जायगा और उत्ताप घट जायगा तो वाष्पी भवन भी घट जायगा, इसीलिए जबतक रस तय्यार होरहा है उत्तापकी मात्राको सदा एक सा बनाए रखनेकी आवश्यकता होती है, इसे ध्यानसे देखते रहना चाहिए।

जो व्यक्ति रसनिर्माणमे कुशल है वह इसी बातको समझे हुए होते हैं कि रस बनाते समय उत्तापकी मात्राको कैसे ठीक रखा जाय। जो उत्तापकी मात्राको समझते है और उस पर अधिकार रख सकते हैं वह मिट्टीकी प्याली तवे पर औंधी मारकर उस पर रस सिन्दूर बना सकते है। यह बात तो प्रख्यात है कि बंगालमे कई रस निर्माण कर्ता कविराज ऐसे हैं जो तवे पर रस सिद्ध कर देते है। कलकत्तेके आस पास गांओंमे कुछ कविराज रसनिर्माणका ही व्यवसाय करते है, वह रस बना कर कलकत्तेके बड़े बड़े नामी कविराजोंके हाथ सदा बेचते रहते हैं, उनका तो यह व्यवसाय है। इन रसनिर्माण कर्ता कविराजोंके हाथमे कोई कामरूप कमच्छाका जादू नहीं होता, वह उत्तापकी मात्राको सही समझे हुए होते हैं और कोई बात नहीं। हमारा अपना अनुभव है कि उत्तापका सही ज्ञान होजाने पर तथा किसी रसनिर्माणके समय उसके वाष्पी भवन होनेकी उत्ताप मात्राका ठीक ज्ञान बने रहने पर उसे निरापद तय्यार करना एक साधारण बात है। काम करते करते अब इस विषयका मुझे इतना अधिक अनुभव होगया है कि जो कूपीपक्व रस १०—१२ घण्टेमे—जितना—तय्यार किया जाता था उसे हम ६—७ घण्टेमे तय्यार कर देते हैं।

रसोंके तय्यार करनेमें क्या समयकी अवधि आवश्यक है ?

ग्रन्थोंमे रससिन्दूर, चन्द्रोदय आदि बनाते समय "**क्रमतश्च त्रिचतुराणि पञ्चकानि वा वासराणि ज्वलन ज्वालया पाचनीयमिति।**

अर्थात् क्रमसे मन्द, मध्य, खर अग्नि देवे तथा तीन चार या पांच दिन में उसे तय्यार करे, ऐसा आदेश दिया है। इसके अनुसार ही रस तय्यार

करना चाहिए ? ऐसा जो कहते है यह समयकी पाबन्दी अब नई भट्टियोंमे कोई आवश्यक नहीं रही।

जिस प्राचीन कालमें मिट्टीकी नांदीमे बीस २ तीस २ सेर बालू डाल कर लकड़ीके चूल्हे पर रस तय्यार किए जाते थे, इतने बड़े बर्तनोंको तपानेमे ही दिन नहीं तो—कई प्रहर अवश्य लग जाते थे। फिर लकड़ीकी अग्नि सुव्यवस्थित रूपसे कभी आंच नहीं देती थी। रात्रीको कहीं नौकर सो गया तो बस, चूल्हा ठण्डा हुआ ही समझिए। ऐसी दशामें क्या कभी एक आध दिनमे रस तय्यार हो सकते हैं ? हरगिज नहीं। इसीलिए उन्होंने समय निर्द्धारित किया। किन्तु जब चूल्हा बदल गया हो, बालुका यन्त्रके पात्र बदल गए हों, अग्नि देनेके तरीके बदल गए हों ऐसी दशामे क्या रस तय्यार करनेकी अवधि नहीं बदल सकती ? कुछ वैद्य यह शका उत्पन्न कर सकते है कि थोड़े समयमे तय्यार होने वाले कूपीपक्व रस ठीक गुण नहीं करेंगे। क्योंकि उनका परिपाक अधूरा रहेगा। जल्दीमे पका हुआ भोजन जिस तरह कच्चा पक्का बनता है, यही हाल रसोंका होगा। ऐसा अब समझना भ्रम है। क्योंकि जब घण्टोंमे तवे पर तय्यार करने वाले कविराजोंके रस गुण कर सकते है और उनका उपयोग सारे बगालमे हो रहा है, हमभी आज बीस वर्षसे अपने कारखानेमे पांच पांच सेर कूपीपक्व रस ६—७ घण्टेमें सिद्ध कर देते हैं, वह रस जब वैद्यों द्वारा उपयोग में आरहे हैं, तथा गुण कर रहे है और काफी मात्रामे बिकते है। यदि वह उपयोगी न हों तो उनकी खरीद बन्द हो जानी चाहिए। पर नहीं, हम उनकी खरीदमें वृद्धि पाते हैं। यदि हमे कूपीपक्व रस निर्माणमे सफलता न मिलती— यह कारखाना कभी न चलता और न यह पुस्तक कभी आपके हाथमे पहुचती। शास्त्र कथित अवधिसे पूर्व रस नहीं बन सकते, यह एक मिथ्या कल्पित भ्रम है जिसका निराकरण आगे किया जायगा।

कूपीपक्व रसनिर्माण करते समय उसकी अवधिका सारा श्रेय उत्ताप की मात्रा पर निर्भर है। उत्तापकी मात्रा ठीक लग रही हो और बना हुआ यौगिक

उस उत्ताप पर वेगसे वाष्पीभूत होरहा हो तथा उसके सीतलीभवन स्थानपर उत्ताप कम हो तो वह रस शीघ्र उड़ कर वहां जमता चला जायगा और वह रस ठीक समय पर तय्यार हो जायगा। उसमें कच्चापन या परिपाकमे कमी नहीं रहेगी। उत्ताप यौगिक निर्माणके योग्य होकर भी यदि वह वाष्पी भवन के लिए—जितना चाहिये—उतना न हो और वह यौगिक मन्द गतिसे उड़ रहा हो—जैसा कि लकड़ीके चूल्हेकी अग्निपर होता है तो उस सारे के सारे रसको उड़ते हुए कई दिन लग सकते हैं।

तो क्या जल्दी और देरसे तय्यार होने वाले रसोंके गुणोंमें अन्तर नहीं आता ?

कोई कूपीपक रस चाहे जल्दी बन रहा हो या देरमे बनने वाला हो, जब तक उन दोनों रसोंका यौगिक–निर्माण कालमे एक रूपका बनेगा अर्थात् यौगिक रचनामे कोई अन्तर न होगा, उन दोनों के गुणोंमे जराभी अन्तर नहीं पड़ सकता। यह रसायन शास्त्रका सर्व मान्य एक निश्चित सिद्धान्त है।

अग्नि अधिक दिन देनेका एक और कारण—रस सिंदूर निर्माण के समय ग्रन्थोंमें द्विगुण, चतुर्गुण, पड्गुण, शतगुण बलि जारण करनेका विधान पाया जाता है। प्राचीन समयमे तो बलि जारणका विधान भूधर यन्त्र कच्छप यन्त्र, गर्भ यन्त्र आदि अनेक यन्त्रोंमें होता था। जब बलि जारणकी क्रिया भिन्न कर ली जाती थी तब उस रसको कूपीमे भर कर पाक किया जाता था। यथा—

षड्गुण व शतगुण गन्धक जारणके सम्बन्ध में देखिये—

गन्धपिष्टिं हेमपिञ्ज्या समया वेष्टयेद्बहिः।
वस्त्रेण वेष्टयेद्गाढं सूताख्यं लोहसम्पुटे॥
निधाय पोटलीमध्ये सर्वं तुल्यं च गन्धकम्।
क्षिप्त्वा निरोधयेत्सन्धिं मृल्लोणेन च रोधयेत्॥

भूधराख्ये पुटे पक्त्वा जीर्णे गन्धं पुनः क्षिपेत् ।
षड्गुणे गन्धके जीर्णे शनै र्वस्त्रं निवारयेत् ।
पुनः पुनः समं गन्धं दत्वा जार्यं शनैः शनैः ॥
निःशेषं नैव कर्तव्यं प्रमादाद्याति सूतकः ।
एवं शतगुणे जीर्णे यन्त्रादुद्धृत्य पिष्टिकाम् ॥

रसरत्नाकर वादिखण्ड । ४ उप.

अर्थ—वलि पिष्टि अर्थात् कज्जलि और हेम पिष्टि दोनों बराबर लेकर मिला गोला बनाय वस्त्रमे लपेट उसके नीचे ऊपर बराबर वलि देकर उसे लोह सम्पुटमे रख कर उसकी सन्धि बन्द कर किसी मिट्टीकी नांदीमे रख कर उस नांदीको लवणसे पूरित कर भूधर यन्त्रमे उसे रख कर पकावे । जब वलि जीर्ण हो जाय तो फिर पारदको निकाल उसके बराबर वलि देकर इसी प्रकार वलि जारण करता हुआ षड्गुण वलि जारण करे। इसी प्रकार यदि शनैः शनै. वलि देता हुआ जारण करता चला जाय तो चाहे शतगुण तक वलि जीर्ण कर ले। किन्तु इस जारणमे ध्यान रहे कि कहीं प्रमादसे भूल होजायगी तो पारदके निकल जाने व पारा उड़ जानेकी संभावना है। इसीलिये शास्त्र कहता है कि जब पारेमे वलिका कुछ अश शेष रहे अर्थात् यौगिकके योग्य ही उसमे रह जाय तब यन्त्रमे से उसको निकाल लिया करें।

आजकल वैद्य क्या करते है कि षड्गुण वलिजीर्ण पारद बनाना हो तो एक बार षड्गुण वलि पारदमे मिला कर कज्जली बना लेते है और उसे कूपी मे भर कर वालुका यन्त्र पर चढ़ा देते है तथा कई दिन तक अग्नि देकर उसे पकाते रहते है।

वलिका एक वारमें इस प्रकार जारण न तो शास्त्र सम्मत बात है, न इस तरह के वलि जारणसे पारदकी शक्तिमे वृद्धि होती है। प्रत्युत अधिक वलिकी विद्यमानताके कारण—वह बलि उड़ कर जब उस शीशीके गले पर आकर लगता है और शीशीका मुंह जल्दी बन्द कर देता है तो ऐसी दशामे प्रायः

शीशी या तो उस वालुका यन्त्र से उठ कर ऊपर आ जाती है या एकाएक टूट जाती है। जिनकी कूपियां उतर भी जाती है, उनके रससिन्दूर जो बनते हैं वह बहुत सख्त पत्थरवत् कठोर होते हैं और उसमें बलि अधिक होता है। सम बलि देकर पाक करने पर भी कई वार देखा जाता है कि रससिंदूर बहुत कठोर रूपका बनता है। इस तरह कठोर रससिदूर बननेका प्रधान कारण होता है बलिकी मात्राका उसमें अधिक विद्यमान रहना, जिस रससिंदूरमें बलिकी मात्रा यौगिक निर्माणसे जितनी अधिक रहेगी वह उतना ही अधिक कठोर होगा।

पारदमें यदि प्रथम बलि भिन्न जीर्ण करके न डाला जाय तो यह दोष प्रायः आवेगा। क्योंकि जब बलि वाष्पीभूत होता है तो उसके साथ थोड़ा बहुत पारद भी वाष्पीभूत होता रहता है। जहां पर बलि कांच कूपीके गले पर आकर लगता है, वहीं पर रस सिन्दूर आकर लगने लग जाता है। वह बलि उस रससिंदूरके कणोंके मध्य घुसा हुआ फिर जल्दी नहीं निकलता। यदि इस पाकके तय्यार हो जाने पर पुनः अग्नि देते रहें तो, एक ओर खर पाक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है दूसरी ओर फिर उस रससिंदूरमें से कुछ बलि निकल कर उड़ता रहता है। इसीलिये कई दिन अग्नि देते रहने पर भी वह रससिंदूर पूर्णतया बलि रहित नहीं होता। इसी त्रुटिके कारण कई कई दिन तक अग्नि देनी पड़ती है।

जैसा शास्त्र कहता है—यदि बलि प्रथम भिन्न जीर्ण कर लिया जाय और वह पारदके साथ उतना ही रह जाय जितना कि रससिंदूर निर्माणके लिए आवश्यक है तो फिर कांच कूपीमें चढ़ा कर उसको उतारा जाय तो वह एक तो निर्दोष बनता है। दूसरे कुछ घण्टोंमे ही सारा माल उड़ कर कूपीके ऊपर आ लगता है। इसका अधिक विस्तारसे वर्णन आगे होगा।

कई वैद्य यह शङ्का उठा सकते हैं कि—

क्या तीव्र अग्नि प्रभावसे रसोंका यौगिक विच्छेद नहीं होता?

रसकपूर, दारचिकना आदि कुछ यौगिक ऐसे हैं जिनके वाष्पी भवन होते समय उत्तापकी मात्रा अधिक हो जाय तो उनका यौगिक टूटने लगता है और पारा तथा लवणजन वायु भिन्न भिन्न हो जाते हैं। इसी तरह अन्य रसोंमे भी अग्नि प्रभावसे उनका यौगिक बदल सकता या टूट सकता है। इसीलिये तो रसनिर्माण करते समय रसायन शास्त्रका अध्ययन अवश्य करना चाहिये और यह बात सही तौर पर समझ लेनी चाहिये कि कौन कौनसे रस कितने उत्ताप पर यौगिक निर्माण करते हैं तथा कितने उत्ताप पर वह वाष्पीभूत होते हैं और कितने उत्ताप पर जाकर इनका यौगिक विच्छेदित होता है। यही बातें रासायनिक रहस्यकी हैं जिनको समझे बिना कोई रसायनी उत्तम व सही रस तय्यार नहीं कर सकता।

हमने यथा शक्य यथा—स्थान इन बातों पर प्रकाश डाला है, किन्तु इस सारे सिद्धान्तको प्रतिपादन करना इस ग्रन्थकी सीमासे बाहर की बात है। इस विषयको समझनेके लिये तो स्वतन्त्र ही रसायन शास्त्रका अनुशीलन करना आवश्यक है।

रसनिर्माण शालाके कुछ अन्य साधारण उपकरण

शास्त्रकारोंने खरल बट्टा, चट्टू, ओखली आदिसे लेकर काफी उपकरण गिनाए हैं। उन सबका यथा शक्य संग्रह होना चाहिए, यथा—कज्जली बनानेके लिये या मर्दनके लिये खरल, वलि, हस्तपात्र आदि धातु अधातुओंको शोधन करनेके लिये अनेक प्रकारके पात्र। भट्टीमे कोयला झोंकने, राख निकालने व राख झाड़नेके पात्र तथा किसी चीजको पकड़ने उठानेके लिये सन्दशी, चिमटा, छलनी तथा कूपी रसमे सलाई फेरनेके लिये लोह शलाका आदि और भी अनेक उपकरण जिनकी समय पर आवश्यकता हो संग्रह कर लेने चाहियें। यह बातें साधारण हैं, इसीलिए इन पर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। दूसरे जिसने अधिक देखना हो अपने रस ग्रन्थोंमे देख सकता है।

तीसरा अध्याय

—•▭•—

शोधन प्रकरण

पारदकी उत्पत्ति और स्थिति पर विचार

प्रकृतिने पारदको द्रवरूप देकर एक ऐसी पहेली गढ़ी है जिसे देख कर बड़े बड़े विद्वान् विस्मित रह जाते है और बहुतेरे इसके द्रवत्व धर्मके जालमे ऐसे विकट फंसते है कि उससे निकलनेमें समर्थ नहीं दिखते।

पारदको चाहे कोई कुछ कहता रहे, किन्तु यह खनिज पदार्थ है और पृथ्वीके गर्भसे ही निकलता है, और अन्य धातुओंवत् एक धातु है, इस सत्यताको अब कोई छिपा नहीं सकता, हमेभी अब—अलंकारिक माया जालको छोड़कर—इसे वास्तविक रूपमें ही देखना व समझना चाहिये। क्योंकि जब तक हम वस्तु स्थितिको सही रूपमे नहीं समझेंगे, उसको कार्य व्यवहारमें लाते समय अनेक भ्रम व भूलें होने की सम्भावनायें बनी रहेंगी।

पारद और उसके खनिज—पारदके जो भी खनिज पाये जाते हैं वे. प्रायः ज्वालामुखी आग्नेय पाषाणोंके उद्गम स्थानोंमे ही अधिक मिलते हैं। उनमे कहीं कहीं ज्वालामुखी विवरोंके समीप यत्किंचित् अपने खनिजोंसे यह उन्मुक्त हुआ भी मिलता है। ज्ञात होता है कि कभी उत्ताप प्रभावसे इसका यह यौगिक टूट गया होगा और जिन व्यक्तियोंको इसके द्रव कण मिले होंगे उन्होंने इसे देख कर इसके खनिजोंका ज्ञान प्राप्त किया होगा। धीरे धीरे खोज करते रहने पर इसके खनिजोंके ज्ञानमे वृद्धि होती चली आई। इस समय इसके २०-२२ प्रकारके खनिज प्राप्त हुए हैं। जिनमे से किसीमें इसकी मात्रा साधारण और किसीमे कुछ अधिक होती है। इनमे से खनिज हिंगुल नामक पदार्थ इसका प्रधान खनिज है। पहिले भी इसी खनिजसे पारद निकालते थे और आज भी इसीसे अधिक निकाल रहे हैं।

क्या पृथ्वी गर्भसे पारद शुद्ध द्रवरूपमें प्राप्त नहीं होता? हम ऊपर बतला चुके हैं कि पारद अपने असली तत्त्वरूपमे कहीं २ यत्किञ्चित् ही पाया जाता है। किन्तु वह प्रायः यौगिकोंके रूपमे ही अधिक मिलता है। इसीलिये जितना भी पारा आता है उसे उन सब यौगिक खनिजोंसे विशेष विशेष विधियों द्वारा भिन्न कर लेते हैं।

क्या पूर्वकालमें आनेवाला पारद और आधुनिक पारद एक जैसा होता था? पूर्वकालमें पारदको खनिजोंसे भिन्न करनेकी जो विधियां काममे लाई जाती थीं, यद्यपि आधुनिक विधिया उनसे मिलती जुलती हैं तथापि यह बहुत ही परिष्कृत विधियां हैं। पूर्वकालमें लोह, ताम्रादि धातु चूर्णोंके साथ खनिज हिंगुलको पीस कर गरम करते थे, ऐसा करनेसे हिंगुलसे बलि निकल कर धातुओंके साथ सयुक्त हो जाता था और पारा भिन्न होकर स्रावक मार्गसे ठण्डे स्थानमे सञ्चित हो जाता था। आधुनिक समयमें बड़े बड़े जालीके डाटदार कमरे बनाकर उन जालियोंके मार्गसे खूब गरम हवा प्रवाहित की जाती है इससे बलि तो हवाके ऊष्मजनसे मिल कर बलिद्विऊष्माइद नामकवायु बनकर उड़ जाता है

और इस तरह जो पारद भिन्न होता है वह निम्न भागमें स्रवित होकर भिन्न स्थानमें सञ्चित होता रहता है। इस तरह पारदको उसके मूल खनिजसे भिन्न कर लिया जाता है। किन्तु इतना होने पर भी पारदमें मूल खनिजकी अनेक अशुद्धियां विद्यमान रहती हैं।

यथा—ताम्र, वंग, नाग, चांदी, अञ्जन, यशद, सिलीनियम, तैलूरियम, सोमल, लवणाजन यौगिक आदिकी, इन अशुद्धियोंको पूर्वकालमें पारद निकालने वाले अच्छी तरह दूर नहीं कर पाते थे, क्योंकि उस समय साधन उपलब्ध न थे।

यह अशुद्धि क्यों रहती है ?—कई वैद्य यह समझते होंगे कि जब पारद वक या वारुणी यन्त्र द्वारा स्रवित किया जाता है तो वह शुद्ध होना चाहिये, क्योंकि पारद जब अपने खनिजसे भिन्न होकर उड़ता है तो जितने भी धातव पदार्थ हैं वह सब नीचे रह जाते होंगे।

पाठको ! यह बात नहीं है, कई धातुओं के यौगिक ऐसे होते है, जो जल्दी उड़ते हैं। धातुएं जिस उत्तापपर वाष्पीभूत नहीं होतीं, उस उत्तापपर उन धातुओं के वे यौगिक वाष्पीभूत होने लग जाते हैं। पारदका ही बना रसकपूर—जो पारद यौगिक है—बहुत कम उत्ताप पर वाष्पीभूत होने लगता है। जिस उत्ताप पर पारद द्रवांक पर पहुंचता है उस उत्ताप पर ही रसकपूर उड़ने लग जाता है। इसीतरह किसी २ धातुके यौगिक भी इसीप्रकार अपने मूल धातुओंके द्रवांक से पहिले वाष्पीभूत होने लग जाते हैं। इसीलिये पारदमें यह अशुद्धियां उसके वाष्पीभूत होनेके समय कुछ न कुछ उड़कर अवश्य साथ चली जाती हैं। परीक्षाओंसे देखा गया है कि जिस पारदमें सोमल, अञ्जन आदि तत्वोंकी या इनके यौगिकोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्मभी अशुद्धियां बनी रहती हैं, ऐसा पारद यदि औषधियोंमें प्रयुक्त किया जाय तो उसका स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। शरीरमें ऐसा पारद पहुंच कर दाह, रक्तविकार आदि उपद्रवोंका कारण बन जाता है। नागकी अशुद्धि विद्यमान हो तो उससे नाग विषके उपद्रव व सन्धि वातादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

इन धातुज, भूमिज अशुद्धियोंका प्रभाव क्यों अधिक होता है ?

इसका प्रधान कारण यह है कि पारदके साथ मिले हुए जब इस प्रकारके कोई विषाक्त यौगिक शरीरमें पहुंचते हैं तो पारद शक्ति उनकी विषाक्त शक्ति को बढानेमें योग वाहित्वका काम करती है। अर्थात् उस समय शरीरमें पारद उत्प्रेरकका काम करता है, इसीलिये उपद्रवोंकी उत्पत्ति शीघ्र होती है।

पूर्वकालमें चाहे इन बातोंको इतनी सूक्ष्मताके साथ विस्तारसे न समझा गया हो, किन्तु फिर भी उन्हें इसका ठीक ठीक ज्ञान हो गया था और इसके अशुद्धि जन्य दोषोंसे उत्पन्न रोगोंका भी उन्हें अच्छी तरह पता लग गया था।

पारदमें अशुद्धि रहनेका एक और कारण—

पारद एक द्रव धातु है फिर काफी घन द्रव है। प्रायः द्रव पदार्थोंमें यह एक गुण पाया जाता है कि वह कितने ही अद्रव, ठोस पदार्थोंको अपनेमे घुला लेते हैं। जल एक ऐसा द्रव पदार्थ है जिसमे नमक, शक्कर आदि न जाने कितने खनिज सेन्द्रिय पदार्थ घुलकर मिल जाते हैं। पारद द्रव धातु है, इसी-लिये यह अन्य धातुओंको अपनेमे द्रवित कर लीन कर लेता है। कुछ अंशों में तो सुवर्ण, चांदी, वंग, नाग, अञ्जन, ताम्र आदि धातुएं इसमे इस तरह लीन हो जाती हैं कि जिनको एक दो बार स्रवित करने पर भी भिन्न नहीं किया जा सकता। यहां तक कि उडे हुए पारदकी परीक्षा कर देखा गया तो उसके साथ कुछ धातुएं अंशांश रूपमे पाई गई है। इसका समर्थन शास्त्र करता है। यथा—

> नाग वंगौ महा दोषौ दुर्जयौ शुद्धि कोटिभिः।
> पातना शोधयेद्यस्मान्महाशुद्धरसो मतः॥

अर्थ—नाग वंग दोष महा दुर्जय दोष है जो पातन शोधनसे भी दूर नहीं होते। इसलिये बारम्बार पातन यन्त्रमे पातन करते रहने पर पारद शुद्ध होता है। इस समय भी पारद विशेष विधिसे ही स्रवित करने पर शुद्ध रूपमे प्राप्त किया जा सकता है।

पारद द्रव धातु है और ६७५° शतांश पर वाष्पीभूत होता है, अनेक धातुएं और धातु यौगिक इसमे घुल कर मिल जाते है तथा स्रवित करने पर भी उन धातुओं व धातु यौगिकोंके अंशांश रूप उसके साथमें उड़ कर स्रवित हो जाते हैं। इसीलिये इसमे विद्यमान अशुद्धियां साधारण रीतिसे दूर नहीं होतीं इसे विशेष विधिसे संशोधन करनेकी आवश्यकता होती है। यदि पारदमे धातुओंको साथमे लेकर उड़ानेकी शक्ति न होती तो सुवर्ण ग्रासके विधान शास्त्रमें न पाये जाते।

पूर्व कालिक पारद और आधुनिक पारदमें अन्तर—

आजसे दो सौ वर्ष पूर्व तक पारदको उसके खनिजसे भिन्न कर लेते थे और उसमें जो अशुद्धियां रह जाती थीं उन्हें अच्छी तरह दूर नहीं किया जाता था, उसी तरह उसको बाजारमे विक्रयके लिये भेज देते थे। उन समयोंमें यह अशुद्धियां पारेमें बहुत अधिक रहती थीं। बल्कि कहीं कहीं तो मिला भी दी जाती थीं। दूसरे पारद चीन, मिश्र आदि भिन्न भिन्न देशोंसे आता था, इसीलिये उनकी अशुद्धियोंमे भी अन्तर रहता था। किसी देशका पारद अधिक द्रव किसी का सान्द्र द्रव होता था और उनके वर्णमे भी कुछ न कुछ अन्तर रहता था।

पारद भेद—यह देखा गया है कि जब पारदमें भिन्न भिन्न खनिज द्रव्य मिले हुए हों तो उसकी द्युति, वर्ण व द्रवता सब बदल जाती हैं। नाग मिला पारद विशेष कालिमा युक्त गाढा होता है। अञ्जन मिला पारद कपिल आभा युक्त गाढ़ा दिखाई देता है। तैलुरियम मिला पारद लाल चमक देता है। इसी तरह भिन्न भिन्न मिश्रणोंसे उसका रूप और भी हो सकता है। इन मिश्रणोंके कारण उसके द्रवत्वमें भी सान्द्रता या पतलापन न्यूनाधिक होता है। ज्ञात होता है कि जिन दिनों वर्ण व्यवस्थाका जोर बढ़ रहा था या यों कहिये कि वर्ण विभाजनकी प्रथा जोर पकड़ रही थी, उन्हीं दिनों हमारे रसायनी भी रसक्रियामे जोर पकड़ रहे थे। उन्होंने पारदके इन भिन्न भिन्न वर्णोंको देख कर उसे चार जातिमे विभक्त कर दिया। यथा—

क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम् ।
श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तु भवेत्क्रमात् ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रस्तु खलु जातितः । आयुर्वेद प्रकाश
अन्यच्च—श्वेतारुणाहरिद्राभकृष्णा विप्रादिपारदाः ॥ रसकामधेनु ।

अर्थ—स्थान भेदसे शिववीर्य श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण चार प्रकारका होता है। यह शिववीर्य वर्ण भेदसे श्वेत ब्राह्मण, रक्त क्षत्रिय, पीत वैश्य और श्याम शूद्र होता है। कुछ अरबी रासायनिकोंने इसकी न्यूनाधिक द्रवताको देख कर नर, मादाका भेद मान लिया था। वह कहते हैं—जो पारा गाढ़ा होता है वह नर होता है, जो पतला होता है उसे पारी अर्थात् स्त्री जातिका कहते हैं।

वास्तविक रहस्यका ज्ञान न होने पर इस प्रकारका भ्रम जाल सारे देश में फैला हुआ था। क्या पारद कई भेदका नहीं होता ? जिन रासायनिकोंने इसके अष्टादश संस्कार तक किये थे, आश्चर्य तो यह है कि वह इसके शुद्ध रूपको प्राप्त करके भी वर्ण भेद, जाति भेदके भ्रममें फंसे रहे। कहना शिववीर्य और उसे जाति वाला बताना। जबतक पारद विशुद्ध नहीं किया जाता तबतक उसमें गिरि दोष, भूमि दोष आदि अनेक दोष रहते हैं, यह ठीक है। किन्तु जब वह समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है तो वह कैसा होता है ? इसके रूपकी परीक्षा ग्रन्थकार बतलाता है, वह कहता है—

इति दीपितो विशुद्धः प्रचलितविद्युल्लता सहस्राभः । रसहृदय ।

अर्थ—जिस पारदका अष्ट संस्कार हो जाता है उसका रूप चलायमान् विद्युतकी तरह चमकता है। इसी बातको अन्य ग्रन्थकार भी कहता है—

इत्थं निपातितः सूतश्चलद्विद्युल्लताप्रभः ।
नागवंगविनिर्मुक्त स्ततश्चैतत प्रजायते ॥ रसेन्द्र चूड़ामणि ।

अर्थ—जो पारद बारम्बार इस तरह ऊर्ध्व अधः पातनादि संस्कारोंके द्वारा संस्कारित हो कर नाग वंग दोषोंसे रहित होता है वह पारद चञ्चल विजली सा चमकता है। अर्थात् अत्यन्त निर्मल आभा प्रभा पूर्ण दिखाई देता है।

पारद एक ऐसा स्वच्छ किन्तु अन्य पदार्थ ग्राही द्रव है, कि एक पात्रसे दूसरे पात्रमे डालते समय यदि पात्रको विशेप विधिसे स्वच्छ न किया गया हो तो उस पात्रमे लगी अदृश्य मलिनता पारदमे बहुत शीघ्रतासे लग जाती है। यहां तक कि धूल मिट्टीके अत्यन्त सूक्ष्म कण—जिन्हें हम पात्रसे धो पोंछ कर निकाल चुके है, किन्तु जो अदृश्य रूपमे उस पात्रसे लगे रहते हैं, पारदके उसमे डालते ही वह उस पर चढ जाते है और पारदके साथ लग कर उसकी आभा प्रभामे वह स्पष्ट दीखने लग जाते है। इसीलिये पारदको किसी साधारण विधिसे शुद्ध रखना कठिन होता है। पूर्वकालमे पारदके इस घोलक धर्मको अच्छी तरह नहीं जान सके थे। मालूम होता है कि जो रसायनी इसका अष्ट संस्कार या अष्टादश संस्कार करते थे, वह इसे जब जिस पात्रमे स्रवित करते थे या रखते थे उस पात्रकी मलिनताको पूरी तरह दूर नहीं कर सकते थे, या उनका पात्रकी बारीक शुद्धिकी ओर कम ध्यान जाता था, इसी दोपसे बारम्बार स्रवित पारद भी मलिन दिखाई देता था। बारम्बार स्रवित व पतित (तिर्यक्, पातन, ऊर्ध्व पातन, अधः पातन) करने पर भी जब मलिनता दीखती थी उसे देख कर वह इस परिणाम पर पहुंचे कि पारदमे यह मलिनता या अशुद्धि बहुत गहरी होती है। इसीलिये ग्रन्थकार कहता है। यथा—

स्वेदनादि शुभकर्म संस्कृतः सप्त कंचुक विवर्जितो भवेत्।
अष्टमांशमवशिष्यते तदा शुद्धसूत इति कथ्यते बुधैः॥

रसरत्नाकर वादिखण्ड।

अर्थ—जो पारद स्वेदन, मर्दनादि कर्मसे शुद्ध किया हुआ अष्टमांश अर्थात् एक सेरका दस तोला रह जाता है उसे विज्ञजन सप्त कंचुक रहित शुद्ध कहते हैं। इसी बातको दूसरा ग्रन्थकार दूसरी युक्तिसे कहता है। यथा—

यदा सम्यक् शोधितो रसराजोऽष्टमांशोऽवशिष्यते।
तदा सप्त कंचुकोज्झितः शुद्धरसराजो ज्ञातव्यः॥

यथा पूर्वं स्थितस्तादृशोस्ति सप्त कंचुक सम्बन्धिनस्त्सप्त भागा गच्छन्ति सप्तकंचुकास्सप्तावरणानि शिवशापाज्जातानि तद्विमुक्त्या शुद्ध रसराजो बुधै रुच्यते। रसपद्धति।

अर्थ—जब पारदको शुद्ध करते करते आठवां हिस्सा अवशेष रह जाय तब सप्त कैंचुलसे रहित शुद्ध जानें।

ग्रन्थकार कहता है कि सात कैंचुलके सात भाग होते है। वह शोधनादि संस्कारोंसे नष्ट होते रहते है। इसीलिये सात भाग पारदके साथ कैंचुल नष्ट हो जाते है जो इसके वाद आठवां हिस्सा पारदका वाकी रहता है शिव शापसे उत्पन्न सात आवरणसे रहित ऐसे पारदको पण्डित लोग शुद्ध कहते हैं।

क्या वास्तवमें पारदका संस्कार करते करते उसका सप्तभाग नष्ट कर देना चाहिये क्या यह सिद्धान्त ठीक है? हमें तो अनुभवसे यह सिद्धान्त सही नहीं जंचा। हमारे तो अनुभवमें आया है कि पारदको सप्तांश क्या शतांश नष्ट करने से वहुत पूर्व भी शुद्धरूपमें प्राप्त किया जा सकता है।

बात तो सारी यह देखने वाली है कि पारदमें जब मलिनता न रहे—विलकुल मल रहित स्वच्छ आभा प्रभा दे रहा हो तब उसे शुद्ध समझना चाहिये। यह तो हुई भौतिक परीक्षा जो हमें आंखोंसे दिखाई देती है। किन्तु इससे भिन्न ऐसी रासायनिक परीक्षा भी तो होनी चाहिये, जिसकी सहायतासे हम यह जान सकें कि यह पारा कितना विशुद्ध है और इसकी क्या पहचान है? तथा यदि इसमे दोष व कंचुक बाकी है वह कितने हैं? इस बात की खोज करनेके लिये जब हम अपने रस शास्त्रमे बैठते हैं तो हमें इसका एक भी ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जहां इसकी रासायनिक जांच बतलाई गई हो।

हम औषधि वेचनेका व्यापार करते हैं, हर एक प्रकारकी वस्तुएं वेचते हैं। हम जो पारद शुद्ध पारदके नामसे वेच रहे हैं वह वास्तवमें शुद्ध है कि नहीं? और यदि वह शुद्ध है तो कितना है, उसमें दोष विद्यमान हैं तो कितने है?

इस बातको जब तक जाना न जाय, ग्राहक धोका खा सकता है। इसलिए उसका निर्णय कैसे हो ? हमने इसके सम्बन्धमे जो कुछ समझा है आगेकी पंक्तियोंमे प्रकाश डालेंगे ।

प्राचीन और आधुनिक पारदमें भेद—

पूर्वकालमें जो पारद बाजारोंमे मिलता था आजके मिलने वाले पारेकी अपेक्षा उसमे अशुद्धियां बहुत अधिक होतीं थीं, जिसके कई कारण थे। सब से बडा कारण तो था—उसको खनिजसे भिन्न करनेका क्रम। जिसके द्वारा प्राप्त पारदको पुनः शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी । दूसरे उस समय जिन पात्रोंमे स्थानान्तरिक किया जाता था उसकी अशुद्धिका अधिक मिश्रण होजाता था। तीसरे उस समयके व्यापारी पारेमें जब वग, नाग आदि मिला देते थे तो उन्हें कोई पूछता तक न था। इन्हीं कारणोंसे उस समय पारद अधिक दोष व मल पूर्ण प्राप्त होता था। आधुनिक समयमें आकर यह सारी स्थिति बदल गई है।

आजकल जिन कारखानोंमे पारदको खनिजसे भिन्न किया जाता है वहां इस को खनिजसे भिन्न करके पुनः उसे कुछ गरम पवनाम्लके तनु घोलमें से गुजारा जाता है। इस क्रियासे उस अम्लका प्रभाव केवल उसमे घुलित धातुओं पर ही अधिक होता है, पारद पर नहीं होता। इससे क्या होता है कि जो भी धातुअंश पारदमें घुला होता है वह पवनाम्ल या शोरेके हल्के तेजाबके कारण चांदीसे लेकर वंग, नाग,सिलीनियम आदि तक सब इसमें घुलते चले जाते है और पारद धीरे धीरे उन धातुओंके मिश्रणसे उन्मुक्त होता चला जाता है । इस तरह पारदको शुद्ध करके फिर उसे छान कर साफ लोह बोतलोंमे भर कर विक्रयके लिये भेज दिया जाता है। प्राचीन समयमें शोरेके तेजाबका पता न था, न कोई ऐसा घोलक ही ज्ञात था जिसमें पारद तो न घुलता हो, किन्तु अन्य धातुएं घुल सकती हों। इसी कारण सिवाय पातन विधिके पारदको शुद्ध करनेका और कोई विधान उस समय न मिल सका । इस समयका साधारण

पारद जो बाजारमे मिलता है प्रायः पूर्वकालके पारदसे इसीलिये अच्छा होता है। क्योंकि आधुनिक समयमे प्रत्येक धातव तत्वको उक्त विधिसे बिलकुल शुद्ध करलेते हैं। इससे भिन्न औरभी शोधनकी विधियां है। दूसरे सबसे बड़ी बात यह है कि प्रत्येक धातुको शुद्ध रूपमे निकालनेका आजकल मानदण्ड प्रचलित हो गया है, इसी कारण जो भी पारद हो—वह चाहे चीनसे आया हो या स्पेनसे या इटलीसे अथवा—मोरकोसे इनके रूप रंग द्रवतामें कोई अन्तर नहीं होता। न आजकल कोई भी पारद वर्णमे विशेष विभिन्नता रखता है, न द्रवतामे।

तो क्या पारद क्षेत्र भेदसे कोई अन्तर नहीं रखता ?—

जितने भी आजतक धातव तत्व प्राप्त हुए है कोई भी दो या अधिक प्रकारके नहीं पाए जाते। यदि ऐसा हो तो उनका तन, घन, मात्रा आदिका प्रकृति प्रदत्त निश्चित सिद्धान्त रसायन-शास्त्रने जो मालूम किया है वह उड़ जाता है। किन्तु यह बात नहीं है, जो भी धातव तत्व एक ही तन, घन, मात्राके होंगे उनके रूप, गुण, स्वभाव, प्रभावमें जरा अन्तर नहीं आ सकता, यह एक प्रकृति प्रदत्त अटल नियम पाया जाता है। इसी नियमका पालन पारद भी करता है। पारद किसीभी देशमे तथा किसी धातुके खनिजोंमेसे क्यों न प्राप्त हुआ हो, सबकी तन, घन, मात्रा आदि एक ही उतरती हैं। जब यह बात है, तो पारदके वर्णमे कोई विभेद नहीं पड़ सकता। न उसके गुण, स्वभावमे जरा अन्तर आ सकता है, इसलिये पारदकी क्षेत्र भेदसे वर्ण या जाति मानना अब विचारवानोंकी श्रेणीसे बाहरकी बात है। पारद एक धातव तत्व है और द्रव रूप वाला है। इसकी तन, घन व मात्रा जो एक परमाणु मे है वह सारेमें पाई जाती है। इसीलिए इसके रचना रूप जो भी हैं सब स्थिर हैं, उसमें कोई फेर फार नहीं हो सकता।

पारदका रूप व गुण—पारद वर्णमे श्वेत चांदीवत् उज्ज्वल आभा प्रभा वाला द्रव पदार्थ है। यह हवा मण्डलमें वर्षों पड़ा रहे तो इस पर ऊष्म-जनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह अपनी द्रवता के कारण अनेक खनिज

पृष्ठ ८७ चित्र नं० १४

पारद शुद्ध करने का विशेष यन्त्र
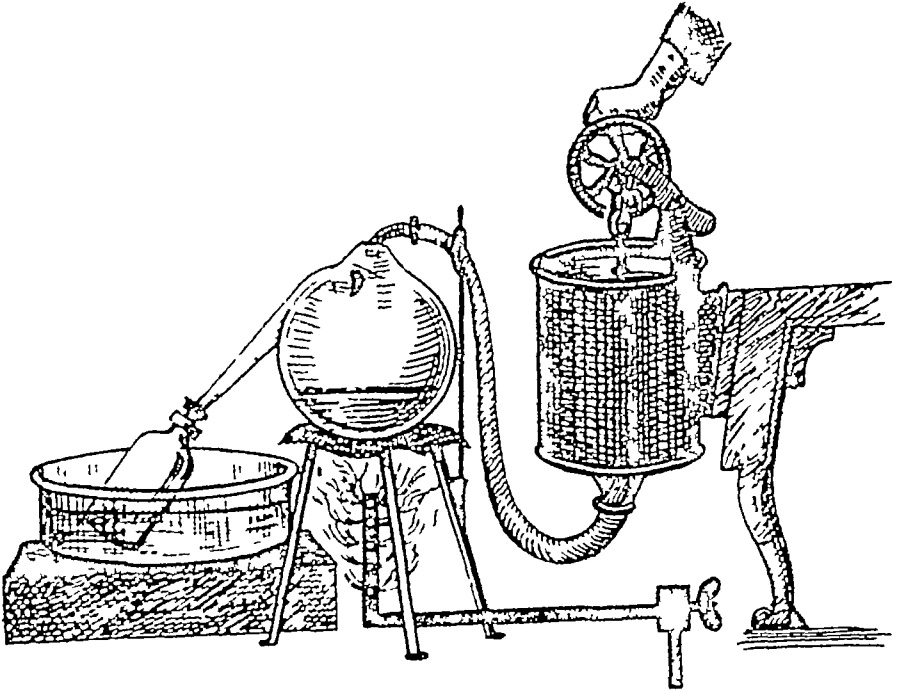
इस यन्त्रमें हत्थीके घुमानेसे पात्रके अन्दर विद्यमान हवा खिंचकर बाहर निकल जाती है और पारदपर दबाव कम होजाता है। इसीलिये पारद अपने क्वथनांकसे पहिलेही उड़ने लग जाता है। यह यन्त्र छोटे और बडे अनेक साइजके इसी कामके लिये आते हैं।

व धातव पदार्थोंको अपनेमें घुला लेता है और धूलकण तक इसमे आ घुलते हैं, इसीसे इसमे मलिनता व वर्ण विवर्णता आती है, पर यह सब स्पर्श दोषसे उत्पन्न होने वाली बात है। इसकी विशिष्ट घनता १३·५६ है। यह ३६° शून्यताप पर जाकर ठोस पत्थर हो जाता है। ३६५° शतांशके उत्ताप पर वाष्पीभूत होने लगता है। स्वतः शुद्ध पारदमे कोई दोष नहीं होता।

क्या पारदमें सप्त कंचुकादि दोष स्वाभाविक नहीं?—

हम ऊपर बतला चुके हैं कि पारदमे सप्त कंचुक और प्रगाढ़ता तथा विवर्ण आदि दोष सब संसर्गज हैं, इसीलिये यह दूर करने पर दूर हो जाते हैं। किंतु जो दोष या गुण उसके स्वाभाविक होते हैं उनका दूर होना बहुत कठिन बात है। यथा—पारद द्रवरूप है इसकी द्रवताका जो दोष इसमे है वह स्वभाविक होनेसे इसे आसानीसे दूर नहीं किया जा सकता। इसकी इस द्रवताको दूर करना बहुत कठिन काम है। लाखों करोड़ों रासायनिकोंमेसे कोई एक होगा जो इसकी द्रवताको दूर करनेमे समर्थ हुआ होगा। एक और बात है—कि जो रसायनी इसकी द्रवताको दूर करनेमे सफल हुए उन्होंने देखा—कि जिस पारदकी द्रवता दूर हुई है—वह पारद फिर पारद नहीं रहता, प्रत्युत दूसरी धातु बन जाती है। दूसरी धातु बनने पर पारदका वह पूर्व तन, घन, मात्रा, वर्ण व ताप सारी बातों में बहुत कुछ अन्तर आ जाता है। इसीलिये तो यह कहा जा सकता है कि जब हम किसी धातुका कोई गुण, धर्म बदलना चाहते हैं तो उसका स्पष्ट अभिप्राय यह हो जाता है कि हम उस तत्वको दूसरे तत्वमें बदलना चाहते है। उक्त पंक्तियोंको पढ़ कर मैं समझता हूं कि पाठक बहुत कुछ पारदकी स्थितिको समझ गए होंगे।

पारदका संशोधन—अब यह जान लेने पर कि पारद क्या है? तथा उसमे जो अशुद्धियां उत्पन्न हो जाती हैं वह क्यों उत्पन्न हो जाती हैं? जब इस बातका ज्ञान हो गया तो उसके दूर करनेका उपाय सहजमें जाना जा सकता है। हमारे रस शास्त्रोंमें पारदके १८ संस्कार तक करनेके विधान बतलाए

हैं। यह १८ संस्कार की आवश्यकता उन कामोंमे पड़ती है जहां पारदकी सहायता से एक धातु तत्वको दूसरे धातु तत्वमे बदलना हो, किन्तु जहां इसको केवल औषधिके लिये प्रयुक्त किया जाता है वहां इसके आठ संस्कारोंसे काम चल जाता है। अष्ट संस्कारोंका अभिप्राय पारदको निर्मल करना है।

शास्त्रकार ने पारदमें १२ दोष बतलाए हैं। यथा—

औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्त्तिताः सप्त कंचुकाः।
भूमिजो गिरिजोवार्जौ द्वौ च द्वौ नागवंगजौ॥
द्वादशैते रसे दोषाः प्रोक्ता रस विशारदैः।

रसकामधेनु।

अर्थ—पारदमे सात कैंचुल, एक भूमिज, एक गिरिज, एक जलज, एक नाग और एक वंगको मिलाकर कुल १२ दोष औपाधिक रूपमे इसके साथ लगे होते है ऐसा विद्वज्जन कहते है।

किसी किसी ग्रन्थमे यह पाठ पाया जाता है। यथा—

विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः।

अर्थ—विष, अग्नि और मल ये तीनों दोष पारदमे स्वाभाविक है। यदि शास्त्रका यह कथन ठीक हो कि उक्त तीनों दोष पारदमे स्वाभाविक हैं, तो यह कभी दूर नहीं हो सकते। स्वाभाविक जो दोष होते हैं उनका दूर होना बहुत कठिन है। जैसे पारदकी द्रवता। अन्य ग्रन्थोंमे भी उक्त पाठ आया है, किंतु उन्होंने इन दोषोंको नैसर्गिक नहीं माना है। यथा—

पारदस्य त्रयो दोषा विषं वह्निर्मलस्तथा। रसार्णव

अर्थ—पारदमे विष, अग्नि और मल यह तीन दोष होते है। इन दोषोंको औपसर्गिक दोष न मान कर संसर्गज दोष ही मानना युक्ति युक्त है। औपसर्गिक हों तो वह पारदसे तबतक निकल नहीं सकते जबतक उसका पारदीयरूप विद्यमान रहे। इसीलिये इनको संसर्गज, भूमिज, गिरिज आदि ही मानना चाहिये।

यह दोष किस प्रकार दूर हो सकते है ?—

यद्यपि प्राचीन रसाचार्योंने इनके दूर करने के लिये जो संस्कार बतलाए हैं उनकी विधियोंमें कुछ अन्तर है, तथापि ज्ञात होता है कि पारदको विशुद्ध करने के लिये अष्ट संस्कार तक अवश्य करना चाहिये। इस बात पर सब एक मत हैं।

वह अष्ट संस्कार कौनसे है ?—

स्वेदो मर्दन मूर्च्छनोत्थितिः ततः पातोऽपि भेदान्वितो।
रोधः संयमन प्रदीपनमिति स्पष्टाऽष्टधा संस्कृतिः॥

रसेन्द्र चूड़ामणि।

अर्थ—स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, रोधन, नियमन और दीपन यह आठ संस्कार पारद शुद्धिके लिये कहे हैं।

(१) स्वेदन संस्कार—

क्षाराम्लै रौषधैर्वापि दोलायन्त्रे स्थितस्य हि।
पाचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम्॥

रसेन्द्र चूड़ामणि।

अर्थ—क्षार, अम्ल और औषधादि को जलमे मिला कर दोला यन्त्रमें लटका कर उसको पकाते हुए पारदको जो स्वेदन किया जाता है। उसे स्वेदन संस्कार कहते हैं इस क्रियासे पारदस्थ मल शिथिल हो जाते है। पारदमें मल शिथिली करणक्रिया तभी हो सकती है जो यह दोष नैसर्गिक न हों।

दोला यन्त्र क्या है ?—

द्रव द्रव्येण भाण्डस्थ पूरिताधोंदरस्य च।
मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः॥
तस्योपरि क्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोटलीम्।
बद्ध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोला यन्त्र मितिस्मृतम्॥

रसपद्धति।

अर्थ—रस युक्त द्रव्य या कांजी युक्त क्षार अम्ल द्रव्य किसी वर्तनमें आधे भाग तक भर दे और उस पात्र पर एक लकड़ी बीचोबीच रख कर पात्रके दो मुंह बना दे, उस लकड़ीमे पारदकी बनी हुई कपड़ेकी पोटलीको कांजी द्रवसे एक दो अंगुल ऊपर रख कर बांध दे और फिर उस वर्तनके नीचे अग्नि जला कर उस औषध युक्त द्रवको उबाले तो उबलते समय औषध द्रव्योंको पारद की जो वाष्पें आकर लगेंगी उससे पारदस्थ मल शिथिल हो जाते है। यह क्रिया तीन दिन तक करनी चाहिये और नित्य नए द्रव्य डाल कर स्वेदन करना चाहिये। इसका नाम दोला यन्त्र है।

बहुतसे वैद्य दोला यन्त्रमे स्वेदनीय द्रव्योंको कांजी में डालकर फिर पारद पोटली को लम्बे धागेमे बांध कर ऐसा लटका देते है कि वह क्वथनीय द्रव्योंमें जा कर डूब जाता है, ऐसा नहीं करना चाहिए। दोलायन्त्र तो वास्तव में स्वेदन यन्त्र है अर्थात् क्वाथ द्रव्यों की वाष्पसे वह स्वेदित होता रहे किंतु क्वथनीय द्रव्योंमें वह न डूबे। सोमल, हरताल आदि द्रव्योंको भी इसी प्रकार अधरमे लटका कर स्वेदन करना चाहिये। यही बात शास्त्र कहता है यथा—

कण्ठे काष्ठं च बध्नीयाद्वस्त्रं प्राक्कृत कुल्हडीम्।
काष्ठे वस्त्रं च बध्नीयान्न स्पृशेत्काञ्जिकं यथा॥

कङ्काल योगी कृत रसाध्याय।

अर्थ—वर्तनके गले पर लकड़ी रख दे और उस लकड़ीमे वस्त्र बांध दे उस वस्त्रके नीचे पारदकी पोटली बांध दे वह वस्त्र लकड़ीसे बंधा इतना लम्बा लटका रहे कि वह कांजीको स्पर्श न करे।

इस तरह पारदको द्रव द्रव्योंमे स्वेदन करे। स्वेदन द्रव्यों पर सब ग्रन्थकारों का एक मत नहीं है, भिन्न भिन्न रसाचार्योंने भिन्न द्रव्योंमे स्वेदनका आदेश दिया है। यथा—

आसुरिपटुकटुकत्रय चित्रकार्द्रकमूलकैः कलांशैश्च ।
सूतस्य कांजिकेन त्रिदिनं मृदु वह्निना स्वेदः ॥

रसहृदय ।

अर्थ—पारेकी पोटलीको दोलायन्त्रमे लटका कर राई, नमक, त्रिकटु, चित्रक, अद्रक, मूली प्रत्येक द्रव्य पारेसे सोलवें भाग लेकर उसे कांजीमे मिला कर पात्रमें आधा भरकर मीठी २ अग्नि पर रख तीन दिन स्वेदन करे ।

अन्यच्च—**कर्पासपत्रनिर्यासैः स्विन्नस्त्रिकटुकान्वितैः ।**
सप्तकंचुक निर्मुक्तः सप्ताहाज्जायते रसः ॥ रसेन्द्र कल्पद्रुम

अर्थ—कपासके पत्तोंका रस निकाल कर उसमे पारदसे षोडशांश त्रिकटु की एक एक चीज मिला कर दोलायन्त्रमें सात दिन स्वेदन करे तो पारद सात केंचुल रहित होता है ।

अन्यच्च—**दिव्यौषधि कषायाम्लैः शिग्रमूलैः सराजिकैः ।**
लवणात्रिकटुक्षारै विषोपविषं मूत्रकैः ॥
कलांशमानैः कर्तव्यो मृद्वग्नौ स्वेदने विधिः ।
एकविंशदिनै रेव ज्ञातव्यः सोऽति तीव्रकः ॥ रससार

अर्थ—६४ दिव्यौषधियोंमे से जो मिले वह लेवे तथा सुहंजनामूल, राई, नमक, त्रिकटु, सज्जीखार, और ७ विष, उपविष जो प्राप्तहों, पशुओंके मूत्र जो मिलें यह सब पारदसे सोलहवें भाग एक एक चीज लेकर कांजीमे डाल कर २१ दिन स्वेदन करे । इससे रस शक्तिमान् तीव्र प्रभावी हो जाता है । इस तरह और भी स्वेदनके लिये भिन्न भिन्न द्रव्योंका उपयोग रसाचार्योंने बतलाया है । इनमे से पहिली विधि ही अधिक प्रचलित है ।

यहां पर हम एक बात और स्मरण करा देना चाहते हैं । जब एक दिन पारदका स्वेदन हो जाय तो फिर पारदको पोटलीसे निकाल कर उसको एक दिन निम्न लिखित चीजोंमें मर्दन व प्रक्षालन कर पुनः दूसरी वार स्वेदनके लिये दोलायन्त्रमे चढ़ावे । यह मर्दनकी औषधियां भिन्न है यथा—

नागबलातिबला वर्षाभू मेष विषाणियुतं घननादम् ।
एभिरिदं मथितं नव वारं स्वेदमिदं त्रिदिनं रसराजे ॥
रसेन्द्रमङ्गल ।

अर्थ—नागबला, अतिबला, केंचुवे, मेषशृङ्गी, चौलाई इन चीजोंके साथ पारदको एक एक घंटा खरल करके कांजीके साथ बारम्बार धोता रहे, ऐसे नौ बार करे । तत्पश्चात् दूसरी बार फिर स्वेदनके लिये उसे दोलायन्त्रमें चढ़ावे । उक्त एक एक चीजें भी पारदसे षोडशांश ही लें । अथवा—

अन्यच्च—गिरिकर्णी च मीनाक्षी सहदेवी पुनर्नवा ।
उरगा त्रिफला कान्ता लघुपर्णी शतावरी ॥
तुषवर्जे तु धान्याम्ले सर्वं संक्षुभ्य निक्षिपेत् ।
एकादश गुणोऽम्लेऽस्मिन् षोडशांशैर्विमर्दितम् ॥ रसार्णव

अर्थ—विष्णुक्रान्ता, मछेछी, सहदेवी, पुनर्नवा, मूर्वात्रिफला, वाराहीकंद नागकेसर सतावर यह सब पारदसे षोडशांश लेकर कुछ कांजी डाल कर अच्छी तरह खूब घुटाई करता हुआ बारम्बार उस पारदको धोता रहे । ग्यारह गुना कांजीसे धोवे फिर स्वेदन करे ।

रसाचार्य्योंका कहना है कि इस तरहसे पारदका स्वेदन करनेसे उसकी मैल नरम होकर तथा मर्दन करने से उतरती रहती है, तथा पारदकी कार्य कारिणी शक्ति बढ़ जाती है । वह निर्मल हो जाता है अर्थात् उसकी सात केंचुल जाती रहती हैं ।

(२) मर्दन संस्कार—

इस स्वेदन संस्कारके पश्चात् पारदका मर्दन संस्कार किया जाता है । इस संस्कारके लिए भी भिन्न भिन्न रसाचार्य भिन्न भिन्न औषध लेते हैं । यथा—

ऊर्णा हरिद्रा पटुरिष्टकाम्लैः शुभारनाले गृहधूम मिश्रैः ।
सिद्धार्थ राजी त्रिदिनादि खल्वे समर्दनं सूत मुशन्ति सन्तः ॥
रसेन्द्रमङ्गल ।

अर्थ—जली हुई भेड़की ऊन, हल्दी, नमक, ईटका चूरा, घरका धुआँ, सरसों, राई, यह एक एक चीजें पारदसे षोडशांश लेकर कांजी व निम्बू का रस मिला कर इसके बीच पारद डाल कर खूब खरल करे। इस तरह प्रति दिन मर्दन कर नित्य कांजी द्वारा प्रक्षालन करता रहे तो पारद निर्मल होता चला जाता है, ऐसे तीन दिन तक करे।

अन्यच—गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधिगुडान्वितम् ।
लवणासुरि संयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥
षोडशांशं तु तद्द्रव्यं सूतमानान्नियोजयेत् ।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥

रसरत्न समुच्चय

अर्थ—घरका धुआँ, ईटका चूरा, दही, गुड़, सेंधवनमक, राई प्रत्येक द्रव्य पारदसे सोलवां हिस्सा लेकर तीन दिन मर्दन व प्रक्षालन करे।

अन्यच—त्रिक्षारं पञ्चलवणं नवसारं च चित्रकम् ।
त्रिकटु त्रिफलोन्मत्त रजनी गुड़ सर्षपम् ॥
एतत्सर्वं रसेन्द्रस्य त्रिंशांशं निक्षिपेत्समम् ।
शृङ्गवेररसेनापि कुमारीस्वरसेन च ॥
त्रिदिनं मर्दयेत्सूत मातपे निक्षिपेद् दृढम् ।
नव दोषविनिर्मुक्तो जायते निर्मलो रसः ॥ रसकौमुदी

अर्थ—सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पांचोनमक, नौसादर, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, धतूरा, हल्दी, गुड़, सरसों प्रत्येक पारदके तीसवें भाग सबको खरलमे डाल कर अद्रक रस घीकुंवारके रसमे तीन दिन तक खूब दृढ़तासे खरल करे और नित्य खरल करनेके पश्चात् कांजीसे धो कर धूपमे सुखा कर फिर दूसरे दिन खरल करे तो पारद नौ दोषोंसे रहित होकर निर्मल हो जाता है। इस तरह और भी मर्दनके कई विधान पाये जाते है, इनमे प्रथम विधान ही अधिक प्रचलित है।

(३) मूर्च्छन संस्कार—

पारदके मूर्च्छनकी दो विधियां पाई जाती हैं। एक है ओषधियोंमे मर्दन करके उसे धोते रहना, दूसरी ओषधियोंमे घोट कर उसे किन्नर यन्त्रमें रख कर दीपाग्नि द्वारा उत्तप्त करना। पारदका स्वेदन संस्कार तो स्पष्ट है कि ओषधियों की वाष्पमे उसे स्वेदित करना और इसी तरह मर्दन संस्कारमें ओषधियोंके साथ खरल करना। मूर्च्छन संस्कारमें भी ओषधियोंके साथ पारदको खरलमें डाल कर मर्दन करना पड़ता है। मर्दन करने पर यह किस तरह जाना जाय कि पारदका मूर्च्छन संस्कार होगया? शास्त्रकार इसका स्वरूप बतलाता है—

कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम्।
संमूर्च्छितस्तदा ज्ञेयो नानावर्णोऽपि तत्कचित्॥

कङ्कालयोगीकृत रसाध्याय।

अर्थ—जब पारद मर्दनीय द्रव्योंके साथ घुटता हुआ अपनी चपलताको छोड़ कर कज्जल सदृश अर्थात् आभा प्रभा रहित होकर उन मर्दनीय ओषधियोंमें मिल जाय तो समझ लो कि पारद मूर्च्छित हो गया।

किन ओषधियोंमें पारदका मूर्च्छन संस्कार होता है?—

स्वर्जिका यावशूकश्च तथा च पटुपञ्चकम्।
अम्लौषधानि सर्वाणि सूतेन सह मर्दयेत्॥
खल्वे दिनत्रयं यावद्यावन्नष्टत्वमाप्नुयात्।
स्वरूपस्य विनाशेन मूर्च्छनं तदिहोच्यते॥
निर्मलत्वमवाप्नोति ग्रन्थिभेदश्च जायते।

धरणीधर संहिता।

अर्थ—सज्जीखार, जवाखार, पांचों नमक और अम्लवर्गकी समस्त औषध एकत्र कर सबको पारदके साथ खरलमे डाल कर तीन दिन तक ऐसी घुटाई करे कि पारद उक्त ओषधियोंमें मिल जाय, वह दिखाई न दे, उसमें कोई पारे की गोलियां इधर उधर फिरती नजर न पड़ें, तब उसे मूर्च्छित समझ कर कांजी

के साफ जलसे धो डालें तो पारद निर्मल हो जाता है। जब पारदको धोया जायगा तो पारद फिर अपने रूपमे आ जायगा। कोई यह न समझ ले कि इस मूर्च्छन संस्कार से पारद द्रवताको छोड़ देता होगा, यह बात नहीं होती। पारद प्रक्षालन करने पर पुनः द्रवरूपमें स्वच्छ, निर्मल हो जाता है।

राजिका कर्पयः काकमाचिका मेषशृङ्गीरसे कृष्णहेमजम्।
आरनालेनयुक्तं सुतापितं सप्तवारं रसेन्द्रस्य मूर्च्छनम्॥

रसेन्द्र मङ्गल।

अर्थ—राई, कपास, मकोय, मेढासिंगी, कालाधतूरा इनमें पारदको घोटने और कांजीमें धोकर धूपमे सुखाते रहने पर—ऐसा सात वार करनेसे पारदका मूर्च्छन संस्कार होता है।

मूर्च्छन संस्कारकी एक और विधि है—

मूर्च्छनं रस राजस्य कर्तव्यं वादिभिः सदा।
विषैस्त्रिफलया पूर्वं बृहत्योपविषै स्तथा॥
कर्कोटीक्षीरकन्दाभ्यां चित्रकैर्गृहकन्यया।
एकैकेनापि संमर्द्य याममेकं तु पारदम्॥
किन्नरं यन्त्रमादाय औषध्या लेपयेत्तलम्।
नवसारयुतं सूतं यन्त्रमध्यगतं न्यसेत्॥
दद्याद्रसोशरावं च सन्धिलेपं दृढं मृदा।
लवणेन च सम्पूर्य द्वारं संरुध्य यत्नतः॥
चुल्लिकोपरि संस्थाप्य दीपाग्निं ज्वालयेत्सुधीः।
यामैकाच्च समुत्तार्य कर्तव्यः शीतलो रसः

रससार।

अर्थ—रस ज्ञाताओंको पारदका मूर्च्छन अवश्य करना चाहिये। किन चीजोंमें पारदका मूर्च्छन संस्कार करे? इसको ग्रन्थकार कहता है विष और त्रिफलामे प्रथम मर्दन करे तत्पश्चात् कटेली, सातों उपविष, ककोड़ा कन्द,

क्षीरकन्द, चित्रक, घृत कुमारी रस इन सबमें भिन्न भिन्न एक एक प्रहर पारद खरल करके कांजीसे बारम्बार धोता व धूपमें सुखाता रहे । तत्पश्चात् एक शराव ले और उस शराव मे उक्त वर्णित औषधियोंका पाव इञ्च मोटा लेप लगा कर उसे सुखा ले फिर जब वह सूख जाय तो उस लेप पर नीचे कुछ पीसा हुआ सैंधव लवण बिछावे फिर उस पर पारदके बराबर नौसादर पीसकर आधा बिछा दे । उस पर पारद रख दे फिर उस पारदको नौसादरसे ढक कर उस पर फिर नमक पीसा हुआ खूब दृढ़तासे चारों ओर भर कर उसके किनारे दबा दे फिर उस हांडी पर शराव रख कर उसकी सन्धियां अच्छी तरह बन्द कर दे । जब यह यन्त्र तय्यार हो जाय तो इसे चूल्हे पर चढा कर दीवे की जितनी अग्नि लगाकर एक प्रहर उसे पचावे तो इस प्रक्रियासे कुछ पारद मूर्च्छित होकर रसकपूर बन जाता है और कुछ पारद वैसाही रह जाता है।

इस प्रक्रियामें जो पारद रसकपूरमे परिणत हो जाता है उसे ही रसाचार्यों ने मूर्च्छित बतलाया है। तभी तो उन्हें इसके आगे उत्थापन सस्कारकी आवश्यकता दिखाई दी। उत्थापनका अर्थ है पारदको पुन. पूर्वरूपमें लाना।

(४) उत्थापन संस्कार—

उत्थापनका लक्षण भी शास्त्रकार यही देता है। यथा—

मृतस्य पुनरुद्भूतिःसाप्रोक्तोत्थापनक्रिया । टोडरानन्द

अर्थ—मृत अर्थात् मूर्च्छित पारदका पुनः अपने पूर्व रूपमे प्राप्त होनेका नाम है उत्थापन क्रिया । यथा—

यन्त्रादुद्धृत्य यत्नेन सूतमुत्थाप्य मूर्च्छितम् ।
अमूर्च्छितस्तदा देयः कलांशैर्मूर्च्छिते रसे ॥
सिन्धूत्थटङ्कणाभ्यां च मर्दयेन्मधु संयुतम् ।
दोलायन्त्रे ततः स्वेद्यः क्षाराम्ललवणैः सह ॥
उत्थाप्य मूर्च्छयेत पश्चात वारंवारं रसेश्वरम् ।
पुनरुत्थापितं कुर्यादेकविंशति वारतः ॥ रससार ।

अर्थ—किन्नर यन्त्रसे मूर्च्छित किये पारदको निकालकर उत्थापन करे। किस प्रकार इस क्रियाको करे ? ग्रन्थकार कहता है जो मूर्च्छित रस प्राप्त हो, १६वां भाग उसमे अमूर्च्छित पारद—जो मूर्च्छित होनेसे बच रहा है—वह उसमे मिलावे। फिर उसको खरलमे डाल कर उसमे नमक, सुहागा और शहद मिला कर मर्दन करे फिर उस सारी पिष्टिको निकाल कर वस्त्रमे बांधकर उसको दोलायन्त्रमें स्वेदन करे। ऐसा एक दिन करने से पारद अपने पूर्वरूपमे आजाता है अर्थात् उत्थित हो जाता है। इस प्रकार पारदको २१ वार मूर्च्छन करके उत्थापन करने से पारद शुद्ध होता है।

मूर्च्छित पारदको पूर्वरूपमें लानेके लिये अथवा यों कहिये उत्थापन करनेके लिये ही पातन संस्कारकी आवश्यकता हुई। क्योंकि जो पारद यौगिकमे परिणत हो जाता है उसे पूर्वरूपमें लानेके लिये यह पञ्चम संस्कार ही एक ऐसा संस्कार है जो पारदको पूर्णतया यौगिकसे भिन्न कर सकता है। अन्य जितने भी पारदको मूर्च्छनके वाद उत्थापन करने तकके संस्कार वतलाए हैं उनमें पारद प्राय: नष्टपिष्ट होजाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि जो पारद रसकपूर जैसे यौगिकमें परिणत हो जाता है, वह जल या कांजी आदि द्रव्योंमे विलेय होता है। यदि ऐसे मूर्च्छित पारदको दोलायन्त्रमें स्वेदन करें तो जो वाष्प उसको उड़ कर लगती रहती है उस वाष्पके प्रभावसे वह जलमे घुल जाता है। फिर जब उसे कांजीसे धोवें तो वह जितना मूर्च्छित पारा होगा सब उस कांजीमे घुल मिल कर वह जायगा। इस तरह पारदकी वहुत हानि होती है, इसीलिये पारदको मूर्च्छनके वाद उत्थापन करने के लिये सीधे पातन विधिका उपयोग करें। उत्थापन तो पारदको पूर्वरूपमे लानेका नाम है। कोई विशेष संस्कार नहीं। इसीलिये तो उत्थापनके लिये ग्रन्थोंमे पातनकी विधि वतलाई है।

यथा—**पातयेत्पातनायन्त्र इत्युत्थापनमीरितम्।**

रसेन्द्रसार संग्रह।

अन्यच्च—**उत्थापनावशिष्टं तु पात्यं पातनयन्त्रके**। रसमञ्जरी

पातन यन्त्रों द्वारा पारदको उड़ाना उत्थापन करना कहाता है।

(५) पातन संस्कार—

पातन संस्कार तीन प्रकारका बतलाया है—

अध ऊर्ध्व तथा तिर्यक् पातस्त्रिविध उच्यते।

रसहृदय टीकाकार।

अधःपातन, ऊर्ध्व पातन और तिर्यक् पातन इस तरह तीन प्रकारकी पातन विधि बतलाई है।

पारदको किसी भी विधिसे उड़ा कर उसकी वाष्पको शीतल कर लेना पातन कहलाता है। चाहे पारदकी वाष्पको नीचे ले जाकर शीतल किया जाय या तिरछी ओर ले जाकर शीतल किया जाय या ऊपर उठा कर पुनः किसी ओर ले जाकर शीतल किया जाय सबका उद्देश्य एक ही है। इस कामके लिए यन्त्रोंकि किसी लम्बे झमेलेमे न फंस कर तिर्यक् पातनके लिये जो वकयन्त्र मिलते हैं वह एक यन्त्र लेकर उसमे पारद रख कर पातन संस्कार बड़ी अच्छी तरह किया जा सकता है। देखो चित्र नं० २ पारद स्प्रिट लम्पपर उड़ रहा है।

उत्थापनके बाद पारदका पातन संस्कार करनेके लिये निम्न लिखित विधान का आदेश दिया गया है।

मूर्च्छितोत्थित सूतस्य चतुः षष्टि पलानि च।
पलानि ताम्र चूर्णस्य खल्वे प्रक्षिप्य षोडश॥
निम्बुकं च रसं क्षिप्त्वा लूणां द्वात्रिंशदंशकम्।
तावत्संमर्दयेद्यावत् पीठी स्यान्म्रक्षणोपमा॥

रसाध्याय।

अन्यच्च—**अधोर्ध्व पातना यन्त्रे पातयित्वा नियोजयेत्।**

रसेन्द्र मङ्गल।

अन्यच्च—**पुनः पिष्टिं प्रकुर्वीत पात्यः स्वेदः पुनः पुनः।**

रससार।

अन्यच—सप्त वारमिदं कार्यं शुद्धं स्याद्रस पातनम् ।

रसाध्याय ।

अन्यच—नागवंगसमुद्भूतदोषशंकां विनाशयेत् ।

रससार ।

अर्थ—उत्थापन संस्कारका पारा ६४पल लेकर उसमें १पल शुद्ध ताम्रचूर्ण, १६पल निंबूरस ,३२पल सैंधव नमक मिला कर निम्बू रस डाल कर इतना खरल करे कि ताम्र और पारदकी पिष्टि बन जाय इसको अधः पातन या ऊर्ध्व पातन यन्त्र द्वारा पातन करके पुनः स्वेदन करें तथा और ताम्र लेकर फिर उसी प्रकार पारद मिला कर पिष्टि बनावें और उसे सुखा कर फिर उसे पातन करें । फिर स्वेदन करके फिर पिष्टि बनावें और पातन करें, इस तरह सात या दश वार करने पर नाग वंग दोष की जो शङ्का रहती है वह भी दूर हो जाती है ।

अन्यच—त्रिफला राजिका शिग्रुस्त्र्यूषं लवणं चित्रकम् ।
धान्याभ्रकं रसं सर्वं मर्दयेदारनालकैः ॥
नष्ट पिष्टं तु तत्पात्यं तिर्यग्यन्त्रे दृढाग्निना ।

रसरत्नाकर वादि खण्ड ।

अर्थ—त्रिफला, राई, सुहांजनेकी जड़, त्रिकटु, नमक, चित्रक और धान्याभ्रक सब पारदके बराबर लेकर कांजी डाल कर इतना खरल करे कि पारदकी पिष्टि बन जाय उसे सुखा कर तीव्राग्नि पर पातन करे । इस तरह ७ वार करने से पारद नाग, वंगके सूक्ष्म दोषोंसे रहित हो जाता है

अन्यच—कुमार्या च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् ।
पातयेत् पातनायन्त्रे सम्यग् शुद्धो भवेद्रसः ॥

रसमंजरी ।

अन्यच—श्रीखण्डं देवदारुं च काकतुण्डी जयाद्रवैः ।
कर्कोटी मूसली कन्या द्रवं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥
दिनैकं पातयेत्पश्चात् सूतं शुद्धं नियोजयेत् । स्कन्द

अर्थ—घी कुमार रस, हल्दी चूर्णमे पारदको एक दिन खरल करके पातन यन्त्र द्वारा पातन करनेसे पारद शुद्ध हो जाता है।

अथवा—चन्दन चूर्ण देवदारु, काकनासा, अरणी, ककोड़ा कन्द, मूसली, घी कुवार रस सब पारद के बराबर डाल कर एक दिन मर्दन करके पातन करनेसे पारद उपयोजित करनेके योग्य हो जाता है।

पारदमें जो नाग वंगके सूक्ष्म दोष रह जाते हैं उनको दूर करनेके लिये ग्रन्थकारने एक दो वार या कई वार तक ऊर्ध्व, अधः तिर्यक् पातनकी विधि बतलाई है। इस पातन विधानमे किसी किसी रसाचार्यका मत है कि एक दो वार पातन करने से ही पारद उक्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। कुछ रसाचार्योंका मत है कि ७ या १० वार तक पातन करने पर उक्त दोष दूर होते हैं।

जो रसाचार्य एक दो वार पतित पारदको शुद्ध समझते हैं उनका यह पारद किस प्रकार जाना जाय कि शुद्ध होगया ? या जो दस वार पतित पारद को शुद्ध कहते है वह ठीक शुद्ध है इसकी कोई परीक्षा ग्रन्थकारने नहीं दी। इसीलिये हम देखते हैं कि इस समय जो विधि सुलभ और जल्दीमे समाप्त हो जाने वाली होती है, वैद्य प्रायः उसीको व्यवहारमें लाते हैं।

हमारे तो अनुभवमें यह बात आई है कि पारदको ताम्र, अभ्रक आदि किसी धातु या खनिजके साथ पिष्टि बना कर पातन यन्त्रमें पातन कराने पर चाहे वह नाग वंगके सूक्ष्म दोषों से रहित हो जाता हो किन्तु, उस पारदमे ताम्र व अभ्रक खनिजके सूक्ष्म दोषोंका समावेश हो जाता है। धात्वंशसे रहित करने के लिये तो पारदके अनेक संस्कार कराये जाते हैं ऐसी दशामे फिर किसी संस्कारके मध्य उसकी किसी धातुसे युक्त पिष्टि बनाकर संस्कृत करना हमे तो युक्ति युक्त नहीं जंचा। यह विधि धातुवादमे चाहे उपयोगी हो, हम इसे देहवादमें उपयोगी नहीं समझते।

पातन संस्कारकी विशेष विधि—

पातन सस्कार अर्थात् तिर्यक् पाननकी विधि बड़े महत्त्वकी विधि है और इस संस्कार द्वारा सेन्द्रिय, निरेन्द्रिय पदार्थोंके सूक्ष्म विश्लेषी करणमे महान् सहायता प्राप्त हो रही है। अनेक सेन्द्रिय, निरेन्द्रिय द्रव्य जिनके उद्वायी, अनु-द्वायी मिश्रणको भिन्न करना कठिन होता था, तिर्यक् पातन संस्कार द्वारा विभिन्न किये जा सके।

पूर्वाचार्यों को इस बातका तो पता चल गया था कि पातन विधिसे पारदमे विद्यमान अनेक भूमिज, गिरिज दोष दूर हो जाते हैं किन्तु वह इस पातन यन्त्रको और अधिक समुन्नत न बना सके, केवल इसकी सहायतासे ही पारदके समस्त दोष दूर हो जायं, यह उच्च विधि उनके हाथ न आई।

आधुनिक समयमे आकर इसमे अधिक सुधार हुआ और निम्न लिखित रहस्य की बातोंका पता चला।

पहिले इस बातका पता नहीं चला था—कि बाहरके हवा मण्डलका भी पदार्थों पर कोई चाप पड़ता है। इस शताब्दीमे आकर इस बातका ज्ञान हुआ कि इस पृथ्वी परके प्रत्येक सजीव निर्जीव पदार्थों पर हवा मण्डलका प्रतिवर्ग इञ्चमे ७॥ सेरके हिसाबसे चाप पड़ता रहता है। इस चापका प्रभाव बाहरके भागसे ही नहीं पड़ता प्रत्युत अन्दरके भागसे भी पड़ता रहता है।

परीक्षाओंसे देखा गया कि जलको किसी खुले पात्रमे उबाला जाय तो वह जल जल्दी नहीं उबलता, सौ शतांश तक जलमे जब तक उत्ताप न बढ़ जाय वह उबाल नहीं खाता, १००श. होने पर उबलने लगता है जिसको क्वथनांक कहते हैं। किन्तु पहाड़ोंकी चोटी पर देखा गया कि जल ८० शतांशके उत्तापपर उबलने लगता है इसके कारणका जल्दी पता चल गया। ज्ञात हुआ कि समुद्र तलसे जितना ऊंचाईकी ओर बढ़ते चले जायं हवाका चाप घटता चला जाता है। इसीलिये पहाड़ोंकी चोटी पर या यों कहिये १२—१५ हजार, फुटकी ऊंचाई पर समुद्र तलकी अपेक्षा २०—२५ गुना कम चाप रह जाता है। वहां जब हवाका

चाप कम रह जाता है तो जल १०० शतांशसे पहिले ही उबल उठता है। जब यह बात विचारवानोंने देखी तो उन्होंने सोचा कि पृथ्वी तलपर जो जल १०० अंश के उत्ताप पर उबलता है यदि इसे किसी ऐसे बंद वर्तनमे बंद करके उबालें जिसके भीतरको हवा निकाली जा सके, तो यहां भी वह कम अग्नि पर उबल सकता है। उन्होंने पात्रके भीतरसे हवा निकालने का यन्त्र बनाया और पात्रको दृढ़ बन्द करके जब पात्रके भीतरकी हवा खींच कर उस जलको उबाला तो वह बहुत ही कम उत्ताप पर क्वथित होने लगा।

कपूर, पिपरमेण्ट तथा अनेक फूलोंके उड्डायी तेल बहुत कम उत्ताप पर उड़ने वाले पदार्थ हैं तथा अनेक ऐसे मिश्रित पदार्थ होते है जिनमे मिले हुए पदार्थ साधारण उत्ताप व चाप पर भिन्न नहीं होते। किंतु उन्हें जब क्षीण चाप पर तथा क्षीण उत्ताप पर उड़ाया जाय तो उसका प्रभाव यह होताहै कि उस मिश्रणके अनेक पदार्थ भिन्न होजाते हैं। जैसे पृथ्वीके गर्भसे निकलने वाला मिट्टीका तेल। इस खनिज तेलको जब भिन्न भिन्न क्षीण चाप और क्षीण उत्ताप पर उड़ाया गया तो इसमें से पेट्रोलियमईथर, पेट्रोल, कैरोसीन आदि अनेक चीजें भिन्न होती चली गईं। यही नहीं, पत्थरके कोयलेको भी इसी तरह क्षीण दबाव और भिन्न भिन्न उत्ताप पर स्रवण किया गया तो इसमेंसे बीसों चीजें भिन्न हो गईं। इसी तरह फूलोंके उड्डायी तेलोंके मिश्रणसे कई भिन्न भिन्न उड्डायी तेल (लेवेण्डर) प्राप्त हुए। यही नहीं पारद जैसे खनिज द्रव्य को भी जब क्षीण चाप पर उड़ाया गया तो क्या दिखाई दिया कि जो पारद ३६० शतांशके उत्ताप पर उड़ने लगना था वह २०० शतांशसे कुछ ऊपर उत्तापके पहुचते ही वाष्प बन कर उड़ने लगा। इस प्रक्रियाका महत्व यह दिखाई दिया कि जब क्षीण दबाव पर पारदको उड़ाया गया तो उस पारदमे जितनी भी सूक्ष्म अशुद्धियां थीं—जो ३६० शतांशके उत्ताप पर जाकर उड़ने लगती थीं। वह २०० शतांशके उत्तापपर उड़ने वाले उस पारद के साथ नहीं उड़ सकीं, क्षीण चापके कारण वह नीचेही बैठी रह गईं और

शुद्ध पारद ही उड़ कर पतित हुआ । इस आविष्कारने पारदके संशोधनमे काफी सहायता पहुंचाई । मर्ककम्पनीका शुद्ध पारद इसी क्षीण चाप पर उड़ाया जाता है । जो व्यक्ति चाहते हों कि हम भी इसी विधिसे पारदका पातन संस्कार करें । उन्हें इसके लिये किसी विलायती कम्पनीसे वैक्रान्त (Quartz) के तिर्यक् पातन यन्त्र बने बनाये—जिसमे हवा निष्कासन यन्त्र लगानेका प्रबन्ध होता है—मंगालें । उसमें रख कर पारदको पातन करावे तो बिलकुल विशुद्ध संस्कृत पारद प्राप्त होगा । देखो चित्र नं० १३ वैक्रान्तका क्षीण चाप वाला वक्र यन्त्र ।

पारद तिर्यक् पातनके लिये जो विलायती वकयन्त्र बनते हैं वह वैक्रान्तके ही सबसे अच्छे बनते है, यह कांच जैसे स्वच्छ पारदर्शी होते है और अग्नि पर चढ़ाने से इनके टूटनेका या आंच लग कर तिड़कनेका डर नहीं रहता । इन्हीं यन्त्रोंमे एक ओर हवा निष्कासन यन्त्रके साथ सम्बन्ध बनाए रखनेके लिये मार्ग रहता है जिसके साथ पाइप कस कर यन्त्र द्वारा उस पात्रकी हवा खींच ली जाती है, देखो चित्र नं० १३ (क) । इससे पारद पर हवाका चाप घट जानेसे पारद जल्दी उड़ने लग जाता है और उसमे जो अशुद्धियां होती हैं वह नीचे बैठी रह जाती है । क्षीण चाप पर परिस्रुत करनेकी विधिका जबसे आविष्कार हुआ इसके द्वारा जटिल मिश्रण जो और विधिसे भिन्न नहीं होते थे आसानीसे भिन्न होगये । क्योंकि समस्त वाष्पशील यौगिकोंकी उड़नशीलता एक जैसी नहीं होती । जिन पदार्थोंके क्वथनांकमे १०—१५ शतांशका भी अन्तर हो वह साधारण चापमें कभी भिन्न नहीं होते, किन्तु चाप घटा कर फिर उन्हें परिस्रुत किया जाय तो जो कम उत्ताप पर पहिले वाष्पशील होने वाला पदार्थ होगा वह उड़ने लगेगा, हां अग्नि अवश्य एक ही मात्राकी बनी रहनी चाहिए। इस समय स्थिर मात्रामें उत्ताप देनेके बहुत उत्तम साधन निकल आए हैं, विद्युत भट्ठियोंमें जितने अंश चाहो उतने अंशका उत्ताप दिया जा सक्ता है । इसीलिये पारदमें क्षीण चापकी स्थितिके साथ जब एक निश्चित मात्राके

उत्ताप पर इसे उड़ाया जाता है तो इसमें फिर जो भी खनिजांश घुले हुए होते हैं उन सबोंको वह नीचे छोड़ देता है और जो वाष्पें इसकी दूसरी ओर सीतल होती हैं वह विशुद्ध पारदकी होती है।

पूर्वकालमें यद्यपि ऐसे पातनके सूक्ष्म यन्त्र नहीं बन सके थे तथापि जो भी पातन यन्त्र कार्यमें लाए जाते थे उनकी महत्ताका उनको अच्छी तरह बोध हो चुका था और समस्त संस्कारोंमें यह पांचवां संस्कार ही एक प्रकारसे पारदके दोषोंको दूर करने वाला अन्तिम संस्कार दिखाई दिया। इससे आगेके जो तीन संस्कार रोधन, नियमन और दीपन हैं वह पारदमें विशेषता उत्पन्न करनेके लिये हैं।

ज्ञात होता है कि पूर्वाचार्य इस पातन संस्कारकी महत्ताके इतने कायल हो गये थे कि इस संस्कार द्वारा पतित पारद को ओषधियोंमें उपयोजित करनेके योग्य समझ लिया था, इसीलिये तो पातन संस्कारसे प्राप्त पारदको ग्राह्य कहा। यथा—

दिनैकं हिंगुलं खल्वे मर्द्यमम्लेन केनचित्।
पातयेत्पातनायन्त्रे दिनान्ते तत्समुद्धरेत्॥
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकार्यकृत्।
सर्वे सिद्ध मत मेतदीरितं सूत शुद्धिकर मद्भुतं परम्।
अल्पकर्म विधिभूरि सिद्धिदं देह लोह करणे हि शस्यते

रसरत्नाकर वादिखण्ड।

अर्थ—हिंगुलको खरलमें डाल कर निम्बू, जम्बीरी आदिके रसमें एक दिन मर्दन कर सुखाय ले फिर उसको पातन यन्त्रमें रख कर पतित करे तो पारद सिंगरफसे भिन्न हो जाता है। ग्रन्थकार कहता है कि ऐसा हिंगुलसे निकला पारद विना अष्ट संस्कारके ही सब कामोंमें वर्तनेके योग्य हो जाता है फिर ग्रन्थकार कहता है कि यह विधि जो मैंने बतलाई है यह विधि समस्त सिद्धोंके मतमें उत्तम और पारदको शुद्धरूपमें प्राप्त करने की परम अद्भुत विधि है जो

बडी ही सरल विधि है, यह बड़े भारी देह व लोह सिद्धिको देने वाली है। ऐसा सर्वोका मत है।

वास्तवमे हिंगुलसे निकला हुआ पारद शुद्ध होता है और उसमे कोई भी दोप नहीं रहते इसको अनेक वैद्योंने अच्छी तरह देखा और समझा था। जिस का परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे हिंगुलसे पारद निष्कासनकी विधि अधिक प्रचलित हो गई। इस समय लगभग ८० प्रतिशत वैद्य हिंगुलसे निकाला पारद रसोंमे उपयोजित करते है हमारा भी अनुभव है कि साधारणतया यह अच्छा होता है।

हिंगुलसे पारद निष्कासनकी उत्तम विधि—

हिंगुलसे पारद निष्कासन की कई विधियें हैं, जिनमें से कुछ विधियां तो ऐसी है जिनके द्वारा पारद निष्कासनके समय बहुत सा पारद उड जाता या क्षीण हो जाता है और कम मात्रामे पारद वैद्योंके हाथ लगता है। इसीलिये हम उन्हे एक ऐसी सरल विधि बतलाते हैं जिसमे ७० तोला हिंगुलमे से ६० तोला पारद प्राप्त हो सकता है।

हिंगुलको प्रथम खरलमें अम्ल द्वारा भावित कर उसकी टिकिया छोटी छोटी बना लें और उसे धूपमें रख कर खूब सुखा लें। जब वह टिकियां सूख जायं तो उनको एक मलमलके कपड़ेमें बांध दें। अब एक मलमलका इतना बड़ा कपड़ा लें जो उस हिंगुलकी पोटली पर दो तीन तहमे लपेटा जा सके उस कपड़े पर कोयलेको पीसकर उस मलमलके कपड़ेको चावल के माड़मे भिगो कर वह पीसा हुआ कोयला उस कपड़े पर चढा दें जब इस कोयलेकी मामूली तह चढ जाय तो इसे सुखा लें, जब यह सूख जाय तो इसको हिंगुल की पोटली पर लपेट दें। अब इसमे जब आप दीयासलाई दिखा देंगे तो वह बराबर सुलगता रहेगा। इसे एक मिट्टीके बड़े घड़ेमें जो भीतरसे अच्छा चिकना हो रख दीजिये और उस घड़ेको उठा कर किसी निर्वात स्थानमे रख दीजिये। घड़ेका आधा मुंह खुला रहने दीजिए, धीरे धीरे सिंगरफसे पारद

निकलना आरम्भ होगा और वह उड़ उड़ कर घड़ेके भीतर ही लगता रहेगा। दूसरे दिन जली हुई पोटलीकी राख निकाल दीजिए और घड़ेमें चारों तरफ हाथ मारिए, पारद सब एकत्र हो जायगा उस पारदको निकाल कर लट्ठेके कपड़े मे डाल कर पाँच सात बार छान लीजिये, निर्मल पारद आपको प्राप्त होगा। इस विधिसे १२ तोले हिंगुलसे १० तोला पारद प्राप्त हो जायगा। कई व्यक्ति घड़ेके पेंदेके २ इञ्च बगलमें एक छोटा हवा जानेका मार्ग और बना देते है, ताकि सुलगती अग्नि बुझ न जाय। ऐसा पारद यद्यपि दोष रहित होता है तथापि अष्ट संस्कृत पारद जितना वीर्यवान् नहीं होता।

एक नया अनुभव—हम अष्ट संस्कृत पारद करते समय जब पारदको किन्नर यन्त्रमें चढ़ा कर मूर्च्छित करते थे तो थोड़ा बहुत पारद बद्ध होकर प्राप्त होता था। जो रसकपूरवत् होता था, इसे देखकर हमको एक नई बात रस कपूरके चूरेसे पारद निकालने की सूझी। एक बार रसकपूरका हमारे पास काफी चूरा पड़ा था, हमने उस चूरेसे पातन विधि द्वारा पारद निकाल लिया और उस पारदसे कज्जली तैयार की तथा बचे हुए पारदसे रससिंदूर बनाया, यह दोनों यौगिक हमें विशेष वीर्यवान्, गुणवान् दिखाई दिये। फिर जब जब हमारे पास रसकपूरका चूरा एकत्र होता, हम उससे पारद निकाल कर उपयोग करते रहते है वह बहुत गुणवान्, वीर्यवान् सिद्ध होता है। इससे हम इस परिणाम पर पहुंचे कि मूर्च्छन संस्कारमें जो बद्धरूप यौगिक बनता है और उससे जो पुनः पारद प्राप्त किया जाता है वह वीर्यवान् इसी परिवर्तन के कारण होता है।

(६) रोधन संस्कार—

पातनसे आगेके जो संस्कार हैं वह भी पारदको वीर्यवान् बनानेके लिये है, शुद्धिके लिये नहीं। यथा—

मर्दन मूर्च्छन पातैः कदर्थितो भवति मन्द वीर्यत्वात।
सञ्जीवस्तु जैर्निरोधाल्लब्धाप्यायो न षण्ढः स्यात ॥ रसहृदय

अन्यच—कदर्थनेनैव नपुंसकत्वं प्रादुर्भवेदस्य रसस्य पश्चात् ।
बल प्रकर्षाय च दोलिकायां स्वेद्यो जले सैंधव चूर्ण गर्भे ॥
रससारोद्धार पद्धति ।

अर्थ—मर्दन, मूर्च्छन, पातनादि संस्कारोंके बाद पारद मन्द वीर्यत्व अर्थात् नपुंसकताको प्राप्त होता है—उसकी कार्य कारिणी शक्ति जाती रहती है इसीलिये इसको दूर करनेके अर्थ इन पांच संस्कारोंके पश्चात् उस पारदको सैंधव लवण चूर्णके मध्यमे रख कर ३ दिन या अधिकसे अधिक ७ दिन दोला यन्त्र द्वारा स्वेदन किया जाय तो उसका षण्डत्व दूर हो कर पारद वीर्यवान् होजाता है।

पारदमे पञ्च संस्कारोंके करने पर षण्डत्व अर्थात् निर्वीर्यता आजाती है, यह बात हमारी तो समझमे आई नहीं। जब पञ्च संस्कार करने पर वह पारद १२ दोषोंसे रहित हो जाता है तो यह एक नया दोष इन संस्कारोंके करने से उसमें कैसे आ जाता है ? किसी आचार्यने इस शंकाका समाधान नहीं किया।

हमारा अनुभव—हमारे अनुभवमे तो यह बात आई है कि पारदकी पोटलीको क्षार या लवण जलमे या गोमूत्रके मध्यमे लटका कर जितने दिन अधिक उबाला जाय उतना ही उसमे अधिक परिवर्तन होता रहता है अर्थात् पारद गाढ़ा होता चला जाता है और यह पारद यदि किसी औषधमे उपयोजित किया जाय तो यह विशेष प्रभावकारी देखा जाता है। अर्थात् वह पारद वीर्यवान् हो जाता है। इस विधिको स्वेदन क्रिया नहीं समझना चाहिये। स्वेदन क्रिया तो दोलायन्त्रके जलीय भागसे ऊपर ही पारदकी पोटलीको लटका कर की जाती है । किन्तु लवण और क्षारको १६ गुना जलमे घोल कर पारद पोटलीको उसमे डूबा हुआ लटका कर पचानेसे पारद वीर्यवान् होता है।

एक महात्मा जो देहरादूनके जङ्गलोंमे रहते थे उनके पास गौएं बहुत थीं, उन्होंने बतलाया कि एक वार हमने ४० दिन साधारण पारदको गोमूत्रमे डाल कर पकाया तो वह गोली बनानेके योग्य हो गया। उस गोलीको दूधमे

डाल कर और उस दूधको दो तीन दिन उबाल कर पीनेसे मनुष्यका [illegible] जाता रहा ।

पारदकी गोली बनाना—

हम भी पारदकी इसी तरह निम्न लिखित विधिसे गोली बनाते हैं । १० तोला पारद १० तोला नौसादर १० तोला स्फटिका १० तोला शोरा १० तोला सुहागा १० तोला लवण [illegible] १० तोला [illegible] इन सबको गोमूत्रमे डाल कर उसे पकाते हैं जब गोमूत्र सूख जाता है तो और गोमूत्र डाल देते हैं, तीन दिन तक इस तरह करने पर पारद गाढ़ा हो कर गोली बनानेके योग्य हो जाता है । उस समय उसे कपड़ेमें रख कर पारद निचोड़ लेते हैं और उसकी गोली बना कर रख लेते हैं, यह गोली दो चार दिनमें कठिन हो जाती है । इसे दूधमें डाल कर उस दूधको उबाल कर नित्य पान करनेसे मनुष्य मे काफी पुंसत्व शक्ति बढ़ जाती है । किन्तु इस गोलीका प्रभाव [illegible] मास तक ही रहता है । फिर यह गोली इतना गुण नहीं करती, जितनी कि आरम्भमें करती है । इसका अभिप्राय यह निकला कि उस पारदमें कुछ ऐसे रासायनिक परिवर्तन होजाते है, जिससे उसके कुछ सूक्ष्म अंश घुलनशील होजाते हैं जो दूधको उबालने पर उसमें मिल कर शरीरमें उत्तेजनाका कारण बनते हैं । ऐसे ही कुछ प्रभाव रोधन संस्कारके द्वारा भी पारदमें आते हैं । इसकी पुष्टि अन्य ग्रन्थकारोंके दिये रोधन संस्कारोंसे भी होती है । यथा—

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।
स्थितिरास्थापनी कुम्भे याऽसौ रोधनमुच्यते ॥
रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्व निवृत्तये ।

रसेन्द्र चूडामणि ।

अर्थ—जल और सेंधा नमकके सहित पारदको तीन दिन तक घड़ेमें रखें (मेरे मतमे घड़ेमे डाल कर तीन दिन तक उबालें) तो इसे रोधन संस्कार कहते हैं । रोधन संस्कारसे पारद वीर्यवान् हो जाता है, दूसरे उसकी चपलता जाती

रहती है अर्थात् वह गाढा हो जाता है। बिना अग्नि पर चढ़ा कर क्वथन किये केवल लवण जलमे डाल रखनेसे पारद कभी अपनी चपलता नहीं त्यागता यह अनुभव सिद्ध बात है। इसीलिए क्षार लवण व मूत्र वर्गमे इसे डाल कर पकाना चाहिये, ऐसा मेरा मत है। इसकी पुष्टि निम्न लिखित शोधन संस्कारसे भी होती है। यथा—

राजिका चित्रकं हिंगु लवणं व्योषसंयुतम्।
सूतपातमिदं सर्वं स्वर्जिका क्षारसंयुतम्॥
शिग्रुपत्ररसेनैव पिष्ट्वा कुण्डलिकाकृतिम्।
कुर्याद्भूर्जदले सम्यगथवा कदलीदले॥
सुघने सुदृढे वापि वस्त्र खण्डे चतुर्गुणे।
तन्मध्ये रसमादाय वध्नीया त्पोटलीं शुभाम्॥
क्षाराम्ल मूत्र वर्गेण स्वेदयेद्दिवस त्रयम्।
वीर्यवान् जायते सूतः षण्ढ भावो विनश्यति॥

धरणीधर संहिता।

अर्थ—राई, चित्रक, हींग, नमक, सोंठ, मिरच, पीपल, सज्जीखार इन सबको पारदसे चौथाई भाग लेकर सबको संहजनेके पत्तेके रसमे पीस कर लुगदी बना केलेके पत्र या भोज पत्रमे रख कर उसके बीचमे पारद रख कर लट्ठेके कपड़ेकी चार तह बना कर उसमे उस पोटलीको बांध दें। पश्चात् एक घड़ेमे क्षार, अम्ल व मूत्र वर्गके मूत्र भर कर उसमे वह पोटली लटका कर तीन दिन स्वेदन करे तो वह पारद नपुंसकताको छोड़ कर वीर्यवान् बन जाता है। इस शोधन संस्कारसे भी मेरे मतकी पुष्टी होती है।

नियमन संस्कार—

नियमनका अर्थ है बंध जाना, अपनी स्वाभाविक गतिको छोड़ देना। इसी बातको ग्रन्थकार कहता है। यथा—

नियम्योऽसौ ततः सम्यक् चपलत्वनिवृत्तये। रसरत्न समुच्चय।

अर्थ—पूरी तरह चपलताको दूर करना नियमन संस्कार होता है। कुछ आचार्योंका मत है कि पारदके अग्निमें स्थिरता लाभ करनेका नाम नियमन है।

अयं नियामको नाम वह्नि प्रत्यन्त कारकः । रसहृदय ।

अर्थ—यह नियामक नाम वाला सस्कार है जिसमे पारद अग्निको अत्यन्त सहन करने वाला होता है।

यह हम पीछे वतला चुके हैं कि द्रवता या चपलता और अग्नि पर उड़न शीलताका धर्म यह पारदमें नैसर्गिक है। जब तक पारद पारदरूप रहेगा यह नहीं बदला जा सकता। हां! हम यह मानते है—कुछ वनस्पतियां है जो पारदकी इस नैसर्गिक स्थिति को बदल सकती है, जिनका उल्लेख ग्रन्थोंमे आया है। रसार्णव व रससारमें काफी नियामक ओषधियोंकी संख्या दी है, किन्तु उनमें से जो प्राप्य है देखा गया है कि उनके उपयोगसे सफलता नहीं मिलती। बहुत वार अनेक वनस्पतियोंके रसोंमे कई कई दिन खरल करके देखा है, कुछ वनस्पतियां ऐसी ह जिनमे खरल करनेसे पारदकी पिष्टि बन जाती है, गाढा भी हो जाता है किन्तु जब उसे पातन यन्त्र द्वारा पतित करते है तो वह पुनः अपने पूर्व रूपमे आजाता है। जो लक्षण शास्त्रकार नियमन सस्कारसे पारदमे उत्पन्न होना बतलाता है, वह दिखाईनहीं देता। यथा—

नियमितो न प्रयाति तथा धूमगतिं प्रिये।
कणिका चाल रहितो वुद्बुदैश्चापि वर्जितः
नियमितो भवत्येव चुल्हिकाग्नि सहस्तथा । रसार्णव ।

अर्थ—जो पारद नियमन संस्कारसे युक्त होता है वह पारा बहता नहीं, न अग्नि पर रखनेमें धुआं देता है और न टूट कर उसकी कणिकाएं इधर उधर लुढ़कती ही है, न उसमें बुलबुले उठते है। नियमन संस्कारित पारदको चूल्हेकी अग्निमें डाल दिया जाय तो वह उड़ता नहीं। जिस नियमन संस्कारसे पारद उक्त स्वरूप वाला होता है उस संस्कारकी विधि निम्न लिखित है।

फणि लशुनाम्बुज मार्कव कर्कोटी चञ्चिका स्वेदात् । रसहृदय ।

अर्थ—बंगलापान, लहसुन, नमकसैंधव, भृङ्गराज, बांझककोड़ाकन्द, इमलीपत्र इन सबोंको पीस कर इनकी लुगदी बना कर उस लुगदीके मध्यमे शुद्ध पारदको रख कर ३ या ७ दिन तक कांजीमे स्वेदन करे तो पारदका नियमन संस्कार होता है।

अन्यच्च—काचकुप्पे मृदालिप्ते रसोमध्ये विमुच्यते ।
कलांशं टंकणं दत्त्वा मध्ये किञ्चित्प्रदीयते ॥
द्वारमुद्रा प्रकर्तव्या वज्रमृत्तिकया दृढा ।
भूगर्भे कूपिका स्थाप्या सितया गर्भे पूरणा
करीषाग्निः प्रकर्तव्य एकविंशद्दिनावधि ।
अयं नियामको नाम वह्नि प्रत्यन्त कारकः ॥ रसहृदय ।

अर्थ—एक दृढ मिट्टी चढ़ी कांच कूपीमे शुद्ध पारद डालें, उस पारदसे सोलवां भाग उसमे सुहागा पीस कर उसके ऊपर डाल दें, फिर उस शीशीका मुंह वज्र मृत्तिका बना कर दृढता से बन्द कर दें। फिर उस शीशीको भूमिमें गढ़ा खोद कर इतने गहरे भूगर्तमे उतार दें कि शीशीकी गर्दन मात्र बाहर रहे, फिर उस शीशीके चारों ओर रेता डाल कर रेता भूमिके बराबर कर दें, फिर करीर, चीड़ या तुष आदिकी अग्नि उस पर जलावें, इन वृक्षों की लकड़ी न मिले तो धान्य तुषसे काम ले सकते है। करीर, चीड़ आदि वृक्षोंका उत्ताप बहुत तीव्र नहीं होता। इनकी अग्नि २१ दिन बराबर उस पर जलाता रहे तो यह पारद अग्निस्थायी हो जाता है और चपलता त्याग देता है।

अन्यच्च—सर्पाक्षी शितिधूर्ते भृङ्ग नलिनी भृङ्गीवचा मागधी,
वन्ध्या कर्कटिका कषाय सलिल स्वेदैर्नियच्छेद्रसम् ।
यद्वा मृण्मय भाजनान्तरगतं पूर्वोक्तवारा रसम्,
रुद्ध्वाभूवलये तुषानलपुटै रूर्ध्वं नियच्छेद्रसम् ।
भूमौ पूरितपूर्ववारिगिरिरसं निक्षिप्य वस्त्रावृतं,
भाण्डे योजित लोहखर्परमुखे चोर्ध्वं पुटे रोधयेत् ॥ रसपद्धति

अर्थ—मकोड़ी, कालाधतूरा, भृङ्गराज, कोकाबेली (नीलोफर), भांग, वच, पीपल (कोई जल पिप्पली लेते हे), वांझककोड़ा इनमे से जो वनस्पति ताजी मिले उनका रस निकाल ले और वच, पीपल जैसी चीजोंका काढ़ा कर के उसद्रव रसमे बराबर मिलाकर एक मिट्टीके भाडेमे भर कर उस घड़ेको चूल्हे पर चढ़ाकर पारदका स्वेदन करे। पारदको इन द्रव द्रव्योंकि मध्य लटका कर ३ या ७ दिन स्वेदन करे। अथवा मिट्टीके घड़ेमे उक्त द्रव द्रव्योंको डाल कर उसके मध्य पारदको कपड़ेमें रख कर उस घड़ेको भूमिमें गाड़ कर उसका मुंह किसी लोहेके तवे आदिसे बन्द कर उस घड़े पर तुषाग्नि या करीर की अग्नि २१ दिन तक जलावे तो पारदका नियमन संस्कार होता है।

अन्यच—रक्तसैंधवव्योषैश्च मूषाद्वयं तु कारयेत्।
तत्संपुटे रसं क्षिप्त्वा नवसारं सनिम्बुकम्॥
तत्सम्पुटे प्रयत्नेन लेपयेत्सन्धिमुत्तमाम्।
मृत्तिका वस्त्र मादाय वेष्टयेत्तत्प्रयत्नतः॥
छायाशुष्कं हि तत्कृत्वा भूगर्भे स्थापयेत्ततः।
अष्टांगुलप्रमाणेन मूषोर्ध्वे गर्तपूरणाम्॥
त्रि सप्त दिन पर्यन्तं करीषाग्निं च कारयेत्।
दिने दिने प्रकर्तव्या मूषा सैंधवनूतना॥
स्वेदयेत्तत्प्रयत्नेन भूगर्भे स्थापयेत्ततः।
अथवा कूपिका मध्ये सूतं सैंधवसंयुतम्॥
भूगर्भे च ततः स्थाप्यमेकविंशद्दिनावधिः।
अयं नियामको नाम वह्नि मित्रत्वकारकः॥ रससार।

अर्थ—लाल सैंधानमक और त्रिकटु इन दोनोंको निम्बू रसमे पीस कर दो मूषा बना कर एक मूषा मे नौसादर पीस कर बिछा दें फिर उसके मध्य पारद रख कर उस पर नौसादर पीस कर और डाल दें, फिर दूसरी मूषासे उसे बन्द करदें और उस मूषा पर दृढ मिट्टी चढ़ा कर उसे

सुखा लें। जब वह सूख जाय तो भूमिमे ८ अंगुल गहरा गढ़ा खोद कर उसमे मूषा रख कर बालूसे उस गढ़ेको भरकर भूमिके बराबर कर दें। फिर उस पर नित्य ४ प्रहर तुषाग्नि या करीर, चीड़ आदिकी अग्नि जलाते रहें। सुबह को जब वह शीतल हो जाय तो उस पारदको निकाल कर उक्त चीजोंकी पुनः नई मूषा बना कर और उसी तरह सारा विधान पूरा कर फिर ४ प्रहरकी अग्नि दें, इस तरह १० दिन अग्नि देकर स्वेदन करें।

अथवा कांचकूपीके बीचमे सैंधानमक डाल कर उस शीशीको भूगर्भमें दबा कर २१ दिन तक उक्त विधिसे अग्नि द्वारा स्वेदन करें तो इससे पारद का नियमन संस्कार होता है और वह पारद अग्निसे मित्रता करने वाला होता है अर्थात् अग्नि पर नहीं उड़ता।

उक्त प्रक्रियाओंसे पारदमे गाढ़ापन आता है, वास्तवमे होता यह है कि उसका कुछ भाग यौगिकमें परिणत हो जाता है और वह यौगिक लवणाजनसे बनता है। परन्तु इसे जब पातन यन्त्रमे रख कर पतित करते है तो यह पारद पुनः उड़ कर अपने पूर्व रूपमें आ जाता है। यदि नियमन संस्कारसे पारद अग्नि स्थायी हो जाय तो उसे फिर उड़ना नहीं चाहिये और गाढ़ा हो जाय तो उसे फिर द्रव रूपमें नहीं आना चाहिए, पर हम इन दोनों बातोंकी उसमे स्थिरता नहीं देखते। हमने अबतक कई शास्त्र वर्णित विधियोंसे नियमन संस्कार किए, किन्तु जब जब उसे पातन यन्त्रमे रखकर पतित किया तो पारद अपनी पूर्व स्थितिमें आ गया। हां, यह विशेषता अवश्य देखी गई—कि नियमन संस्कृत पारद यौगिकमे जल्दी परिणत होजाता है।

(८) दीपन संस्कार—

भूखग टङ्कण मरिचैर्लवणासुरि शिग्रु कांजिकैस्त्रिदिनम्।
स्वेदेन दीपितोऽसौ ग्रासार्थी जायते सूतः।
इति दीपितो विशुद्धः प्रचलित विद्युल्लता सहस्राभः।
भवति यदा रसराजश्चार्यो दत्त्वा द्वितीयमिदम्। रसहृदय।

अर्थ—फिटकरी, हराकसीस, सुहागा, मिर्चें, नमक सैंधव, राई, सुहॅजना, छाल या बीज सब चीजें बराबर लेकर इनको कांजीमें पीस कर इनकी लुगदी बनावे, इस लुगदीके मध्यमें पारदको रख कर उसकी एक पोटली बना दोला यन्त्रमें ३ या ७ दिन स्वेदन करे तो पारद दीपित अर्थात् बुभुक्षित हो कर धातुओंको खानेके योग्य होता है।

अर्थ—यह किस प्रकार ज्ञात हो कि यह पारद दीपित हो गया है ? इस के सम्बन्धमें ग्रन्थकार कहता है कि दीपन संस्कारसे निकाला पारद विद्युत जैसी सहस्र गुणा चलायमान् आभा प्रभासे युक्त होता है और दूसरे धातु चारणा करने अर्थात् खिलाने पर वह उसे खा जाता है और अपने मे तल्लीन कर लेता है ऐसा पारद विशुद्ध दीपन संस्कार युक्त होता है।

अन्यच्च—स्वेदनं रसराजस्य क्षाराम्ल विष मद्यकैः।
बीजपूरं समादाय वृन्तमुत्सृज्य कारयेत ॥
तस्य मध्ये क्षिपेत्सूतं कलांश क्षारसंयुतम्।
द्वारं निरुध्य यत्नेन वस्त्रमध्ये निबन्धयेत् ॥
दोलास्वेदः प्रकर्तव्य एकविंशद्दिनावधिः।
दिने दिने प्रकर्तव्यं नूतनं बीजपूरकम् ॥
लेलिहानो हि धातूंश्च पीड्यमानो बुभुक्षया।
अमुनैव प्रकर्तव्यं रसराजस्य दीपनम् ॥ रससार

अर्थ—पहिले पारदको क्षार, अम्ल, विष और मद्यमें स्वेदन कर ले। अर्थात् प्रथम अन्य संस्कार कर ले पश्चात् दीपन संस्कारके लिए बिजौरा निम्बू की एक ओरसे टोपी काट कर उसमें पारदसे १६वां भाग नौसादर डाल कर फिर उसमें पारद भर दे और टोपीसे उसे बन्द करके कपड़ेमे बांध दोलायन्त्रमे लटका कर कांजीमें ४प्रहर स्वेदन करे। फिर दूसरे दिन उसमें से पारदको निकालकर कांजीसे धोडाले फिर इसी तरह नौसादर युक्त पुनःपारदको दूसरे बिजौरा निम्बूमें भर कर फिर नई कांजीमें उसका स्वेदन करे। इस प्रकार २१ दिन

निम्बूमे पारदको डाल कर स्वेदन करे तो रसराजका दीपन संस्कार होता है और वह पारद बुभुक्षित=भूखा=हो कर समस्त धातुओं को खाता चला जाता है, ऐसा कहते हैं ।

अन्यच—**कीटिका तैलिनी नाम नवसारोऽथ शूकजः ।**
गृह्यते चूर्ण्यते गाढं तेन चूर्णेन सूतकम् ॥
मर्दयेत्तत्क्षणेनैतत्क्षणेनैतन्निरन्तरम् ॥
अष्टवासरपर्यन्तं बुभुक्षा पारदे भवेत् ॥
निर्मलोऽपि च निर्दोषः कर्मकारी भवेद्रसः ।
राग ग्राही भवेन्नूनं राक्षसः सर्वभक्षकः ॥
वडवाग्नि रसः साक्षात्पारदोऽप्यतिरिच्यते ।

रसकामधेनु ।

अर्थ—षट्बिन्दु कीट या तेलनी मक्खी जिसका अंगरेजी नाम कैंथराइड (Cantharide) है यह कैमिस्टके यहां से काफी मिल जाती है । नौसादर, जवाखार तीनों बराबर ले कर पीस लें, यह सब पारदसे षोडशांश हों—इनके साथ पारदको मिलाकर मर्दन करनेपर पारद उसमे उसी समय मिल जाता है। फिरभी उसको निरन्तर खरल करे, जब सब मिल जायं तो उसको भोज पत्रमें लपेट कर उस पर मिट्टी चढा कर उसका पुटपाक करे जब मिट्टी अधिक उत्तप्त हो जाय किन्तु लाल न हो—निकाल ले और सीतल होने पर बिना पारदको धोये या साफ किये ही फिर उसमे उक्त चूर्ण षोडशांश मिला कर फिर एक दिन मर्दन करे, इस प्रकार ८ दिन प्रतिबार उक्त चीजोंका चूर्ण दे कर मर्दन करता चला जाय तो पारद बुभुक्षित हो जाता है ।

यह पारद निर्मल, निर्दोष, पूरा कर्मकारी, रंगको ग्रहण करने वाला साक्षात् वड़वाग्निके समान सर्व धातु भक्षक राक्षस रूप होता है ।

अन्यच—**सूतराजस्य सुमुखं कथयामि प्रयत्नतः ।**
शिग्रुत्वग्रसतोयेन पञ्चाशत्पुटतः परः ॥

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
तलियाए समं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

अङ्कोलत्वग्रसैस्तद्व त्पञ्चविंशति संख्यया ।
त्रयोदशपुटाश्च स्यु श्चित्रमूलरसैस्तथा ॥
राजिका रसतो देयाः पुटा द्वादश संख्यया ।
कुमार्यैकादश तथा शङ्खचूर्णैर्दश ध्रुवम ॥
पारिभद्रत्वचो देयाः नवाष्टौ भृङ्गराजतः ।
उन्मत्तस्य तथा सप्त विजया व्याधिजैस्तथा ।
शतावर्यास्तथा पञ्च चत्वारो भानुजैस्तथा ॥
सोमराज्यास्त्रयोदेया त्रिफलाया द्वयं ततः ।
एकमेकं त्रिकटुकैर्लवणेनैक एव हि ॥
भूमिनागैस्तथा पञ्च देयाः प्रक्षालनं विना ।
एवं कृत्वा तथा मर्द्यो यथास्याद्दृणुवद्रसः ।
ततः सूतं समुद्धृत्य रक्षयेत्तु प्रयत्नतः ॥
रहस्यं परमं वक्ष्ये शृणु सम्प्रति भामिनि ।
रसो राक्षस वक्त्रोऽयं सुवर्ण शुल्व तारकम ॥
भक्षयेद्विविधान् धातून् समुद्रं वाडवो यथा ।
तत्पुनः सूतराजोऽयं शोधितः स यथास्थितः ॥

रुद्रयामले ।

अर्थ—पारदका जो प्रयत्नके साथ होने वाला दीपन संस्कार है उसको कहता हूं। पारदको सहजनेके रसकी ५०, अङ्कोल त्वचा रसकी २५, चित्रक मूल रसकी १३, राईके रसकी १२, कुमारीके रसकी ११, शंख चूर्णकी १०, वकायन त्वचाके रसकी ९, भृङ्गराज रसकी ८, काले धतूरेके रसकी ७, विजया रसकी ६, सतावरके रसकी ५, आकके रसकी ४, वावचीके रसकी ३, त्रिफलाके क्वाथकी २, त्रिकुटेके क्वायकी १, नमक सैंधवकी १ और कैंचुवेकी ५ भावना देवे। किन्तु ग्रन्थकार कहता है कि 'देया प्रक्षालनं विना' पारदको विना धोये ही—एक भावना पूरी होनेके वाद—दूसरी तीसरी देता चला जाय। इस प्रकार

भावना देता हुआ तथा यहा तक मर्दन करता हुआ चला जाय कि पारद जरा जरासे रेणु (कण) में विभक्त हो जाय। अर्थात् भावित द्रव्यके साथ मिल जाया करे। जब समस्त भावनायें पूर्ण हो जायं तो यहां तक खरल करे कि भावनाके द्रव्य सूख कर पारदको छोड़ दें ऐसे पारदको निकाल कर प्रयत्नके साथ सुरक्षित रख ले।

पार्वतीके प्रति शिवजी कहते हैं कि इस पारदके परम रहस्यको तुम मेरे से सुनो—यह पारद राक्षस मुख वाला सोना, तांबा, चांदी आदि विविध धातुओंको इस प्रकार भक्षण कर लेता है जैसे समुद्रको वड़वाग्नि और कहीं इस विलक्षण पारदका पुनः संशोधन किया जाय अर्थात् पातनादि संस्कार किया जाय इस पारदकी बुभुक्षा शक्ति नष्ट हो जाती है और वह पारद पुनः पहिले जैसा साधारण गुण वाला रह जाता है।

अन्यच्च—सूतस्य राक्षसमुखं प्रवक्ष्यामि महाबल !।
शिग्रुत्वग्रसतोयेन पञ्चाशत्पुटदापनम्॥
अंकोलत्वग्रसैर्देयाः पञ्चविंशतिसंख्यकाः॥
त्रयोदश पुटानि स्युश्चित्रमूलरसैः पुरा॥
राजिका रसतो देयाः पुटा द्वादश संख्यकाः।
कुमार्यैकादश पुटाः शङ्खकीटैर्दश ध्रुवम्॥
पारिभद्र त्वचो देया नवाष्टौ भृङ्गराजतः।
उन्मत्तेन तथा सप्त विजयोत्थैश्च षट् तथा॥
विभावर्या तथा पञ्च चत्वारो भानुजा मताः।
सोमराज्या त्रयोदेया स्त्रिफलाया द्वयन्तथा॥
एकमेकं त्रिकटुकैर्लवणैनैक एव हि।
भूमिनागस्य तथा पञ्च देयाः प्रक्षालनं विना॥
एवं कृत्वा तथा मर्दो यथा स्याद्रेणुवद्रसः।
ततः सूतं समुद्धृत्य रक्षयेत्सुप्रयत्नतः॥

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[1] ।
सूमं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

रहस्यं परमं वक्ष्ये शृणु शिष्य ! प्रयत्नतः ।
रसो राक्षस वक्त्रोऽयं सुवर्णं शुल्व तारकम् ॥
भक्षयेद्विविधान्धावन् समुद्रं वाडवो यथा ।
तत्पुनः सूतराजोऽपि तोलितोऽयं यथास्थितः ॥
कौतुकं मम चित्तेऽपि ज्ञान ज्योतिरिदं पुनः ।
भक्षिताः सूत राजेन धातवः कुत्र यान्ति ते ॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व तत्त्वज्ञोसि यतो यते ! ।

ज्ञान ज्योति कृत रसज्ञानम् ।

उपरोक्त दोनों योग एक ही है । एक दो स्थान पर जरा पाठ भेद है । यथा—रुद्रयामलमे 'शङ्ख चूर्णं दशध्रुवम्' पाठ है और रस ज्ञानमे 'शङ्ख कीटैर्दश ध्रुवम्' पाठ है, दूसरे आगे रुद्रयामलमे 'शतावर्यास्तथा पंच' पाठ है, रसज्ञानमे **विभावर्यां तथा पञ्च'** पाठ है । वहा सतावर लिया है यहां हल्दी ली है । बस इतना ही पाठ भेद है, हमे रुद्रयामलका पाठ ठीक जंचता है ।

इस दीपन संस्कार पर हमारा अनुभव—

१९१५ इस्वीमें जब मैं हिमालय पर्वतकी चम्बा नामक राजधानीमे था तो वहां के राजकीय पुस्तकालय मे रसकामधेनु नामक संग्रह ग्रन्थ उपलब्ध हुआ । राजाज्ञा प्राप्त कर इस ग्रन्थकी हम कापी कर रहे थे तो सूतक्रिया पाद मे उक्त योग देखनेको मिला, उस समयसे इसको बनानेकी इच्छा बलवती हुई। फिर यह योग रुद्रयामलके रसकल्प नामक खण्डमें जब देखा तो निश्चय हुआ कि इसे अवश्य बना कर देखना चाहिये । १९२७मे जब श्रीयुक्त विद्वद्वर्य पं० हरिप्रपन्न जी रसयोग सागरके दूसरे भागके संग्रहकी तय्यारीमें संलग्न थे—उनके पास 'रस ज्ञानम्' नामक हस्त लिखित ग्रन्थ देखा उस ग्रन्थमे भी दीपन संस्कार मे यह योग देखनेको प्राप्त हुआ, वहां इसका कुछ पाठ भिन्न देखनेको मिला। वहां '**पञ्चाशत पुट दायनस**' श्लोकका पूर्वार्द्ध उड़ा हुआ था, इस ग्रन्थकी

एक कापी हमे कष्टवार नामक हिमालयकी एक रियासतमे एक वैद्यके पास देखनेको मिली उसमे वही पाठ था जो रुद्रयामलमे आया है किन्तु उसमे शंखकीटके स्थान पर 'शंख चूर्ण' ही पाठ मिला और विभावर्यके स्थान पर 'शतावर्या'। इससे निश्चित हुआ कि रसज्ञानकी कापी करने वालेसे किसी कारणवश हेर फेर हो गया है। खैर! जब इस योगका सही ज्ञान हो गया कि जो भावनाकी औषध इसमे वर्णित हैं सब प्राप्य है और इस योगका बनाना कोई कठिन नहीं। हमारे कारखानेमे विद्युत द्वारा पत्थरके खरलोंमे घोटाई का उत्तम प्रबन्ध था। हमने देखा कि यह विधि तो केवल घोटाई की है, यद्यपि १७० बार भावना देनी है। जिसको करते हुए लगभग दो वर्षसे कुछ ऊपर ही लग जानेकी सम्भावना थी। हमने सोचा, आठ खरल बिजलीसे चलते हैं। इनमे दो तीन खरल प्रायः खाली पड़े रहते हैं, एक बड़ा खरल दीपन संस्कारके लिये लगा दिया जाय और जब तक यह कार्य समाप्त न हो वह चलता रहे।

१९३६ ईस्वीके बसन्त पञ्चमीके दिन हमने सप्त संस्कृत पारद ≤५ सेर खरलमे डलवा दिया और वैद्यजीको यह समझा दिया कि ५ छटांक सोभाञ्जनकी छाल ताजी मंगा कर उसको कूट कर उसका काढ़ा बना लिया करें और कोई ५ छटांक जब क्वाथ रह जाया करे इसे अच्छी तरह छान कर पारदमे डाल कर उसे घुटनेके लिये छोड़ दिया करें। जब यह सूख जाय तो पुनः इसी छाल का इतनाही काढ़ा बनाकर डाल दिया करें, इस प्रकार इसकी ५० भावना दें। इसके पश्चात् २५ अंकोल छालके काढ़ेकी १३ चित्रक मूलके काढ़ेकी, ११ राईके रसकी, ११ कुमारीके रसकी, १० शंख चूर्णकी। यह क्रम चलता रहा हम जब इसको १००के लगभग भावना दे चुके और एक वर्ष समाप्त हो गया तो उस खरलमे इतना क्लेस उत्पन्न हो गया कि जब रस गाढ़ा हो जाता था तो मूसला चलता न था। विद्युत् शक्तिसे भी उसकी घुटाई नहीं होती थी। जब तक एक भावनाका दिया रस न सूखे, तबतक दूसरी भावना दी नहीं जा

कोऊहल-विरइया

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
तलियाए समं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

सकती थी। पारद उस द्रवमें इतना लीन हो चुका था कि उसका कोई पता नहीं चलता था। और खरलके द्रवमे ल्हेस इतना जबरदस्त था कि उस रसके गाढ़ा होने पर खरल बन्द हो जाता था। शास्त्रका आदेश था कि **'देया प्रक्षालनं विना'** अर्थात् भावना देनेके मध्यमें पारदको धोना नहीं। **'न शोधितोऽयं'** और न इसका शोधन करना, वर्ना उसकी सब शक्ति नष्ट हो जायगी। इसी भयके मारे सिवाय भावनाके और कुछ नहीं करते थे। किन्तु कोई उपाय नहीं सूझा कि जिससे घुटाई या भावनाको जारी रख सकें, अभी ७० के लगभग भावनायें देनी बाकी थीं। अब एक भावनाके लिये वनस्पति रस यदि ५ छटांक डालें तो वह गाढ़ा इतना रहता था कि खरलमें मूसला न चलता था। यदि इससे दुगुना तिगुना डाल दें और सारे खरलके द्रव्यको अधिक पतला कर दें तो वह पन्द्रह पन्द्रह दिनमे भी सूखने पर नहीं आता था। अन्तमें लाचार होगये और यह विचार किया कि इसको एक बार खूब सुखा लिया जाय। सूखनेके लिए उसी खरलमे पड़ा रहने दिया, पूरे १॥ मासमे सूखा। जब उसे निकाला तो वह पत्थर तद्वत् कठोर डला सा बंध गया, उसे तोड़ा तो अन्दर से नमी दिखाई दी।

छोटे छोटे टुकड़े करके फिर उसे और सुखाया, जब वह सूख गया तो उसकी कुटाई कराई, कूटने और बारीक छानने पर उसमेंसे पारा भिन्न होने लगा और कोई २॥ सेरके लगभग पारद निकल आया, बाकी पारद उसी चूर्णमे था, सूखने पर और चूर्ण बना लेने पर उसको तोला तो सबका वजन पौने सात सेर था अर्थात् पौने दो सेर उन वनस्पतियों के क्वाथांश उसमें बढ़े। अब इसको फिर खरलमें डाला गया, अभी कुमारी रसकी भावना लग रही थी। कुमारी रस स्वयं ल्हेसदार (पिच्छल) होता है, इसीलिये इसका भी हम क्वाथ बना कर डालते थे, पर पांच छटांक क्वाथ डालने पर यह भीगा तक नहीं। एक सेर क्वाथ डालने पर कुछ घोटनेके योग्य हुआ, परन्तु उसमें ल्हेस =चिमड़ापन= इतना अधिक था कि बड़ी कठिनतासे मूसला चलता था।

घुटते घुटते दूसरे दिन फिर वही हाल हो गया, मूसला उस द्रव्यमे फंस कर रह गया, घुटाई होती ही न थी। जब घुटाई न हो तो क्रिया किस प्रकार समाप्त हो? यह एक प्रश्न सामने था। मालूम नहीं पूर्व कालमे यह विकट समस्या उत्पन्न हुई थी, या नहीं। जहां तक इस क्रियात्मक विधिको देखता हू उससे तो स्पष्ट होता है कि जब किसी वस्तुको क्वाथ द्रव्योंकी भावना निरन्तर लगती रहे तो उस क्वाथके अवशिष्ट द्रव्य गाढे ही होते जाते हे और उसकी प्रगाढता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। इसे दूर किया जासकता है तो इसी विधिसे किया जासकता है कि प्रतिवार भावनाके बाद पारदको धोया जाय। किन्तु इस विधिके अन्तमे बतलाया है कि इसे धोना नहीं चाहिए। इस कठिनाईको दूर करनेका हमे कोई मार्ग नहीं मिला, अन्तमे इस प्रक्रियाको यहीं छोड़ देना पड़ा। हमने इस पारदको जितना इसमे निकला, निकाल लिया। बाकीको पातन यन्त्र मे चढा कर निकाल लिया। जो पारद बिना प्रक्षालनके इसी प्रकार प्राप्त हुआ उस पारदकी इस प्रसंगमे वर्णित परीक्षा ली गई। १०० रत्ती पारदमे १ रत्ती सुवर्णपत्र डाल दिये गये, वह पत्र उसमे लीन तो होगये, किंतु जब उस पारदका वजन (भार) लिया तो १०१ रत्ती हुआ। फिर उसे वस्त्रमें डाल कर निचोड़ा, तो निचोड़नेमे कुछ पारदके मिश्रणके साथ सुवर्ण वस्त्रमे रह गया। इससे ज्ञात हुआ कि पारद कुछ भी बुभुक्षित नहीं हुआ। अब दूसरी बार इसे पुनः बनाने का विचार है। हम इस बार प्रत्येक भावनाके पश्चात् पारदका प्रक्षालन करेंगे और इसका रहस्य मालूम करेंगे।

क्या पारद बुभुक्षित नहीं हो सकता ?—

बुभुक्षित पारदके जो ग्रन्थकारने लक्षण दिये हैं—कि जो धातु उस पारद मे डाल दी जाय वह पारदके रूपमे लीन होजाती है, फिर उस पारदको वस्त्र में से छाना जाय तो वह धातु भी छन जाती है तथा उस पारदका भार लेनेपर उसमें धातुका भार नहीं आता, केवल पारदका ही भार रहता है, यह बात आजतक किसी व्यक्तिके संस्कृत पारदमे नहीं पाई गई।

कोऊहल-विरइया

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

जिन व्यक्तियोंकी यह धारणा है कि सजीव जगत् के प्राणी जिस तरह भोजनको खा कर आत्मसात् कर लेते हैं और भोजन करनेसे शरीरकी चल प्रक्रियाके कारण उनके भारमे अन्तर नहीं पड़ता, इसी प्रकार सजीव जगत्वत् पारद भी बुभुक्षित हो कर धातुओंको खाने लग जाता है और उसे अपने मे आत्मसात् कर लेता है। यह बात आधुनिक विचारसे अभी तक कल्पना मानी जा रही है। रसायन शास्त्रके अध्ययन कर्ता इस बातको समझते हैं कि पारद एक खनिज निरेन्द्रिय द्रव्य है। निरेन्द्रिय व पार्थिव पदार्थमें खाने और पचानेका व्यापार आज तक किसीने नहीं देखा, न यह बात युक्ति युक्त कही जा सकती है।

हम पीछे बतला चुके हैं कि पारद एक द्रव और भारी घोलक धातु है, इसमे यह विशेषता है कि अन्य धातुओंको अपनेमे घुला लेता है। इसके इस घोलक गुणके कारण अनेक धातुएं न्यूनाधिक मात्रामे इसमे घुल सकती हैं। और इसकी इस घोलक शक्तिमे तीव्रता व मन्दता तो आ सकती है, किन्तु उस का आत्मसात् होना सम्भव नहीं। जब पारदको अत्यन्त निर्मल किया जाता है, तो देखा जाता है कि वह स्वर्ण आदि धातुओंको अपनेमें बड़ी द्रुतगतिके साथ मिला कर सम्मेलन बना लेता है। अशुद्ध और मलिन पारदमे यह तीव्रता नहीं पाई जाती। कारण कि इससे पूर्वही वह काफी मलिनतासे परिपूरित होता है, इस लिये उस स्थितिमे वह अन्य धातुओंके साथ उतनी त्वरित गतिमें सम्मिलित नहीं होता। पारद अनेक धातुओंसे कई परिमाणमे सम्मेलन (Amalgam बनाता है। इस सम्मेलनसे पारदकी द्रवता घट जाती है, यहां तक कि यह ठोस होजाता है। जब पारद अशुद्ध होता है उसमे अशुद्धियां अधिक होती है तो वह थोड़ीसी धातुके मेलसे अधिक गाढ़ा हो जाता है। जो पारद शुद्ध होता है, वह अधिक मात्रामें धातुको अपनेमे लीन कर गाढ़ा होजाता है। यह बातें प्रत्यक्ष देखी जाती है, यह बातें सम्भावित है, इसका अनुमोदन रसायन शास्त्र और युक्ति दोनों करते हैं। किन्तु बुभुक्षाके उस शास्त्रीय स्वरूपका अनुमोदन

आज तक नहीं हुआ। यदि कोई आयुर्वेद प्रेमी इस चमत्कारको दिखलावेंगे तो समस्त वैद्य समाज उनका ऋणी होगा।

अष्ट संस्कारों पर कुछ विचार—

यह बात भ्रान्ति रहित है कि पारदका व्यवहार आरम्भमें धातुवादके लिये हुआ और फिर जब इसको किसी व्यक्ति विशेषके द्वारा देह-सिद्धिमे उपयोजित करते देखा गया तो वे धातुवादी भी इसका उपयोग रोग निवारणमे करने लगे। किन्तु किसी भी वस्तुको उपयोगमे लानेके पहिले यह आवश्यक होता है कि उसके रूप, गुण, धर्म, रचना और शुद्धाशुद्ध रूपको देख व समझ लिया जाय।

धातुओंका ज्ञान पुराना था और इसके ज्ञाताओंको इस बातका पता था कि इन धातुओंमे अन्य खनिजोंके मिश्रण रहते है, इसीलिये उन्हें अधिक शुद्ध रूपमे प्राप्त करने की प्रथा चली आ रही थी। पारदको जिन विद्वानोंने उपयोगमे लानेका विचार किया उन्होंने इसके वास्तविक रूप, गुण, धर्म और उसके मिश्रणको समझनेका सबसे पहिले प्रयत्न किया। क्योंकि वस्तुस्थितिका जब तक सही रूपमे ज्ञान न हो जाय व्यवहारके समय कई अड़चनें आती रहती हैं। इसीलिये जिन विद्वानोंने पारदके वास्तविक शुद्धरूपको समझा कि यह शुद्ध रूपमे ऐसा होता है! उन्हें बाजारसे प्राप्त होने वाले पारदको उपयोगमे लानेसे पहिले—शुद्ध करना आवश्यक दिखाई दिया। आरम्भमे यह प्रक्रिया सरल रूपमे आविष्कृत हुई प्रतीत होती है। धीरे धीरे इसके संशोधन करनेमे विशेष विधियोंका आविष्कार हुआ। हम इसके कुछ उदाहरण देंगे—

चतुर्गुणेन वस्त्रेण त्रिवारं गालयेद्रसम्।
विमुक्तो नागवंगाभ्यां पीडनादेव जायते॥

रसमार्तंड।

अर्थ—लट्ठा या ठोस बुने हुए वस्त्रको चौगुना करके उसमे पारदको बांध कर तीन बार निचोड़नेसे पारद, नाग, वंग दोषोंसे रहित हो जाता है।

कोऊहल-विरइया [१३

णिम्मज्जिय-विउल-क्वोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

अन्यच्च—**एकविंशतिवारांस्तु वाससा गालयेद्रसम् ।**
नागवंगादिकाः किञ्चिद्वस्त्रे तिष्ठन्ति धातवः ॥

रससार ।

अर्थ—ठोस कपड़ेमे डाल कर २१ वार पारदकी पोटली बांध कर निचोड़ ले तो नाग, वंगके कुछ दोष वस्त्रमे रह जाते है ।

इसी प्रकार अन्य अशुद्धियोंको भी सरल विधिसे दूर किया गया था, यथा—

अङ्कोलस्तु मलं हन्ति वह्निमारग्वधः प्रिये ।
चित्रकस्तु विषं हन्ति कुमारी सप्त कंचुकान् ॥

रसार्णव ।

अर्थ—हे प्रिये ! पारदको अङ्कोलके काढ़ेमें मर्दन करनेसे उसकी मलिनता दूर होती है और अमलतासके काढ़ेमे मर्दन करनेसे अग्नि दोष नष्ट होता है । चित्रकके काढ़ेमें मर्दन करनेसे विष दोष नष्ट होता है तथा घीकुवारके रसमे मर्दन करनेसे सप्त कंचुक दोष नष्ट होते हैं ।

अन्यच्च—**गृह कन्या हरति मलं त्रिफलाग्निं चित्रकश्च विषम् ।**

रसहृदय ।

अर्थ—पारदको घीकुवारके रसमे मर्दन करनेसे मल दोष, त्रिफला क्वाथमे मर्दन करने से अग्नि दोष, चित्रक क्वाथमे मर्दन करनेसे विष दोष नष्ट होता है ।

अन्यच्च—**विशालांकोल चूर्णेन वंगदोष विमुंचति ।**
राजवृक्षो मलं हन्ति पावको हन्ति पावकम् ॥
चांचल्यं कृष्णधतूर स्त्रिफला विष नाशिनी ।
कटुत्रयं गिरिं हन्ति असह्याग्निं त्रिकंटकः ॥

रसदर्पण ।

अर्थ—इन्द्रायण और अङ्कोल चूर्णसे पारदका वंग दोष दूर होता है, अमलताससे मल, चित्रकसे अग्नि दोष, काले धतूरेसे चञ्चलता, त्रिफलासे विष दोष, त्रिकटुसे गिरि दोष तथा गोखरूसे असह्याग्नि दोष दूर होते हैं ।

रसार्णवका मत है कि अङ्कोलसे पारदका मल दोष नष्ट होता है, रसहृदय-कारका मत है कि घीकुवारसे मल दोष नष्ट होता है, रस दर्पणकारका मत है कि अमलतासमे मल दोष नष्ट होता है। इसी तरह और दोषोंको दूर करने वाली ओषधियोंमें भी मत भेद है। खैर ! कुछ हो पारदके दोषोंको दूर करने के लिये आरम्भमें यह सरल विधियां ही काममे लाई गई थीं, ऐसा प्रतीत होता है। और इसके संशोधनका यह आरम्भिक ज्ञान होनेसे मत भेद होना साधारण बात है। हम देखते है कि धीरे धीरे आगे चल कर वह मत भेद दूर हो गया और कुछ ओषधियां भिन्न भिन्न दोषोंको दूर करने के लिये निश्चित कर दी गई। जिनका उल्लेख हम पीछे कर आये है।

किन्तु पारदके जो द्रव्य शास्त्रोंने निश्चित कर दिए है वही अब अन्तिम संशोधन द्रव्य है ऐसा समझना भूल है। अब भी इसमें संशोधन व परिवर्द्धन होरहे है और क्षीण चाप पर पारदको वाष्पीभूत करना उनमे से एक है।

सबसे अधिक तो विचारणीय बात यह है कि जो पारद व्यवहारके लिये लिया जाय वह विशुद्ध हो। उसमे न तो कोई मलिनता घुली हुई हो, न कोई धात्वंश। अग्नि दोष और विष प्रभाव भी इन्हीं मिश्रणोंसे उसमें आते हैं। इन सबोंको दूर करनेका सबसे सरल उपाय है 'क्षीण चाप पर पारदको वाष्पीभूत करके विशुद्ध पात्रमे सञ्चित कर लेना'। इस क्षीण दबावमे परिश्रुत किया हुआ पारद मल रहित, अत्यन्त उज्ज्वल दीप्ति वाला होता है। इसमेंसे पारद को निकाल कर गुण वृद्धिके लिये अन्य स्वेदन, मर्दनादि संस्कारोंको करे तो कोई हानि नहीं।

हम प्रसंगवश यहां पर एक बात और बतला देना उचित समझते हैं—

पारदका मर्दन, स्वेदन आदि संस्कारोंके बाद बहुतसे वैद्य जब उसे कांजीसे धोते है तो उस कांजी के जलको साथ ही साथ फेंकते रहते हैं। पारदकी प्रक्षालित कांजीको उसी समय बहा देना बड़ी भूल है। वास्तवमें इसतरह करने से पारदके बहुतसे अंशको उस मलिन जलके साथ बहा देना है।

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[1] ।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

तभी तो अष्ट संस्कार करते करते एक सेर पारदका आठ दस तोला ही पारद पल्ले पड़ता है, वास्तवमें ऐसा नहीं करना चाहिये। पारदको अन्य संस्कारोंकी अपेक्षा मर्दन संस्कार के वाद—जब कि पारद अत्यन्त सूक्ष्म कणोंमे विभक्त हो कर औषध द्रव्यके साथ मिल जाता है—कांजीसे धोते समय वह कांजीके साथ घुल कर निकल जाता है। यदि पारद प्रक्षालित कांजीको फेंका न जाय, किसी घड़ेमें एकत्र कर रखता चलाजाय तो दोचार दिनमें पारद उस कांजीकी तह मे बैठ जाता है। संस्कारके पश्चात उस कांजीको ऊपर ऊपरसे भिन्न करके अवशिष्ट भागको गाढ़ा कर लिया जाय और मन्द अग्नि पर उसे अधजला सा कर लिया जाय तो जितना पारा घटता है वह सारे का सारा आपको उस कांजीकी तहसे प्राप्त हो जायगा।

एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिये—

मूर्च्छन संस्कारमें कई बार पारदका कुछ भाग रसकपूरमें परिणत होजाता है पारद तो कांजीमें नहीं घुलता, परन्तु पारदसे बना रसकपूर कांजीमे घुलनशील होता है। यदि उस कांजीको फेंक दिया जाय तो उसके साथ वह घुला हुआ रसकपूर भी चला जायगा। इस दशामें भी कांजीको फेंकना नहीं चाहिये, प्रत्युत उस कांजीको अग्नि पर चढा कर उस पानीको जला डालना चाहिए और जो अवशिष्ट सूखा भाग बचे उसको एकत्र कर शीशीमें चढा कर उड़ा लेने पर फिर रसकपूर प्राप्त हो जाता है।

पारदके यौगिक और उनका उपयोग

पारदके जब अष्ट संस्कारोंसे आगेके और संस्कार किये गये, यथा—जारण, चारण, रञ्जन आदि तो इन संस्कारोंमें पारद पारद रूप न रह कर यौगिक मे परिणत होजाता है। बलि जारणामें रससिंदूर की उत्पत्ति होती है, अभ्रक जारणामें भी वह यौगिकमें परिणत होता है। यही बात शास्त्र कहता है, यथा—

चारणेन बलं कुर्याज्जारणाद्बन्धनं भवेत् ।

रससार ।

अर्थ—चारण संस्कारसे पारद बलवान् होता है और जारण संस्कारसे पारद बंध जाता है अर्थात् यौगिकमें परिणत हो जाता है।

रसकपूर, रससिंदूर आदि यौगिक पारदके जारण संस्कार द्वारा बन्धन रूप है, और कोई दूसरी चीज नहीं।

जो व्यक्ति पारदका संस्कार करते हुए क्रामण, वेधन, रञ्जन आदि संस्कारों तक पहुंचे होंगे उनके पास जारण संस्कार युक्त पारद अवश्य विद्यमान होगा, जारण संस्कारमे तो सौगुना गन्धक जारण तकका विधान है। इसी प्रकार अभ्रक सत्व जारणके बड़े बड़े लम्बे विधान पाये जाते है जो वर्षोंमें जा कर पूर्ण होते है। यह देखा गया है कि अशुद्ध संस्कृत पारदकी अपेक्षा शुद्ध संस्कृत पारद जारण संस्कार द्वारा शीघ्र यौगिकमे परिणत हो जाता है।

जिन रसायनी चिकित्सकों द्वारा मण्डूर, लोह आदि धातु भस्मों तथा उनके संमिश्रणोंका उपयोग जारी था, काल पाकर उन्हींके द्वारा देह सिद्धिमे जारित पारदका उपयोग होने लगा। यह भी तब हुआ जब प्रथम पारद पिष्टिका उपयोग चल पड़ा था।

पारद पिष्टि क्या थी?—

खल्वे विमर्द्य गन्धेन शुद्धेन सह पारदम्।
पेषणा त्पिष्टितां याति साऽपि पिष्टि मतापरैः॥

रसेन्द्र चूड़ामणि।

अर्थ—पारदके साथ बलि मिलाकर खरल में पीसने से पारद पिसकर बलि के साथ मिल जाता है उसको पिष्टि कहते है।

अन्यच्च—**दश निष्कं शुद्धसूतं निष्कैकं शुद्ध गन्धकम्।**
स्तोकं स्तोकं क्षिपेत्खल्वे मर्दकेन शनैः शनैः॥
घर्षणाज्जायते पिष्टिः सेयं गन्धकपिष्टिका।

रसरत्नाकर वादिखण्ड।

कोऊहल-विरइया

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
...या समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

अर्थ—दस तोला शुद्ध पारद और एक तोला शुद्ध बलिको थोड़ा थोड़ा खरलमें डाल कर शनैः शनैः घोटता जाय तो पारदकी पिष्टि अर्थात् कज्जली बन जाती है इसीको गन्धक पिष्टि कहते हैं।

इस प्रकार उक्त ग्रन्थमें इस बलि पिष्टिके कई योग दिये हैं और वहां बतलाया है कि यह पिष्टि सबको फलप्रदा है। इस प्रकारसे इस पिष्टिका सबसे पहिले देह सिद्धिमें उपयोग हुआ और जब यह पिष्टि अर्थात् बलि मिश्रित पारद निरापद सिद्ध हुआ तो वैद्यों, रसाचार्योंका साहस बढ़ा और धीरे २ इसके अन्य यौगिक रससिंदूर, रसकपूर आदिका उपयोग होसका, रससिंदूरका उपयोग अधिक पुराना नहीं है, प्रत्युत इसका यह नाम भी नया है। रससिंदूरका प्राचीन नाम है हरगौरी-रस। जिन्होंने सबसे पहिले रससिंदूर तय्यार किया उन्होंने देखा कि यह रस पारद, बलि यौगिक है, पारदको शिव वीर्य और बलिको पार्वती रज कहा, इसीलिये इसका नाम हरगौरी रस रख दिया। बादके रसाचार्योंने इसका अत्यन्त लाल वर्ण देख उन्होंने इसका नाम 'रससिंदूर' रख दिया। रससिंदूर नाम दाक्षिणात्य सिद्ध सम्प्रदाय वालोंने दिया, ऐसा प्रतीत होता है।

कूपीपक्व रसोंका प्रयोग और सिद्ध सम्प्रदाय

इस अध्यायको समाप्त करनेसे पहिले पाठकोंको एक और रहस्यकी बात बतला देना चाहता हूं। वह है सिद्ध सम्प्रदायसे कूपीपक्वरसोंके उपयोगका सम्बन्ध। उपोद्घातमें हम पाठकोंको बतला चुके हैं कि ८४ सिद्धोंका गढ दक्षिण देशके शैल पर्वत बाल्यकटमें था। हम ईस्वीकी १२वीं शताब्दी तक के सिद्धोंका वहांपर उल्लेख कर आये हैं। इसके बाद पता चलता है कि उन सिद्ध सम्प्रदाय वालोंमें से निकले हुए दक्षिण देशमें दो सम्प्रदाय आज भी विद्यमान हैं, उनमेंसे एक अपनेको अगस्त सम्प्रदायी कहता है दूसरा कुम्भज व्यास सम्प्रदायी कहता है। वह दोनों सिद्ध सम्प्रदायी कहलाते हैं। आजसे दो तीन सौ वर्ष पूर्व तक इस सम्प्रदायमें विरक्त साधु महात्मा ही पाए जाते थे किन्तु इस समय उनके कुछ भक्त भी हैं। यह वास्तवमें कोई चिकित्सक नहीं

थे, प्रत्युत रसायनी थे और यह अपनी इस विद्याको आजतक बड़े प्रयत्नसे छिपाये बैठे रहे । इनके आचार्योंने पारद द्वारा लोह सिद्धि करते करते रस-सिंदूर, अयस्कान्तिसिंदूर, वंगसिदूर, नवरत्नसिंदूर, सुवर्णसिदूर आदि अनेक सिंदूरोंकी रचना की और वह इस विद्याको सीना बसीना आगे देते आए। तथापि देश देशान्तरोंमे भ्रमण करने वाले साधुओंका इन सिद्धोंसे समागम होता ही रहा । आजसे ४–५ शताब्दी पूर्व जब जब उत्तरीय और दाक्षिणीय सिद्धोंका समागम होता था । यह थोड़ी बहुत कूपीपक्व रसोंकी विद्या वहां से निकल कर उन प्रान्तोंमे भी फैल गई । किंतु फिर भी बहुतसे सिंदूर दाक्षिणात्य सिद्ध सम्प्रदायके **'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः'** के प्रचलित विचारके कारण गुप्त ही रहे। उनमेसे अब कुछ श्रीयुक्त माननीय यादवजी त्रिविक्रमजी आचार्य की कृपासे उस गोपनीय गर्भसे बाहर आये हैं, जिनको मै इस ग्रन्थमे यथा स्थान संकलित करूंगा । उक्त प्राचीन इतिहाससे सिद्ध है कि इन्हीं सिद्ध महात्माओंकी कृपासे कूपीपक्व रसोंका प्रचार भारतमे हुआ यह एक निश्चित बात है । किंतु कूपीपक्व रस निर्माणमे अबतक जो काम हुआ है इसे कोई वैद्य पूर्ण न समझ ले । अभी इसके निर्माणमे अनेक परिवर्तन होंगे और उस पर रसायन शास्त्रके सिद्धान्त जबतक पूर्णतया ठीक नहीं बैठ जाते तबतक परिवर्तन होता रहेगा । इसके लिए जो कुछ मेरे द्वारा किया जारहा है केवल पथ प्रदर्शकमात्र है, इसे पूर्ण करनेका काम तो विद्वानोंके हाथमे है।

बलि शोधन—

स्थाल्यां दुग्धं विनिक्षिप्य मुखे वस्त्रं निबध्य च ।
गन्धकं तत्र निक्षिप्य चूर्णितं सिकताकृति ॥
छादयेत् पृथु दीर्घेण खर्परेणैव गन्धकम् ।
ज्वालयेत्खर्परस्योर्ध्वं वनच्छाणैस्तथोपलैः ॥
दुग्धे निपतितो गन्धो गालितः परिशुध्यति ।
शतवारं कृतश्चैव निर्गन्धो जायते बलिः ॥ रसरत्न समुच्चय ।

कोऊहल-विरइया

।म्म ऊथ-विउेल-कनोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
तलियाए सुमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

अन्यच—सद्दुग्ध भाण्डस्थ पटस्थितोऽयं शुद्धो भवेत्कूर्म पुटेन गन्धः ।
रसरत्न प्रदीपिका ।

अर्थ—एक लोहेकी या पीतलकी बनी हुई चलनी मोटे छेदों वाली लेकर उस पर मलमलका वस्त्र बिछा दे, उस वस्त्र पर बलि पीस कर बिछादे उस पीतलकी चलनी पर मोटे तहका लोह तवा फिट बिठा दे, सन्धि न रहने दे, इस चलनीको दूधसे भरी हुई बालटीमें ऐसा रखे कि दूध २–४ अंगुल उस चलनीसे नीचे रहे। जब यह यन्त्र तय्यार हो जाय तो तवे पर कोयले सुलगा दे। थोड़ी देरमें बलि पिघल कर गोल गोल दानोंके आकारमें उस दूधमें जा गिरेगा।

कम से कम बलिको इस तरह सात बार दूधमें चुवा कर फिर उसे धोकर सुखा ले तो बलि शुद्ध हो जाता है। इस बलि शोधन करने वाले यन्त्रको ग्रन्थकारोंने कच्छप यन्त्र नाम दिया है। ग्रन्थकार कहता है कि यदि सौवार इस कच्छप यन्त्रमें रख कर बलिको दूधमें चुआ ले तो यह बलि निर्गन्ध हो जाता है।

हरताल शोधन—पत्राख्य हरतालको प्रथम छोटे छोटे पत्रोंमें खोल कर इस बातको देख ले कि पत्रोंके मध्य कहीं मिट्टी, पत्थर तो नहीं है। पश्चात् इसको एक पोटलीमें बांध कर दोला यन्त्रमें लटका दें और उस दोला यन्त्रके पात्रमें पेठेके टुकड़े टुकड़े करके उसमें कीज या जल डाल कर तीन दिन स्वेदन करें तो हरताल शुद्ध होजाती है। हरतालको स्वेदनीय द्रव्योंमें नहीं डूबने देना चाहिए।

सोमल शोधन—सोमलके छोटे छोटे टुकड़े करके बैंगनका पेट चीर कर उसके पेटमें भर कर उस बैंगनको अग्निपर पका लेना चाहिए २१ बैंगनमें इस तरह सोमलको पुटपाक विधिसे पका लेने पर उसकी उष्णता घट जाती है। कोई कोई व्यक्ति इसे दूध द्वारा भी स्वेदन कर लेते हैं किन्तु इससे उपरोक्त विधि उत्तम है।

चौथा अध्याय

रस निर्माण के सिद्धान्त

हम रससिंदूर, चन्द्रोदय, मल्लसिंदूर, तालसिंदूरादि अनेक रसोंको सैकड़ों वर्षोंसे निर्माण करते चले आ रहे है। इन रसोंको बनाते समय पारदके साथ बलि, सोमल, हरताल आदि पदार्थोंकी मात्राएं जो रसाचार्योंने निर्द्धारित कर दी हैं हम उनके लेखानुसार मिलाते है और रस तय्यार कर लेते है। किन्तु कूपीपक्वरस तैयार करते समय किसी वैद्यको यह ख्याल भी नहीं आता कि पारद के साथ बलि, सोमल, हरताल आदि जो भी पदार्थ डाले जाते हैं उनकी यह डाली हुई मात्राएं क्या ठीक होती है ?

यह ख्याल तो तब उत्पन्न हो सकता है जब निर्मित रसोंमें कोई त्रुटि हो या उद्देश्यकी सिद्धि न हो या उसके सेवनसे कोई दुर्गुण दिखाई दे। जब शास्त्र कथित मात्रामे मिला कर तय्यार किये गए रसोंसे हानि तो होती नहीं प्रत्युत लाभ ही होता है, तो कौन व्यक्ति यह कहनेका साहस करेगा कि उनमें पड़ने वाले द्रव्योंकी मात्राएं ठीक न होंगी।

कोऊहल-विरइया [१३

विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
सुमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

प्रयोग करते समय यदि कोई वस्तु ऐसी बन जाती है जो त्रुटि रहित होती है जिससे हमारे उद्देश्यकी सिद्धि भी होती हो तो इस तरह की बनी चीजोंका अभिप्राय यह नहीं है कि हमने उसकी रचनाको ठीक तरहसे समझ कर ही उसे बनाया है जिस समय हमने रसनिर्माण प्रक्रियाएं आरम्भ की थीं, वहतो धातुवाद के लिये बिलकुल नए प्रयोग थे। उस समय हम निर्मित होने वाले पदार्थ के कारण और मात्राओं के अनुपात आदि सारी आवश्यक बातोंको किस तरह अच्छी तरह समझ सकते थे ? तभी तो हम उनकी ठीक ठीक व्याख्या न कर सके, न हम ऐसी स्थितिमें उस वस्तु निर्माणके सूत्र या सिद्धान्त ही बना सके।

पारद तथा धातुओं के सम्बन्धमें हमारा जो प्राचीन ज्ञान चला आ रहा है इनकी मौलिकता तक न पहुचने के कारण अपूर्ण रहा है। हम धातुओंको पार्थिव अंश तो समझते थे, किन्तु हमें यह पता न था कि यह धातुएं विश्वके मूल कारणोंमें से होंगी।

हमारे प्राचीन रासायनिक प्रयोग इस ओर ले जानेके लिये इंगत तो करते थे किन्तु साधनके अभावमें हमें वह आगे न बढ़ा सके। इसीलिये हमारा यह ज्ञान विज्ञानमें परिणत न हो सका। हमारे रसायनी केवल रसायनी ही बने रहे, किन्तु अन्य देशके रसायनी साधन प्राप्त कर रासायनी बनगए और उन्होंने इस धातुवादको सिद्धान्त रूप दे दिया। हम अपनी इस त्रुटिको निःसकोच स्वीकार करते है। जिस वैज्ञानिक समाजने इस धातु वादको रसायन शास्त्रमें बदल कर इसके सिद्धान्त मालूम किये तथा इस समय उस सिद्धान्तके आधार पर समस्त औषध-निर्माण कर्ता प्रत्येक औषध निर्माण कर रहे है, यदि हम इन सिद्धान्तों को न समझें और पुराने क्रमसे ही औषध निर्माण करते रहें तो निश्चय है कि हम इस प्रतिस्पर्द्धामें कभी टिक नहीं सकते, न उन्नति ही कर सकते है।

हम जिस पूर्व कालमें पारदके साथ अन्य धातोपधातु मिला कर खोट, बद्ध या भस्मीकरणका कार्य जारण, चारण आदि विधियोंसे कर रहे थे, स्मरण रहे

उस समय हमारा उद्देश्य देह सिद्धिके लिये कूपीपक्व रस निर्माण करना न था। प्रत्युत हम तो पारदके साथ अनेक धातोपधातुका जारण, चारण इसलिये करते थे कि पारद हमे ऐसा बीज या बद्ध रूपमे प्राप्त हो जाय जो हीन धातुओंको सुवर्णमे बदल दे। किन्तु अब कूपीपक्व रस निर्माण करनेमें हमारा वह उद्देश्य तो रहा नहीं, अब तो जो भी कूपीपक्व रस या धातु भस्मे बनाते है वह देह सिद्धिके अर्थ बनाते हे। जब हमारा उद्देश्य बदल गया तो इसके साथ ही सारी स्थिति बदल गई। ऐसी स्थितिमें हमे इसे लोह-सिद्धिके क्रमसे न समझ कर देह-सिद्धिके क्रमसे समझने की आवश्यकता हुई और यह देखना व समझना आवश्यक हो गया कि यह रस जिनका उपयोग हम देह-सिद्धिके अर्थ कर रहे है, इनकी वास्तविक रचना क्या है? और यह शरीरमे पहुंच कर शरीरको किस प्रकार प्रभावित करते हे? तथा शरीरमे इनकी क्या प्रतिक्रिया होती है?

अब हमारी रस निर्माण प्रक्रिया केवल कूपीपक्व रस निर्माण तक या पारद यौगिकों तक सीमित नहीं रही, प्रत्युत यह समस्त धातु वादका विषय बन रही है और इस समय यह रसायन शास्त्रका एक अंग हो रही है। वास्तवमे देखा जाय तो इस विषयमें रसायन शास्त्रने बहुत अधिक उन्नति कर ली है। जिसका ज्ञान हमारे वैद्य समुदायको न होनेके बराबर है। यह ज्ञान इस समय हमे होना चाहिये, हमने इसी उद्देश्यसे इस विषयके काफी प्रयोग किये, और अबभी कर रहे है। कुछ प्राचीन प्रणालीके वैद्योंका यह विचार है कि हमारे प्राचीन रस-वाद-के सिद्धान्तके साथ आधुनिक रसायन-शास्त्रके सिद्धान्तोंका कोई मेल नहीं बैठता। हमारी विचार पद्धतिसे आधुनिक रसायन शास्त्रकी विचार पद्धति बिलकुल भिन्न है। इसलिये हमारे रस धातुओंकी यह शास्त्र व्याख्या दे नहीं सकता, न वह हमारे रस-वादको समझ ही सकता है। ऐसा समझना या मानना बड़ी भारी भूल होगी। रसायन शास्त्रका काम यह है कि जिस पदार्थको वह न जानता हो उसको देखे और उसे अच्छी तरह समझे। धातु वाद तो इस शास्त्र का आरम्भसे मूल विषय रहा है, जिसके भीतरसे ही रसायन शास्त्रकी अनेक

कोऊहल-विरइया

...विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो । ...लिया सूमं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

शाखायें फूटी है । जिस धातु-वादने उसको जन्म दिया है फिर भला वह अपने जन्म दाताको न जानता हो, यह कभी सम्भव नहीं । इसीलिये यह कहना कि रसायन शास्त्रके सिद्धान्त हमारे रसवादके सिद्धान्तसे भिन्न हैं, अपनेको सरासर भ्रममे डालना है ।

रसनिर्माणमें मात्रिक सिद्धान्त

हम रससिन्दूर चन्द्रोदयादि कूपीरस तय्यार करते हैं तो उसमे द्विगुण चतुर्गुण, षड्गुण तक बलि देकर उसे जारण करते हैं । किन्तु हमने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि क्या पारदमे इतना अधिक बलि जारण करने की आवश्यकता भी है और उसका कोई प्रभाव होता भी है या नहीं ? न हम ने कभी यह जाननेकी चेष्टा की कि बहुत थोडा २ बलि देकर उसी कूपीको कई बार उतार कर उस रसका प्रभाव देखें ।

मेरे उक्त कथनका कई वैद्य यह उत्तर देसकते हैं कि जब हम सम बलि जीर्ण पारदसे द्विगुण बलि जारितको अधिक लाभदायी देखते हैं और द्विगुण से चतुर्गुण अधिक लाभदायी सिद्ध होता है, इससे भी षड्गुण अधिक लाभकारी देखा जाता है तो ऐसे प्रयोग-सिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणमे शङ्काका स्थान ही नहीं रहता, फिर उस पर विचार करना अपनेको मूर्ख बनाना है ।

उक्त बातोंसे वैद्योंको चाहे सन्तोष होजाय प्रयोगवादी रासायनिकोंका इससे सन्तोष नहीं हो सकता । क्योंकि प्रयोग करते रहने पर इस बातका पता लगता है कि कोई भी धातव तत्व जब किसी अधातव या वायु तत्वसे मिलता है तो उसका मिलना एक निश्चित अनुपातमें होता है । रससिंदूर, चन्द्रोदय आदि बद्ध पारद वास्तवमे पारद और बलि यौगिक है, इसीलिये इनके परस्पर यौगिक निर्माणके लिये पारद और बलि किसी निश्चित अनुपातमे ही मिल सकते हैं ।

रासायनिक प्रयोगोंसे यह बात सिद्ध करके दिखाई जा सकती है कि रस सिंदूर या चन्द्रोदय निर्माणमें पारदके एक परमाणुसे बलिका एक परमाणु जब

मिलता है तो रससिंदूरका एक अणु बनता है। हम यदि रससिन्दूर बनानेकी इच्छा से पारदके एक परमाणुके साथ बलिके दो चार परमाणु मिलानेकी चेष्टा करें तो रससिंदूरके अणुमें बलिके परमाणुओंकी संख्या नहीं बढेगी। हम चाहे कितना भी बलि जारण करें वही रहेगी। पारदके एक परमाणुसे बलिका एक परमाणु ही मिलेगा।

रसायन शास्त्रियोंने प्रकृतिका यह एक अटल नियम मालूम किया है कि यदि पारदके एक परमाणुसे बलिके १—२—३ या ४ परमाणु मिल सकते हों तो उन सबोंके तन, घन, मात्रा, वर्ण, रूप, गुण, स्वभाव एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न होंगे।

हम बलिके साथ पारदको चाहे सहस्र वार जारण करें रससिदूरका वह यौगिक वही रहेगा। रससिंदूरमे पारदका बलिके साथ इसी एक एक की संख्यामे संयोग होगा।

प्रकृतिमे जो यौगिक निर्माणका कार्य व्यापार होता है सदा ही परमाणु रूपमे होता है, किन्तु हम इसकी इस सूक्ष्म प्रक्रियाको अपनी आंखोंसे नहीं देख सकते। इसके तीन कारण है—एक तो परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि हम उसे किसी तरह देखही नहीं सकते, दूसरे रससिंदूर निर्माण करते समय हम पारद और बलिके परमाणु एक एक संख्यामे नहीं ले सकते। प्रत्युत जब इन्हें लेते है इन परमाणु के उस अणु समूह पदार्थको लेते है। तीसरे रससिंदूर नामक पारद यौगिककी निर्माण प्रक्रिया ढाई सौ शतांश की उत्ताप पर कांच कूपीके भीतर होती है। जिसे हम उस स्थितिमें देख नहीं सकते।

कई वैद्य शङ्का कर सकते है कि हम यह किस तरह समझें कि रससिंदूर निर्माणमे पारदके एक परमाणुसे बलिका एकही परमाणु मिला है। हम इसका समाधान देते है। यह बात तो प्रत्येक वैद्य समझ सकते है कि समस्त धातुओं की घनता व मात्रा एक जैसी नहीं होती। हमारी परिचित धातुओंमें नाग या

कोऊहल-विरइया

...ज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
...लिया... समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

सीसा सबसे भारी घन धातु है उससे हलका पारद और पारदसे हलका सुवर्ण, सुवर्णसे हलका वंग और वंगसे हलकी चांदी, चांदीसे हलका यशद, यशद से हलका ताम्र, ताम्रसे हलका लोहा, लोहेसे हलका अलुमीनियम है। इस बातकी आप निम्न लिखित विधिसे परीक्षा ले सकते हैं। इन समस्त धातुओं के ठीक पांच पाच तोला या दस दस तोला की मात्रामे चौरस टुकड़े ऐसे तय्यार कराइये जो हर तरफसे आकारमे बिलकुल चौरस हों। इन्हें एक कतारमे सजा कर किसी मेज पर रख दीजिये और ध्यानसे देखिए तो आपको ज्ञात हो जायगा कि सीसाका टुकड़ा सबसे छोटा है और अलुमीनियमका सबसे बड़ा बीच के अन्य धातुओंके टुकड़े भी एक क्रमसे बड़े होते चले जायंगे, यह अन्तर क्यों है ? इसका प्रधान कारण है वस्तुकी अपनी निजी मात्रा व घनता। जो पदार्थ जितना अधिक भारी होगा वह उतना ही अधिक घन होगा। वास्तवमे मात्रा से घनकी एक निष्पत्ति होती है।

धातुओंमे जो इसतरह अपनी अपनी मात्रिकता व घनता की विशेषता होती है वह कभी बदली नहीं जा सकती। धातुओंकी इसी स्थिर मात्राका ज्ञान प्राप्त करके एक धातुको दूसरी धातुसे पृथक् कर उसका निश्चय किया गया। इन धातुओंकी मात्रिक सारणी हम उपोद्घातमें दे आए है।

समस्त ९२ तत्त्व जो अब तक जाने गए हैं, सबोंकी मात्राएं स्थिर है इसी-लिये जब कोई तत्त्व किसी दूसरे तत्त्वसे मिलता है और वह यौगिक निर्माण करता है तो वह दोनों अपनी अपनी पूर्ण मात्रामे ही मिलते हैं अर्थात् प्रत्येक तत्त्व १-२-३-४ की संख्यामे मिलनेके कारण उन तत्त्वोंके परमाणुकी वह पूर्ण मात्रा होती है।

आप उदाहरणके लिए रससिंदूरको ही लीजिये—पारद धातु तत्त्व है, जिस की परमाणिक मात्रा २००·६ है, बलि अधातु तत्त्व है जिसकी परमाणविक मात्रा ३२·६ है। हमे यह ज्ञात है कि संख्यामे पारदके एक परमाणुसे जब बलिका एक परमाणु मिलता है, तब रससिंदूरका एक अणु बनता है। पारद

के एक परमाणुका भार है २००·६ और बलिके परमाणुका भार है ३२·६ जब यह दोनों मिलेंगे तो इनका भार २३३·२ हो जायगा ।

हमें यह भी ज्ञात है कि पदार्थोंकी वास्तविक मात्रा स्थिर रहती है, वह नहीं बदलती और वही यौगिकमे उन मूल पदार्थोंकी मात्राके तुल्य उसमे मात्रा विद्यमान रहती है । तभी तो किसी वैद्यके बने रससिंदूरको तोल कर यह बताना आसान है कि इस रससिंदूरमे कितना पारद और कितनी बलि है । मानलीजिए, कोई वैद्य उत्तम कणा रूपमे बना रससिंदूर ७ तोला लाता है और आपसे पूछता है कि बतलाओ इसमे कितना पारद और कितनी बलि है ? यदि आप को पारद बलिकी परमाणविक मात्रा याद है और बलिसे इसका कोई अन्य ऐसा यौगिक नहीं बनता तो आप आसानी से इसकी मात्रा बता सकेंगे यथा—

पारदकी परमाणिक मात्रा २००·६ है, बलिकी ३२·६ है । बलिकी इस परमाणविक मात्रासे पारदकी मात्राको विभक्त करिये (भाग दीजिए) फल प्राप्त होता है, ६ का अङ्क अवशेष रहता है, ५ का अङ्क । इसका अभिप्राय यह हुआ कि पारदका परमाणु बलिके परमाणुसे ६ गुणा या इससे कुछ अधिक भारी है, इसका अर्थ यह हुआ कि रससिंदूरके एक अणुमे पारदका ६ भाग और बलिका १ भाग लगभग बराबर हुआ । क्योंकि रससिंदूरमे दोनों के परमाणु एक एक ही तो है । अर्थात् इनमें ६:१ की निष्पत्ति बनती है । तो इसका स्थूल अर्थ निकला कि ६ गुणा पारदमें एक गुणा बलि । अर्थात् ७ तोला रससिंदूरमें ६ तोला पारद और १ तोला बलि होता है ।

प्रयोग—१९२२ ईस्वीकी बात है, उक्त सिद्धान्तका जब हमें ज्ञान हुआ तो हम इसकी सत्यताको देखनेके लिये प्रायोगिक अनुभव लेने लगे । ६ गुणा पारद और एक गुणा बलिके योगसे यदि रससिंदूरका यौगिक बनता है तो ६ तोला पारद और एक तोला बलिके योग द्वारा हमारे हाथसे भी बनना चाहिए ।

कोऊहल-विरइया [१

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

हमने १२ तोला पारद और २ तोला वलिको खरलमे डाल कर इसकी कज्जली बनाई, सारा पारद कज्जली रूपमे नहीं बदला, आधेसे अधिक पारद की कज्जली तो बन गई, बाकी वैसा ही रहा। हमने उसे उसीतरह कूपीमे डाल कर वालुका यन्त्रमे चढ़ा दिया और ४ घण्टेकी अग्नि देकर शीतल कर दिया। शीशी तोड़ी तो न उस शीशीके तलमे पारद मिला न वलि, प्रत्युत उस शीशीके तल भागमे ही श्यामता लिये रससिंदूरकी कण रूप जमाव वाली टिकिया मिली। उस टिकियाको हमने पीसा तो वह लाल वर्णकी थी और उसे दूसरी शीशीमे डाल कर शीशीका मुंह बन्द करके फिर वालुका यन्त्रमे चढ़ा दिया, इस वार अग्नि तीव्र दी—किन्तु अग्नि ४ ही घण्टे दी। शीशी उतारी और तोड़ी तो बड़ा सुन्दर रससिंदूर शीशीके गले पर लगा हुआ पपड़ी के रूपमें प्राप्त हुआ। इससे निश्चय हो गया कि उक्त सिद्धान्त ठीक है। तब से हम रससिंदूर, चन्द्रोदय आदि बनाते समय इसी अनुपातमें पारद और वलि ले रहे हैं, कभी रससिंदूर या चन्द्रोदय आदिके बनने मे कोई बाधा नहीं पड़ती। कभी कभी ऐसा होता है कि दो चार माशे पारद शीशीके गले पर लगा हुआ मिलता है और शीशीके तलमे कुछ वलिकी मैल मिलती है इसको देख कर कर हम इस परिणाम पर पहुचे कि जब वलि बिलकुल शुद्ध नहीं होता तो उसमें कुछ मैल रहती है तभी पारदके यौगिक अनुपातसे इसकी मात्रा कम रहनेके कारण कुछ पारद स्वतन्त्र रह जाता है। इसलिए हमने फिर आगेसे यह किया कि माशा डेढ़ माशा वलि अधिक डालने लगे जिससे यह त्रुटि दूर होगई। अब दूसरी शङ्का रह गई कई गुणा वलि जीर्ण करने की—

दूसरा प्रयोग—हमने उक्त विधिसे बने रससिंदूरको खरलमे पीस कर १० तोला रससिंदूर पीछे १॥–२ माशा वलि उसमे और मिला कर पीसा और उसे फिर वालुका यन्त्रमें चढ़ा कर कूपी पाक किया, फिर वह ठीक रस-सिंदूर बना। इसी तरह छ. वार किया।

जब इस रससिंदूरका रोगियों पर उपयोग किया तो इसका फल साधारण रससिंदूरसे अधिक दिखाई दिया। इन प्रयोगोंको दोहराते रहने तथा बराबर इसी विधिसे चतुर्गुण, षड्गुण रससिन्दूर तय्यार करते रहने से हम इस परिणाम पर पहुंचे कि एक ही यौगिकको बारम्बार अग्निका संयोग प्राप्त हो और पुनः पुनः उसी यौगिक निर्माण प्रक्रियाको अग्नि प्रभावसे दोहराया जाय तो इससे रससिंदूरकी या तो आणविक गठनमे फेरफार होता है या परमाणु गठनमें कुछ अन्तर पड़ता है तभी इसकी शक्ति बढ जाती है किन्तु यौगिक नहीं बदलता, गुण वही रहते हैं।

इस यौगिक निर्माण के अनुपातका सही ज्ञान होने पर एक तो धनकी बचत हुई, दूसरे समयकी भी बहुत बचत हुई। ज्ञात होता है कि बङ्गाली रस वैद्य इस सिद्धान्तको समझते होंगे क्योंकि जब ६ तोला पारदमें १ तोला बलि मिला कर उसको तवे पर रख कर किसी प्यालीसे दृढ़ ढंक कर अग्नि दी जाय तो उस तवे पर भी रससिंदूरका यौगिक बन जाता है। अब रही, उसे उड़ा कर पपड़ी बनानेकी बात—उस यौगिकको किसी बन्द शीशी या प्यालीमें बन्द (अन्तर्धूम) करके पका लें रससिंदूरकी पपड़ी ऊपर आ कर लगेगी और ठीक उत्तम रससिदूर तय्यार हो जायगा। इसमें शीशीके टूटने फूटनेका भय नहीं रहता। चाहे किसी बन्द बर्तनमें बनाओ।

मल्लसिंदूर पर प्रयोग—जब इस सिद्धान्तकी सत्यता ज्ञात होगई तो अन्य कूपीपक्व रस जिनमें बलिके साथ हरताल, सोमल आदि पदार्थ डाल कर उक्त पदार्थनामा सिंदूर तय्यार किये जाते थे, इनके अनुपातको मालूम करना आवश्यक दिखाई दिया।

इसमें सबसे प्रथम हमने मल्लसिदूर पर प्रयोग किया। रसायन शास्त्रके अध्ययनसे ज्ञात हुआ कि पारद सोमलके साथ सम्मेलन तो बनाता है किन्तु यौगिक निर्माण नहीं करता।

गिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

सोमल सम्मेलन—हमने १६॥ तोले पारदमें ६। तोले सोमल मिला कर खरल किया और इसे लोहेकी पेचदार प्यालीमें बन्द करके उड़ाया तो दोनोंके सम्मेलनसे बड़ी उत्तम पपड़ी प्यालीके ऊपर भागमें लगी मिली, जिसे हमने खुरच लिया। इसमें हमने ५॥। तोला बलि मिला कर फिर घोटा और इसे कूपीमें डाल कर बालुका यन्त्रमें चढ़ा कर पाक किया तो इसमें सारा माल ऊपर उड़ कर नहीं लगा। परीक्षाओंसे ज्ञात हुआ कि जब हमने इस मिश्रण को अग्नि पर चढाया तो इससे दो भिन्न यौगिक बने। पारद बलि योगसे रस-सिंदूर, दूसरा सोमल बलिके योगसे मैनसिल। रससिंदूर भी उड़ने वाला यौगिक है और मैनसिल भी। परन्तु देखा गया कि मैनसिल रससिंदूरकी अपेक्षा अधिक उत्ताप पर उड़ता है। इसीलिये रससिंदूरके साथ यह उतना नहीं उड़ता मन्द गतिसे उड़ता रहता है। इसीलिये रससिंदूर जब उड़ जाता है तो इसका कुछ भाग नीचे रह जाता है। जितना तो यह रससिंदूरके साथ उड़ता रहता है उतना रससिंदूरके साथ मिल कर जमता रहता है किन्तु जब रससिंदूरकी समाप्ति के पश्चात् अकेला मैनसिल उड़ता है तो इसकी वाष्पें भिन्न जमने लग जाती है। वही लाल (माणिक्य) रंगकी इसकी पतली पतली तहे होती है जिसे वैद्य माणिक्य रस कहते हैं। केवल हरतालको भी कूपीमें चढ़ा कर उड़ाने पर यह लाल रङ्गका जो रसमाणिक्य मिलता है वह भी यही मैनसिलका एक रूप है। जहां रससिंदूरके अणु जमते हैं उसीके बीचमें सोमल बलिके अणु भी जमते हैं इसीसे मल्लसिंदूर दो यौगिकोंका एक मिश्रण बन जाता है इसीलिये तो इसका वर्ण भी बदल जाता है। इससे हम इस सिद्धान्त पर पहुंचे कि—यौगिक निर्माणके लिए किसी पदार्थकी मात्रा इतनी होनी चाहिये जो उन दोनोंको ठीक तीसरी वस्तुमें बदल दे। यौगिक निर्माण करने वाले पदार्थोंमें से जिसकी मात्रा अधिक होगी वह या तो उस यौगिकके अणुओंमें इसी तरह उड़ कर भर जायगा या जल जायगा या तलमें बैठा रह जायगा उसकी अधिक मात्राका कोई लाभ नहीं।

जब इस बातका पता लग गया कि कोई धातु, अधातु या वायु तत्त्वोंसे एक अधातु तत्त्व या किसी दूसरे अधातु तत्त्व या वायु तत्त्वसे मिलता है तो इन सबोंका मिलना एक निश्चित अनुपातमे होता है। जिसको किसी प्रकार बदला नहीं जा सकता, तो हम क्यों न इस रहस्यको सही तौर पर समझ कर उस रचना ज्ञान से लाभ उठावें?

जब हम यौगिक निर्माणके सिद्धान्तको ठीक ठीक समझ कर रस व धातु भस्में बनाने लगेंगे तो निश्चित है कि फिर हम इनका स्टेण्डर्ड (मानदण्ड) भी बना सकेंगे। हम अभी तक किसी रसभस्मका मानदण्ड स्थापित नहीं कर सके तो उसका कारण यही था कि हमारे यौगिकोंमें मात्राकी अनिश्चित स्थिति बनी रहती है। तभी तो उनके वर्ण, रूप रचना मे अन्तर पड़ जाता है।

क्या धातुएं धातुओंके साथ मिल कर यौगिक बना सकती है?

इस समय तकके रासायनिक अनुसन्धानोंसे तो सिद्ध होता है कि एक धातु तत्त्वसे दूसरे धातु तत्त्व मिलकर इस तरह बहुत कम यौगिक निर्माण करते हैं। हां, एक धातुके साथ दूसरी या कई धातु मिल कर सम्मेलन (Amalgam) और मिश्रण (Alloy) अधिक बनाते है। कुछ अपवाद रूप यौगिक पाये जाते है। यथा—

आप किसी अलुमीनियमकी कटोरीमें थोड़ा शुद्ध पारद डालकर अंगुलीसे उसे रगडिये, थोड़ी देरके बाद उसे छोड़ दीजिये। आपको उस कटोरीसे बहुत हलकी स्वेत भस्म बनती दिखाई देगी।

यह वास्तवमे पारदके एक परमाणुसे अलुमीनियमके दो परमाणु और ऊष्मजनके चार परमाणुके योगसे बनने वाला एक यौगिक होता है जो स्वेत भस्मके रूपमें प्राप्त होता है ऐसे कुछ और यौगिक भी हैं। सम्मेलन निम्न लिखित बनते है।

यथा—पारद-सैंधजम्, पांशुजन्, सुवर्णम् आदि कई धातुओंके साथ सम्मेलन बनता है और इसके कुछ सम्मेलन निश्चित अनुपातके भी होते है, जिन

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
लेया॰ समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ।। १३०९

की रचना भी विशिष्ट होती है, किन्तु वह सब यौगिक नहीं माने जाते । उनको रसायन शास्त्र सम्मेलन ही कहता है । इसी तरह ताम्र, वंग या ताम्र यशद आदि के साथ कांस्य, भरत, पित्तल आदिके जो मिश्रण बनते हैं यह सब मिश्रण कहलाते हैं। इनको यौगिक नहीं कहा जाता । यौगिक और मिश्रण व सम्मेलन में बहुत अन्तर होता है । यौगिक तो उसको कहते हैं कि जहां दो या अधिक पदार्थ जब परस्पर मिलें तो वह अपना अपना स्वतन्त्र अस्तित्व गवा कर एक तीसरे ऐसे पदार्थकी रचना करें जिसके गुण, स्वभाव उन मौलिक तत्त्वोंसे भिन्न हो । जैसे रससिंदूर, इसमें पारद एक स्वेत चमकदार द्रव धातु तत्त्व है, दूसरी ओर बलि एक पीत वर्ण अधातु तत्त्व है । किन्तु जब इन दोनोंके योग से जो यौगिक बनता है वह रक्त वर्णका कण (रवा) रूप होता है जिसका तन, घन मात्रा, वर्ण, रूप, गुण, धर्म सब अपने दोनों मौलिक तत्त्वोंसे भिन्न होते हैं । मिश्रण व सम्मेलनमें तत्त्वोंके अपने गुण, धर्म सबके सब यथावत् विद्यमान रहते हैं ।

जिन वैद्योंके यह विचार हैं कि जब पारदको अत्यन्त शुद्ध किया जाय तो वह बुभुक्षित हो जाता है उस समय वह सुवर्णको खा कर अपने में तल्लीन कर लेता है, बुभुक्षित पारदमें फिर सुवर्णका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मिलता, न सुवर्णका भार ही उसमें पाया जाता है, न उसकी द्रवताही घटती है, रसायन शास्त्र इन विचारोंकी पुष्टि नहीं करता । न रसायन शास्त्रियोंने आज तक पारद की कोई ऐसी अवस्था देखी ही है । वैद्य समुदाय शास्त्रका प्रमाण तो देदे हैं किंतु ऐसा पारद कोई वैद्य आजतक तय्यार करके न दिखा सके, इसलिये जब तक यह प्रत्यक्ष-प्रयोग-सिद्ध बात सामने न आवे, रसायन शस्त्र इस पर अपनी कोई सम्मति नहीं देता ।

जिस समय हमारे रसाचार्यों द्वारा धातु वाद जोरों पर था उस समय तक ७ धातुएं तथा बलि, सोमल, टङ्कण आदि कुछ अधातु तत्त्वोंका ही ज्ञान था ।

इसीलिये हमारे प्रयोग इन्हीं धातु अधातुओं तक सीमित रहे। उस समय हम अपने प्रयोगों द्वारा पारदके चार यौगिक अर्थात् वद्ध पारदके निम्न रूप निर्माण कर सके, एक तो बलिसे बलिकाइदका दूसरा लवणजनसे लवणाइदका तीसरा कज्जलसे कज्जलाइद का चौथा अभ्रक सत्व व धातु आदि के मेल से खोट रूप। जिसकी उन्होंने स्वयंही निम्न लिखित व्याख्या की। यथा—

वन्धश्चतुर्विधो ज्ञेयो रसेन्द्रे भिषगोत्तमैः।
खोटः पाटौ जलौका च भस्मत्वश्च चतुर्विधम्॥
पाटः पर्पटिका वन्धः पिष्टि बन्धस्तु खोटकः।
जलौका पक्क वन्धः स्याद्भस्म भस्मनिभं भवेत्॥

रसकामधेनु।

अर्थ—विद्वान् वैद्य खोट, पाट, जलौका और भस्म चार प्रकारका वद्ध पारद मानते है। इसमें से जो बलि आदि द्वारा पर्पटी बना कर पारद बांधा जाता है उसे पाट और किसी धातु व अभ्रक सत्वादिके द्वारा पारदके बांधने को खोट तथा बलि व लवण कसीसादि के संयोगसे अग्नि पर चढ़ा कर रस सिंदूर, रसकपूरवत् बांधनेको जलौका तथा वनस्पति (कज्जल) योगसे पारद के बांधने या खील करने को भस्म कहते हैं। भस्मका किसी किसी ग्रन्थकार ने आरोट नाम दिया है। यथा—

आरोट संज्ञां लभते वारमेकं मृतस्तु यः।

रसदर्पण।

अर्थ—किसी वनस्पतिमे रख कर अग्नि प्रभाव से जो पारदकी भस्म बना ली जाती है उस भस्मकी आरोट संज्ञा है।

पारदको अभ्रक सत्त्व या अन्य किसी धातु योगसे जो खोट तय्यार किया जाता था, हमारा तो अनुभव है कि यह खोट यौगिक नहीं बनता। प्रत्युत, सम्मेलन बनता है, इसीलिये तो इस बद्ध पारदको ग्रन्थकारने भी खोट अर्थात् मिश्रण कहा है।

पीम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
... समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

वास्तवमे हमारे रसाचार्योंने यौगिकके असली दोही रूप माने हैं एक जलौका और दूसरा भस्म। कणरूप बद्धपारदको वह जलौका कहते थे और भस्मरूप अर्थात् राख सदृश रूप को—चाहे वह किसी वर्णकी हो—भस्म कहते थे। इस समय भी धातुओं के जो यौगिक बनते हैं उन्हें अकण और कण रूप दो भेदोंका माना जाता है। हमारा रस शास्त्र और आधुनिक रसायन शास्त्र एक वस्तुकी चाहे भिन्न भिन्न संज्ञा देते हों, किन्तु वस्तुरूप दोनोंके एक थे। वस्तु स्थितिको आरम्भसे जाननेकी जिज्ञासा दोनोंमे एकसी पाई जाती है और उसीके परिणाम स्वरूप हमें उसके विकासका यह स्पष्ट रूप दिखाई देता है कि जो योरूप मे पहुंच कर मूर्तरूप धारण किए हुए है। जिसको हम पिछड़े दृष्टि कोण से देखने के कारण नई और भिन्न चीज समझते हैं वास्तव में वह भिन्न चीज नहीं।

रसायन शास्त्र का काम आरम्भ से ही यह रहा है कि वह प्रकृति मे विद्यमान पदार्थों का विश्लेषण करे और यह मालूम करे कि इन पदार्थों मे कौन कौन से तत्त्व किस किस मात्रा मे विद्यमान हैं तथा इनकी रचना प्रकृति गर्भ मे किस तरह हुई है? जो वस्तुए प्रकृति मे बनी है उनको हम अपनी प्रयोगशाला मे उसी तरह की बना भी सकते हैं? या नहीं। इस बातको जानने की जिज्ञासा से ही लोगों की प्रवृत्ति इस ओर बढ़ी और उन्होंने धीरे-धीरे अपनी प्रायोगिक खोजों द्वारा यह मालूम कर लिया कि इस विश्वके समस्त पदार्थ तीन श्रेणीमे विभक्त तत्त्वोंके मेलसे बने हैं। (१) धातु तत्त्व, (२) अधातु तत्त्व, (३) वायु तत्त्व। इस समय धातु तत्त्वोंकी सख्या ७२ है अधातु तत्त्वोंकी सख्या ९ तथा वायु तत्त्वोंकी संख्या ११ है। इस पृथ्वी पर किसी भी विद्यमान सेन्द्रिय, निरेन्द्रिय पदार्थको उठालें और उसे किसी रसायनशास्त्रीको ले जाकर दें, उनसे कहें कि बताओ इसमें कौन २ से तत्त्व है? तो वह आपको विद्यमान प्रयोग कसौटी पर चढा कर उस वस्तु के अंगोंको भग करके यह बतला देगा कि इसमें अमुक अमुक तत्त्व

अमुक मात्रामे है। इन तत्त्वों के विश्लेषीकरण और फिर संश्लेषीकरणसे इस बातका पूरा पूरा पता लग गाया है कि अधिकतर धातुतत्त्व बलिका, फास्फुरिका, नैलिका, ब्रोमीनिका और कज्जलिका नामक अधातु तत्त्वों के तथा ऊष्मजन, उदजन, पवन, लवणजन, नोनजन नामक वायु तत्त्वों के योगसे ही अनेकानेक धातु यौगिकमे परिणत हुए है।

इनमे से हमारे रसाचार्य बलि और कज्जलके द्वारा तथा ऊष्मजन व लवण जनके द्वारा सात धातुओंको जान सके और इनके यौगिक आरम्भमे बनासके थे, इससे अधिक अन्य धातु, अधातु तत्त्वों तथा वायु तत्त्वोंका उन्हें ज्ञाननहीं होसका था। वास्तवमे धातु, अधातु व बाकी वायु तत्त्वोका पतातो इस दो-तीन शताब्दी मे आकर लगा। इसीलिये हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमे इनका उल्लेख किस तरह हो सकता था। कौन कौनसे धातु तत्त्व किस किस अधातु तथा वायु तत्त्व से मिलकर कौन कौनसे जलौका रूप या भस्म रूप पदार्थोंका निर्माण करते है? इस बात की चर्चा इस ग्रन्थमे नहीं हो सकती, क्योंकि इस ग्रन्थ का विषय केवल एक ही धातु पारदका है, इसीलिए यहां हम केवल पारदकेही यौगिकों या बद्धरूपोंका वर्णन करेंगे। अन्य धातु-भस्मों या यौगिकोंका सविस्तृत वर्णन पाठकोंको देखना हो तो वह हमारे लिखे **भस्म-विज्ञान** नामक ग्रन्थमे देख सकते हैं। इस नव्यनिर्मित ग्रन्थमे हमने समस्त धातुभस्मों पर यूनानी, ऐलोपेथी, व रसायनी विद्याके और अपने निजी ३० वर्षके प्रायोगिक अनुभव के आधारपर विस्तार से विचार किया है। इसी ग्रन्थमे हमने रसायन शास्त्र के सिद्धान्तोंका भी विस्तार से वर्णन किया है, ताकि वैद्योंको इस ग्रन्थ के पढने पर धातु-वाद विषयक पूर्वात्य और पाश्चात्य दोनों विषयोंका पूरा-पूरा ज्ञान हो जाय।

बद्धपारद या पारद यौगिक का उपयोग नव्य है या प्राचीन?

लोहचूर्ण, मण्डूरचूर्ण, अभ्रकचूर्ण, शंख, सीप मुक्ता, मैनसिल हरतालादिके उपयोगका श्रीगणेश तो चरक, सुश्रुतके समयसे है, बल्कि पारदके साधारण उप-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९.

योगका सङ्केत भी उन संहिताओंमें आया है। पर उस उपयोग का कोई विशेष महत्त्व नहीं, क्योंकि वह पारदके यौगिकका उपयोग नहीं के बराबर था इसी प्रकार इन संहिताओंके बाद के ग्रन्थ चक्रदत्त वृन्दादिमे भी अयःचूर्ण, मण्डूरचूर्ण आदिका उपयोग तथा इससे भिन्न कुछ स्थलों पर पारदकी कज्जलीका उपयोग भी आया है। इसके बादके आयुर्वेद ग्रन्थोंमे कज्जली यौगिक रसोंका उपयोग बढ़ी हुई दशामे मिलता है किन्तु रससिन्दूर, रसकपूर आदि कूपीपक्वरसोंका उन ग्रन्थोंमे कहीं पता नहीं लगता।

आयुर्वेदके ग्रन्थोंको छोड़कर केवल धातुवादके उन प्राचीन ग्रन्थोंमे जहां उन रसाचार्यों ने शत गुणाबलि जारणा तक का विधान दिया है और अनेक विधिसे बद्ध पारदके विधान बताये हैं उन प्राचीन रसरत्नाकर, रसेन्द्रमंगल, रसहृदय आदि ग्रन्थोंमे न तो सिन्दूर नामा रसोंका कहीं पता चलता है न रस-कपूर आदिका, न मल्ल सिन्दूर चन्द्रोदयादि का।

इसमें कोई संशय नहीं कि पिष्टि—निर्माण व चारणा, जारणा विधान में पारद के साथ स्वर्ण ग्रासके विधान व बलिजारणा, अभ्रकजारणा आदिके विधान अवश्य धातुवादके प्राचीन विधान है और इन विधानों के करने से बद्ध पारदकी उत्पत्ति होती है, किन्तु उस बद्ध पारदका उपयोग धातु-वाद तक ही सीमित था। ऐसा उन ग्रन्थोंके अवलोकनसे ज्ञात होता है।

सिन्दूर नामा अनेक पारद यौगिकोंका आरम्भ कहां से होता है? जब हम इसकी खोज करें तो हमे फिर उन्हीं ८४ सिद्धों के इतिहास पर दृष्टि डालनी पडती है और उन धातुवादी सम्प्रदायिकोंकी जमात में घुसकर इस विषय को ढूंढ़ना पड़ता है कि कहीं यह प्रक्रिया यहांसे तो आगे नहीं बढ़ी?

अनेक सिन्दूर नामा रसोंका प्रवेश विद्यमान रस-शास्त्रों मे कहांसे हुआ? जब हम इस विषय का अनुसन्धान १९२६-२७ मे कर रहे थे तो हमें रस-ग्रन्थोंमे इसका कोई इतिहास नहीं मिलता था। उन्हीं दिनों हरिद्वार में एक दाक्षिणात्य सिद्ध सम्प्रदायी साधूसे मिलाप होगया। जिसके पास हाथ

के लिखे रस-शास्त्र पर दो तामिल ग्रन्थ थे, जिनमें अनेक सिन्दूर नामा योगोंका उल्लेख था। वह अपने को अगस्त सम्प्रदायी या सिद्ध सम्प्रदायी साधु कहता था, और वह अपनेको रसायनी भी कहता था, चिकित्सक भी था, वह अच्छे कूपीपक्वरसभी उतारता था। उसके सत्सङ्गसे इतना तो ज्ञान हुआ था कि हो न हो यह कूपीपक्वरस उन दक्षिणापथके ८४ सिद्धों से अवश्य कोई सम्बन्ध रखते है। किन्तु उस समय साधन के अभाव में अधिक मालूम न होसका। १६२६ मे इस विषय की अधिक खोज श्रीयुत् माननीय यादव जी त्रिविक्रम जी आचार्यने की और उसपर एक लेख 'अगस्त प्रोक्त रसायन' नाम से वैद्य सम्मेलन पत्रिका १६३० सितम्बर अक्टूबर की संख्या में प्रकाशित किया। उस लेख के पढ़ने से इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश पड़ा।

इसके बाद खोज करने पर ज्ञात हुआ कि दक्षिण देशों में इस समय दो सम्प्रदाय है, १ अपनेको अगस्त सम्प्रदायी कहता है २ अपनेको कुम्भज व्यास सम्प्रदायी कहता है। यह दोनों सम्प्रदाय उन सिद्ध सम्प्रदायी साधुओंके वंशज प्रतीत होते हैं जो १२वीं शताब्दी तक श्रीशैल और श्रीपर्वतपर रहकर अपनी सिद्धियोंके लिए प्रख्यात होचुके थे। ज्ञात होता है कि इस दो सम्प्रदायके सिद्धोंमें जो सिद्ध हुए, उन्होंनेही सिन्दूरनामा रसोंका शरीरपर विशेष उपयोग मालूम किया। धीरे २ उन्होंनेही रसनिर्माण प्रक्रियामे इतनी अधिक उन्नतिकी कि मल्लसिन्दूर समीरपन्नग, अयस्कान्तिसिन्दूर, नवरत्नसिन्दूर आदि कितने ही सिन्दूरों की सृष्टिकी, जिनका हम आगे यथा स्थान वर्णन करेंगे। वास्तवमें रससिंदूर नामा लाल सिन्दूरी वर्णका रस बनने के कारणही इसका यह नाम रक्खा गया प्रतीत होता है।

कूपीपक्वरसोंका अधिक प्रसार उन्हीं सिद्ध सम्प्रदायी साधुओं द्वारा भारतवर्ष में हुआ, इसके अब काफी प्रमाण मिलते जारहे हैं। इधर रससागर, रसमुक्तावली आदि कुछ मध्यकालीन ग्रन्थोंमे हमें हरगौरी रस नामसे एक रस-सिन्दूरकी रचनाका कूपीपक्वरस अवश्य मिलता है जिसे उससमय मूषामे रखकर

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
॥ समं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

वालुका यन्त्रमे या भूधर यन्त्रमे पकते थे । किन्तु इसकी आगे चर्चा और उपयोग व्यापक दिखाई नहीं देता, इससे ज्ञात होता है कि कूपीपक्व-रस निर्माणकी प्रथाका विकास दाक्षिणात्य सिद्ध सम्प्रदायी लोगोंसे अधिक हुआ। और रसकपूर, दारचिकना आदि कूपीपक्वरसोंका निर्माण तो इन सिद्ध सम्प्रदायों से भिन्न किसी दूसरे रसायन वादियों द्वारा ही हम तक पहुंचा ऐसा ज्ञात होता है।

हमारा तो यह मत है कि देहसिद्धिके अर्थ कूपीपक्वरसों का प्रचार पांच या सातसौ वर्षके भीतरका है और इन रसोंका निर्माण कार्य–वैद्य समुदाय पहिले ही नहीं आज भी कठिन समझता है, पर वास्तव मे देखा जाय तो ऐसी कोई बात नहीं, हरएक कार्य सीखने पर ही आते है, यह काम किसीको सिखा देने पर साधारण मनुष्य भी कर सकता है। हमारे कारखाने मे यह काम अब साधारण अवैद्य नौकर कर लेते हैं। वास्तव मे बहुत से वैद्य कूपीपक्वरस निर्माणका कार्य किसी से सीखते नहीं, स्वयं करने लग जाते हैं तभी उन्हें नहीं आता। कूपीपक्वरस निर्माणमे उत्ताप मात्रा का सही ज्ञान होना चाहिए, फिर कूपीपक्वरस उतारनेमे कोई कठिनता प्रतीत नहीं होती। इसीलिए उत्तापकी मात्रा को समझ लेना आवश्यक बात है।

उत्ताप सिद्धान्त :—

यह देखा जाता है कि मौलिक पदार्थों से यौगिक पदार्थों के निर्माण का का कार्य तथा उस यौगिक को पुनः मौलिक रूप मे पहुचाने का कार्य प्रकृति उत्ताप, प्रकाश, विद्युत् आदि शक्तियों द्वारा सदा करती रहती है। प्रकृति मे पदार्थोंकी रचना व विनाशका कार्य कितने उत्ताप पर किस तरहसे चलता है? इसी बातको देखना और समझना रसायन शास्त्र का काम है।

जितने भी धातु, अधातु व वायु तत्त्व है यह परस्पर जब एक दूसरेसे मिलना चाहते है, तो इनके इस मिलनमे या तो इनके भीतर का उत्ताप यौगिक बनानेमे–सहायक होता है या बाह्य उत्ताप सहायता पहुचाता है।

जब तक उत्ताप, प्रकाश, विद्युतादि शक्तियों की सहायता नहीं मिलती पदार्थ एक रूप से दूसरे रूप मे नहीं जाते।

पाठक कहेंगे कि—पांशुजम् , कैलसियम् , फास्फुरिका आदि कुछ धातु, अधातु तत्त्व ऐसे भी ज्ञात हुए है, जिन्हें खुली हवा मे रखने पर वह अपने आप बिना उत्तापके यौगिक बना लेते हैं, इनको उत्तापकी कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती, ऐसा समझना भूल है। ऋतु परिवर्तनसे शीतकाल उष्णकाल का आगमन इस बातको सूचित करता है कि साधारण दशामे भी पृथ्वी पर कुछ न कुछ गर्मी रहती ही है। पृथ्वी पर विद्यमान उत्तापको देखने पर ज्ञात हो जायगा कि शीतकालमेभी २०—३० के अंशकी उष्णता बनीही रहती है तथा उष्णकालमे वह बढ़कर ८०-६० अंशकी होजाती है। इस समय साधारण तथा निर्द्धारित किया हुआ शून्यताप उसको कहते है जिसपर जल जमकर बरफ बन जाता है। यह शून्य की मात्रा हमारी बनाई हुई है। वास्तव मे प्राकृतिक नहीं, नैसर्गिक उत्तापकी संख्या तो इससे बहुत शून्यसे नीचे अर्थात् २७१ शतांश नीचे जाकर आरम्भ होती है। इस मात्रा पर यदि कैलसियम् पाशुजम्, फास्फुरिका आदिको ऊष्मजनके साथ मिलाकर भी रख दें तब भी वह निष्क्रिय रहते है, मिलनेका नाम तक नहीं लेते। मानो उनमे कोई सत्ता नहीं। इसीलिए साधारण स्थिति मे तो वाह्याभ्यान्तरिक ताप रहता ही है, जो उनको क्रियाशील करता है। पदार्थों के यौगिक निर्माण तथा उनके विच्छेद के लिये भीतो शक्ति चाहिये, वह शक्ति सदा उत्ताप, प्रकाश आदिके रूपमेही काम करती रहती है। किस पदार्थ की रचनाके लिये कितनी शक्ति और कैसी शक्ति की आवश्यकता है? इसको समझना ही पदार्थ-निर्माण विद्याको समझना है। जबतक हमे उत्तापादि शक्तियोंकी सही मात्राका ज्ञान न होगा हम कभी भी पदार्थों के सही यौगिक निर्माण नहीं कर सकते। धातु-वाद या रसायन-शास्त्रमे तो यह बात विशेषकर समझनेकी वस्तु होती है। कोईभी रसायन-शास्त्री वह रसायनशास्त्री नहीं बन सकता जबतक वह प्रत्येक व्यवहृत होनेवाले पदार्थों

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
सूमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

की इस स्थिति को न जानता हो। तत्त्वों के द्रवांक और क्वथनांक की एक सारणी हमने इसीलिये इस ग्रन्थके उपोद्घातमे दी है ताकि वैद्य उससे मौलिक पदार्थोंके द्रवांक व क्वथनांक को ठीक तरह से जान सकें।

किसी पदार्थ में उत्ताप मात्रा जानने की सरल विधि क्या है ?

इस समय हर एक वस्तु की मात्रा को तोलने के लिये विद्वानों ने ऐसे २ अच्छे तराजू निर्माण कर लिये हैं कि जिनकी सहायता से दृश्य अदृश्य भौतिक अभौतिक सभी तरहके पदार्थों की मात्राको सही २ जाना जा सकता है।

मोमबत्ती, लम्प, गैसबत्ती, विद्युतबत्ती, चूल्हा और भट्ठी आदिमे कितना ताप बनरहा है ? इसको नापनेके लिये विद्वानोंने कई प्रकारके यन्त्र बनाये है। जिनका नाम है उत्ताप मापक-यन्त्र। साधारण उत्ताप मापक-यन्त्र तो पारद को कांचकी नलीमे बन्द करके बनाया जाता है, जो थर्मामीटर के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु जहा २०० शतांशसे १२०० शतांश तकके अधिक उत्ताप को नापना हो वहां यह काम नहीं देता। वहां तो प्लाटिनम, निकिल, क्रोमियम आदि धातु मिश्रित धातुकी डण्डीके उच्च उत्ताप मापकयन्त्र बनाये जाते हैं। जिनके आगे ताप सूचक व ताप लेखक सूई लगी होती है जो आगे बढ़ती हुई उत्ताप की मात्रा को बताती चली जाती है।

एक और उत्ताप मापकयन्त्र तापकिरण शोषण के सिद्धान्त पर बना है यह यन्त्र भट्ठी मे नहीं लगाया जाता, प्रत्युत इस यन्त्र के रक्तवर्ण ताल को भट्ठी के द्वार के सामने करके रखने से जो ताप किरणें लाल वर्ण के शीशे पर पड़कर अभिशोषित होती हैं उन शोषित किरणोंके प्रभावसे लेखांकन करने वाली सूई गतिशील होती है और वह अभिशोषित मात्राके अनुसार तापकी मात्राको अङ्कित कर देती है। इस यन्त्र का नाम थर्मोस्कोप है। इससे उत्तापकी मात्राका सही २ ज्ञान होता है। इसी प्रकार—

उग्रताप नापनेके लिये एक नये ढङ्गका और विद्युत् उच्च ताप मापक यन्त्रका आविष्कार हुआ है। इसमे तांबे और लोहे, निकिल, क्रोमियम

आदि मिश्र धातुओंकी तारोंको लेकर उनके सिरे पिघलाकर परस्पर मिलादिये जाते है। इसीतरह दूसरे सिरेभी मिलाकर एक कर देते है, तारोंका मध्य भाग भिन्न२ रहता है। अब इस तारके एक सिरेको भट्ठीमे रखदेते हैं और दूसरे सिरेको बर्फ में दबा देते है तो इन दोनों तारोंके मध्य अपने आप विद्युत् धारा उत्पन्न होकर उस कुंडलीमें फिरने लगती है। एक ओर अत्यन्तशीतल और एक ओर खूब गरम दोनों तारोंके सिरेपर जितना-ताप क्रमका अन्तर होता है उसके अनुसार उसमे उतना ही शक्तिमान विद्युत् धारा का प्रवाह उस चक्र मे फिरने लगता है। अतः इन तारों के मध्य विद्युत् धारा बल मापक (वोल्ट मापक) यन्त्र लगा देते हैं जिससे उस धाराकी मात्रा द्वारा बिलकुल ठीक ठीक ताप का पता लग जाता है। इस विद्युत् उत्पादन सिद्धान्त॰पर बने ताप मापकयन्त्र का नाम है थर्मोकपुल (Thermocouple)। यह यन्त्र २०० शतांश से लेकर ४०० शतांशके उत्तापके लिए ताम्र निकिल, लोहा, और क्रोमियम् आदि धातुओं द्वारा कान्सेन्टन नामक मिश्रित धातु तारों को जोड़कर बनाते है और इससे ऊपर के ताप दर्शनार्थ प्लाटिनम् तथा रेडियम् प्लाटिनम् मिश्रित एविडियम् नामक मिश्रधातुके तारको काम मे लाते है। इससे ४०० शतांश से लेकर १६०० शतांश तकका उत्ताप देखा जाता है। ताप नापने के लिए यह यन्त्र इतने विश्वस्त है कि इनसे विद्यमान स्थानके तापकी मात्राका बिलकुल सही ज्ञान हो जाता है। इसी यन्त्रके सिद्धान्तपर कुछ ऐसे परिष्कृत यन्त्रभी बनाये गये है जो अत्यन्त सूक्ष्मतम तापकी मात्राको भी ठीक-ठीक नाप देते है। यहां तक कि मीलों दूर जलती हुई मोमबत्तीका किनता ताप है यह भी बता देते है।

इसतरह इस युगमे जबकि प्रत्येक वस्तुएं ताप प्रभावसे प्रभावित होती जानी गई और अनेक वस्तुएं ताप प्रभावसे बनती या यौगिकमे परिणत होती पाई गई, तथा बिगड़ती भी देखी गई तो इस बातको सही सही जाननेकी अत्यन्त आवश्यकता हुई कि कौन कौनसी वस्तुएं परस्पर मिलकर

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
सूमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

कितने उत्तापपर यौगिक बनाती हैं, तथा उनका वह यौगिक कितने उत्तापपर टूट जाता है।

यह बातें यदि हमे सहीतौर पर मालूम होजायं, और हम रसनिर्माण करते समय इन बातोंका ध्यान रखें तो हमारे रस कभी बिगड़ नहीं सकते। जबतक हम तापके महत्त्व को नहीं जानते और उसके द्वारा होने वाले परिवर्तन को नहीं समझने, हम कभी रस-वादमें सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते।

इसमे कोई संशय नहीं कि स्थूल रूपसे हम उत्तापकी मात्राको मन्द, मध्य और तीव्र रूपसे जानते थे, किन्तु मन्दसे कितने मन्द उत्तापकी ओर रसाचार्यों का सकेत था यह नतो उन्होंने स्वयम् बतलाया, न हमे किसी और तरह इसकी मात्राका ज्ञान होसका। इसीतरह मध्य और तीव्र उत्तापका हाल था। कितने और किस प्रकारके उत्तापको मध्यम कहना चाहिये तथा कहांसे तीव्र उत्तापकी मात्राका आरम्भ होता है और वह कहां तक तीव्रताकी संज्ञाको ग्रहण करता है? उसको देखने व समझनेके साधन क्या थे? यह किसी तरह पता नहीं चलता। हां, जो व्यक्ति रसनिर्माण प्रक्रियामें अधिक प्रवीण हों, वह उनके इस सङ्केतको चाहें समझ सकते हों वरना दूसरे के लिए समझना कठिन ही नहीं असम्भव है।

अब, जबसे यह ताप मापकयन्त्र हमारे हाथ आये हम क्या हमारे साधारण नौकरभी इनकी सहायतासे किसी कूपीपकरस का उत्ताप देख सकते हैं और कम उत्ताप हो तो बढ़ा सकते हैं तथा बढ़ा हुआ हो तो घटा भी सकते है।

विद्युत्भट्टियां और कोलवायुभट्टियां तो इतनी अच्छी हैं कि इसमें बारम्बार किसी ताप-मापक-यन्त्रको लगानेकी आवश्यकता ही नहीं होती। क्योंकि विद्युत् भट्टीमें प्रथम तो तारें ही ऐसी बनीहुई होती हैं जो एक निश्चित उत्ताप उत्पन्न कर सकती हैं। फिर इससे भिन्न उसमे जो रेगूलेटर लगाये जाते हैं वह एक निश्चित तापको विभाजित कर देते है, और उसमे प्रतिबन्धक द्वारा लगे नम्बरों से यह मालूम कर लिया जाता है कि किस नम्बर पर कहां तक

उत्ताप बढ़ सकता है, उसके नम्बरके अनुसार तापको एक मात्रामें बांधकर दिया भी जासकता है, जिसमें जरा अन्तर नहीं पड़ सकता। इस विद्युत् भट्टीमें चाहे जितने दिन उत्ताप देते चले जाओ, जिस मात्रामें चाहोगे उत्ताप लगता रहेगा यही बात कोलवायुकी भट्टी में पाई जाती है।

उत्ताप मापककी अधिकतर आवश्यकता पत्थरके कोयलेकी भट्टीपर या लकड़ीकी भट्टीपर होती है, जहां उत्ताप एक मात्रामे कभी रह नहीं सकता। पत्थरके कोयले फिर भी ३ या ४ घण्टे एक जैसा उत्ताप देते रहते हैं, पर लकड़ीमे इतनी देर भी एक जैसा उत्ताप नहीं दिया जासकता। क्योंकि लकड़ीके जलनेके समय कई बाधाएं सामने रहती है, कभी लकड़ीको पूरी हवा नहीं मिलती, कभी वह अच्छी तरह नहीं जलती, कभी धुआं अधिक बनता है, कईबार लकड़ी गीली होती है कभी भट्टीपर कार्य करने वाला मनुष्य लकड़ी झोंकनेमें ढीलापड़ जाता या सो जाता है ऐसे समय उत्तापकी मात्रा घट जाती है। इसीलिये इन भट्टियों पर प्रायः उत्तापकी मात्राको देखनेकी अधिक आवश्यकता रहती है।

कौन कौनसे रस कितनी उत्ताप मात्रा पर बनते है ?

पारद यौगिक निर्माण करते समय तीन चार बातोंका ठीक तरह समझ लेना आवश्यक है। (१) जो यौगिक बनता है वह कितने उत्ताप पर यौगिक मे परिणत होता है। (२) यौगिक बन जानेपर फिर वह कितने उत्ताप पर जाकर उड़ने लगता है। (३) यौगिक निर्माण और वाष्पी-भवनके उत्ताप में कितना अन्तर रहता है ? (४) और कितने उत्ताप पर जाकर इसका यह यौगिक विच्छेद होता है। यह बातें यदि प्रत्येक यौगिक निर्माणके समय ज्ञात हों, तो रस तय्यार करते समय उसके बिगड़ने या यौगिकके बदल जाने या टूट जानेका भय नहीं रहता।

कणरूप रससिन्दूर निर्माण विधि :—

एकगुणा बलि और ६ गुणा पारद डालकर इसे खरल करें तो इसमेका

णिम्मज्जिय-विउल-क्वोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
सूमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

कुछ पारद कज्जली में परिणत होजाता है कुछ बाकी रहजाता है। इन दोनोंको एक बन्द लोह सम्पुटमें रखकर लगभग २००° शतांश अग्नि पर घंटा डेढ़ घंटा रखें तो यह दोनों परस्पर मिलकर यौगिकमे परिणत हो जाते हैं। इसे शीतल करके निकालने पर नीचे छोटे छोटे चमकीले कणके रूपमें इन दोनोंका यौगिक प्राप्त होता है। अब इसे कांचकूपीमे डालकर और कांचकूपीका मुंह बंद कर के अग्निपर चढ़ा दें, और २७०° से २८०° शतांशका मध्यम उत्ताप देते रहें तो बहुत ही उत्तम खस्ता अर्थात् रवा (कण) रूपमे रससिन्दूर तलभागसे कोई २-३ इञ्च ऊपर शीशेके आस-पास लगा हुआ मिलेगा। जब आप शीशी तोडकर रससिन्दूर निकालेंगे तो सारा रससिन्दूर छोटे छोटे कणोंमे टूट जायगा। इसकी रचना वैसीही होगी जैसा मर्क कम्पनीका बना मकरध्वज। यदि आप इसमे बलिकी मात्रा अधिक डाल देंगे तो फिर रससिन्दूर की पपड़ी—जो उड़कर कणोंके रूपमें जमती चली जाती है—जिसके मध्यमें बलिकी वाष्पें भी घुसकर जमती चली जाती हैं—वह मिलकर उसे कठोर कर देती है। यौगिक निर्माणसे यदि बलि अधिक न हो तो कभी रससिन्दूर कठोर पपड़ीका नहीं बनता।

रससिन्दूरादि रसोंको कभी एक बारमें नहीं बनाना चाहिए—

वैद्य रससिन्दूर बनाते समय कज्जलीको जिस शीशीमे चढ़ाते हैं उसी शीशीमें उसको एक बारमे पाककर लेते हैं, यह विधि ठीक नहीं है। पहिले पारद बलिको भिन्न बर्तनमें बन्द करके यौगिक बना लेना चाहिये, यदि इसमे कुछ सुवर्ण मिलाकर यौगिक बनाया जाय तो पारद और बलि सुवर्णकी विद्यमानतामें जल्दी यौगिक बनालेते है। इसमे सुवर्ण उत्प्रेरकका काम देता है, पारदके यौगिक बन जानेपर फिर उसे निकालकर दूसरी कांचकूपीमे चढ़ाकर फिर उसे कण रूपमे निर्माण करना चाहिए। रससिन्दूरका यौगिक २५५° शतांशके लगभग उत्ताप पर वाष्पमें परिणत होता है और २७०, २८०° शतांशके उत्ताप तक वेगसे उड़ता रहता है। यदि उत्ताप अधिक बढ़जाय तो शीशीके गलेपर लगने वाले

वलिमे वह आकर लगता है और वहांका वलि फिर जलने लग जाता है। इसीलिये इसके उत्तापको ध्यानसे देखते रहना चाहिये।

रसाचार्योंने मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि देनेका जो आदेश दिया है हमतो उसका अभिप्राय यही समझते है कि मन्द अग्नि परतो यौगिक निर्माण क्रिया होती है और मध्यम तथा तीव्र अग्निपर उसे वाष्प शील करके जमा लेते है। शास्त्र वर्णित मन्द, मध्यम और तीव्र अग्निका अभिप्राय उत्तापकी न्यून, मध्यम और तीव्र मात्राकी ओर संकेत था। वह मन्द अग्नि जिसपर यौगिक निर्माण करते थे और वह मध्यम तथा तीव्र अग्नि जिसपर रस उड़कर कूपीके गलेपर आकर लगते थे।

यह देखा गया है कि सब रस एक ही मात्राका उत्ताप नहीं लेते, हरएक रस भिन्न भिन्न उत्तापपर बनते है। हम उनमेसे रसकपूरका उदाहरण देते है।

रसकपूर निर्माण विधि—

रसकपूर बनाते समय रससिन्दूरकी अपेक्षा बहुत कम उत्ताप मात्राकी आवश्यकता होती है। रसकपूर १७५° शतांशके उत्तापपर यौगिक निर्माण करता है और इसी उत्तापपर वाष्पशील होने लगता है और २५[२] शतांशके उत्तापपर तो इसका यौगिक विच्छेदित होने लगता है। इसलिये इसको रससिन्दूर जैसा मन्द, मध्यम और तीव्र उत्ताप नहीं देना चाहिए। यदि हम रसकपूर चढाकर रससिन्दूरवाला उत्ताप इसको दे दें तथा बालुका पर धान डालकर उसकी खील बननेकी प्रतीक्षा करें तो प्रतीक्षा तकके समयमेंही इसका परिणाम यह होगा कि या तो शीशी टूट जायगी या पारा भिन्न होकर यौगिक बिगड़ जायगा, इसीलिये इसे बड़ी सावधानीसे बनाना चाहिये।

रसकपूरमे पारदके एक परमाणुसे लवणजनके दो परमाणु जब संयुक्त होते है तब रसकपूरका एक अणु बनता है रसकपूर पारद और लवणजन वायुका यौगिक है। जबतक वलिकाम्ल (गन्धक के तेजाब) का आविष्कार नही हुआ था तबतक इसे निम्नलिखित विधिसे बनाते थे।

कोऊहल-विरइया

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

रस-कपूर निर्माण की हमारी अनुभूत विधि—

पारद ३० तोला, नौसादर १५ तोला, फिटकरी १५ तोला, शोरा १५ तोला, सुहागा ८ तोला, नमक ८ तोला, सज्जी काली १० तोला, कसीस हरा ५ तोला, जवाखार २ तोला, सोमल १ तोला इन सब वस्तुओं को कूटकर उसमें पारा मिलादें और इसे एक घड़ेमें डालकर उसका मुंह बन्द करके अग्निपर चढ़ा दें। इसको १८०-१८५शतांशके उत्तापपर लगभग ७-८ घण्टे रखें, फिर शीतल होने दें। घड़े को तोड़कर देखें, उक्त वस्तुओंके ऊपरके भागोंमे रसकपूरके सूच्याकार कणों की तुरियां दिखाई देंगी, जहां तक उस पदार्थमे रसकपूरका मिश्रण होगा वहांतक वह वस्तु भाग बहुत भारी होगा उसे एकत्र करके एक कांच कूपीमे डालकर पुनः शीशीका मुंह बन्द करके बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर लगभग १७५° शतांशके उत्तापपर उसे ७-८ घण्टे अग्नि देवें ऐसा करने से सारा रसकपूर उस द्रव्यसे निकलकर शीशीके गलेके आसपास आकर लग जायगा। उक्त विधिसे हमने बीसों वार रसकपूर तय्यार किया है, वहुत उत्तम बनता है। इस विधिसे बनानेमें कभी कभी पारदका कुछ न कुछ अंश अयौगिक रूपमे जैसाका तैसा रहजाता है, यह त्रुटि है। इतना होते हुए भी यह रसकपूर आधुनिक समयके बाजारी रसकपूरसे उत्तम और गुणदायक होता है। किन्तु इस विधिसे रसकपूर बनानेसे व्यापारिक रूप मे सस्ता नहीं पड़ता। इसी तरह इसके निर्माणकी और भी विधियां है, किन्तु इन विधियोंसे बना रसकपूर मंहगा पड़ता है इसीलिये इसके बनानेकी कोई नई विधि ढूढी जाने लगी।

रसकपूरनिर्माणकी नव्य विधि :—

भिन्न भिन्न प्रकारके विशुद्ध अम्लोंका जैसे २ पता लगता गया तथा इनका धातुतत्त्वों पर जो प्रबल प्रभाव दिखाई दिया, इसके आधार पर रसायन-शास्त्रने अभूतपूर्व उन्नति की। हमारे रसाचार्य कृत्रिम अम्लोंमेसे सर्वप्रथम शंखद्राव नामक अम्लने परिचित हुए थे। यह अम्ल वास्तवमे अधिक बलि-

काम्ल और उसमें कुछ लवणाम्ल, पवनाम्लका मिश्रण होता है। इसमे बलिकाम्ल और जलकी मात्रा अधिक होती है, यद्यपि हमारे रसाचार्योंने देखा था कि इस शंखद्रावके प्रभावमे आकर—

सर्वान्धातून्द्रावयति वराटो शङ्खकानपि । रसकामधेनु

समस्त धातुएं कौडी, शंख आदि इसमे गल जाते है, तथापि धातुओं के गलनेसे उन धातुओंका आगे क्या रूप बनता है इसको उन्होंने जाननेकी चेष्टा नहीं की । यदि कहीं हमारे रसाचार्य इधर कदम बढ़ा सकनेमे समर्थ हो जाते तो जिस रसायनशास्त्रके निर्माणका अभिमान विदेशी विद्वानों को है, वह हमे प्राप्त होता ।

अम्लोंकी असलियतको विदेशी रसायनी हमसे बहुत अधिक समझ सके, और उन्होंने बलिकाम्ल ($उ_२ ब ऊ_४$) पवनाम्ल ($उ प ऊ_३$) लवणाम्ल (उ ल) आदि अम्लोंको अच्छी तरह पहचाना तथा उनको भिन्न २ निकालने की विधियां भी आविष्कृत कीं । और इसमे उन्होंने यहां तक उन्नति की कि वह लोग तीव्रसे तीव्रतर अम्ल बनाने लग पड़े ।

पारद साधारण बलिकाम्लसे कोई प्रभावित नहीं होता, किन्तु अनार्द्र-बलिकाम्ल जब तय्यार किया जासका तो इसके साथ पारदको उबालने पर पारद उस अम्ल प्रभावसे बलिकेतमे ($पा ब ऊ_४$) परिणत होगया ।

यह विधि निम्न है :—

शुद्ध बलिकाम्ल (लङ्गर मार्का गन्धकका तेजाब) लेकर उसके बराबर पारद मिलाकर किसी कढ़ाईमें डालकर अग्नि पर चढ़ा दें, और उसको तीव्र अग्नि दें, जब अम्ल और पारद वाष्पीभूत होने लगते है तब वह दोनों मिलकर पारद बलिकेत नामक यौगिकमे परिणत होजाते है, और उस समय उनके जलनेसे उदजनयुक्त बड़ाभारी सफेद धुआं उस कढ़ाईमेसे उठता है, जो थोड़ी देरमें शान्त होजाता है । फिर कढाईमें नीचे देखिए सफेद भस्म रूपमे वह पारद यौगिक जमा हुआ मिलेगा, इसे खुर्चकर एकत्र कर लें और इसका वजन करें तो इसका वजन बढा हुआ मिलेगा ।

कोऊहल-विरइया [१

. ज्जथ-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
सूमं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

अब पारदको इस यौगिकसे दूसरे यौगिकमे बदलना है। इसके लिये निम्न लिखित विधि आविष्कृत हुई। इस पारद बलिकेतके बराबर सैंधानमक या सांभर नमक पीसकर दोनोंको मिला देते है, और इसे एक बन्द बर्तनमें रखकर लगभग १७५°-१८०° शतांशका उत्ताप देते हैं, तब पारद और सैंधव लवणके यौगिक परस्पर अपना २ यौगिक विनिमय कर लेते है। पारद सैंधजन के लवणजन वायुसे संयुक्त होकर लवणाइद (पाल₂) मे परिणत होजाता है, और उधर सैंधव बलिके साथ मिलकर बलिकेत (सैं बऊ₄) मे परिणत होजाता है। रसकपूर तो मन्द उत्ताप पर उड़नशील होता है, इसीलिये यह उड़ने लगता है और कोई ३-४ इञ्च ऊपर जहां उत्ताप कम होता है वहां कण रूपमे जमने लगता है।

यदि यह सारा माल २ मन डाला गया हो, तो इसे बनते हुए ११-१२ दिन लग जाते हैं, फिर इसे निकाल लिया जाता है और नीचे पेंदेमें सैंवजम् बलिकेतको छोड़ दिया जाता है और ऊपर जो भाग उड़कर लगता है, उसे फिर दूसरे बर्तनमे अच्छी तरह बन्द करके पुनः अग्निपर चढा दिया जाता है। इसेभी १३-१४ दिन दूसरीवार अग्नि देनी पड़ती है। फिर यह वाष्पें जब ऊपर जाकर लगती हैं तो उससे उत्तम सूच्याकार कणोंकी तहें जमती चली जाती है, यही बाजारी रसकपूर है। जबसे यह विधि आविष्कृत हुई इसी विधिसे रसकपूर सूरत व दक्षिण हैदराबादमे बन रहा है और इसी विधि द्वारा विलायत से भी बनकर आरहा है।

दारचिकना बनाना :—

जितना रसकपूर हो उतना उसमे पारद डालकर पीसलें और इसमे सोमल फिटकरी, सुहागा, और मेंजनीज द्विऊष्माइद अष्टमांश मिलाकर इसको फिर उसी १७५° शतांशके उत्तापपर चढाकर पाक करें तो पुनः डाला हुआ पारद उस रसकपूरके साथ संयुक्त होकर एक दूसरा लवणाइद (पा₂ल₂) नामक यौगिक निर्माण करता है। जिसको दारचिकना या कैलोमल कहते है

और इस यौगिकके सूच्याकार कण नहीं बनते, प्रत्युत यह सफेद पपड़ीदार डली बनता है।

दारचिकना बनानेकी प्राचीन विधि :—

जिन व्यक्तियोंने रसकपूर बनाया था, वह रसकपूरको पुनः कुछ सोमल फिटकरी, सुहागा, हराकसीसके साथ मिलाकर फिर तपाते थे तो पारद पुनः उस रसकपूरके यौगिकमे बदल जाता था, किन्तु साराका सारा पारद दारचिकना मे परिणत नहीं होता था। कुछ रसकपूरके रूपमे भी रह जाता था, इसीलिये किसी ऐसे उत्प्रेरककी आवश्यकता दिखाई दी जो इसे ठीक यौगिक मे परिणत करदे। ढूंढने पर एक कालीमिट्टीका पता लगा जिसको रसकपूर और पारदके साथ मिलाकर उड़ानेसे सारा पारद रसकपूरके लवणजनसे मिलकर दारचिकनामे बदलते देखा गया। अनुसन्धानसे ज्ञात हुआ कि यह मैंगनीजका खनिज पाइरोलुसाइट था। बादमे दारचिकना बनानेके लिये रसकपूरके साथ मैंगनीज द्विऊमाइदका प्रयोग होने लगा। यह बड़ा अच्छा उत्प्रेरक सिद्ध हुआ। इसकी उपस्थितिमें पारदके दो परमाणु लवणजनके दो परमाणुओंसे संयुक्त होकर दारचिकना नामक यौगिक निर्माण करलेते है।

इस समय इसको निम्नलिखित विधिसे भी बनाते है :—

पहिले पारदको पवनाम्ल (शोरे के तेजाब) मे डाल देते है, पारद पवनाम्लसे मिलकर पारदस पवनेत $(पा\ प\ ऊ_3)_2$ नामक यौगिकमे परिणत होजाता है और नीचे कण रूपमे बैठता चला जाता है। इसे निकाल कर फिर इसपर लवणाम्लका घोल डालते है तो वह पारद लवणाइद $(पा_2\ ल_2)$ मे परिणत होजाता है। इसे फिर किसी बन्द बर्तनमे चढाकर १७५०° शतांश पर उडा लेते है, तब इसका चक्का बन जाता है।

रसकपूर और दारचिकनेमें अन्तरः—

रसकपूर १०० भाग ठण्डे जलमे लगभग ६½ भागसे जरा अधिक घुल जाता है और उबलते हुए जलमे यह १ तोला जलमे ६ माशे तक घुल जाता

कोऊहल-विरइया [१३

ज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो।
सुमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

है। यह हलाहल और ईथरमे भी घुल जाता है, किन्तु दारचिकना न तो जलमे घुलता है, न हलाहल (अलकोहल) मे, न ईथरमें। हां पवनाम्ल या अम्लराजमे अवश्य घुल जाता है। यह रसकपूरसे अधिक विषाक्त होता है और त्वचा पर लेप करनेसे त्वचाको जला डालता है और इसका जख्म देर में भरता है। तीव्र रेचक है।

हमने यहां पर उक्त कूपीपक्वरसोंके बनानेका जो विधान बतलाया है यह उत्तापकी मात्रा बतानेके लिये उदाहरण स्वरूपदिया है, हमने जो ऊपर उत्तापकी मात्रा बतलाई है वह Bailey's-Pyrometer-जो भट्ठीमे लगता है उससे उत्तापकी नापली हुई है। हो सकता है कि विशेष विधिसे देखनेमे कुछ उत्ताप मात्रामे थोड़ा बहुत अन्तर निकले। हमने जो कुछ लिखा है अपने प्रायोगिक आधार पर लिखा है। इस समयके सैद्धान्तिक विचारोंसे भी सम्भव है इसमे कुछ त्रुटि हो, जिसे बताने पर या दिखाने पर आगे ठीक किया जा सकता है। यह तो मैं पहिले ही कह चुका हूं कि मेरा यह प्रयत्न आरम्भिक है और केवल पथप्रदर्शक मात्र है, विशेष अनुभव लेना और उसे पूर्ण करना योग्य व्यक्तियों का ही काम है।

कूपीपक्क रसोंके भेद और उनपर कुछ विचार:—

देहसिद्धिके अर्थ रस-वादके ग्रन्थोंमे अनेक प्रकारके कूपीपक्वरस आये है उन सबोंको समझनेके लिये उन्हें दो प्रधान विभागोंमे विभक्त किया जा सकता है, (१) तललग्न। (२) ऊर्ध्वलग्न।

तललग्नरस—यह वह रस है जिसकी वाष्पें बनाकर जमानेकी आवश्यकता नहीं होती, केवल उन्हें तल भागमे ही कुछ प्रहर मन्द, या मध्यम उत्ताप देकर उनका यौगिक बना लिया जाता है या यौगिक का परस्पर विनिमय करा लेते हैं, ऐसे रसको तललग्नरस कहते हैं। तललग्नरस भी ३ प्रकारके होते हैं।

(१) **तलत्लग्नरस**—यह वह रस है जिसमें धातुएं, अधातुएं अपने मौलिक रूपमे इसलिये डाली जाती हैं कि वह उत्ताप प्रभावसे परस्पर मिलकर यौगिक निर्माण करलें, इसका उदाहरण देखो प्रथम अग्निकुमार। इस अग्निकुमारमें पारद, सीसा दो धातुतत्त्व है, और बलि अधातुतत्त्व है। कूपीमे चढकर बलिसे दोनों भिन्न भिन्न बलिकाइद बना लेते है।

(२) **तलत्लग्नरस**—यह वह रस है, जिसमे कुछ धातुए और अधातुएं यौगिकमे परिणात होती है और कुछ यौगिक रूपमेही डाली जाती है जैसे दूसरा अग्निकुमार। इसमे पारद तो धातुतत्त्व अपने मौलिक रूपमे डाला गया है और बलि तथा सोमल भी मौलिक अधातुतत्त्व है; किन्तु इसमें अभ्रकभस्म, सिंगरफ हरताल और ताम्र यह चारों यौगिक है, जब इन सबोंको मिलाकर और किसी वनस्पतिमे खरल करके कूपीपाक करते हैं तो जो मौलिकतत्त्व होते है वह यौगिकमें परिणात होजाते है, जो यौगिक है उनमें कुछ यौगिक विनिमय अवश्य होता है। ऐसे रस मन्द या मध्यम अग्नि पर बनाये जाते है

(३) **तललग्नरसः**—यह वह रस है जिसमें प्रायः समस्त तत्त्व यौगिक रूप मे ही डाले जाते हैं। यथा तीसरा अग्निकुमार। इसमे रससिन्दूर, अभ्रक, लोह आदि सब यौगिक है। आप कहेंगे कि जब सारेही पदार्थ यौगिक है तो उनको परस्पर मिलानेसे और कूपीपाक करनेसे क्या लाभ? क्योंकि यह पहिलेही यौगिक बने हुए है, उनके यौगिक तो बदलनेके नहीं। पाठको! यह बात नहीं है। ऐसे रसोंको पहिले और पीछे विश्लेषण कराकर उनकी परीक्षा ली गई है, उससे यह सिद्ध होता है कि उनमे परस्पर कुछ यौगिक विनिमय अवश्य होता है। इसीसे गुण बदल जाते है। केवल जब अग्नि प्रभावसे गठनका स्थानही बदल जाय तब भी उससे उनके गुणोंमे वृद्धि होजाती है और जब विनिमय हो तो अधिक अन्तर पड़ता है।

तललग्न रसोंका कूपीपाक होनेसे उनमे जो यौगिक विनिमय होता है या गठन स्थान बदलता है, इनको सूक्ष्मरूपसे जाननेकी आवश्यकता है।

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
सूमं परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

ऊर्ध्व लग्नरस—ऊर्ध्वलग्न भी दो प्रकारका होता है। एक वह जिसमें केवल एकही धातु किसी अधातु या वायुतत्त्वसे यौगिकमें परिणत कराकर वाष्पीभूत करके कणोंके रूप मे जमा लेते हैं। जैसे रससिन्दूर, सिंगरफ, रसकपूर और दारचिकना आदि। इन सबोंके यौगिक प्रथम भिन्न निर्माण कर लिये जाते हैं और पुनः उन यौगिकोंको सुन्दर विशुद्ध रूपमे लानेके लिये उड़ाया जाता है और तलस्थानसे कुछ ऊपर उन्हें जमा लिया जाता है।

(२) ऊर्ध्व लग्न—यह वह रस है जिनमे धातु, अधातु मौलिक और कुछ यौगिक रूपमें मिले होते हैं उन्हें एकत्र करके उड़ा लिया जाता है जैसे तालसिन्दूर, समीर-पन्नग आदि रस। इनमे पारद बलि और सोमल आदि मौलिक रूपमें डाले जाते हैं तथा हरताल मैनसिलादि यौगिक रूपमें पड़ते हैं।

कई दो दो या तीन तीन यौगिक ऐसे होते हैं जो एक साथ वाष्पशील होनेपर उनके यौगिकोंमें कोई यौगिक विनिमय नहीं होता, कुछ यौगिक ऐसे होते हैं जो यौगिक विनिमय करलेते हैं जैसे—अमीर रस।

इन बातोंको अच्छी तरह समझ लेनेपर यौगिक निर्माणमे कभी भूल होनेकी सम्भावना नहीं रहती। यह भेद जो हमने बतलाये हैं, वे वास्तविक हैं। किन्तु, हम देखते हैं कि वही एक कूपीपक्वरस किसी रसाचार्य द्वारा हंसराजके रसमें भावित होकर बनाया जाता है किसी रसाचार्य द्वारा अर्क दुग्धमे भावित कर बनाया जाता है, दोनोंने उसके भिन्न २ नाम दिये हैं। वास्तवमे वह रस भिन्न २ नहीं, न उनका यौगिक ही भिन्न बनता है। हम इसके एक दो उदाहरण देंगे।

प्रथम अग्निकुमार रसको लीजिये इसमे पारद, बलि और ताम्रभस्म तीन वस्तुएं पड़ती हैं। कोई इसीको हंसराजके रसकी भावना देकर मध्यम अग्निपर पकाते हैं, वह इसको रसभूपति नाम देते हैं। एक ग्रन्थकार अग्निपाल नाम देता है, एक शूलेभसिंह रस कहता है, कुछ ग्रन्थकार इस रसमे मीठातेलिया मिलाकर हंसराजकी भावना देकर तय्यार करते हैं वह राजादि अग्निकुमार नाम देते हैं,

कोई दिव्य अग्निकुमाररस कहते हैं। कोई इसको चित्रकमूल क्वाथकी भावना देना बतलाते हैं, कोई अर्कमूल त्वक्की भावना देकर फिर उसका कूपीपाक-करना बतलाते है। इस तरहके छोटे २ साधारण अन्तरसे इन रसोंका न तो कोई यौगिक बदलता है न इनके गुणोंमे अधिक अन्तर आता है। हां, यह अवश्य देखा जाता है कि एक वनस्पतिकी भावना देकर बनाया हुआ रस जितना लाभदायक नहीं होता वही रस किसी दूसरी वनस्पतिमें भावित कर बनाया जाय तो उससे अधिक लाभ देखा जाता है। इसका प्रधान कारण यौगिकमें परिवर्तन नहीं है, प्रत्युत उस वानस्पतिक अंशके मिश्रण का प्रभाव समझना चाहिए, यह बात प्रत्येक वैद्यको समझनी चाहिये और उसकी विशेषताको प्रदर्शित कर अन्य वैद्योंको भी बताना चाहिये, तभी इन रसोंका उद्धार हो सकता है। अब हम कूपीपक्व उन रसोंके कुछ सिद्धान्त बताएंगे जिनका रसग्रन्थों मे संकेत मात्र है।

रस निर्माण के कुछ अन्य सिद्धान्त।

पारदके साथ धातुएं मिलाना :—

पारदके साथ जब किसी सीसा, वंग आदि धातुओंको मिलाकर खरल करना और शीशी मे पाक करना हो तो पारदमे इन धातुओंको मिलानेकी दो विधियां है। एक तो यह है कि उक्त धातुको अग्निपर गलावें और उस द्रव धातु मे पारद डालकर उसे अग्निसे उतार लें, तो धातुके साथ पारदका मिश्रण बन जाता है। दूसरी विधि यह है कि सुवर्ण, चांदी आदिके पत्रबनाकर पारदके साथ मिलाकर उन्हें खरल करनेसे भी पारदके साथ उनका सम्मेलन बन जाता है। इस दूसरी विधिसे पहिली विधि अच्छी है।

पारदके साथ बलि मिलाना—पारदको जब किसी औषधमें डालना हो तो उसको बलिके साथ मिलाकर खरल करनेसे जो कालिमा उत्पन्न होती है वह पारदमे बलिके मिल जानेसे या यौगिक बन जानेके कारण ही कज्जलीका रूप बनता है। पारद चाहे किसी प्रकार भी बलिके साथ मिल जाय वह

कोऊहल-विरइया [१

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

फिर देहसिद्धिके लिये निर्दोष होजाता है। शरीरमे जाकर इसकी जो प्रतिक्रिया होती है उससे शरीरको लाभही होता है, हानि नहीं होती।

कूपीपक्व रस-निर्माण करते समय जहां भी बलि पारदके साथ डाली गई हो वहां अन्य अधातुओंको मिलानेसे पहिले इसके साथ पारद डालकर कज्जली बना लेना चाहिये। जहां धातुएं पड़ती हों वहां पहिले धातुओंका सम्मेलन कराकर फिर बलि डालकर कज्जली बनानी चाहिए। और हमने इस ग्रन्थमें आगे जहां योग दिये हैं पारद बलिके साथ शुद्ध शब्द नहीं दिया है, इसका अभिप्राय यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उन योगोंमे अशुद्ध वस्तुएं डालने के लिये ग्रन्थकर्ता का मत है यह बात नहीं, प्रत्युत समस्त औषधियां शुद्ध साफ ही लेनी चाहिएं।

भावना देना—जब कूपीपाक करने वाली औषधको प्रथम भावना देने का विधान हो उसमे रस एकबार अधिक मात्रामे कभी नहीं डालना चाहिए, प्रत्युत उतना ही रस या क्वाथ डालना चाहिये जिसमे दवा भीगकर घुट सके। जब दवा गाढी होकर न घुटे तब दूसरीबार रस देना चाहिये और एक भावना देनेके पश्चात् दूसरे वनस्पति रस या क्वाथकी भावना देनी हो तो जब पहिली भावनाका रस इतना सूख जाय कि खरलमे घुटाई न हो सकती हो उस समय दूसरी वनस्पतिका रस या क्वाथ डालना चाहिये। और अन्तिम भावना जब लग जाय फिर औषधको शीशीमे पाक करनेके लिये रखना हो तो उस रसको शीशीमे भरनेसे पूर्व उसे धूपमें खूब सुखा लेना चाहिये।

गोला, गोलीका पाक करना—औषध को भावना देनेके अनन्तर कई जगह रसाचार्योंने एकही गोला बनाकर पाक करनेका विधान बतलाया है, कई जगह छोटी २ गोली बनाकर पाक करनेका विधान दिया है। वहां वैद्यको यह देखना चाहिये कि यदि औषधको सम्पुटमे बन्द करके पकाना है तबतो चाहे एकही गोला बनाले, या टिकियां बनाकर रख सकते है। किन्तु जब उसे शीशीमें पकाना हो तो उस रसकी गोली इतनी बड़ी बनानी चाहिये जो शीशीके

मुंहमें से उसके भीतर डाली जासकें। गोलियां या गोला बनाकर इन्हें धूपमे भी खूब सुखा लेना चाहिये, जब यह बिलकुल सूख जायें तब इन्हें शीशीमे डालकर वालुका यन्त्रमे चढाना चाहिये।

पश्चात् भावना देना और पुटपाक या स्वेदन करना :—

जब रसको पकाकर शीशीसे निकाल लेते है तो उनमेसे कई रसोंको किसी वनस्पति रस या क्वाथकी भावना देकर स्वेदन करने या भूधर यन्त्रमे पकानेका विधान होता है। उस समय भावनाके लिये क्वाथ द्रव्य इतने ही डालने चाहियें जिसमे वह रस प्लुत होजायं और जब सूखने लगें तो पुनः दूसरा या वही जिसका आदेश हो डालें। इन भावनाओंके पश्चात् यदि उस रसको स्वेदन करना हो तो पोटलीमे बांधकर दोला यन्त्रमे ऐसा लटकाना चाहिये कि क्वाथद्रव्य उसको स्पर्श न कर सके, केवल उन क्वाथ द्रव्योंकी वाष्पमेही वह स्वेदित हो। इसीप्रकार भूधर यन्त्रमे रखकर जहां स्वेदन या पुट पाकका विधान हो वहां इस बातका खूब ध्यान रखना चाहिये कि रसको जो अग्नि दी जाय, वह इतनी लगे कि सम्पुटके भीतरका रस गरम होकर प्रस्वेद छोड़ दे, पुटपाक में या भूधर यन्त्रमे जब भावित रसोंको पकाया जायतो उनका वानस्पतिक अंश जलना नहीं चाहिये और पुटपाकका जहां विधान हो वहां दो अंगुल मोटी मिट्टी चढ़ाकर सम्पुटको सुखाना नहीं चाहिये, प्रत्युत उसी प्रकार गीली मिट्टी चढ़ी हुई को अग्निमे रखकर यह प्रतीक्षा करते रहना व देखते रहना चाहिये कि मिट्टीकी ऊपरी सतह शुष्क होकर कितनी अधिक तप चुकी है। मिट्टीको बिलकुल लाल नहीं होने देना चाहिये, प्रत्युत सूखकर जब अर्द्ध लालसी होजाय तब निकाल लेना चाहिये और उसे उसी तरह रखकर शीतल होने देना चाहिये।

तैलोंकी भावना—कई रसोंमे धतूर तैल आदि कई वानस्पतिक तैलों की भावनाएं देनेका विधान आता है। तैलोंकी जहां मात्रा न लिखी हो वहां इतना तैल डालना चाहिये जिसमें कठिनतासे घोटाई की जासके, फिर उसे खूब जोर लगाकर मर्दन कराना चाहिये ताकि वह तैलांश सूख जाय। कई

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[1] ।
भमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

बार घुटाई नहीं होती तो वहां उसकी कुटाई कराते हैं इससे उस रसमें गर्मी उत्पन्न होकर उसका तेल सूख जाता है। जब एक तेल सूख जाय तब दूसरे तेलकी भावना देनी चाहिये और दूसरी तीसरीबार भी इतना कम तेल डालना चाहिये कि वह रस बहुत नरम न होजाय। तेलोंकी भावना देनेके पश्चात् उसे यदि स्वेदन या पुटपाक करना हो तो इस बातका अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिये कि उस पुटपाकमें वह तैलांश जलने न पावे।

कूपीपाकमें शीशीके मुंहपर बलिका जलना—कूपीरस बनाते समय यदि शास्त्र विधानके अनुसार उस कूपीमें यौगिक निर्माणसे अधिक बलि डाला जाता है तो उसका वाष्पीभवन होनेके बाद जलना आवश्यक होता है, कई वैद्यजन कूपीके मुहपर जब बलि जलने लगता है और शीशीके मुंहसे बलिकी ज्वलाएं उठने लगती है तो वह वैद्यमहोदय घबरा जाते हैं कि यह क्या होगया ? कइयों को भय होजाता कि शीशी टूट न जाय। इसमें कोई संशय नहीं कि जिस समय बलि जलता है उस समय यदि शीशीका मुंह (गला) तङ्ग हो तो वहां बलि भर जाता है और शीशीका मार्ग अवरुद्ध होकर शीशीके टूट जानेका भय होता है। उस समय वैद्यको घबराना नहीं चाहिये। लोह शलाका लेकर उस शीशीके गलेमें फेरना चाहिये, यदि बलि जम गया हो तो उस लोह सलाईको गरम करके लाल कर लेना चाहिये और उस रक्त-तप्त शलाकाको फेरकर उस बलिको शीशीके नीचे गिरा देना चाहिये या अग्नि लगाकर उसे जला देना चाहिये। इस प्रकार शीशीका मुख द्वार उस समय तकके लिये खुला रखना चाहिये जबतक वेगसे लम्बी २ ज्वाला देकर वह बलि जल रहा हो।

बलि जलने की प्रक्रिया—यदि अग्नि तीव्र लग रही हो तो घण्टा डेढ़ घण्टामें पूरी होजाती है। जब बलि जल जाता है तब यौगिक निर्माण होता है उस समय उस शीशीका मुंह किसी डाटसे बन्द कर देना चाहिये, अब मुंह बन्द रहनेपर शीशीके टूटनेका भय नहीं रहता।

क्या बलिका जलना आवश्यक है ?

ऊर्ध्व लग्नरसोंमे जबकि बलि यौगिक निर्माणसे अधिक डाला गया हो उसका जलना निश्चित व आवश्यक बात होती है। कईबार जब अग्नि या उत्ताप कम लगता है और बलि जलने मे नहीं आता तो रसका शीघ्र परिपाक करनेके लिये भट्टीके उत्तापको बढ़ाना पड़ता है। यदि कोई कारण ऐसा हो रहा हो कि शीशीके भीतर बलि जारणका उत्ताप न पहुंच रहा हो, तो निम्नलिखित कृत्रिम विधिसे उत्ताप बढा देना चाहिये। कोई मिट्टीका घड़ा या कोई लोहेकी चिलमची टूटी-पुरानी ऐसी लेनी चाहिये जो बालुका यन्त्रपर रखी जाकर उसे ढंक सके, उस चिलमची या घड़ेमे एक छेद इतना बड़ा करलेना चाहिये जो उस शीशीके मुह भागको खुला रखे बाकी बालुका यन्त्रको अपने उदरमे छिपाले। वह उसपर औंधा ढंक देना चाहिये, इस लोहे या मिट्टीके ढकनेका व्यास इतना बड़ा होना चाहिये जो बालुका यन्त्रको चारों ओरसे ढंक सके। जिस समय यह पात्र उस बालुका यन्त्रपर ढंका जायगा उसके थोड़ी देर बाद ही उस बालुका यन्त्रमे इतना उत्ताप बढ़ जायगा कि बलि जलने लग जायगा और उसकी फुटों लम्बी ज्वालाएं निकलने लगेंगी और जो बलि जारण दिनोंमें होने वाला होगा वह घण्टोंमे हो जायगा। जब बलि जारण होजाय और आवश्यक दिखाई दे तो शीशीमे डाट लगाकर फिर उस पात्रको हटा देना चाहिये।

बलि जब वेगसे जल रहा हो उस समय कूपी के भीतर २८०° से २६०° शतांशके मध्य उत्ताप होता है। जिन वैद्योंके पास उत्ताप नापनेका साधन न हो वह उत्तापकी स्थितिको बलिकी ज्वाला निकलनेकी दशासे कूपीपाकके उत्तापको समझ सकते हैं।

बलिकी ज्वाला केवल रससिन्दूर, चन्द्रोदयादिमें ही नहीं उठती, प्रत्युत जितने भी ऊर्ध्व लग्नरस है सबमें न्यूनाधिक बलि जलकर ज्वाला अवश्य देता है और उस ज्वालाके उत्पन्न होने परही इस बातका अनुमान लगाया जा

कोऊहल-विरइया [१३०९-

...ज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

सकता है कि अब वलिके जलने पर रस निर्माण होगा। जब तक वलि न जले रस चाहे भले ही यौगिक निर्माण करले किन्तु वह तलमे ही बैठा रहेगा ।

क्या तल लग्नमें भी वलि जारण होता है ?

तललग्न रसोंको निर्माण करनेमे वलिका जारण बहुत न्यून होता है बहुत न्यून वलि वाष्पमे परिणत होता है, तलमे बनने वाले यौगिकमे तो जितना वलि यौगिक में परिणत होना होता है वह होकर अवशेष बलि जैसेका तैसाही उसमें मिश्रित होजाता है। हां! यह होता है, कि उस वलिका अग्नि प्रभावसे अवस्था परिवर्त्तन अवश्य होता है। जो वलि डालते समय पीले वर्णका होता है वह उत्ताप प्रभावसे काला होता चला जाता है, यही बात सोमल आदिमें होती है ।

तल-लग्नरस निर्माण करते समय कभी तीव्र अग्नि नहीं देनी चाहिए, प्रत्युत मन्द या मध्यम उत्ताप पर पाक कर लेना चाहिए।

वालुका यन्त्र :—कूपीपक्करस निर्माणके लिये औषधको चाहे सम्पुटमे बंद कियाजाय या शीशीमे डाला जाय उसे पाक करनेके लिये नांदीमे या डोलमें जहा रखा जाता हे उस पात्रमे रसाचार्योंके आदेशानुसार तीन वस्तुओंमे से कोई एक वस्तु भरी जाती है। (१) वालुका (२) लवण पीसा हुआ (३) वनोपल भस्म। तीनों वस्तुओंका उद्देश्य एकही होता है वह यह कि कूपी या सम्पुट-तक उत्ताप धीरे २ पहुचकर बढे। दूसरे सम्पुट या शीशी उस वालु या लवण चापसे दबी रहे ताकि यौगिक निर्माणके समय थोड़ा बहुत चापभी उसके द्वारा सम्पुट पर बना रहे, वालु या भस्मसे सम्पुट पर जो दबाव बना रहता है उसमे सम्पुट एकाएक खुलने नहीं पाता, यन्त्रमें लवण या वालु जो भरा जाय, उसीके नामसे उस यन्त्रको पुकारते हे किन्तु वास्तवमे सब एकही के दो या तीन रूप हे।

शास्त्रोक्त कूपीपक्व रस

अगदेश्वररस

मरालपादस्वरसेन गन्धः सुभावितो वारशतैकमेवम् ।
रसैः कुमार्याश्च ततस्तथैव निम्बूरसेनापि तथैव भूयः ॥
शुद्धेशबीजेन विमर्दनाद्धि सुकज्जलाभं विनिधाय घर्मे ।
मनःशिला तारकतालयुक्तं पादांशमानाभ्रकसत्त्वयुक्तम् ,
संमर्द्य तत्काचघटे निधाय मृत्कर्पटैर्लिप्तबहिः प्रदेशे ॥
शुष्कं यदा स्यात्पिहितं विधेयं तद्वालुकापूरितताम्रभाण्डे ।
द्वात्रिंशता च प्रहैरर्विपक्कं सिद्धं रसश्चास्यादीधितिश्च ॥
तं स्वाङ्गशीतं चणकप्रमाणं भजेत्सदा पूजितविघ्ननाथः ।
निजानुपानादगदङ्करोति चायूंषि च स्थापयतीति मन्ये ॥

रसेन्द्रकल्पद्रुम ।

अर्थ—बलिको हंसराज, घीकुंवार और नीम्बू रसमें सौ सौ बार भावना देकर पश्चात् उस बलिके बराबर पारद मिलाकर कज्जली बनावे इस कज्जलीमे बलिसे चौथाई मैनसिल, रजत भस्म, हरताल और अभ्रकसत्व मिलाकर एकदिन खरल करके ताम्र-पात्रकी शीशीमें भरकर, बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर ३२ प्रहरकी अग्नि दे, तो यह रस सिद्ध होता है। यह अगदेश्वर रस भिन्न २ अनुपानसे अनेक रोगोंको नष्ट करता है, और आयुको स्थिर करता है।

सम्मति—बलिको सौ सौ भावना देकर पुनः उस बलिको अग्निपर चढ़ा देनेपर जो वानस्पतिक अंश होता है वह यौगिक बननेसे पहिलेही नष्ट होजाता है इसलिये उस यौगिक निर्माणमे इन भावनाओंका कोई प्रभाव नहीं होता जो मैनसिल, हरताल उड़ते है वह रससिन्दूर कणोंमें घुसकर दोनों मिश्रण बना लेते है। इसीलिये इसके गुण तालसिन्दूरसे मिलते है, इसको अग्नि भी ४ दिनकी आवश्यक नहीं, क्योंकि यह रस एक दिनमे बन

कोऊहल-विरइया [१२०९-

...पिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो।
सुमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

जाता है। और दूसरे जो ताम्र की कूपीका बहुत सा भाग वलिकाइद (भस्म) में परिणत होजाता है उसे भी शीशी तोड़कर जो पपड़ीके रूपमें भस्म हो चुकी हो इसी रसमें मिलाने का कुछ रसाचार्यों ने आदेश दिया है।

अग्निकुमाररस १

सूतगन्धकनागानां चूर्णं हंसाङ्घ्रिवारिणा।
दिनमेकं विमर्द्याथ गोलकं तस्य योजयेत् ॥
काचकूप्यां च संवेष्ट्य तां त्रिभिर्मृत्पटैर्दृढम्।
मुखं संरुध्य संशोष्य स्थापयेत्सिकताह्वये ॥
सार्धं दिनं क्रमेणाग्निं ज्वालयेत्तदधस्ततः।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य षडंशेनामृतं क्षिपेत ॥
मरिचान्यर्धभागेन समस्तस्याथ मर्दयेत्।
अयमग्निकुमाराख्यो रसो मात्राऽस्य रक्तिका ॥
ताम्बूलीरससंयुक्तो हन्ति रोगानमूनयम्।
वातरोगान् क्षयं श्वासं कासं पाण्डुं कफोल्वणाम् ॥
अग्निमान्द्यं सन्निपातं पथ्यं शाल्यादिकं लघु।
जलयोगप्रयोगोऽपि शस्तस्तापप्रशान्तये ॥

रसरत्नप्रदीपिका।

अर्थ—पारद, वलि, सीसा ये तीनों बराबर लेकर प्रथम सीसाको गलावें फिर उसमें पारद डाल दें और उतार लें इस सम्मेलनसे सीसा पीसनेके योग्य होजाता है। फिर इसमें वलि मिलाकर खरल करें और हंसराजके रसमें एक दिन खरल करके सुखा लें पश्चात् इसे शीशीमें भरकर उसका मुंह बन्द करदे, फिर बालुका यन्त्रमें रखकर १½ दिन तक अग्निपर पाचन करें। जितना रस तैयार हो उसका ⅙ भाग मीठा तेलिया तथा उस रसका आधा भाग कालीमिर्चे चूर्ण करके मिला एक दिन खरल करके रखलें। मात्रा एक रत्ती, अनुपान-पानका रस।

गुण—वातरोग, यक्ष्मा, खांसी, श्वास, पाण्डु, कफवृद्धि, मन्दाग्नि और सन्निपातमें लाभदायक है।

सम्मति—यह रस दो यौगिकोंका सम्मेलन होता है एक पारद बलिकेत (पा ब) और दूसरा सीसबलिकेत (सीब) का दोनों यौगिकोंके लिये जब ६ तोले पारद और ६ तोले सीसा हो तो २ तोले बलि प्रर्याप्त होता है। २½ तोले बलि डाल देनेपर भी ठीक दोनोंके यौगिक बन जाते हैं। इसमे २००° शतांशसे अधिक अग्नि नहीं लगनी चाहिये, यह दोनों यौगिक तलमें ही बनते है। इनको ६ घण्टे की अग्नि काफी होती है।

अग्निकुमाररस २

रसं विषं चाभ्रगन्धौ तालकं हिंगुलं विषम्।
शुल्वभस्म समं तुल्यं मर्दितं भृङ्गवारिणा॥
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य विलेप्या वस्त्रमृत्तिका।
बालुकायन्त्रके पाच्यं दिनैकं मन्दवह्निना॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य दातव्यं चणमात्रकम्।
अनुपानविशेषेण ज्वरं चातुर्थिकं हरेत्॥
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वरोगहरं परम्।
महानग्निकुमारोऽयं सर्वव्याधिनिवारणः॥

वैद्यचिन्तामणि।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, अभ्रकभस्म, बलि, हरताल, सिंगरफ और सोमल सब बराबर और सबके बराबर ताम्रभस्म इन सब वस्तुओंको मिलाकर एक दिन भांगरेके रसमें खरल करके सुखा लें। पश्चात् कांचकूपीमे भरकर बालुका यन्त्रमे चढ़ा मन्द २ अग्नि १ दिनकी देवें, शीतल होनेपर निकाल रखें।
मात्रा—एक चनेके बरावर।

गुण—चातुर्थिक ज्वर और सन्निपातमे विशेष अनुपानसे दें।

कोऊहल-विरइया [१३०९-

—ज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो।
ं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

सम्मति—इस रसको उड़ानेकी आवश्यकता नहीं, केवल २००° शतांश तक उत्ताप देना चाहिये ताकि पारेके साथ वलिका तथा सोमलके साथ वलिका यौगिक बन जाय, ताम्र और अभ्रकमें कोई परिवर्तन नहीं होता। एक चना अर्थात् १½ रती इसकी मात्रा लिखी है कुछ अधिक प्रतीत होती है।

अग्निकुमाररस ३

रसं मृताभ्रकं कान्तं तीक्ष्णं ताम्रामृतं समम्।
मर्द्यं हंसपदीद्रावैः काचकूप्यन्तरे क्षिपेत्॥
वस्त्रमृत्स्नां विलिप्याथ वालुकायन्त्रके पचेत्।
षड्यामान्ते समुद्धृत्य सर्वेषां सन्निपातजित्॥
इच्छापथ्यं प्रदातव्यमिक्षुखण्डानि भक्षयेत्।
नारिकेलोदकं दाहे पिबेच्च शर्करोदकम्॥
उत्तमाग्निकुमारोऽयमश्विभ्यां च प्रकल्पितः॥

वैद्यचिन्तामणि।

अर्थ—रससिन्दूर या सिंगरफ, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, तीक्ष्णलोह-भस्म, ताम्रभस्म, मीठातेलिया सब बराबर इन सबोंको हंसराजके क्वाथमें या रसमें खरल करके सुखा लें, फिर कांचकूपीमें भरकर वालुका यन्त्रमें चढा ६ प्रहर की अग्नि दें तो यह रस तय्यार होजाता है। मात्रा—२-४ रत्ती तक।

गुण—सन्निपात पर इसके सेवनसे लाभ होता है। दाह करता है, किन्तु इसके निवारणके लिए गन्ना (पौंडा) चूसना चाहिये या मिश्रीका शर्बत, बनफशा, या नीलोफरका शर्बत या नारियलका जल पीना चाहिये।

सम्मति—इस रसमें प्रथम सारेही यौगिक पड़े हैं, रासायनिक परिवर्तनके लिये अग्नि नहीं दीजाती, किन्तु अग्नि प्रभावसे इनके सम्मेलनमें कुछ सूक्ष्म फेर-फार अवश्य होता होगा। इस रसको भी तीव्र अग्नि नहीं देनी चाहिये अधिक से अधिक २५०° शतांशकी ६ घण्टे पर्याप्त है। किन्तु २ दिन इसी

मात्रामें अग्नि लगती रहे तो आन्तरिक गठनमें अन्तर होनेकी सम्भावना है। इसको अधिक ७ दिन अग्निपर रखा जाय तो और भी गुण वृद्धिकी सम्भावना है। पश्चात् १० भाग मैनफल चूर्ण मिलाकर इस रसको आकाशवेल, कालीजीरी जलनिम्बके रसमें एक दिन खरल करके फिर बालुका यन्त्रमे पका कर कृष्ण माणिक्य नामक रस बनता है।

अग्निकुमाररस ४

पारदं गन्धकं शुद्धं वत्सनाभं विशोधितम्।
निरुत्थं ताम्रभस्मापि समं चूर्णं विमर्दयेत्॥
हंसपादीरसेनाथ काचकूप्यां विनिःक्षिपेत्।
बालुकायन्त्रविधिना त्रियामान्पाचयेद्भिषक्॥
रसार्धममृतं क्षिप्त्वा पुनः संचूर्ण्य मर्दयेत्।
वह्नित्रिकटुसिन्धूत्थयुक्तेनार्द्रकवारिणा॥
गुञ्जामात्रो हि दातव्यो मन्दाग्नौ सन्निपातके।
धनुर्वातेऽप्यजीर्णे च शूले च क्षयकासयोः॥
अयमग्निकुमाराख्यो रसः स्यात्प्लीहगुल्मनुत्॥

रसराज सुदन्र।

अर्थ—पारद, बलि मीठातेलिया, ताम्रभस्म सब वस्तुओंको हंसराजके रसमे खरल करके सुखालें और बालुका यन्त्रमे रखकर ३ प्रहर अग्निमें पकावें, फिर पारदसे आधा मीठातेलिया चूर्ण और पारेसे ¼ चौथाई सैंधव नमक मिलाकर खरलमे डालदें और निम्नलिखित क्वाथ रसोंकी एक एक भावना दें। चित्रक १ त्रिकटु १ अद्रक रस १ भावना दें। मात्रा १ रत्ती। भिन्न भिन्न अनुपानसे।

गुण—मन्दाग्नि, सन्निपात, धनुर्वात, अजीर्ण, शूल, क्षय, खांसी, प्लीहा और गुल्ममे लाभदायक है।

सम्मति—यह योग थोड़ी २ वस्तुओं के अन्तरसे या कुछ क्रिया या भावनाके अंतरसे कई नामोंसे और पाठ भेदसे आया है। वास्तवमे इसके सारे यौगिक सम रूपक ही बनते है, उनके गुणोंमे अधिक अन्तर नहीं होता।

अग्निकुमाररस ५

गन्धकं पारदं तुल्यं भस्मलोहाष्टकं तथा।
अर्कमूलकषायेण मर्दितं दिनपञ्चकम्॥
कूपिकायां निवेश्याथ विलेप्या वस्त्रमृत्तिका।
मृद्वग्निना वालुकाभि द्वादशप्रहरं पचेत्॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य मर्दयेदतियत्नतः।
गुञ्जमात्रं प्रदातव्यं सर्वरोगेषु योजयेत्॥
सन्निपातसमुद्भूत ज्वरेषुविविधेषु च।
प्रख्यातो नवलोहाख्यो रसो ह्यग्निकुमारकः॥

रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—पारद, बलि, सुवर्ण रजत, ताम्र, सीसा, बंग, लोह, यशद, कांस्य या पीतल इन सबकी भस्मे—सब बराबर सबको अर्क जड़के क्वाथमे ५ दिन तक भावना देकर सुखालें, पश्चात् कांचकूपीमे डाल वालुका यन्त्रमे चढ़ाकर मन्द अग्निमें १½ दिन पकावें। मात्रा १ रत्ती।

गुण—प्रत्येक ज्वर या सन्निपातमे देवें।

सम्मति—इसको भी पारद, बलि यौगिक निर्माणके योग्य अग्नि दें। ग्रन्थकारने स्वयम् ही मन्द अग्निपर पकानेका आदेश दिया है। पारद बलिकेत्त बनते समय अन्य लोहभस्मोंके अणुओंमे कुछ फेरफार अवश्य होता है। इसमें आठ लोह लेनेका आदेश है किन्तु कांस्य या पीतल तो दो धातुओंके मिश्रण है, इसलिये इन मिश्रित धातुओंके स्थानमे अञ्जन नामक धातुकी भस्म डाली जाय तो बहुत उपयोगी होगा। इस अञ्जन धातुके भस्मका विधान **भस्म विज्ञानमें** दिया गया है।

अग्निकुमार रस

विशुद्धपारदविषगन्धकटङ्कणादरदान्समभागान् किञ्चिदुष्णीकृतपक्वार्कपत्ररसेन यामद्वयं मर्दयित्वा चक्रीकृत्य मूषायां निक्षिप्य मुखबन्धनं विधाय वालुकायन्त्रे क्रमादग्निना यामचतुष्टयं विपाच्य स्वाङ्गशीतलं गृहीत्वाऽऽर्द्रकरसेनैकगुञ्जाप्रमिते सेविते सति सर्वज्वरनिवृत्तिर्भवति। सङ्ग्रहण्यतिसारादयोऽपि नश्यन्ति। पथ्यं रोगाऽनुरूपम् ॥

अगस्त सम्प्रादाय ग्रन्थे।

अर्थ—पारद, बलि, मीठातेलिया, टंकण और सिंगरफ सब बराबर ले अर्कपत्र रस निकालकर उसे कुछ गरम करके उसमे उक्त वस्तुओंको दो दिन खरल करे, पश्चात् इनकी टिकियां बनाकर सुखाले, फिर सम्पुटमें बन्द करके वालुका यन्त्रमे रखकर मन्द मध्यम अग्निमे ४ दिन पकावे। शीतल होनेपर निकाल लेवे। मात्रा १ रत्ती। अनुपान अद्रक रस।

गुण—यह रस समस्त ज्वर, अतिसार, संग्रहणी मे लाभदायक है।

सम्मति—इस रसके निर्माणमे पारद बलिकाइद बन जाता है और मीठातेलिया जल जाता है, टंकण का कौनसा यौगिक बनता है इसकी परीक्षा नहीं लीगई।

अनङ्गसुन्दररस

शुद्धं सूतं तथा गन्धं त्र्यहं कल्हारजैर्द्रवैः।
मर्दितं वालुकायन्त्रे यामं सम्पुटगं पचेत् ॥
रक्तागस्त्यद्रवैर्भाव्यं दिनमेकं सिताम्बुजैः।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेताबलाशतम् ॥

रसेन्द्रसार संग्रह।

अर्थ—पारद, बलि समभाग कमलके रसमे ३ दिन खरल करके कांचकूपी में डालकर वालुका यन्त्रमें रख रससिन्दूर बनालें। इस रसको निकालकर रक्त

अगस्त पुष्परस और कमलके रसमे एक २ दिन खरलकर रखलें। मात्रा ३ रत्ती।

गुण—इस रसको वाजीकर कहा है।

सम्मति—रससिन्दूरसे इसकी रचनामे कोई अन्तर नहीं होता, अगस्त और कमलरसमे भावना देनेसे यदि कोई विशेषता आती हो तो वैद्यगण उसकी परीक्षा ले लेवें। अन्य ग्रन्थकार इस कज्जलीको कमल और शखपुष्पीके रसकी भावना देकर कूपीपाक करनेपर इसका नाम वह अभिनव कामदेव देते हैं।

अमृतेश्वररस

रसं गन्धं वत्सनाभं वासा त्रिकटुकं वचा।
जीरकं चित्रकं शुराठी त्रिफला च समंसमम्॥
वासात्रिकटुकद्रावै स्त्रियामं मर्दयेद्भिषक्।
पाचयेद्वालुकायन्त्रे त्रिदिनं मन्दवह्निना॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य द्विगुञ्जं भक्षयेत्सदा।
शर्करामधुसंयुक्तं स्वेदपैत्तविकारनुत्॥

वसव राजीयम्।

अर्थ—पारद, वलि, मीठातेलिया, वांसापत्र, त्रिकटु, स्वेत जीरा, चित्रक-छाल, सोंठ और त्रिफला सब बराबर लेकर चूर्ण करलें फिर इन सबको खरल मे डालकर वांसारस और त्रिकटु क्वाथमे तीन दिनतक खरल करें पश्चात् सूख जानेपर कांचकूपी या सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमे चढ़ाकर ३ दिन मन्द अग्निसे पकावें। मात्रा २ रत्ती।

गुण—अधिक पसीना आनेको रोकता है तथा पैत्तिक विकारोंको शान्त करता है।

सम्मति—इसको उत्ताप २०० शतांशके भीतर लगना चाहिये ताकि पारद वलिकाइद बन जाय। बाकी वनस्पति अंश जल जाते हैं उनका जल भाग और कज्जल निकल जाता है कुछ क्षारांश यौगिक शेष रहजाते हैं।

अमीररस

रसेन्दुर्दरदं दालिचिक्कणं तारतन्तवः ।
कर्षं कर्षं समाहृत्य कणिकाः कल्पयेत्तनूः ॥
तवके पटुमास्तीर्य तत्र ताः कणिका न्यसेत् ।
विधाय पटुना नेमिं पिदध्याच्चीनपात्रतः ॥
तदधो ज्वालयेद्वह्निं शनकैः प्रहरत्रयम् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चीनपात्राऽवलग्नकम् ॥
अद्यादमीरनामानं ग्रन्थिवातोपदंशवान् ।
अहानि सप्त नव वा मर्यादाऽमुष्य भक्षणे ॥
सितासखं पयो गव्यं पथ्यं गोधूमफुल्लिका ।
भिषजामुपकारार्थं रसोऽयमत्र कीर्तितः ॥
गुञ्जैका वा द्विगुञ्जा वा मात्राऽमुष्य यथामयम् ।
पिधाय द्राक्षया प्रातर्गिलेद्दन्तैर्न च स्पृशेत् ॥
पटोस्त्रीणि पलानीह तत्र त्वास्तरणं पलात् ।
द्वाभ्यां पलाभ्यां घटयेत्परितो नेमिबन्धनम् ॥ सिद्धभैषज्य मणिमाला

अर्थ—एक मिट्टीके शरावमे या लोह तवेपर ४-५ तोला सैंधव लवण पीसकर बिछा दें उसपर रसकपूर, सिंगरफ, दारचिकना और असली चांदीका गोटाजरी पुराना (बारीक कटा हुआ) सब बराबर लेकर सबको छोटे छोटे टुकड़े करके उसपर नमक बिछा दें और फिर उसपर ४-५ तोला पीसा हुआ नमक इस प्रकार डालें कि वह सब ढंक जाय तब उसे खूब दबा दें फिर इस शराव पर दूसरा शराव या चीनीका प्याला ढंककर उसकी सीधी बन्द करदें, पुनः इसको छोटे स्टोप या स्प्रिट लैम्पपर या चूल्हेपर रखकर १२५ से १५० शतांशकी अग्नि ६-८ घण्टे की दें । दो दो तोला वस्तुएं हों तो ८ घंटे अग्नि पर्याप्त होती है इससे रसकपूर, दारचिक्ना दोनोंका मिश्रित यौगिक ऊपरके शरावमें जाकर लग जाता है । मात्रा—१-२ रत्ती तक ।

सेवन-विधि—हलुवा, मलाई या मुनक्काके भीतर औषधको इस तरह लपेट देना चाहिये कि उसको खाते समय औषध कहीं मुंहके भीतर न लगे मुंहमे डालकर औषधको गलेके नीचे उतार लेना चाहिये इस दवाके दांतों मे लगनेसे मुंह आजाता है।

गुण—उपदंश आतशकके लिये अत्युत्तम है, तथा उपदंश या फिरंग रोग के शरीरमें रहे हुए विकारोंमें तथा भगन्दर व नाड़ीव्रणमें लाभदायक है।

सम्मति—इस रसके निर्माण करनेमें निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं। सिंगरफका ब्रलि निकलकर चांदी और सैंधजमके साथ संयुक्त होकर बलिकाइद बनाता है, पारद उन्मुक्त होकर रसकपूरके लवणाजनसे तथा नमकके लवणाजनसे सयुक्त होकर दारचिकना और रसकपूरमें परिणत होता है और वह दोनों यौगिक उड़कर ऊपरके प्यालेमे जाकर लगते हैं।

इस रसको निर्माण करते समय ऊपर का प्याला बहुत अधिक ऊंचा नहीं होना चाहिये, औषधसे कोई एक या डेढ इञ्च ऊपर उठा हुआ प्यालेका ऊपरी भाग काफी होता है, और सम्पुट खूब दृढ होना चाहिये। कईवार देखा गया है कि भीतर वायु प्रवेश करती रहे तो जो पारद सिंगरफसे भिन्न होता है वह रसकपूर दारचिकनाके यौगिकमे परिणत न होकर उसी तरह रहजाता है। रस कपूर, दारचिकना आदिके जौहर भी इसी तरह प्यालोंमें बन्द करके उडाते हैं।

अर्कानलेश्वररस

माक्षीकरकनकौ गन्धं भ्रामयित्वा विचूर्णयेत्।
रसं गन्धाद् द्विभागं च सिकतायन्त्रगं पचेत्॥
दिनमेवं च तारं वा जरारोगहरं महत्।
रसेन पिष्ट्वा स्वर्णं वा ताप्यं पश्चाद्विमिश्रयेत्॥
ताप्यस्थाने मृतं तालं तारकर्मणि कस्यचित्।
रससङ्ख्यान् गुटान् दद्याद्वन्ध्ये वा वीर्यवृद्धये॥

योगमहार्णव।

अर्थ—जितना सुवर्ण हो उतना ही सुवर्ण माक्षिक और बलि लेवे। और बलिसे द्विगुण पारद ले। विधि—प्रथम सुवर्णको गलावे जब सुवर्ण गल जाय उसमें सुवर्ण माक्षिक पीसकर डाल दे और उसे मिलाकर उतार ले सुवर्ण कूटने पीसनेके योग्य होजाता है। फिर पारद बलिकी कज्जली कर उसमे सुवर्ण मिलाकर कांचकूपीमें चढाकर एक दिन बालुका यन्त्रमें पकावे।

ग्रन्थकार कहता है इस योगमें सुवर्णके स्थान पर चांदीभी डाल सकते हैं और सुवर्ण या चांदीको विना गलाये उसके पत्र बनाकर भी प्रथम पारदमें मिलाकर फिर बलि डालकर कज्जली बनाकर पुनः सुवर्ण माक्षिक चूर्ण देकर शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमें उसीतरह पका सकते हैं। आगे ग्रन्थकार कहता है कि जब सुवर्ण के स्थानपर चांदी डाली गई हो, तो सुवर्ण माक्षिकके स्थानपर हरताल डालें, यह रस जरा और व्याधिको दूर करने वाला है।

सम्मति—यह रसभी चन्द्रोदयका ही एक भेद है। और जब हरताल डालकर बनाया जाय तो मल्लसिन्दूरका एक भेद बन जाता है।

अर्धनारीनटेश्वररस

पारदं गन्धकं बङ्गं तथा तीक्ष्णं च हिंगुलम्।
शुल्वभस्मं च माक्षीकं नेपालं चोत्तरोत्तरम्॥
वह्निमूलरसेनैव मत्स्यपित्तेन भावयेत्।
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य बालुकायन्त्रपाचितम्॥
तदा नेपालबीजानि पक्वेऽस्मिन् निःक्षिपेद्बुधः।
पूर्वोक्तेन रसेनैव मर्दयेच्च दिनत्रयम्॥
नित्यं शुभकरं ह्येतद् बल्लमात्रं तु दापयेत।
आजेन पार्श्वक्षीरेण शृङ्गबेररसेन च॥
यत्पार्श्वात्पीयते क्षीरं तत्पार्श्वज्वरनाशनम्॥

रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—पारद, वलि, वंगभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, सिंगरफ, ताम्रभस्म, सुवर्ण माक्षिकभस्म इन सबको क्रमसे एक एक भाग वृद्धि करके ले, अर्थात् एक तोला पारद, दो तोले वलि, तीन तोले वंग आदि। इन सबको चित्रकके काढेमे तथा ताजे रेहू मछलीके पित्तेकी एक एक भावना देकर कांचकूपीमें चढाकर ६ घण्टे २००° शतांशकी अग्निपर रखकर पकालें। पश्चात् निकाल कर इसमें शुद्ध जैपाल पारदसे आठ गुना मिलाकर खरल के पश्चात् चित्रकमूल क्वाथ तथा रेहू मछलीके पित्तेमें तीन दिन खरल करके रखलें। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—ज्वरको उतारनेमें इसका उपयोग करना लाभदायक कहा है।

अनुपान—ग्रन्थकार कहता है कि बकरीके एक थनसे दूध निकाल कर उस दूधसे यह रस दिया जाय तो जिस भागके स्तनका दूध होगा, शरीरके उसी आधे अङ्गका ज्वर उतर जायगा, यदि समस्त शरीरका ज्वर उतारना अभीष्ट हो तो इसे अद्रक रसके साथ देना चाहिये।

पाठभेद—यही योग रसपद्धतिमें भी आया है किन्तु वहां वङ्गके स्थान पर मीठा तेलिया है। और वहां पर तीक्ष्णलोह, मीठातेलिया, पारद, ताम्र, सिंगरफ, वलि और माक्षिक इनका भाग क्रमवृद्धिसे लिया है बाकी विधान सब एकसा है। यह ग्रन्थकार कहता है कि यदि बकरीके दोनों थनोंका दूध पिया जाय तो सर्वाङ्ग शरीरका ज्वर उतर जाता है।

सम्मति—हमने यह योग नहीं बनाया है तथापि इतनी बात समझमें आती है कि इस योगमे वगके स्थानपर मीठातेलिया डालना ठीक है। प्रमाद से पाठमे शृङ्गीके स्थानपर वंग होगया है। यह रस तललग्न बनता है, और जैपाल इसमे एक तिहाईके लगभग पड़ जाता है, रेचक योग है उदर मलोद्भव ज्वरको अवश्य उतार देता होगा।

कुछ रसोंमे ऐसी शक्तिभी है कि मस्तिष्कके उत्तापोत्पादक केन्द्रके विचलनको ठीक कर देते हैं, इससे शरीरके उत्तापकी मात्रा नार्मल होजाती है, हो सकता है कि इस रसका प्रभाव उक्त केन्द्र पर होता हो।

अष्टावक्ररस

रसराजस्य भागैकं द्विभागं गन्धकस्य च ।
भागमेकं सुवर्णस्य भागार्द्धं रजतस्य च ॥
नागं ताम्रं खर्परं च वङ्गं चैव निरुत्थितम् ।
प्रत्येकं रजतार्द्धंच सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥
वटाङ्कुररसै र्यामं यामं कन्यारसै सह ।
कूपीमध्ये च संस्थाप्य त्रिदिनं पाचयेत्सुधीः ॥
दाडिमीकुसुमप्रख्यं जायते ह्यविकल्पतः ।
वलीपलितविध्वंसि बलपुष्टिकरं महत् ॥
आरोग्यजननं मेधा कान्तिकृच्छुक्रवर्धनम् ।
महौषधवरं चैतदष्टावक्रेण निर्मितम् ॥

भैषज्य रत्नावली ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग, सुवर्ण १ भाग, रजत आधा भाग सीसाभस्म, ताम्रभस्म, खर्परभस्म, बंगभस्म, प्रत्येक पारदसे चौथाई भाग लें, सबको खरलमे डालकर एक प्रहर वटांकुर रसमें, एक प्रहर घीकुंवार रसमे खरल करके सुखालें। पश्चात् कांचकूपीमे भरकर बालुकायन्त्रमे चढाकर तीन दिन पकावें तो यह लालवर्णका रस तय्यार होता है। मात्रा—१-२ रत्ती।

गुण—रसायन है, बाजीकर है, मेधा, कान्ति बलबर्द्धक व वलीपलित नाशक है। यह अष्टावक्र द्वारा निर्मित रस है।

सम्मति—इस रसको भी २२५ शतांशसे २५० शतांशके मध्य अग्नि लगनी चाहिये, तभी यह रस तललग्न बन सकता है।

उदयभास्कररस

धान्याभ्रं सूतकं गन्धं श्वेतापामार्गजद्रवैः ।
तुल्यांशं मर्दयेच्चाह्नियन्त्रे लावणाके पचेत् ॥

ऊर्द्ध्वेलग्नस्तु सङ्ग्राह्यः रसोह्युदयभास्करः।
श्वासं पञ्चविधं हन्ति द्विगुञ्जमनुपानतः॥
निष्कैकां लेहयेच्चानु क्षौद्रेण कटुरोहिणीम्॥

निघण्टु रत्नाकर।

अर्थ—धान्याभ्रक, पारद और बलि तीनों बराबर लेकर अपामार्गके रसमे एक दिन खरल करके सुखालें, फिर एक प्यालेमे पीसा हुआ नमक बिछाकर उसपर उक्त वस्तुओंका चूर्ण बिछा दें, फिर उसपर नमक इतना डालें कि वह ढक जाय इसे खूब दबा दें फिर इसपर दूसरा प्याला रखकर दृढ बन्द करके इसे बालुका यन्त्रमे रखकर इतनी बालू भरें कि दो प्यालोंके सन्धि स्थान तक बालू भर जाय, इसे चूल्हे पर चढ़ाकर १५०° शतांशकी अग्निपर ६-७ घण्टे पकालें तो ऊपरके प्यालेमे सफेद वर्णकी पपड़ी आकर लगेगी उसे उस पात्रसे खुरच लें इस यन्त्रका नाम लवणयन्त्र है और इस रसका नाम ग्रन्थकारोंने उदयभास्कर दिया है। मात्रा—२ रत्ती तक।

अनुपान—कुटकी चूर्ण शहद।

गुण—प्रत्येक श्वास रोगमे देवें।

सम्मति—यह रसभी वास्तवमे रसकपूर बनता है। पारद, बलि और अभ्रक यह तीनोंको जब नमकके भीतर रखकर उत्ताप दिया जाता है तो अभ्रकमें विद्यमान यौगिक उत्प्रेरकका काम करते है इससे बलि सैंधवजम् धातुके परमाणुओंसे मिलकर बलिकाइदमें परिणत होजाता है, उधर लवणजन वायु जो सैंधजमूसे उन्मुक्त होता है, वह पारदसे मिलकर लवणाइदमे परिणत होकर उड़ने लगता है, यही पपड़ी रूपमें ऊपर जाकर जमता है। जिसको हम रासायनिक विश्लेषण न कर सकनेके कारण भिन्न वस्तु समझते चले आये है। इसकी रासायनिक जांच हमने कराई है वह रसकपूर ही होता है, किन्तु इस मे कुछ यौगिक दारन्किना का भी होता है। ऐसा एक दूसरे विश्लेषण कर्ताने परीक्षा कर बतलाया है यह रस उपदंश फिरङ्ग रोगमें पूरा लाभ करता है।

उपदंश दावानल रस

दरदतालकमल्लमनश्शिलाः रसविधुं विषदं शिखितुत्थकम् ।
सममिदं सकलं सुरया समं नवशरावयुगोद्धृतपाचितम् ॥
मुनिमितैश्चकृतै रसपातनैः रसवरो विधुचन्द्रिकया समः ।
युवतिदुष्टसमागमसम्भवान् हरति सोमसमो विधिसेवितः ॥

नूतन कल्पसंग्रह ।

अर्थ—सिंगरफ, हरताल, सोमल, मैनसिल, रसकपूर, दारचिकना, और नीलाथोथा सब बराबर लेकर खरलमें डाल मद्य या रेक्टीफाइडस्प्रिटमें ७ दिन खरल करके सुखाले फिर एक प्यालीमें पीसा नमक बिछाकर उसपर उक्त चीजोंका चूर्ण बिछादे फिर उसपर नमक और बिछाकर सम्पुटमें दृढ़ बन्द करके अर्ध बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर १५०° शतांशके उत्ताप पर ७-८ घण्टे पाक करे तो ऊपरके शरावमें उड़कर उक्त रस लग जाता है । इसे प्याले से खुरचकर संभाल रखे । मात्रा १ रत्ती ।

अनुपान—दवाई मलाई, मक्खन, हलुवाके बीचमें लपेटकर निगल जाय, मुंहको नहीं लगना चाहिये । ग्रन्थकार कहता है कि फिरङ्ग रोग ग्रसित स्त्रीके समागमसे उत्पन्न भयङ्कर उपदंश रोगको यह रस नष्ट कर देता है ।

सम्मति—यह रसभी रसकपूर और दारचिकनाका यौगिक है जिसमे सोमलभी मिला हुआ होता है, किन्तु वह यौगिक रूपमे नहीं सम्मेलन रूपमें होता है । यह योग आधुनिक समयके समस्त फिरङ्ग नाशक योगोंमे उत्तम योग है, इसके सेवनसे शरीरको व रक्तको विकृत करने वाला पुराना फिरङ्ग दोष नष्ट होजाता है । इस रसमे सोमलके कुछ अंशके मिश्रणसे इसके गुणोंमे विशेष वृद्धि होजाती है, और यह रस एलोपैथीके सलवरसान, न्यूसलवरसान नामक सूची वेध औषधसे कम लाभदायी नहीं है । इस योगके भी अनेक नाम हैं । इस रसके तललग्न भागके नमकको हटाकर उसको एकत्र करले, और इसे पुनर्नवाके क्वाथ तथा काष्ठोदुम्बरिका छालके क्वाथमे तीन-तीन

भावना देकर इसकी २ रत्तीकी गोली बनालें। इसको काष्ठोदुम्बरिका (जङ्गली अञ्जीर) की छालके क्वाथसे या पुनर्नवाके क्वाथसे एक-एक गोली ११ दिन नित्य सेवन करानेसे पुरानीसे पुरानी कण्ठमालामें लाभ होता है, यह गोलियां अच्छी बलवर्द्धक व पुंसत्व शक्तिदायक है।

कनकगिरिरस

स्वर्णं कर्षमितं द्विसूतसहितो गन्धोऽपि कर्षाष्टकः,
तावल्लोहभुजङ्गमाभ्रकलवाः सम्मर्दयेद्वासरम्।
पात्रेतत्सिकताख्यकेप्रतिरसं कुम्भीभपर्णी वचा-
चव्यग्रन्थिकशिग्रुकृष्णासुरसान्याग्र्यश्वगन्धाग्निभिः॥

गन्धाहिमारफलपूरबलाकुमारी,
तोयैःपृथङ्नखदशाग्निरसाग्निविश्वैः।
त्रित्रिद्विपञ्चनवसप्तगुणात्रिभिश्च,
पूर्वाभिधं सुपच मासमितं यथावत्॥

पश्चात्पुटं गृहकुमारिरसेन देयं,
कुम्भाभिधं भवति हेमगिरिः सुसिद्धः।
मापोन्मितो जयति पायुगदानशेषां-
स्तार्क्ष्यो यथाभुजगसङ्घमपाकरोति॥

हन्त्यग्निमान्द्यगलगण्डक्रमिप्रमेह-
मेहोऽरुचिश्वसनकासहृदामयांश्च।
उन्मादकण्ठगदमुष्कगुदाक्षयोनि-
वक्त्रश्रवोभवगदान् वनितागदांश्च॥

क्षुद्ररोगांश्च निखिलान् गण्डमालार्बुदापचीः।
नाशयत्येष सूतेन्द्रः स्वानुपानैर्नियोजितः॥ रसावतार द्वितीय।

अर्थ—सुवर्ण १ तोला, पारद २ तोला, लोहचूर्ण, सीसाचूर्ण धान्याभ्रक प्रत्येक तोला तोला बलि ८ तोला प्रथम सुवर्णको पारदमे मिलालें फिर उसमे

सीसाचूर्ण डालकर इतना खरल करें कि एक जान होजाय फिर उसमे लोहचूर्ण, अभ्रक और वलि डालकर थोड़ासा कुमारीरस देकर खरल करता रहे, खरल करनेपर यह रस उत्तप्त हो उठेगा जब यह शीतल होजाय, तब सबको एकत्र कर के किसी कांचके या चीनीके प्यालेमे भरकर रखदे, अगले दिन उसपर कुम्भी-खुम्भी—(कुकर मुत्ता या छतरीकी जातिकी वनस्पति) जो पञ्जाबमे खुम्भि के नामसे प्रसिद्ध है इसीकी दूसरी जाति को जिसे ढींगरी भी कहते है—उसके क्वाथका जल उस पात्रमे इतना डालें कि वह औषध तर होजाय फिर इसको सूखने देना चाहिये। जब यह सूख जाय तो फिर इसी कुम्भीका क्वाथ करके और डालदे। इसतरह २० भावना इसके रसकी, १० हस्तिकर्णपलाश क्वाथकी, ३ वचक्वाथकी, ६ चव्यक्वाथकी, ३ पीपरामूल क्वाथकी, १३ सोभाञ्जन त्वक् क्वाथकी, ३ श्यामा तुलसीरसकी, ३ कंटकारी क्वाथकी, २ अश्वगन्धाक्वाथकी, ५ चित्रक क्वाथकी, ६ प्रियंगू क्वाथकी, ७ कनैर क्वाथकी, ३ बिजौराछाल क्वाथकी, ३ बला क्वाथकी, ३ घीकुंवार रसकी दे। कुछ वैद्योंकी सम्मति है कि उक्त क्वाथ रसोंकी भावनायें खरल करते हुए देनी चाहिये।

जब यह रस सूखकर चूर्ण रूप होजाय तो इसको चाहे कांचकूपीमे या दो प्यालोंके सम्पुटमे बन्द करके बालुका यन्त्रमे रखकर १५० शतांशके उत्ताप पर एक मास तक रखें, पश्चात् निकालकर फिर कुमारीरसकी एक भावना देकर इसका गोला बनालें और उसे फिर सम्पुटमें बन्द करके कुम्भपुटमे रख कर मंद अग्नि पर पकालें तो यह कनकगिरि नामसे रस बनता है।

मात्रा—इस रसकी १ माशेकी ग्रन्थकार कहता है।

गुण—यह रस समस्त गुदाके रोग अर्श, भगन्दर आदिको उसी तरह नष्ट करता है जैसे गरुड़ सर्प समूहको। इससे भिन्न यह रस अग्निमान्द्य, गलगण्ड, वमन, प्रमेह, बहुमूत्र, अरुचि, श्वास, खांसी, हृदयरोग, उन्माद, कर्ण रोग, अण्डकोष, रोग ग्रन्थीरोग, नेत्ररोग, योनिरोग, मुखरोग, कण्ठरोग, कण्ठमाला स्त्रियोंके रोग, क्षुद्ररोग, अर्बुद, अपची इत्यादि अनेक रोगोंमे लाभदायक है।

सम्मति—यह रस बनते समय प्रथम स्वयम् अग्नि रसमें परिणत होता है अर्थात् लोहादि कुछ तत्त्व बलिकाइद मे परिणत होते है। इस परिवर्तन कालमे बहुत कुछ रासायनिक परिवर्तन होता है, इसके पश्चात् इसे जब कूपीमे या सम्पुटमे बन्द करके अग्निपर पकाते हैं तो वहां वह सारे लोह ठीक २ बलिकाइद मे परिणत होजाते हैं। किन्तु उक्त परिवर्तनके पश्चात् उस रसपर उत्तापका प्रभाव अधिक नहीं होने देना चाहिये, वह यौगिक वहीं पड़े हुए उत्ताप सहन करते रहें। सम्भव है ऐसे समय उनकी गठन या आन्तरिक स्थितिमे कुछ सूक्ष्म फेरफार होता हो। एक मास तक अग्नि देकर निकाल लेनेपर पुनः दूसरीवार कुमारीरसमे खरल करके कुम्भ पुटमे पाक करनेकी विधिका जो रहस्य है वह ठीक तौर पर समझमे नहीं आया, क्योंकि 'कुम्भाभिध' शब्द का अर्थ अग्नि द्वारा पाक नहीं होना चाहिये। मेरी तो समझमे यह आता है कि इस रसको किसी पात्रमे डालकर उसपर कुमारीरस डालदे और उसे पड़ा पड़ा सूखने दे, यह कुम्भपुटका अर्थ है।

कनकसिन्दूररस

रसगन्धकनागाश्च रसको माक्षिकाभ्रके।
कान्तविद्रुममुक्तानां वङ्गभस्म च तारकम्॥
भस्म कृत्वा प्रयत्नेन प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
सर्वतुल्यं शुद्धहेम भस्म कृत्वा प्रयोजयेत॥
मर्दयेत् त्रिदिनं सर्वं हंसपादीरसैर्भिषक्।
ततो वै गोलकान् कृत्वा काचकूप्यां विनिःक्षिपेत्॥
रुद्ध्वा तत्काचकूपीं च सप्तवस्त्रैश्च वेष्टिताम।
ततो वै सिकतायन्त्रे त्रिदिनं चोक्तवह्निना॥
पचेत्तं स्वाङ्गशीतं च पूर्वोक्तरसमर्दितम्।
विनिःक्षिप्य करण्डेऽथ सम्पूज्य रसराजकम्॥

महाकनकसिन्दूरो राजयक्ष्महरः परः ।
पाण्डुरोगं श्वासकासौ कामलाग्रहणीगदान् ॥
कृमिशोफोदरावर्तगुल्ममेहगुदाङ्कुरान् ।
मन्दाग्निं छर्दिमरुचिमामशूलहलीमकान् ॥
ज्वरान् द्वन्द्वादिकान्सर्वान् सन्निपातांस्त्रयोदश ।
पित्तरोगमपस्मारं वातरोगान्विशेषतः ॥
रक्तपित्तप्रमेहांश्च स्त्रीणां रक्तस्रवांस्तथा ।
विंशतिं श्लेष्मरोगांश्च मूत्ररोगान्निहन्त्यसौ ॥
हेमवर्णश्च बल्यश्चायुष्यः शुक्रविवर्धनः ।
महाकनकसिन्दूरः काश्यपेन विनिर्मितः ॥ योगरत्नाकर ।

अर्थ—पारद, बलि, सीसाभस्म, खपरियाभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, प्रवालभस्म, मोतीभस्म, रजतभस्म और बंगभस्म सब समभाग और सुवर्णभस्म सबके बराबर सबको तीन दिन हंसराजके रसमे खरल करके गोला बनाकर सुखावे, पश्चात् आतशी शीशीमे भरकर या सम्पुट मे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर २५०° शतांशके भीतर उत्तापकी मात्रा लगातार देता रहे, तीन दिन अग्नि देकर शीतलकर निकाल ले ।

मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—राजयक्ष्मा, पाण्डु, श्वास, कास, कामला, संग्रहणी, कृमि, शोथ, उदावर्त, गुल्म, प्रमेह, अर्श, मन्दाग्नि, वमन, अरुचि, आमशूल, हलीमक, ज्वर, पित्तरोग, अपस्मार, वातरोग, रक्तपित्त, प्रदररोग, श्लेष्मरोग, मूत्ररोग आदि मे लाभदायक है, यह तललग्नरस बनता है ।

कफविध्वंसरस

विशुद्धं रसं तालकं ताम्रभस्म पृथग्भागमेकं सुगन्धं त्रिभागम् ।
विनिःक्षिप्य खल्वे दिनैकं सुसम्यक् पृथङ्मर्दयेत्कारवल्लीरसेन ॥

ततोगोलकांश्शोषयित्वा हि कूप्यां निरुध्याननं वस्त्रमृत्स्नां विलिप्य
पचेद्वालुकायन्त्रमध्ये त्रियामं रसेन्द्रेण तुल्यं मरीचं नियोज्यम् ॥
विषं चाष्टमांशं दिनं भृङ्गनीरैर्दिनं मर्दयेच्छ्लेष्मविध्वंसनोऽयम् ।
कफे श्वासकासे तथा वातरोगे सशूले विसूच्यग्निमान्द्ये ज्वरेषु ॥
तथारोगराजे ग्रहण्यादिरोगे विशेषानुपानेन देयोद्विगुञ्जः ॥

रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद, हरताल, ताम्रभस्म सब बराबर और सबके बराबर बलि मिलाकर करेलेके पत्तोंके रसमे एक दिन खरल करके गोलियां बनावे और सूखनेको रखदे, पश्चात् काचकूपीमे बन्द करके बालुका यन्त्रमे रखकर ३ दिन २५०° शतांशके भीतर के उत्ताप पर पकावे, पश्चात् निकालकर काली मिर्चे बराबर और आठवां $\frac{1}{8}$ भाग मीठातेलिया मिलाकर भांगरेके रसकी एक भावना देकर सुखा रखे। मात्रा—२ रत्ती तक देवे।

गुण—यह कफरोग, श्वास, खांसी, वातरोग, विशूचिका, अग्निमान्द्य, ज्वर, राजयक्ष्मा और संग्रहणीमे लाभप्रद है।

सम्मति—यह भी तललग्नरस है। इस रसमे भी यौगिकसे अधिक बलि है जो इसीतरह उसमें बना रहता है।

कल्पतरुरस

मृतसुवर्णकराजतभास्करं रसकगन्धकतालकमाक्षिकम् ।
शिखि मयूरशिलादरदं विषं मृतरसं मृतलोहरजः समम् ॥
शिखिरसेन दिनं परिमर्दय तदनु चार्कदलैः सुरसाद्रवैः ।
त्रिकटुभृङ्गजलैस्त्रिफलाजलैः सरसकान्तमये क्षिपभाजने ॥
विमलकाचमये क्षिपसम्पुटे रसनमृत्तिकया परिवेष्टितम् ।
सलवणेऽथघटे क्षिप भाजने तदनुगन्धसमं परिमर्दयेत् ॥
अमृतमत्रकलाप्रमितं क्षिपेत् तदनुपित्तगणैः परिभावयेत् ।

बृहतिकात्रिफलाग्निकुमारिका दलजलैरनुमालतिकाफलैः ॥
मनुजतापहरो गदतापहा भवति कल्पतरुः क्षितिमण्डले ।
मधुकणासहितः क्षयरोगहा श्वयथुपाण्डुगदे जयपालकैः ॥
त्रिकटुकार्द्रयुतैः सुरसान्वितैः मधुफलत्रितयेन च कासहा ।
अनिलपित्तकफोल्बणिताञ्जयेत् त्रिकटुकार्द्ररसोनकषायतः ॥
घृतमरीचयुतोऽप्यनिलं जयेद् बलकरः शुभपुष्टिविवर्धनः ।
घृतमरीचकपर्दकभस्मना रसवरः परिणामजशूलहा ॥
मधुविडङ्गयुतः कृमिशूलहा मधुपलाशजबीजयुतोऽथवा ।
धवलकासहरोऽश्मरिरोगहा वरुणनिम्बपुनर्नविकारसैः ॥
कुटिलनागविलीनममुं रसं रुधिरकुष्ठगदेषु च योजयेत् ।
त्रिकटुनिम्बफलत्रितयान्वितो निखिलमेहविनाशकरो रसः ॥
पुरगुडत्रिफलासहितोऽर्शसां प्रशमनः कटुवह्नियुतोऽथवा ।
ग्रहणिकालरसोऽयमजाजिकामधुयुतस्त्वथवा विजयान्वितः ॥
मधुफलत्रितयेन कफज्वरे त्रिकटुकार्द्रयुतस्त्वनिलज्वरे ।
मधुकणासहितस्तु खरेज्वरे त्रिकटुयुक्तमजाजिकया युतम् ॥
अखिलरोगजये रससेवकः भवति नैव पराभवसेवकः ॥

रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—सुवर्णभस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, खर्परभस्म, बलि हरताल पत्राख्य, माक्षिकभस्म, तुत्थभस्म, जंगार, मैनसिल, सिंगरफ, सोमल, रससिन्दूर और लोहभस्म सब बराबर लेकर चित्रकक्काथ, आकके पत्तोंका रस, तुलसीरस,-त्रिकटुक्काथ, भांगरारस और त्रिफला क्काथमे एक-एक भावना देवे । ग्रन्थकार कहता है कि इसे कान्तलोहके पात्रमे भरकर फिर उस पात्रको काचकूपीमे रख कर उस शीशीका मुंह बन्द करके लवण यन्त्रमें अग्नि दे । कान्तलोह के पात्रमे यदि उक्त समस्त वस्तुओंको भरकर फिर शीशीमें रखें तो कांच शीशीका इतना मुंह खुला हुआ नहीं होता, कि कान्तलोह पात्र उसमे आजाय, यदि इसे लोह

सम्पुटमें बन्द किया जाय तो उसे रखने के लिए मिट्टीका पात्र या दूसरा लोह पात्र लेना चाहिये फिर उसे अच्छी तरह बन्द कर सिकता यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी अग्नि देकर निकाल ले। फिर इसके बराबर बलि तथा सोलहवां भाग मीठातेलिया मिलाकर खरलमे डाल निम्नलिखित वस्तुओंकी एक-एक भावना देवे—पञ्चपित्त, कटेलीक्वाथ, त्रिफलाक्वाथ, चित्रकक्वाथ, कुमारीरस और मालतीफूल रस, इनके रस सूख जाने पर औषधको पीसकर रखले। इस रसकी मात्रा कोई दी नहीं गई।

मात्रा—इसकी एक रत्तीसे कम होनी चाहिये $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ रत्ती तक।

अनुपान और गुण—शहद पीपलके साथ क्षयमें, जयपालबीज चूर्णके साथ शोथ, जलोदरमे, त्रिकटु अद्रक या तुलसी शहदके साथ खांसी, श्वासमे, लहसुन, त्रिकटु अद्रकरससे वातपित्तादि रोगमे, घृत मिर्चसे वातरोगमे, मिर्च कौडीभस्मके साथ परिणाम शूलमे, विडगचूर्ण शहदसे या मधु पलाशबीजचूर्ण से कृमिरोगमे, वरुणाक्वाथसे अश्मरीरोगमे, निम्ब पुनर्णवारससे काली खांसीमे, तगर त्रिकटु, निम्बफलमज्जा, त्रिफलाके साथ कुष्ठमें, प्रमेहमें गुग्गुल गुड़ या त्रिकटु चित्रकके क्वाथसे जीराके क्वाथसे या विजया मधुके साथ, बवासीरमे, त्रिफला मधुके साथ कफज्वरमे, त्रिकटु अद्रकरससे वातज्वरमे, शहद पीपलके साथ तीव्र ज्वरमे और त्रिकटु जीरासे प्रायः अनेक रोगोंको दूर करनेके लिये इस रसको देवे।

कल्याणभैरवरस

रसो विषा विषं गन्धो नागं वङ्गं कणां समम्।
दिनैकं चित्रकद्रावे मर्दितं गुलिकीकृतम्॥
वज्रमूषागतं पाच्यं वालुकायन्त्रके दिनम्।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य मत्स्यपित्तेन भावितम्॥
चणमात्रं प्रदातव्यं कार्णिकं हन्ति तत्क्षणात्।

क्षीरान्नं शर्करायुक्तं पथ्यं दद्यात्प्रयत्नतः ॥
भक्षयेदिक्षुखण्डानि रसः कल्याणभैरवः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, सोमल, मीठातेलिया, बलि, सीसाभस्म, बंगभस्म और पीपल सब बराबर इनको एक दिन चित्रकमूल क्वाथमें खरल करके सुखाले फिर दृढ सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमें रखकर एक दिन २५०° शतांशकी अग्नि देवे तो यह रस सिद्ध होजाता है। इसे निकालकर रेहू मछलीके पित्तेके द्रवकी एक भावना देकर चनेके बराबर गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

गुण—ग्रन्थकार कहता है कि जिस न्यूमोनिया (सन्निपात) में कर्ण मूलग्रन्थि शोथ होजाता है उसको इसके सेवनसे तत्क्षण लाभ होता है।

पथ्य—दूध भात दे, यदि उष्णता अधिक हो तो शर्बत पिलावे, यह रसभी तललग्न बनता है, इसलिये तीव्र अग्नि नहीं देनी चाहिये।

कस्तूरीरस

लोहरजोगिरिजारज ईशरजोमृगजरेणवो वृद्धाः।
क्रमतः खल्वेपिष्टाः कणाद्भिर्भाविता दिवसम् ॥
कृत्वा गोलममीषां शुष्कं यन्त्रे प्रवेश्य कच्छपके।
कृतमुद्रं मृल्लिप्तं सिकतायन्त्रे पचेत्त्रिदिनम् ॥
मन्दाग्निना सुशीताद्यन्त्रादुद्धृत्यमेलयेन्मृगजैः।
षोडशमगधामधुभिरनुपानं सर्वरोगेषु ॥
कस्तूरीरससंज्ञो जरारुजां नाशनोऽलवणभुजाम्।
अतिवृष्यो वाजीकृत् क्षुद्बोधी कामिनीवशकृत् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—लोहचूर्ण १ भाग, बलि २ भाग, पारद ३ भाग, कस्तूरी ४भाग प्रथम पारद बलिकी कज्जली बनाकर पुनः उसमें लोहणचूर्ण मिलाकर पिप्पली

के क्वाथमें एक दिन भावित करे, पुनः सम्पुटमें वन्द करके वालुका यन्त्रमें रखकर तीन दिन तक उसे २००-२२५° शतांशका वरावर उत्ताप देता रहे, पुनः निकालकर खरलमें डालकर और कस्तूरी मिलाकर उसमें एक-एक पीपल डालकर घुटाई करता रहे, इसी प्रकार उसमें १६ पीपल डालकर खरल करके रखले। मात्रा—३ रत्ती तक देना चाहिये।

गुण—यह वहुत ही क्षुधावर्द्धक रस है, इसके सेवनसे खूब पौष्टिक भोजन हज़्म होजाते हैं।

सम्मति—यह अत्यन्त वृष्य व वाजीकर है। तललग्न वनता है।

कान्तसिन्दूररस

चुम्बकलोहं शकलीकृत्याऽजारक्तेन संयोज्य मृन्मयपात्रे निक्षिप्य सप्तकर्पटमृत्तिका दत्त्वैकविंशतिदिनपर्यन्तं भूगर्ते स्थापनीयम्। एतत्पञ्चपलमितं गृहीत्वा गन्धकाऽयश्चूर्णपारदान् पञ्चपञ्च पलिकान् खल्वे निक्षिप्य जम्बीररसेन यामचतुष्टयं मर्दयित्वा शुष्कां चक्रिकां क्षुद्रमृन्मयपात्रेऽवरुद्ध्याष्टयामपर्यन्तं गाढाग्निना विपचेत्। एतत्तण्डुलमात्रतो गुञ्जापर्यन्तं रोगवलावलं निरीक्ष्योपयोज्यम्। अजाक्षीरेण सेवितश्चेद्धृद्‌द्यज्वलनसंग्रहणीकामलापाण्डुश्वयथुवातमेहाश्निर्मूलीकरोति। रक्तवृद्धिर्भवति शरीरमयस्सदृशञ्च। मुद्गाः, सूरणं, तुवरी, पटोलं, शिग्रुशिम्बी, भिण्डिका, मेथिकापात्रं शरहञ्चिका, औदुम्बरफलानि, गोघृतक्षीरतक्राणि, शुष्कमामलकलेहञ्च पथ्यम्। तिन्तिडी, मारकवस्तूनि, स्त्रीस्पर्शनञ्च सुतरां वर्जनीयम्।

अगस्त्य प्रोक्त ग्रन्थे।

अर्थ—प्रथम चुम्बक लोहका चूर्ण वनाकर उसको एक मिट्टीकी छोटी हाण्डीमें डालकर उसपर वकरीका रक्त इतना डाले कि वह डूव जाय फिर उसको दृढ वन्द करके भूमिमें दवा दे, २१ दिनके वाद उसे निकालकर उसमें

से जितना वह लोहचूर्ण हो उतना ही उसमें पारद और उतना ही बलि मिलाकर खरलमें डाल एक दिन जम्बीरी निम्बूके रसमें खरल करके टिकियां बनाले, इन टिकियोंको एक प्यालेमें रखकर दूसरे प्यालेसे ढंककर दृढ सम्पुटमे बन्द करनेके पश्चात् इसको बालुका यन्त्रमे रखकर एक अहोरात्रि २५०° शतांश की अग्नि पर रखकर पकावे तो यह लाल वर्णका रस तय्यार होता है।

सम्मति—इसमे बलिकी मात्रा लोह, पारद, यौगिकके तुल्य डाली जाय तो यह बहुत अच्छा तललग्न रक्तवर्ण रस बनता है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—अम्लपित्त, संग्रहणी, कामला, पाण्डु, शोथ, प्रमेह और वातरोग मे लाभदायक है अच्छा रक्तवर्द्धक है।

अनुपान—इसे गोदुग्ध, अजादुग्ध या तक्र, दधिके साथ सेवन करना चाहिये।

कान्त वल्लभरस

कान्तं षोडशभागं च लोहंचैव चतुर्दश।
किट्टं द्वादशभागञ्च दशभागं तु टङ्कणम्॥
मनः शिलामष्टभागां षड्भाग च शिलाजतु।
सर्वेण च समं सूतं गन्धकं चापि तत्समम्॥
अन्धमूषोदरे न्यस्य बालुकायन्त्रके क्षिपेत्।
पाचयेत्सप्तरात्रं तु संग्राह्यं सूक्ष्मचूर्णितम्॥
सेवितं मधुना युक्तं निष्कार्धेन समन्वितम्।
पाण्डुरोगं क्षयं गुल्मं ग्रहणीरोगनाशनम्॥
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां प्लीहोदरमरोचकम्।
मन्दाग्निं कुष्ठरोगं च मूलरोगं भगन्दरम्॥
वातशूलहरं वृष्यमत्यन्तमतिदीपनम्।
तुष्टिपुष्टिकरं कान्तिवर्धनं बलवर्धनम्॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

विउल-कवोल-कंति-भासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९
णरवर वाम-सह ...

कान्तवल्लभनामायं विष्णुना निर्मितः पुरा।
सर्वपाण्डौ क्षये चैव लोकस्यारोग्यकारणम् ॥

वैद्यचिन्तामणि।

अर्थ—कान्तलोहभस्म १६ भाग, लोहभस्म १४ भाग, मण्डूरभस्म १२ भाग, सुहागा १० भाग, मैनसिल ८ भाग, शिलाजीत ६ भाग, इन सबके बराबर पारद और इतना ही बलि डालकर खरल करके सम्पुटमे बन्द करके बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर सात दिन पर्यन्त वही २५०° शतांशके भीतर अग्नि दे, पश्चात् निकालकर चूर्ण करले। मात्रा—२ माशे तक बताई है।

अनुपान—शहदके साथ खाना चाहिये।

गुण—पाण्डु, क्षय, गुल्म, ग्रहणी, श्वास, कास, ज्वर, हिक्का, प्लीहा, उदर रोग, अरुचि, मन्दाग्नि, कुष्ठ, बवासीर और वातशूल इन सब रोगोंमें इसके सेवनसे लाभ होता है। यह भी तललग्नरस है।

कामदेवरस

नूतं गन्धं कान्तभस्मापि तुल्यं यामं नीरैः शाल्मलीसम्भवोत्थैः।
गोलं कृत्वा वेष्टयित्वाऽथमौषे राज्ये पक्त्वा काचकूप्यां निधाय ॥
भूकूष्माण्डं नागवल्लीश्च पिष्ट्वा तोयं दद्याद्रात्रिमेकां प्रयत्नात्।
सिद्धः सूतः कामदेवोऽस्य वल्लं मध्वाज्याभ्यां योजयेत्तत्रिसप्तम् ॥
खण्डं दुग्धं चानुपाने च दद्याद्रात्रौ दुग्धं शक्तिमानेन देयम्।
तिक्तं रूक्षं वर्जयित्वातिचाम्लं पेयं नित्यं शाल्मलीनीरयुक्तम् ॥
खण्डं धात्रीवानरीमूलदुग्धं पुष्टिर्वीर्यं जायते तत्प्रभूतम्।
कुर्यान्नित्यं रम्यकान्ताविनोदं कृत्वा दिव्यं कामदेवं रसेन्द्रम् ॥

रसदीपिका

अर्थ—कान्तलोह भस्मके बराबर पारद, बलि लेकर सेमल मूसलीके क्वाथमें एक दिन खरल करके फिर इसको कढ़ाईमे डालकर कुम्हड़ेके रस, पानके रसमें १-२ दिन खरल करे, पुनः इसका गोला बनाकर सम्पुटमें या कांचकूपीमें

भरकर एक अहोरात्रिकी मध्यम अग्नि पर पकावे, तो यह कामदेव नामक रस सिद्ध होता है। मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान—शहद या घृतके साथ देना चाहिये।

गुण—यह वीर्यवर्द्धक, रक्तवर्द्धक है, इसके सेवन समयमें खूब दुग्ध पीना चाहिये।

कामलाप्रणुत्रस

तीक्ष्णगन्धककान्ताभ्रशुल्वसूतकतालकम्।
देवदालीरसैः पिष्टं बालुकायन्त्रसाधितम्॥
अमृतोत्पलकल्हारकन्दद्राक्षासमन्वितम्।
पिष्टयष्ट्यम्भसा क्षौद्रसिताभ्यां कामलाप्रणुत्॥ रसचण्डांशु।

अर्थ—लोहभस्म, माक्षिकभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, रससिन्दूर और हरताल सब बराबर लेकर बन्दाली फलोंके काढेमे एक भावना देकर आतशी शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमें रखकर चार प्रहरकी मध्यम अग्नि दे, पश्चात् निकालकर गिलोय क्वाथ, लालकमल, सफेदकमलमूलरस और द्राक्षारसकी १-२ भावना देकर रखले। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—शहद या खांडके साथ देवे।

गुण—कामलामे लाभदायक है।

कामलासनरस

रसाभ्रगन्धकं लोहं ताम्रभस्म समं समम्।
मर्दितं निम्बुनीरेण त्रिदिनं गुलिकीकृतम्॥
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य विशोष्य वस्त्रमृत्तिकाम्।
बालुकायन्त्रके पाच्यं सांध्यमध्याद्यदुद्धृतम्॥
चूर्णीकृत्य ततः खल्वे ब्रीहिमात्रं प्रदापयेत्।
अनुपानविशेषेण सर्वदोषहरं परम्॥

लघु वैद्यचिन्तामणि।

कोऊहल-विरइया [१३०९-

-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९
णरवर वाम-सहस्सं ...

अर्थ—पारद, अभ्रकभस्म, बलि और ताम्रभस्म इन सबको बराबर लेकर निम्बूके रसमें तीन दिन खरल करके छोटी छोटी गोलियां बनाकर कांचकूपीमे बन्द करके बालुका यन्त्रमे ४ प्रहर २५०° शतांशकी अग्नि पर पकाले, इसको तललग्नरस कहते हैं। मात्रा—१ चावल लिखी है, अधिक देनेपर दाह करता है। यह अग्निकुमार चतुर्थ जैसा है, थोड़ासा ही अन्तर है। ग्रन्थकार कहता है कि भिन्न २ अनुपानसे समस्त रोगों पर चलता है।

कामनी काम भञ्जनरस

पलंपलं पारदगन्धकञ्च कर्षांशके संमृतहेमताम्रे ।
मृतं तथा तालपलार्धभागं मर्द्य तु पञ्चामृतके दिनैकं ॥
तद्घर्मशुष्कं च पुटान्तरस्थं पक्त्वा दिनैकं सिकताख्ययन्त्रे ।
पञ्चामृतेनाथ वटीं प्रकल्प्य कोलास्थिमाना निशि भक्षयित्वा ॥
वीर्याभिवृद्धिं कुरुते प्रकाशं बुद्धिं क्षुधां सञ्जनयेत्प्रकामम् ।
शतत्रयं गच्छति कामिनीनां महारसः कामविभञ्जनोऽयम् ॥

चिकित्सा रत्नाभरण ।

अर्थ—पारद ५ तोला, बलि ५ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, सुवर्णभस्म १ तोला, हरताल २½ तोला इन सबको पञ्चामृत (घृत, दुग्ध, दधि, मधु और शर्करा) मे एक दिन घोटकर सम्पुटमें बन्द कर बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर एक दिन मध्यम अग्निके उत्ताप पर पकावे, पश्चात् निकालकर पञ्चामृत में घोट एक माशेकी गोलियां बनाले। मात्रा—एक गोली।

अनुपान—दुग्धके साथ प्रयोग करे।

गुण—क्षुधावर्द्धक, वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक है।

कामेश्वरीरस

लोहार्धं मृतताम्रञ्च पारदं भागसप्तकम् ।
गन्धकं सर्वतुल्यांशं काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ॥

वालुकायन्त्रके पाच्यं यावद्द्वादशयामकम् ।
रसः कामेश्वरो नाम शम्भुना परिकीर्तितः ॥
गुञ्जापरिमितो देयो ह्यनुपानविशेषतः ।
स्त्रीणां शतसहस्रं तु रमयेन्नात्र संशयः ॥

रसरत्न मणिमाला ।

अर्थ—लोहचूर्ण १ तोला, ताम्रचूर्ण ६ माशे, पारद ७ तोला और बलि सबके बराबर खरल करके शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमे मध्यम अग्निपर रख १२ प्रहर पकावे । यह तललग्नरस बनेगा । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—यह रस वाजीकर है ।

कालाग्निरुद्ररस

त्रिक्षारं पञ्चलवणं शुद्धसूतं समं विषम् ।
सर्वं त्रिफलसारेणादिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥
पाचितं बालुकायन्त्रे दिनैकं वज्रमूषया ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य पञ्चपित्तैश्च भावयेत् ॥
फणिपित्तेऽथवा भाव्यं गुञ्जामात्रं प्रदापयेत् ।
सन्निपातान्हरेद्घोरान् दध्यन्नं पथ्यमाचरेत् ॥
नारिकेलोदकं दाहे त्विक्षुखण्डानि भक्षयेत् ।
कालाग्निरुद्रनामायमीश्वरेण प्रकल्पितः ॥

वैद्य चिन्तामणि ।

अर्थ—सज्जीखार, जवाखार, टंकण, नकमर्पाचो पारद और मीठा-तेलिया सब बराबर सबको त्रिफलाके काथमे तीन दिन खरल करके दृढ सम्पुट मे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर एक दिन मध्यम अग्निसे पकावे । पश्चात् निकालकर पञ्चपित्त या सर्पपित्तकी एक भावना देकर रखले । मात्रा–१ रत्ती ।

गुण—सन्निपातमे दे, दाह हो तो शर्बत पिलावे ।

पथ्य—दधि और भात ।

कोऊहल-विरइया [१२०९-

...-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
मम्मं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

सम्मति—इस रसमे बलि नहीं है न हरताल, मैनसिल आदि कोई अन्य बलि यौगिक है। हां लवणोंमे लवणाजन वायु है, किन्तु बिना बलिकी विद्यमानता के इसतरह लवणसे लावणाजन नहीं टूट सकता, फिर पारद किसके साथ संयुक्त होता है ? यह ज्ञात नहीं होता। जबतक पारद किसी यौगिकके रूपमे परिणत न हो, उपयोग करनेके योग्य नहीं होता। इसके रहस्यका पता रस निर्माण करनेपर ही लग सकता है।

कासहररस

तारपिष्टौ शिलां क्षिप्त्वा हरितालश्चतुर्गुणाम् ।
वासागोक्षुरसाराभ्यां मर्दितः प्रहरद्वयम् ॥
प्रस्विन्नो वालुकायन्त्रे गुञ्जाद्वितयसम्मितः ।
कासं त्रिकटुनिर्गुण्डीमूलचूर्णयुतो हरेत् ॥

रसचण्डांशु ।

अर्थ—पारद और रजतचूर्णको मिलाकर जम्बीर रसमें एक भावना दे, पश्चात् इस पिष्टीके बराबर मैनसिल और हरताल चौगुनी मिलाकर पुनः वांसा और गोखरूरसकी भावना देकर सुखाले, फिर सम्पुटमे बन्दकर वालुकायन्त्रमे रखकर मन्द अग्निपर २ प्रहर तक पकावे तो यह रस तय्यार होता है।

मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—संभालू मूलचूर्ण और त्रिकटुके साथ देवे।

गुण—हर एक खांसीमे लाभदायक है।

कुष्ठगजकेसरीरस

चत्वारः स्युः पृथग्भागाः शुद्धगन्धकसूतयोः ।
कालाख्याः शुद्धतालस्य मिलिता जिनसङ्ख्यकाः ॥
धत्तूरकरसेनैतांस्त्र्यहं खल्वे विमर्दयेत् ।
चक्रीं कृत्वा च तां शुष्कां स्थालीमध्ये निवेशयेत् ॥

अष्टभागेन ताम्रेण कर्तव्या च शराविका।
पूपायाश्चोपरिस्थाप्याऽधोमुखी सा शराविका॥
लवणं त्वश्मचूर्णश्च जलापिष्टं सुसूक्ष्मकम्।
तेन नीरन्ध्रयेत्सन्धिं स्थालीपात्र्योः समन्ततः॥
स्थालिका कण्ठकं यावद्भर्तव्या लवणेन च।
रक्तया च्छगणकानां वा शरावेण पिधाय च॥
वस्त्रमृत्तिकया पश्चात्सन्धिं नीरन्ध्रयेत्तयोः।
चुल्यामारोपयेद्यामं मृद्वग्निं ज्वालयेदधः॥
यामत्रयं हठाग्निश्च दद्यादुत्तारयेत्सुधीः।
स्वाङ्गशीतां ताम्रपात्रीं चक्रीमिश्रां च पेषयेत्॥
पुनराम्रास्थिनीरेण चक्री कार्योऽथ सुन्दरा।
कान्तलोहमये पात्रे घृताभ्यक्ते च तां क्षिपेत्॥
चुल्यां ताद्विन्यसेत्पात्रमाम्रास्थिजलपूरितम्।
अधःसञ्ज्वालयेदग्निं यावच्छुष्यति तज्जलम्॥
शुष्केशुष्के जले देयं पुनराम्रास्थिजं पयः।
इत्थं कृत्वा त्रिवेलश्च पात्रमुत्तारयेत्ततः॥
गृहीत्वा लोहपात्राच्च खल्वे सम्पेषयेच्च तत्।
निष्पन्नः कुष्ठनागानां केसरी नामतो रसः॥
अष्टभिस्त्रिफलावल्लैः समो वल्लो रसस्य च।
प्रातर्वैद्येन दातव्यः प्रत्यहं कुष्ठिनां सदा॥
श्वेतवर्जितकुष्ठानि हन्ति सप्तदश ध्रुवम्।

रसनक्कालीय।

अर्थ—पारद ४ भाग, बलि ४ भाग और हरताल १६ भाग सबको धतूरेके रसमे तीन दिन खरल करके टिकियां बनाले, फिर ताम्रकी बहुत पतली कटोरीमे भरकर और ताम्रके दूसरे ढकनेसे ढककर सम्पुट करके उस कटोरीको

कोऊहल-विरइया [१२०९-

विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

नादीमें रखकर चाहे उसने नमक भर दे, या उपल भस्म दवा-दवाकर भरदे, फिर उसको चूल्हे पर चढ़ाकर चार प्रहरकी मन्द मध्यम अग्नि दे, अन्तमे कुछ देर तीव्र अग्नि देकर शीतल होने दे। इसमे ताम्रकी कटोरी वलिके योगसे वलिकाइदमे परिणत होजाती है। जो ताम्र वलिकाइदमें परिणत होगया हो उसे भी चूर्ण करके उक्त रसमे मिला दे, इन सबको पीसकर एक कढाईमे डालकर उसमे आमकी गुठलीकी मींगीका क्काथ डालकर चूल्हेपर चढ़ादे, क्काथ कमसे कम ४ सेर हो—उसे फिर पकावे, जब वह क्काथ जल जाय और रसमात्र रह जाय तब उतारकर पीसकर संभाल करके रखले। मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान—२४ रत्ती त्रिफला चूर्णके साथ एक समय सेवन करावे।

गुण—स्वेतकुष्ठको छोड़कर और समस्त कुष्ठोंमें लाभ होता है।

कुष्ठाङ्कुशरस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं मर्दयेद्वाकुचीद्रवैः।
निर्गुण्ड्याश्च द्रवैश्चाहस्तद्गोलं शोपयेत्ततः॥
गोलतुल्ये ताम्रपात्रे हरिडकान्तर्निरोधयेत।
लेपयेल्लवणौ मृद्भिः शरावे तां निरोधयेत्॥
सिकतां पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा चुल्यां पचेल्लघु।
पञ्चयामैस्ततस्समुद्धृत्य चूर्णं तत्त्रिफलासमम्॥
त्रिफलांशं भृङ्गिचूर्णं सर्वतुल्या च वाकुची।
समं तत्र विचूर्णयार्थं संस्कारश्चात्र कथ्यते॥
वह्निं निम्बं राजवृक्षं करवीरं करञ्जकम्।
मूलकल्कसमं कृत्वा गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत॥
पादशेषं समुत्तार्य वस्त्रपूतं पुनः पचेत।
ताम्रपात्रे द्रवीभूते पूर्वचूर्णं पचेल्लघु॥
तत्रैव खादिरं क्काथं क्षिपेत्पालाशजं तथा।
तुल्यैः क्काथैः पचेत्तावद्यावत्पिण्डत्वमागतम्॥

भक्ष्यं निष्कं निहन्त्याशु कृष्णावैपादिकं महत् ।
रसः कुष्ठांकुशो नाम सर्वकुष्ठं नियच्छति ॥

रसकामधेनु

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग दोनोंको बावचीके क्वाथमे और संभालूके रसमे एक-एक दिन खरल करे, पश्चात् बहुत पतली ताम्रकी कटोरीमे रखकर उसीके ढंकनेसे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर ६ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे, इसमे भी ताम्र कटोरी बलिकाइदमें परिणत होजाती है जो ताम्र बलिकाइद मे परिणत होगया हो उसे उक्त रसके साथ पीसकर एकत्र करले इसमें इन सबों केबराबर त्रिफला चूर्ण और उक्त रससे चौथाई भांगरा चूर्ण तथा सबके बराबर बावची चूर्ण मिलाकर खूब खरल करे, पश्चात् निम्नलिखित क्वाथ आठ गुना लेकर उस क्वाथके साथ इस रसको कढ़ाईमें डालकर मन्द अग्निपर शुष्क करे। क्वाथ वनस्पतियां यह है:—चित्रक, नींब, अमलतास, कनेर, करज, खदिर, पलाश, इनमे पकावे, पश्चात् गोमूत्रमे पकावे, जब गाढा होजाय उतारले और इसकी चार २ माशेकी गोली बनाकर रखले। मात्रा—१ गोली।

गुण—कृष्णकुष्ठ, वैपादिक व श्वेत्रकुष्ठ तथा अन्य कुष्ठोंमे लाभप्रद है।

कुष्ठारिरस

रसगन्धकतालानि कर्षमानानि भागतः ।
प्रत्येकं स्याद्दशगुणं ताम्रं तन्मर्दयेद् दृढम् ॥
स्नुहीक्षीरेण भल्लाततैलेन दिनसप्तकम्
पञ्चषष्ठिकयामांस्तु कवचीयन्त्रगं पचेत् ॥
रसोऽयं सर्वकुष्ठघ्न एकगुञ्जाप्रमाणतः ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, बलि, हरताल एक-एक तोला, ताम्रचूर्ण १० तोला इनको स्नुही क्षीर और भिलावेके तेलमे सात दिन मर्दन करके सम्पुटमे बन्द

विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
परिभमइ तरुण-मय-त्तोउरा दिट्ठी ॥ १३०९

करके वालुका यन्त्रमे दबाकर ६५ प्रहर मध्यम अग्निमे इसे पकावे, शीतल होनेपर निकाललें । मात्रा—१ रत्ती तक ।

गुण—समस्त कुष्ठोंमे लाभ करता है ।

सम्मति—कुष्ठांकुश रसमे जो ताम्र कटोरी बनाकर उसमे पारद रखकर पकाया है वहां ताम्रका बलिकाइद कटोरीके रूपमे बन जाता है, यहां चूर्णके रूप मे बताया है । दोनों यौगिक एक हैं, इसीलिये इन दोनोंका गुणभी समान है, द्रव्योंकी भावनाएं अवश्य अन्तर से आई हैं ।

रसकामधेनुमें दूसरा एक और कुष्ठारिरस आया है उसमें चित्रक, लहसुन, भिलावां, मालकंगनी, धतूरा, रेणुका, गुञ्जा तथा मीठातेलिया आदिके तेल व क्वाथमे पारदको भावना देना लिखा है फिर बलि मिलाकर इसे शीशीमे डाल कर २५ प्रहर अग्नि देनेका विधान आया है, यह वास्तवमे रससिन्दूरही बनता है, लिखा तो है कि कुष्ठमें लाभदायक है । किन्तु इसमें कोई यौगिक कुष्ठ नाशक नहीं दीखता, क्योंकि जिन वनास्पतिके तेलों और क्वाथोंमे पारदको खरल किया जाता है वह सबतो अग्नि प्रभावसे दग्ध होजाते है और उनका अवशेष नीचे बैठा रहजाता है, रससिन्दूरका यौगिक नीचे बनकर ऊपर जा लगता है, जब यौगिक न बदले तो गुण कैसे बदल सकते है ?

खगेश्वररस

पलेन प्रमितः सूतः पलेन प्रमिता बला ।
खगः पलमितः सर्वं मर्दयेदर्जुनद्रवैः ॥
गोलीकृत्य विशोष्याथ गोलं कूप्यां निरुध्य च ।
ततस्तां सुदृढे भाण्डे मूषां क्षिप्त्वा निरुध्य च ॥
पचेत्सार्धदिनं पश्चात्स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ।
खगेश्वरो रसो वल्लप्रमितः कुटजान्वितः ॥
श्वेतकुष्ठं निहन्त्याशु श्वासकासगदानपि ।

सघृतः पित्तजं कुष्ठं मधुना मेहमेव च ॥
पथ्यं दोषानुरूपेण वृद्धेन मुनिनोदितम् ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—पारद, बलि और हराकसीस प्रत्येक ५ तोला इन्हें अर्जुन छालके काढेमें एक दिन खरल करके सुखाले या गोला बनाले, गोलेको सम्पुटमें या शीशीमे डालकर वालुका यन्त्रमें चढ़ाकर १२ प्रहरकी मध्यम अग्निपर पकाले।

मात्रा—२ रत्ती तक देवे।

गुण—श्वेतकुष्ठ, कास और श्वासमे लाभप्रद है।

सम्मति—इस योगमे खग शब्दसे कोई सुवर्णमाक्षिक कोई कसीस लेते है। दोनों ही लोह बलिके यौगिक है, इसलिए कोई चीजलेवे, भेद नहीं पड़ता।

खेचरी गुटिका

रसकं दरदं ताप्यं गगनं कुनटी समम् ।
सूतं समांशकं दद्यादम्लवेतसजै रसैः ॥
मर्दयेद्दिनमेकन्तु सूर्यघर्मे शिलातले ।
पचेत्तं वालुकायन्त्रे दिनमेकं रसं खलु ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णीकृत्य प्रयत्नतः ।
निम्बूरसेन गुटिका कर्तव्या चाढकीसमा ॥
सर्वज्वरहरा प्रोक्ता गुल्मोदरविनाशिनी ।
गुटिका खेचरी प्रोक्ता देहलोह विधायिनी ॥

रसप्रकाश सुधाकर ।

अर्थ—खपरियाभस्म, सिंगरफ, सोनामक्खीभस्म, अभ्रकभस्म, मेनसिल और पारद सब समभाग लेकर इनको अम्लवेतके रसमे एक दिन खरल करके सम्पुटमे बन्द करके एक दिन मध्यम अग्निसे पकाले, यह तललग्नरस बनता है फिर इसे निकालकर पुनः निम्बू रसमे खरल करके अरहरके दाने के बराबर या एक रत्तीकी गोली बनाले।

कोऊहल-विरइया [१२०९-

-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो।
परिभमइ तरुण-भय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

गुण—समस्त ज्वर, गुल्म और उदररोगमे लाभदायक है। अत्युत्तम बलवर्द्धक है।

ग्रहणीभरस

हेमभस्म रसभस्मकं समं मौक्तिकं कुरुततत्समानकम्।
लोहटङ्कणामृताभ्रकंसमं शङ्खभागमिलितं समस्तकं॥
गन्धकोऽपि निखिलेन तुल्यकः वासरञ्च विजयाविमर्दितः।
तस्य गोलकविधिं विधायवै चीरमृल्लवणकैः विलिप्य च॥
सम्पचेल्लवणयन्त्रमध्यगं स्वाङ्गशीतमपि चोद्धरेद्द्रुतम्।
धातकीकनकभृङ्गिकाविषा शक्रमूलकरसैः विमर्दयेत्॥
द्विनिपञ्चवनविश्वसम्मितो जायते ग्रहणिकानिषूदनः।
वल्लयुग्ममशितोऽम्बुजोषणैः शक्रचित्रक विषामदैः युतैः॥
पथ्यं हितं स्याद्ग्रहणीकपाटवद्धृतञ्च योज्यं बृहदग्निसंज्ञकम्।
शुण्ठीघृतं शीतलचन्दनादिभिर्युक्तं घृतं वापि शतावरीघृतम्॥

रसावतार।

अर्थ—सुवर्णभस्म १ तोला, रससिन्दूर १ तोला, मोती २ तोला, लोहभस्म, टङ्कण, अभ्रक और शंख प्रत्येक तोला बलि ८ तोला इन सबको एक दिन भांगके रसमे मर्दन करके गोला बना करके सम्पुटमे रखकर लवणयन्त्र या बालुका यन्त्रमे रखकर एक दिन मध्यम अग्निसे पकावे, पश्चात् निकालकर खरलमें डालकर धावा फूल क्काथकी २, धतूरारसकी ३, भांगरारसकी ५, अतीस क्काथकी २ और कुटजछाल क्काथकी १ भावना देकर ६ रत्तीकी गोली बनाकर रखले।

अनुपान—कमल, सोंठ, कुटजछाल, चित्रक, भांग और अतीसचूर्णसे उक्त गोलीको सेवन करावे।

गुण—यह अतिसार और संग्रहणीमे लाभदायक है।

चण्डभैरवरस

रसभस्मत्रयोभागा हेमभस्मैकभागिकम् ।
टङ्कणं रविदुग्धेन समं सर्वञ्च खल्वके ॥
द्वियामं मर्दयेत्सम्य गुध्दृत्य गोलकं तथा ।
काचकूप्यां निवेश्याथ सप्त वस्त्रमृदो न्यसेत् ॥
वालुकायन्त्रमध्यस्थं द्वियामं मन्दवह्निना ।
स्वाङ्गशीतुलमुद्धृत्य द्विगुञ्जं वटकीकृतम् ।
शर्करामधुसंयुक्तमुन्मत्तपित्तनाशकृत ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—रससिन्दूर ३ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग और सुहागा १ भाग इन सबको अर्क दुग्धमें खरलकर सम्पुटमें या शीशीमें डालकर बालुका यन्त्रपर रखकर मन्द अर्थात् १५०° शतांशकी अग्निपर २ प्रहर पकावे, शीतल होजाने पर निकालले ।

मात्रा—२ रत्ती तक देना चाहिये ।

अनुपान—शक्कर और मधुके साथ प्रयोग करे ।

गुण—पैत्तिक या उष्ण प्रकृति उन्मादमें लाभदायक है ।

चन्द्रोदयरस

पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रात्पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य ।
शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वंविमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ॥
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढं मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयञ्च ।
पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततो रसः पल्लवरागरम्यः ।

रसकौमुदी ।

अर्थ—सुवर्णपत्र या सुवर्णरेत (सुवर्णकी रेत उस समय तय्यार होती है जब सुवर्णको शुद्ध करनेके लिये पवनाम्लमे डालकर पकाते है तो उसकी

कोऊहल-विरइया [१३०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
भमं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

समस्त अशुद्धियां पवनाम्लमे घुलकर भिन्न होजाती है, उस समय सुवर्णरेत सदृश सूक्ष्म कणोंमे विभक्त होजाता है। इसे जलसे प्रक्षालित कर अग्निपर रख कर सुखा लेते है तो सुवर्णरेत चूर्णके सदृश रहजाता है) इसे शुद्ध पारद मे डालनेसे वह पारेके साथ मिलकर एक रूप होजाता है। प्रथम इस सुवर्णरेत को शुद्ध करलेना चाहिये, क्योंकि इसमे कुछ न कुछ अंश मृत्तिका रजका निकलता है। यह चूर्ण यदि अच्छीतरह पवनाम्ल द्वारा शोधन किया जाय तो विशुद्ध रूपमे सुवर्ण प्राप्त होता है। ऐसा सुवर्ण ५ तोला, और शुद्ध पारद ४० तोले बलि ६४ तोले इन तीनोंको लालफूल कपासके रसमें और कुमारीके रसमें तीन तीन दिन खरल करके शीशीमे भरकर ३ दिनकी अग्निपर पकावे।

सम्मति—हम पीछे बतला चुके हैं कि कूपीके भीतर बलिका जारण न करे या तो प्रथम भिन्न करले, पश्चात् यौगिकके योग्य जब बलि रह जाय उस समय वालुका यन्त्रमे चढाकर पाक करले। अथवा इसमे ७ तोला बलि डालकर एकबारमे ही पाक करले। इसतरह ४० तोला पारद ५-६ घण्टेमें उड़कर ऊपर जाकर लग जाता है।

बहुतसे लोगोंके विचार है कि सुवर्णकी जितनी मात्रा डाली जाती है वह ऊपर उड़कर लगनी चाहिये। पारद ऐसा बुभुक्षित होना चाहिये जो सुवर्ण को लेकर उड़ जाय और जहां आप जाकर जमे, वहीं उसके साथ सुवर्ण जम जाना चाहिये, यह बात रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे पूर्ण सम्भव नहीं। क्योंकि जबतक सुवर्णकी प्रकृतिको न बदला जाय संभव नहीं। पारदका बलि यौगिक २७५° पर वाष्पीभूत होता है किन्तु सुवर्णका बलिकाइद १६५५° शतांश पर जाकर वाष्पीभूत होता है, इन दोनोंके उत्तापकी मात्रामे बहुत अन्तर है, इसीलिये पारदके साथ सुवर्ण नहीं उड़ सकता। बहुतोंके विचार है कि जब पारद बुभुक्षित बन जाता है तो इसमे यह शक्ति उत्पन्न होजाती है कि वह अपनी शक्तिसे सुवर्णको ले उड़ता है। रसायन-शास्त्र इस युक्तिको अपने विचार सीमासे परेकी समझता है।

उसके प्रयोगोंमे इतनी बात आई है कि पारदके साथ उन धातुओंके कुछ अश उड़कर उसके साथ चले जाते है जिनके द्रवांकका उत्ताप बहुत नीचे होता है यथा—वंग और सीसा यह दोनों धातुएं २३२° और ३२७° अंश के उत्तापपर द्रवीभूत होती है। जो धातुएं उस उत्तापके समीप द्रवीभूत होती है जिस उत्ताप पर पारदका यौगिक उड़ रहा हो तो ऐसी दशामे द्रव धातुओंका वाष्पीभवन चाहे कितना भी कम क्यों न बनता हो उस दशामे तो वे अवश्य उड़ सकती है।

जब एक दूसरी धातु उसमे मिली हुई उड़रही हो, तो वह अपने साथ दूसरी द्रवधातुके कुछ न कुछ अंशको खींच लेजाती है, किन्तु जो धातुएं उस वाष्पशील धातुके साथ द्रव न हुई हों और जबतक वह द्रवांक पर न पहुंचे तबतक उसमे यह तीसरी वाष्पशील अवस्था उत्पन्न हो नहीं सकती। प्रकृतिमे यह नियम देखा जाता है कि जो वस्तुएं ठोससे द्रव और द्रवसे फिर वाष्परूपमे जाती है वह सदा इसी क्रमसे ठोससे द्रव होकर ही वाष्प रूपमे परिणत होती है। हां कभी कभी एकाएक भयङ्कर शक्तिप्रभाव जब किसी वस्तुपर आकर पड़े तो सीधे भी कई धातुएं वाष्पमेपरिणत होसकती है। जैसे—विद्युत् वाही ऋण और धनतारों के मिलनेसे एकाएक उक्त तारें इतनी तीव्र गतिसे उत्तप्त हो उठती है कि वह जलकर तीव्र प्रकाश देती हुई विना द्रव हुए सीधेही वाष्प मे परिणत होजाती है। शक्ति प्रभाव द्वारा ऐसा परिवर्तन उस नियमका अपवाद समझा जाता है। जो सुवर्ण १०६३° शतांशके उत्ताप पर द्रवीभूत होता है वह ३००° शतांशके उत्ताप पर उड़ सक्ता है ? यह अभीतक किसी विधिसे ज्ञात नहीं हुआ।

चन्द्रोदयवटी—जब उक्त रस तय्यार होजाता है तो इसमेसे ५ तोला चन्द्रोदय, कपूर, जायफल, मिर्च और लवङ्ग यह सब ५–५ तोला कस्तूरी ४ माशे मिलाकर पानके रसमे खरल करके ३ रत्तीकी गोली बना लेते है। इसको चन्द्रोदय वटी कहते है।

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

गुण—वीर्य निर्बलता, ध्वजभङ्ग और इन्द्रिय शिथिलतामे अति लाभदायक है ।

चण्ड मार्त्तण्डरस

वज्जलवणं, मल्लगौरीपाषाणयोर्भस्म, कान्तसिन्दूरं, गन्धकं, तालकभस्म, मृद्दारशृङ्गं, रसभस्म चैतानि सूक्ष्मचूर्णितानि काचकूपिकायां निक्षिप्य यामचतुष्टयं क्रमाग्निना पक्वौषधं ग्राह्यम् । एतत्तण्डुलपरिमाणं सेवितं सत्सर्वान्रोगान्नाशयति । स्तन्येन, मधुना, त्रिकटुककाथेन वा सेविते विषदोषाः सन्निपातज्वराश्च निवर्तन्ते । पथ्यं यथोचितम् ।

व्यास सम्प्रदाय ग्रन्थात् ।

अर्थ—सांभर नमक, सोमलभस्म, कान्तसिन्दूर, बलि, हरतालभस्म, मुर्दासंगभस्म और रससिन्दूर सबको समभाग लेकर पीस ले और कांचकूपीमें डालकर बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्नि पर पकावे ।

मात्रा—१ चावल ।

गुण—त्रिकटुचूर्ण शहदसे विषदोषमें तथा सन्निपातमे लाभ करता है और दूधसे देनेपर बलवर्द्धक है ।

चिन्तामणिरस

सूतश्च गन्धं द्विगुणं विमर्द्य कोरण्टनिम्बूत्थरसैर्दिनं तत् ।
चिञ्चात्वचःक्वाथजलेन चैकं दिनं च गोलं रविसम्पुटस्थम् ॥
लिप्त्वा मृदा शुष्कमतीव कृत्वा सामुद्रयन्त्रेण पुटं ददीत ।
उद्धृत्य शीतं रसपादभागं प्रक्षिप्य गन्धं विपचेन्मनाक् च ॥
विषञ्च दत्त्वा रसपादभागं लोहस्य पात्रे तु कृशानुतोयैः ।
रसस्तु चिन्तामणिरेषु उक्तो वातारितैलेन समाक्षिकेण ॥

वह्नेन मानं प्रददीत चाम्लं तैलश्च शीतं परिवर्जयेच्च।
आध्मानगुल्मौच विबन्धशूले तूनीप्रतून्यौ विलयंप्रयान्ति॥
रसरत्न समुच्चय।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग दोनोंको मिलाकर कज्जली करे पुनः पियावांसा क्वाथ, निम्बू और इमलीके छालके काढेमें एक एक दिन मर्दनकर गोला बनावे। कज्जली के बराबर ताम्र कटोरी लेकर इस कटोरी मे उक्त गोला रखकर ताम्र सम्पुटसे ढंक सन्धि बन्दकर लवणायन्त्रमे रखकर मध्यम अग्निपर ४ प्रहर पकावे, पश्चात् निकालकर देखे कि ताम्रकी भस्म होगई है या नहीं कूटनेपर जितना ताम्रचूर्ण होजाय वह पीसले तथा उसमे उक्त रस मिलाकर पारदसे चौथाई उसमे बलि और डालकर खरल करे फिर उसे कढाई मे डालकर अग्निपर चढादे जब वह गरम होकर पिघल जाय उसे उतारले, फिर उसे खरलमें डालकर १ भावना चित्रक क्वाथकी देकर तीन रत्तीकी गोली बनाले।

गुण—आध्मान, गुल्म, विबन्ध, शूल, तूनी और प्रतितूनी आदि रोगों मे लाभ करता है।

अनुपान—शहद और एरण्ड तेलसे सेवन करे।

सम्मति—यह पारद बलिकाइद और ताम्र बलिकाइदका एक यौगिक है जैसे अग्निकुमार चौथा। केवल वनस्पति भावनाका ही अन्तर है।

चूडामणिरस

रसस्य पञ्च भागाः स्यु र्गन्धकस्य तथैव च।
सुवर्णताम्रलोहानां तारं वङ्गञ्च सीसकम्॥
वैक्रान्तमाक्षिकशिलानीलाञ्जनकतुत्थकम्।
रसकं मौक्तिकं श्चैकमानकं संहरेद्भिषक्॥
प्रत्येकं वज्रिदुग्धेन भावनाः सप्त दापयेत्।
टङ्कणेन तथा पिष्ट्वा रविदुग्धेन माक्षिकम्॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

भावयित्वा तथा सप्त दापयेद्वज्रमृत्तिकाः ।
कूपीं संशोष्य यत्नेन ततस्तां विनिरोधयेत् ॥
तावणे सैकते वापि ततो गजपुटं ददेत् ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य दापयेत्खल्वमध्यतः ॥
ततस्तन्मर्दयेत्खल्वे सुश्लक्ष्णं कज्जलप्रभम् ।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य भक्षितश्च यथाविधि ॥
पाण्डुरोगं रक्तपित्तं वासया मधुना सह ।
कपिकच्छुकचूर्णेन ग्रहण्याश्च तथैव च ॥
अर्कमूलरसेनामत्तयी जीर्णज्वरे तथा ।
अतिसारेषु सर्वेषु दुग्धिका मधुना सह ॥
मधुला स्नुतैलेन शूलिने गुल्मिने तथा ।
वज्रीदुग्धेन दग्ध्वाच अग्निमान्द्येषु योजयेत् ॥
कपित्थमूलकल्केन सघृतेन नियोजयेत् ।
वीर्यवृद्धौ तथाश्वानां नागानां तु नृणां तथा ॥
एष पानानुपानाद्यैः सद्यः प्रत्ययकारकः ।
रसश्चूडामणिर्दिव्यो सेव्यते च नृभिः सदा ॥

रसराजशङ्कर ।

अर्थ—पारद, बलि पांच २ भाग, सुवर्ण, ताम्र, लोह, रजत, वंग, सीसा वैक्रान्त, सोनामक्खी, नीलाञ्जन (सुरमा) खपरिया और तुत्थ इन सबकी भस्म तथा मनसिल और मोती प्रत्येक एक एक भाग। अर्थात् पारद ५ तोला हो तो यह चीजें एक एक तोला ले। पहिले कज्जली बनाकर फिर सब वस्तुए एकत्र करके ७ भावना थोहरके दूधकी ७ भावना टङ्कण घोलकी (टङ्कणको जलमें घोलनेसे जितना घुल जाय इस द्रवको टङ्कणघोल कहते है) ७ आकके दुग्धकी, ७ भावना शहदकी देकर इसका गोला बनाले इसे सम्पुटम बन्दकर या कांचकूपी मे डालकर शीशीका मुंह बन्दकर उसे वालुका

यन्त्र-या लवणायन्त्रमे चढ़ाकर ४ प्रहरकी अग्नि दे या गजपुटमें फूंक दे। गज-पुटमे तीव्र अग्नि लग जानेका भय है और जब अग्नि तीव्र होगी तो पारद, बलि यौगिक उड़कर उसमे से निकल जायगा इसलिये इसे बालुका यन्त्रमे ही बनाना चाहिये।

मात्रा—४ रत्ती तक देना चाहिये।

अनुपान और गुण—अडूसा रससे पाण्डु व रक्तपित्तमें, कौंचबीज चूर्णसे संग्रहणीमें, अर्कमूल त्वक्रससे जीर्णज्वर व क्षयमे, छोटी दूधी (नागार्जुनी) रस शहदसे अतिसारमे, एरण्ड तेल मधुसे शूलमे, इसे थोहर दूधमे रखकर फूंकले और अग्निमान्द्यमें दे तथा दुग्ध घृतादिसे बलवर्द्धनके लिये देवे।

चैतन्य भैरवरस

सूतं गन्धं शिलां तालं सम्मर्द्य निम्बुजै द्रवैः।
लिप्त्वा तन्वर्कपत्राणि यन्त्रे भस्माभिधे क्षिपेत्॥
यामानष्टौ ददेताग्नि स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
विशोषणं चतुर्थांशं दत्त्वा वल्लमिता गुटी॥
देवदालीरसै बद्ध्वा रसश्चैतन्यभैरवः।
दत्तार्द्रकरसैः सर्वसन्निपातविघातकृत्॥
भूमौ गतं विसंज्ञश्च शीतार्तं तन्द्रितं नरम्।
तत्क्षणाद्बोधयेद्दाहे कुर्याच्छीतोपचारकान्॥
कोलमायूरमहिषमत्स्यच्छागसमुद्भवैः।
मायुभिर्भावितश्चापि देयश्चैतन्यभैरवः॥

रसेन्द्रसारसग्रह।

अर्थ—पारद, बलि, मैनसिल और हरताल सबको समभाग लेकर निम्बूके रसमे खरल करे फिर बहुत बारीक ताम्रपत्र पारदके बराबर बनाकर उनपर उक्त घुटी हुई कजली चढादे और उसे सुखाले, पश्चात् सम्पुटमे बन्द करके बालुका यन्त्रमें या भस्मयन्त्रमे दबाकर ८ प्रहरकी मध्यम अग्निमे इसे पकावे पश्चात्

कोऊहल-विरइया [१३०९-

...ल्लिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
...मम्मइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

निकालकर खरलमे डाल इस रसकी चौथाई कालीमिर्चें चूर्ण मिलाकर बन्दालफल रसकी एक भावना देकर २ रत्तीकी गोली बनाले ।

अनुपान और गुण—अद्रकरस शहदसे सन्निपात व मूर्छा में दे यह, तन्द्रा शैत्यवृद्धिमे अति लाभदायक है; यदि दाह प्रतीत हो तो शर्वत पिलावे । कोई २ इसको पञ्चपित्तोंकी भावना देते है तब इसका चैतन्यभैरव नाम देते है ।

छर्द्यन्तकरस

रसभस्म पलांशं स्यात्तत्पादः स्वर्णभस्मनः ।
ताम्रं भुजङ्गवङ्गं च मौक्तिकं तत्समांशकम् ॥
तेषां सममयश्चूर्णमभ्रकं तत्समं भवेत् ।
तत्समं गन्धकं दत्त्वा बीजपूरार्द्रकाम्बुना ॥
सर्वं खल्वे विनिःक्षिप्य मर्दयेत्त्रिदिनावधि ।
तत्कल्कं भावयेत्सप्तदिनान्यामलकद्रवैः ॥
पश्चात्तन्मूकमूषायां रुद्ध्वा भाण्डे विनिःक्षिपेत् ।
पांसुभिःपरिपूर्याथ क्रमवृद्धेन वह्निना ॥
पचेद्यामत्रयं चुल्यां स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ।
ततः सर्वं समाकृष्य चूर्णयेत्पट्टगालितम् ॥
अजाजी दीप्यकं व्योषं त्रिफला कृष्णजीरकम् ।
कृमिशत्रुर्वराङ्गश्च प्रत्येकं निष्कमानकम् ॥
ततः सर्वं चूर्णयित्वा योजयेत्पूर्वभस्मना ।
इत्थं पञ्चरसैरेष प्रोक्तश्छर्द्यन्तको रसः ॥
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यै र्देयाद्वल्लप्रमाणतः ।
अम्लपित्तमसृक्पित्तं छर्दिं गुल्ममरोचकम् ॥
आमवातञ्च दुःसाध्यं प्रसेकच्छर्दिहृद्रुजम् ॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णं विनिहन्ति क्षयामयम् ॥
स्वस्थोचितो हितकरः सर्वेषाममृतोपमः ॥ योगरत्नाकर ।

अर्थ—रससिन्दूर ५ तोले, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, वंगभस्म और मोतीभस्म प्रत्येक १ तोला और सबके बराबर लोहचूर्ण इन सबके बराबर अभ्रकभस्म, और इन सबके बराबर बलि मिलाकर बिजौरा नीम्बूके रसमे ३ दिन और आमलेके रसमे ७ दिन मर्दन करके सुखाले, पश्चात् सम्पुटमे बन्द करके लवणयन्त्रमे चढ़ाकर ३ प्रहरकी अग्नि दे पश्चात् निकालकर चूर्ण करले और इसमें जीरा श्वेत, अजवायन, त्रिकटु, त्रिफला, कालाजीरा वायबिडङ्ग और तज प्रत्येक ४½ माशे चूर्ण करके मिलादे। मात्रा—३ रत्ती।

गुण—अम्लपित्त, रक्तपित्त, भयङ्करछर्दि, वमनेच्छा, गुल्म, अरुचि, दुःसाध्य आमवात और क्षयमे लाभदायक है, स्वस्थ्य व्यक्तियोंको हृष्ट-पुष्ट करता है।

जीर्णज्वरहररस

नागं वङ्गं रसं ताम्रं गन्धकं टङ्कणं तथा।
रसकं क्ष्वेडनेपालं हरितालं समं तथा॥
वटक्षीरेण संमर्द्य सर्वं कुर्यात्तु गोलकम्।
तं गोलं भाण्डमध्ये तु पाचयेद्दीपवह्निना॥
शीतलं तु समाकृष्य भृङ्गराजेन मर्दयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि मर्दयेच्च पुनः पुनः॥
चणप्रमाणान् वटकान् दापयेदार्द्रकाम्भसा।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन ज्वरं जीर्णं हरत्यसौ॥

रसकोविद।

अर्थ—सीसाभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म, खपरियाभस्म, पारद, बलि, टङ्कण मीठातेलिया, जैपाल और हरताल सब बराबर लेकर इनको २ दिन वटदुग्धमे खरलकर सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर ४ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे, पश्चात् निकालकर भांगरा, अद्रक रसकी एक-एक भावना देकर २ रत्तीकी गोली बनाले।

कोऊहल-विरइया [१३०९-
ग्गम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो।
भमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

अनुपान और गुण—अद्रकरस और शहदके साथ देने से जीर्णज्वरमें लाभ होता है।

ज्वरमत्तेभकेसरीरस

पूर्ववच्छोधितंसूत माहरेत्पलमात्रकम्।
शुद्धं वलिं वरां तस्य द्विगुणीकृत्य योजयेत्॥
पलञ्च शुद्धं वाह्लीकं मर्दयेद्द्विपले जले।
तेन पञ्चदिनं मर्द्य रसं पश्चात्समुद्धरेत्॥
तं कल्कं गोलकं कृत्वा दृढे भाण्डे निवेशयेत्।
दृढेनाथ शरावेण गोलकं तं निरोधयेत्॥
सन्धिलेपं दृढं कृत्वा सैन्धवेन प्रपूरयेत्।
द्वितीयेनैव भाण्डेन मुखंयत्नात्सुसन्धयेत्॥
दिनानि पञ्च सन्ताप्य मृदुमध्योत्तमक्रमात्।
वह्निं ज्ञात्वा स्वतः शीतं रसभस्म ततः शिवम्॥
हिंगुनीरेण सम्भाव्य पञ्चविंशतिसंख्यया।
प्रपुटेत्कुक्कुटाख्येन पुटेन च विचक्षणः॥
एवं शुद्धो भवेत्सूतो ज्वरमत्तेभकेसरी।
अस्य सूतस्य भागैकं वचाभागचतुष्टयम्॥
मरीचस्य तथा भागाश्चत्वारः परिकीर्तिताः।
हिंगुनीरेण सम्मर्द्य वटिकाश्चणकोपमाः॥
छायाविशोषिताः पश्चाज्ज्वरार्तानां प्रदापयेत्।
वटिकादानमात्रेण ज्वरवेगो निवर्तते॥
नवज्वरं वा जीर्णं वा विषमं नाशयेद्ध्रुवम्॥

टोडरानन्द।

अर्थ—पारद ५ तोला, वलि १० तोला दोनोंकी कज्जली बनाकर इसको १० तोले हींगके दुग्धमें या हींगका जल बनाकर उसमे ५ दिन खरल करे;

पश्चात् गोला बनाले फिर सम्पुटमे रखकर या शीशीमे भरकर इसे लवण यन्त्रमे दबाकर ५ दिनकी मध्यम अग्नि दे। पश्चात् निकालकर २४ भावना हींगकी देकर दृढ सम्पुटमें बन्दकर कुक्कुट-पुट अर्थात् कोई ऽ२॥-ऽ३ सेर उपलोंकी अग्निमे पुनः पकावे, इसतरह करनेपर यह रस तय्यार होता है। इसको निकालकर इससे चौगुनी बच और इतनी ही कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर एक दिन हींगके जलमें खरल करके चनेके बराबर अर्थात् २ रत्तीकी गोली बनाले।

गुण—उचित अनुपानके साथ देनेसे नवज्वर, जीर्णज्वर और विषमज्वरादि मे लाभ होता है।

ज्वरांकुशरस

मनःशिलाबलिरसै र्भागैर्वह्निकरेन्दुभिः।
कुमारीरससम्पिष्टैः कृत्वा गोलन्तु शोभनम्॥
युगभागमिते सूक्ष्मे ताम्रसम्पुटके न्यसेत।
ततस्तु बालुकायन्त्रे पचेद्यायाष्टकं भिषक्॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा निधापयेत्।
गुञ्जात्रयं शर्करया ह्यार्द्रकस्य रसेन च॥
दद्यात्समस्तविषमाञ्ज्वरान्हन्ति न संशयः।
पथ्यं क्षीरोदनं देयं मुद्गयूषरसौदनम्॥ रसराजसुन्दर।

अर्थ—मैनसिल ३ भाग, बलि २ भाग, पारद १ भाग इनको कुमारी रसमे १ दिन मर्दनकर गोला बनावे बहुत पतले ताम्रके सम्पुटमे रखकर उसे दृढ़ ताम्र ढकनेसे ढककर मिट्टीसे सन्धि बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर आठ प्रहरकी अग्नि दे तो यह रस सिद्ध होता है; जितना ताम्र बलिकाइदमे परिणत होजाय उसे इस रसमें मिलादे और पीसकर रखले। मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान और गुण—अद्रकरस और शक्करसे देवे तो समस्त ज्वरोंको दूर करता है।

फोऊहल-विरइया [१२०९-

णिम्मज्जिय-त्रिउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।

तरुण-मय-चोउरा दिट्ठी ॥ १२०९

ज्वरारिरस

भृत्वा भाण्डकमब्धिजेन च रसं हिंगूदरस्थं मृदो,
मूषायां विनिवेश्य तत्र तदनु द्वारं निरुध्यादरात् ।
संतप्याथ दिनान्तमग्निशिखया भाण्डगतश्चोर्द्ध्वगे,
सिद्धो गोलकवत्सनाभसहितः सोऽयं ज्वरारीरसः ॥
सिद्धरसामृतगोलाद्द्विद्वित्रिभागवर्धिताःक्रमशः ।
अमृतारसेन बद्धा गुटी विरेकाज्ज्वरं जयति ॥

रसावतार द्वितीय ।

अर्थ—जङ्गली अञ्जीर या काष्ठोदुम्बरके रसमें पारदको एक दो दिन खरल करे, जब पारद उस दुग्धमें मिल जाय तो गोला बनाले उसपर हींगका लेप चढ़ाता जाय और साथही सुखाता रहे लेपकी अच्छी मोटी तह चढादे, फिर इसको दृढ़ सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमें रखकर मध्यम अग्नि द्वारा एक दिन परिपाक करे तो पारदकी यह कज्जल यौगिकभस्म बन जाती है। इसमें बराबर मीठातेलिया और पारदसे तिगुना जैपाल मिलाकर गिलोयके काढेमें तीन दिन खरल करके १ रत्तीकी गोली बनाले ।

अनुपान और गुण—अद्रकरससे १ गोली देनेपर यह रस रेचन लाकर ज्वरको दूर कर देता है ।

ताम्रभैरवरस

ताम्रपत्राणि निष्पाद्य काकमाच्याश्च शोधयेत् ।
द्विगुणं गन्धकं कृत्वा भागैकं तालकं पुनः ॥
मनःशिलां चतुर्थांशां रसांशः पञ्चमः स्मृतः ।
अन्धमूषागतं सर्वं पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
स्नुहीक्षीरेण सम्मर्द्य वत्सनाभसमन्वितम् ।
कटुत्रयसमायुक्तं गुटिका चणकोपमा ॥

ज्वरं हरति सद्यश्च सन्निपातांस्त्रयोदश।
भोजने दधिभक्तञ्च शर्कराक्षीरदाडिमम् ॥
सर्वत्र विदितो लोके रसोऽयं ताम्रभैरवः ॥

रसावतार द्वितीय।

अर्थ—ताम्रपत्रोंको प्रथम मकोयके रसमे शोधन करले अर्थात् अग्निमे तपा-तपाकर २१ बार बुझाले, पश्चात् उस ताम्रचूर्णसे द्विगुण बलि और बराबर की हरताल चौथाई भाग मैनसिल तथा पांचवां भाग पारद मिलाकर मकोयके रसमे ४ प्रहर खरलकर गोला बनाकर सुखाले, पश्चात् इसे सम्पुटमे बन्द करके बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्निमे पकाले पश्चात् उक्त रसके बराबर मीठातेलिया व त्रिकटु मिलाकर थोहरके दुग्धमे घोटकर १ रत्ती की गोली बनाले।

गुण—यह ताम्रभैरव समस्त सन्निपात और समस्त ज्वरोंमे लाभप्रद है। भोजनमे दही चावल या दुग्ध चावल और अनाररसादि दे।

ताम्रभैरवरस दूसरा

अम्लान्तरस्थं त्रिदिनं दिनेशपत्रं ततो भूमिमलावगूढम्।
तप्तं ततो हुण्डपुटत्रयेण क्षिप्तं ततो निम्बुरसे दिनैकम् ॥
पंगूदके किणवरसेऽथ दुग्धे त्रिस्त्रिर्निषिक्तं च रसार्धलिप्तम्।
द्विभागगन्धाश्रितदुग्धिकाम्बु प्लुतं ततो भस्मपुटे मृतञ्च ॥
सगन्धसूर्याम्लगणार्द्रकाग्नि भृङ्गोद्भवाम्भोभिरनुक्रमेण ।
पञ्चामृतेलाथ च समकृत्वा पृथक् पुटैः सिद्धमिदं गदारि
त्रिदोषादिगणैर्ग्रस्तं लोकमालोक्य भैरवः।
तज्जीवनमसुं ताम्ररसं चक्रे कृपापरः ॥

रसावतार द्वितीय।

अर्थ—ताम्रपत्रोंको ३ दिन काञ्जीमे पडा रहने दे, पश्चात् निकालकर एक मिट्टीके कुल्हड़ीमे डालकर उसमे निम्बूरस भरकर उस कुल्हड़ीको अग्निपर

कोऊहल-विरइया [१२०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
मम० तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

वाग

रखकर पकावे जब वह रस सूख जाय तब हिंगोटरस शरावकी गाद (किण्व) आक, थोहरका दूध उसमें क्रमसे भरकर उसे पकावे। कुछ विद्वान् कहते हैं कि इन समस्त रस दुग्धोंमें ताम्रपत्रको तपा तपाकर तीन तीनवार बुझावे, पश्चात् इस ताम्रपत्रसे आधा भाग पारद तथा द्विगुण बलि मिलाकर नागार्जुनी (छोटी दूधी) के रसमें खरल करके गोला बनाकर सुखाले, फिर सम्पुटमें बन्दकर भस्मयन्त्र या बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्नि पर पकाले; पश्चात् निकालकर सबको पीस कर निम्न लिखित रसोंकी एक २ भावना दे। हुरहुर, निम्बू, जम्बीरी आदि चार अम्लके रस, अद्रक, चित्रक, भृङ्गराज रस, पश्चात् पञ्चामृतकी ७ पुट देकर रखले। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—त्रिदोषज सन्निपात तथा अन्य ज्वरोंमें भी इसके सेवनसे लाभ होता है।

सम्मति—उक्त समस्त ताम्रभस्मे बलिके योगसे बनती हैं। इनमें पारद और ताम्र दोनोंके यौगिक रहते हैं, भिन्न २ वनस्पतियोंकी भावना देनेपर उक्त वानस्पतिक अंशके कारण गुणोंमें चाहे कुछ अन्तर आता हो, किन्तु ताम्रके गुणोंमें कोई अन्तर नहीं आता।

ताम्रेश्वररस

पलानि पञ्च शुद्धानि ताम्रपत्राणि बुद्धिमान।
गृहीत्वा योजयेत्तत्र तदर्धं शुद्धसूतकम् ॥
मर्दयेन्निम्बुकद्रावै स्त्रिदिनान्युभयं भिषक्।
ताम्रपत्रैः समं शुद्धं गन्धकं तत्र निःक्षिपेत ॥
मर्दयित्वा घटीयुग्मं काचकूप्यां च निःक्षिपेत्।
यामानष्टौ पचेदग्नौ वालुकायन्त्रसंस्थितम ॥
एष ताम्रेश्वरो हन्याच्छ्वासादिनिखिलानगदान्।
धा[illegible]पुष्टिकरश्चैव सूतिकारोगनाशनः ॥

रसराज सुन्दर।

अर्थ—ताम्रचूर्ण २५ तोला, पारद १२½ तोला दोनोंको निम्बूके रसमें ३ दिन खरल करके इसमे २५ तोला बलि मिलाकर कज्जली बना कर शीशी मे भरकर वालुका यन्त्रमें चढ़ा ८ प्रहरकी मध्यम अग्निपर पकावे तो यह ताम्रेश्वररस बनता है।

गुण—यह श्वास, कास, सूतिकाज्वरादि अनेक रोगोंको दूर करता है, और वीर्यको अच्छा गाढ़ा करता है।

ताम्रसिन्दूर

हंसपाददरदः, पलाण्डुरसे शुद्धो गन्धकः, पारदः, मनःशिला, तुत्थं तालकश्चैतानि प्रत्येकमर्धतोलकानि खल्वे विन्यस्य रक्त-कार्पासपत्रस्वरसेन विमृद्य वर्तुलाकारां शुष्कां चक्रिकां विधाय वितस्ति मात्रोच्छ्रिते मृत्पात्रेऽर्द्धभागपर्यन्तं समुद्रलवणं विन्यस्य लवणस्योपरि चक्रिकां निधाय षट्तोलकशुद्धताम्रनिर्मितसम्पुटेन पिधाय कण्ठावधि भाण्डं लवणेन पूरयित्वा शरावेण भाण्डमुखं सम्यङ्निरुध्द्य चतुर्यामपर्यन्तं गाढाग्निना पाकं कुर्यात्। उपरितन-ताम्रसम्पुटं मेघवर्णतया भस्म सञ्जायते। एतत्तण्डुलपरिमाणं घृतेन मधुना नवनीतेन वा सेवितंसद्साध्यश्वासकासविषमसन्नि-पातकुष्ठादिमहारोगान्निवारयति यथोचितं पथ्यम्।

व्याससम्प्रदाय ग्रन्थात्।

अर्थ—हिंगुल, प्याज रसमे शोधितबलि, पारद और मैनसिल तुत्थ, हरताल सब आधा आधा तोला खरलमे डालकर लालफूल कपासके रसमे खरल करके टिकिया बनाले फिर एक हण्डीमे आधे भाग नमक भरकर उसपर टिकिया रख फिर उस टिकियाको ६ तोलेकी बनी ताम्रकी कटोरीसे ढककर पुनः ऊपर तक नमक भरकर उस हाण्डीका मुंह बन्दकर ४ प्रहर २७५°-३००° शतांशकी तीव्र अग्नि दे तो ताम्रकी कटोरी मेघवर्ण भस्ममें

कोऊहल-विरइया [१३०९-

-निर्नन्-कनोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
ण्ण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

परिणत होजायगी। इसमें कुछ रससिन्दूरभी लगा हुआ होगा, इसको पीसकर रखले। मात्रा—१ चावल।

अनुपान—घृत या मक्खन शहदसे देवे।

गुण—श्वास, कास, विषमज्वर, सन्निपात और कुष्ठ आदिमे लाभप्रद है।

सम्मति—यहभी ताम्रका ही यौगिक है जिसमें कुछ रससिन्दूर मिला होता है।

तालक रसायन

रसस्यद्विगुणंगन्धंरसतुल्यञ्च तालकम्।
दिनमेकञ्च सम्मर्द्य काचकूप्यां विनिक्षिपेत्॥
रुद्ध्वा तस्या मुखंसम्यग्वेष्टयेत्सप्तमृत्पटैः।
ततो लवणयन्त्रे च दिनमेकन्तु वह्निना॥
पाचयेत्स्वाङ्गशीतं तज्ज्ञात्वा सम्यक् समाहरेत्।
जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पलीमधुसंयुतम्॥
गुञ्जामात्रप्रयोगेण ज्वरं हन्ति न संशयः।
सन्निपाते समुद्भूते शीते च विषमज्वरे॥
पुराणञ्च ज्वरं हन्याच्छ्वासकासान्निहन्ति च।
सर्वदोषहरञ्चैव तालकाख्यं रसायनम्॥

रसायन संग्रह।

अर्थ—पारद और हरताल बराबर इन दोनोंके बराबर बलि मिलाकर एक दिन कुमारीके रसमें खरल करके शीशीमे भरकर लवणयन्त्रमे चढादे और उसे ४ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे। यह ऊर्ध्वलग्नरस बनेगा और इसीका नाम ताल सिन्दूर भी है। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—जायफल, लौंग पीपलचूर्ण व शहदके साथ दे।

गुण—ज्वर, शीतरोग, सन्निपात, विषमज्वर, जीर्णज्वर, कास और श्वासमें लाभदायक है।

तालकेश्वररस

विशुद्धं हरितालञ्च भागद्वादशकं भवेत् ।
गन्धकोऽपि तथा ग्राह्यो रसः सप्तात्र नीयते ॥
कृष्णाभ्रकभवं भस्म ग्राह्यं निश्चन्द्रिकं तथा ।
अङ्कोलमूलनीरेण सेहुण्डपयसा तथा ॥
अर्कदुग्धेन सम्पिष्य करवीरजलेन च ।
काकोदुम्बरनीरेण पेषणीयो रसो भृशम् ॥
शुद्धताम्रमये श्रावे क्षेपणीयो रसेश्वरः ।
पच्यते बालुकायन्त्रे यामषट्कं रसोत्तमः ॥
पञ्चगुञ्जः प्रदेयोऽसौ काकोदुम्बरवारिणा ।
नाशयेत्तूर्णमेवायं कुष्ठान्यष्टादशैव हि ॥
सुरगोद्विजसाधूनां यथाशक्त्या च सेवनम् ।
पिप्पलीभिः समं दद्यात्सर्वज्वरविनाशनः ॥

रसचिन्तामणि ।

अर्थ—हरताल १२ भाग, बलि १२ भाग, पारद ७ भाग, अभ्रकभस्म ७ भाग सबको अंकोल मूलक्काथ, स्नुही दुग्ध, अर्क दुग्ध कनेर मूलक्काथ कठ गूलर (अजीर जङ्गली) के त्वचाक्काथमें एक एक दिन खरल करके ताम्रकी कटोरीमें सम्पुटकर बालुका यन्त्रमे रखकर ६ प्रहरकी मध्यम अग्निमे पकावे ।

मात्रा—७ रत्ती ।

अनुपान—जङ्गली अञ्जीरके दूधसे देवे ।

गुण—समस्त कुष्ठोंमें लाभदायक है, पीपलचूर्णके साथ देनेपर ज्वरों मे लाभ करता है ।

तालकेश्वररस २

विमर्द्य तुल्यौ रसतालकौ च सप्ताहमेतत्तनुकारवल्या ।
रसेन गोलं सिकताऽभिपूर्णे सचक्रिकं तत्र निधाय भाण्डम् ॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१]।
तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

शुल्वस्य पात्रेण विधाय मुद्रां विधाय मध्यानलपाचितश्च।
दिनश्च चुल्यां किल वल्लमात्रः सितायुतः स्याद्विषतापहारी॥
तालकेश्वररसः सुखदायी क्षीरभक्तभजनेन निषेव्यः।
तालकः सकलवातविनाशी रोगिणां हितकरश्च जवेन॥

रसायन सग्रह।

अर्थ—पारद और हरताल बराबर खरलमें डालकर जङ्गली करेलेके रसमें ७ दिन खरल करके इन दोनोंके बराबर ताम्रपत्रकी कटोरी बनाकर उसे मध्य मे रखकर सम्पुटकर बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्निमे पकावे ताम्र समेत सबको पीस रखे। मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान और गुण—शक्करके साथ अथवा कालीमिर्चचूर्ण शर्कराके साथ समस्त विषम ज्वरोंमे दे।

पथ्य—दुग्ध भात दे।

सम्मति—इस रसमें तीन यौगिक मिले होते है एक पारद वलिकाइदका दूसरा सोमल वलिकाइदका मैनसिल, तीसरा ताम्र वलिकाइद। हरतालमे जो वलिके सोमलसे मिले ३ परमाणु होते है उनका एक परमाणु पारद और ताम्रसे जा मिलता है। यह ताम्र सोमलका यौगिक विषम ज्वरों को नष्ट करनेमें क्युनाइन जैसा काम करता है।

तालकेश्वररस ३

शुद्धतालस्य भागैकं भागैकं शुद्धपारदम्।
शुद्धगन्धकभागौ द्वौ तालांशं नवसादरम्॥
दिनैकं मर्दितं खल्वे सोमराजीरसेन तु।
अर्कदुग्धेन सम्मर्द्य कूपिकायां विनिक्षिपेत्॥
वालुकापूरिते यन्त्रे अध ऊर्ध्वं विपाचयेत्।
यामद्वादशकेनैव मन्दमध्यहठाग्निना॥

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य रसोऽयं तालकेश्वरः।
सर्वकुष्ठं निहन्त्याशु गलत्कुष्ठनिकृन्तनः॥

रसायन सग्रह।

अर्थ—हरताल, पारद, नवसादर एक एक भाग, वलि दो भाग सबकी कज्जली कर बावचीके क्वाथमें और आकके दूधमे एक २ दिन मर्दनकर सुखा शीशीमे भरकर बालुका यन्त्रमे चढा १२ प्रहरकी अग्नि दे। यह रस ऊर्ध्वलग्न बनेगा। मात्रा ३ रत्ती।

गुण—कुष्ठ, वातव्याधि, सन्निपात और जीर्णज्वरमे लाभदायक है।

तालकेश्वररस ४

पारदं तालकन्दारं मृदाद्यं मर्दयेद् दृढम्।
द्विटङ्कणमिदं यन्त्रे पचेद्विद्याधराह्वये॥
मूषायां लवणस्यैव पुनः पक्त्वा ततः पुनः।
सिकतायां पचेत्कूप्यां कुष्ठहा तालकेश्वरः॥

रसेन्द्रकल्पद्रुम।

अर्थ—पारद, हरताल, मुर्दासंग प्रत्येक एक भाग और टङ्कण दो भाग इन सबको प्यालेमे बन्द करके बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर मध्यम अग्निपर पकावे। यह तललग्नरस बनेगा। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—समस्त कुष्ठोंमे लाभदायक है।

तालकेश्वररस ५

वेदकर्षः पारदः स्याद्वङ्गश्च पलमात्रकम्।
मल्लं धान्याभ्रकश्चैव टङ्कणश्चेति पालिकम्॥
एकविंशतिकर्षाः स्युस्तालकं तच्चतुर्गुणम्।
एकत्र खल्वयेत्पश्चाद्भावनाः किल दापयेत्॥
जैपालैरण्डतैलाभ्यां भाव्यं वज्रार्कदुग्धकैः।
कूप्यां निधाय पश्चाच्च यन्त्रे च सैकते पचेत्॥

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[1] ।
भमइ तरुण-मय-चोउरा दिट्ठी ॥ १२०९

चत्वारिंशद्याममात्रमुद्धरेत्स्वाङ्गशीतलम् ।
तैलार्काभ्यां पुनर्भाव्यं पुनरग्निम्प्रदापयेत् ॥
एवं त्रिवारं कुर्वीत रसः काञ्चनिभो भवेत् ।
तण्डुलप्रमितो योज्यो सर्वरोगनिवर्हणः ॥

रसायनसंग्रह ।

अर्थ—पारद ४ तोला, बंग ४ तोला, सोमल, धान्याभ्रक, टङ्कण सात-सात तोले, हरताल १६ तोले इनको खरलमें डालकर जैपाल, ऐरण्डतेल, स्नुहीदुग्ध, अर्कदुग्धकी एक २ भावना देकर शीशीमे डालकर वालुका यन्त्रमे ४ प्रहर मध्यम अग्निपर पकावे। पुनः उपरोक्त तेल और सेहुण्ड अर्क-दुग्धमें एक २ भावना देकर पुनः उसीतरह कांचकूपीमे डालकर वालुकायन्त्रमे पकावे। इसतरह तीनवार पकानेपर यह रस तय्यार होता है। मात्रा—१ चावल समस्त रोगोंमे इसका उपयोग करे।

तालकेश्वररस ६

शरपुङ्खां समादाय पारदं मर्दयेत्ततः ।
हरितालसमं कृत्वा यावत्सप्तदिनावधि ॥
कृते शुष्के क्षिपेत्कूप्यां दृढवस्त्रेणवेष्टयेत् ।
वालुकायन्त्रके न्यस्य मुद्रां कृत्वा प्रयत्नतः ॥
ज्वालयेदग्नियामांस्तुक्रमाद् द्वादशसङ्ख्यकान् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पूर्ववच्च क्रियां चरेत् ॥
एवञ्च सप्तवारांस्तु पचेत्तत्सुसमाहितः ।
वलिपूजां ततः कृत्वा भक्षयेद्रक्तिमात्रकम् ॥
घृतक्षौद्रयुतश्चैव मेकविंशतिवासरान् ।
तेन भक्षितमात्रेण सर्वरोगक्षयो भवेत् ॥
गुल्मोदरार्शः प्लीहाऽऽमकुष्ठव्रणभगन्दरान् ।
भग्नप्रकांश्च दुःसाध्यान्वह्निदग्धव्रणानपि ॥

तद्रक्तिमात्रसंयुक्तं सिक्थकेन च वेष्टयेत् ।
तेनैव वेधयेत्ताम्रं गद्याणद्वयमात्रकम् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद और हरताल दोनोंको खरलमे डालकर ७ दिन शरपुंखाके रस या क्वाथकी भावना दे, पश्चात् शीशीमे भरकर बालुका यन्त्रमे चढाकर १२ प्रहरकी २८०° शतांशकी अग्निदे यह ऊर्ध्वलग्न रस बनेगा। इसको निकाल कर पुनः शरपुंखाके रसमें ७ दिन घोटकर फिर इसीतरह बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर पकावे इसप्रकार इसे ७ बार कूपीपाक करे तो उक्त नामा रस तय्यार होता है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—गुल्म, उदररोग, बवासीर, प्लीहा, आमवृद्धि, कुष्ठ, भगन्दर, नासूर, जला हुआ विकृतव्रण, उपदंश जनितव्रण आदिमे लाभदायक है।

तालकेश्वर (तारकेश्वर) रस ७

रसपादं मृतं तारं शिलाताले चतुर्गुणे।
इक्षुवासारसाभ्याञ्च मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥
द्वियामं बालुकायन्त्रे स्वेद्यमादाय चूर्णयेत् ।
गुञ्जाद्वयं निहन्त्याशु कासं श्वासं क्षतोद्भवम् ॥
रसस्तालेश्वरो नाम्ना ह्यनुपानञ्च कथ्यते ।

रसरत्नाकर ।

अर्थ—पारद, रजत, मैनसिल बराबर और हरताल चौगुनी लेकर इक्षुरस और वांसारसमे २ प्रहर खरल करके सम्पुटमें बन्दकर २ प्रहर मन्द अग्निपर पकावे, तब यह तललग्नरस बनेगा। मात्रा—२ रत्तीकी।

गुण—कास, श्वास और उरःक्षत (सिल) मे लाभदायक है।

तालसिन्दूर (माणिक्य रस)

दरदं गन्धकं तालं विशुद्धं गृहकन्यका ।
पलाशपुष्पस्वरसैः प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

-विटल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

विमृद्य वालुकायन्त्रे त्र्यहं पक्त्वा समुद्धरेत् ।
जायते तालसिंदूरं माणिक्यं केचिदूचिरे ॥
वातार्शः कुष्ठमेहेषु विद्रधीषु विशेषतः ।
कुष्ठाऽतिसारवातेषु गृध्रस्यामपचीषु च ।
सर्वेषु सन्निपातेषु संसर्गजनितेषु च ।
तत्तद्रोगाऽनुपानेन तत्तद्रोगहरं परम् ॥

नूतनकल्प ।

अर्थ—सिंगरफ, बलि और हरताल सब समभाग लेकर इनको कुमारीरस और पलाशपुष्प रसमें ७ दिन खरल करके शीशीमें भर बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर ३ दिनकी मध्यम अग्निपर पकावे, तो यह ऊर्ध्वलग्नरस बनता है।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण—कुष्ठ, अतिसार, वातरोग, गृध्रसी, अपची, संसर्गजरोग उपदंशादि तथा सन्निपातमें लाभदायक है।

सम्मति—इसे बनाते समय यदि इसमें बलि न डाली जाय तबभी यह रस बहुत उत्तम बनता है यदि सिंगरफ और मैनसिल डालकर ही इस रसको उड़ा लिया जाय तबभी उक्तरस ठीक बनजाता है। और उसके गुणोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और यह तीन दिनकी अपेक्षा एक दिनमें भी बनजाता है।

तालसिन्दूर (दूसरा)

रसबलिहरितालं टङ्कणं तुल्यभागं,
सममितनवसारं नागवल्या च युक्तम् ।
पुनरपिरविमूलं चार्द्रकं चित्रमूलं,
त्रिफललशुनसारं नागवल्याश्च सारम् ॥
घृष्ट्वा तन्मुनिवारान् पश्चाद्गोलं विधाय सद्वैद्यः,
मृत्कर्पटैर्विलिम्पेच्छायाशुष्कं समादाय ।
काचे भाण्डे वालुकायन्त्रमध्ये,

पक्त्वा यस्नान्पश्च तत्स्वाङ्गशीतम् ॥
भासा रक्तं सूतसिंदूररूपं,
कुष्ठं कासं सन्निपातश्च हंति ।
व्याधीनुदरजान् हन्ति पश्च गुल्माञ्ज्वरन्तथा,
ग्रहणीपाण्डुशोफौ च वातरोगांश्च नाशयेत् ॥

रत्नाकर औषधसंग्रह ।

अर्थ—पारद, बलि, हरताल और टङ्कण सब बराबर इन सबके बराबर नौसादर डालकर पानका रस, आकका दूध, अद्रकरस, चित्रकमूलकाथ त्रिफला काथ और लहसुन रस तथा पान रसकी एक एक भावना देकर शीशीमें डालकर बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर ४ प्रहरकी अग्निमे पकावे तो लालवर्णका तालसिन्दूर बनेगा ।

मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—कुष्ठ, कास, सन्निपात, गुल्म, ज्वर, ग्रहणी, पाण्डु, शोथ और वातव्याधिमे लाभदायक है ।

तालसिन्दूर (तीसरा)

रसभागा रसतः पुनरेकैकस्तालमल्लगन्धकतः ।
कूप्यांद्व्यहंपरिपचेत्पवनकफौ हन्तिताल सिंदूरः ॥

सिद्धभैषज्य मणिमाला ।

अर्थ—पारद ६ भाग, हरताल, सोमल और बलि एक एक भाग सबको खरलकर कांचकूपीमे डालकर बालुका यन्त्रमें चढाकर ४ प्रहर यथाविधि पकावे ।

मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—वात, और कफ व्याधिमें दे ।

सम्मति—यह ताल सिन्दूर ठीक रसायनिक योगके तुल्य बलि डालकर बनाया गया है पारदके योग अनुकूल ही इसमे बलि डाला गया है । बाकी

कोऊहल-विरइया [१३०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो । ... समं परिभमइ तरल-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

हरतालका बलि सोमलसे मिलकर वह मनसिलमें बदल जाता है और दोनों यौगिक उड़कर एक रूप बनजाते हैं। यही तालसिन्दूर आजकल अधिक बनाया जाता है और अच्छा गुणादायक है।

तालसिन्दूर (चौथा)

चतुष्पलं तु गन्धस्य पारदञ्च चतुष्पलम् ।
पलैकं हरितालञ्च तालकार्धा मनःशिला ॥
तालार्धं टङ्कणं शुद्धं नवसारं तदर्धकम् ।
सर्वं निक्षिप्य खल्वे च मर्दयेत्कज्जलीकृतम् ॥
शाकवृक्षस्य पत्राणां रक्तवर्णं द्रवं हरेत् ।
तद्द्रवे मर्दयेत्सम्यक् काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ॥
खटिन्या मुखमाच्छाद्य वज्रमृत्तिकया तथा ।
कूपिकां लेपयेत्सप्त शोषयेदातपे खरे ॥
वालुकायन्त्रमध्ये तु कूपिकां तां विनिःक्षिपेत् ।
चुल्लिकायां विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेत्ततः ॥
यामषोडशमात्रन्तु दीप्तमध्यखराऽग्निभिः ।
स्वाङ्गशीतलमादाय खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥
तत सिन्दूरास्था गन्धं च षोडशांशं विनिःक्षिपेत् ।
मर्दयेत्पूर्ववद्द्रव्यं काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ॥
एवं सप्तविधं कृत्वा क्षिप्त्वा कूप्यां विपाचयेत् ।
स्वाङ्गशीतलमादाय उदयार्कसमोरसः ॥
सिन्दूरजं सूक्ष्मचूर्णं क्षिप्तं नागकरण्डके ।
तत्सिन्दूरं निषेवेत गुञ्जामात्रप्रमाणतः ॥
शर्करामधुपिप्पल्या प्रातरुत्थाय सेवयेत् ।
एकादशक्षयान्हन्ति सन्निपातांस्त्रयोदश ॥

आमवातं सशूलञ्च नाशयेन्नात्र संशयः।
पाण्डुं पञ्चविधं चैव कामलात्रयनाशनम् ॥
अष्टावुदरजान्रोगान्गुल्मानां पञ्चकन्तथा ।
अरोचकं पञ्चकासान् पञ्चश्वासान् जडं हरेत् ॥
स्थिरायुः कायसिद्धश्च मेध्यं चाशु शुभप्रदम् ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगनिवारणम् ॥
इति धन्वन्तरिप्रोक्तं सिन्दूरं लोकपूजितम् ॥

बृहद्योगतरङ्गिणी ।

अर्थ—पारद, बलि प्रत्येक २० तोला, हरताल ५ तोला, मैनसिल २½ तोला, सुहागा २½ तोला, नवसादर १½ तोला सबको साखूके पत्तोंके रसमे ३-४ दिन खरल करके शीशीमे भरकर बालुका यन्त्रमे रखकर १६ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे, पुनः निकालकर इस सिन्दूरसे सोलहवां $\frac{1}{16}$ भाग बलि मिलाकर पुनः कूपीपाक करे, इसतरह पुनः ७ बार कूपीपाक करे तो यह तालसिन्दूररस तय्यार होता है। मात्रा—१ रत्ती ।

अनुपान—पीपल और शहदके साथ दे ।

गुण—क्षय, सन्निपात, आमवात, शूल, पाण्डु, कामला, उदररोग, गुल्म अरोचक, कास और श्वासमे लाभदायक है। यह अच्छा बलवर्द्धक भी है।

सम्मति—इसको पुनः पुनः कूपीपाक करनेके लिये षोडश भागसे भी कम बलि दिया जाय तो अच्छा है। बलिका कुछभाग इसलिये देते हैं कि वह यौगिक टूट न जाय, क्योंकि तालसिन्दूरको उसीतरह चढ़ाया जाय तो कुछ न कुछ बलि यौगिकसे वाष्प बनकर निकल जाता है उसकी पूर्तिके लिये बलि दिया जाता है।

तालसिन्दूर (पांचवां)

शुद्धं रसं निष्कशतं तदर्द्धं शुद्धं बलिं कज्जलिकाञ्च कुर्यात् ।
सौराष्ट्रिकागन्धकतुर्यभागा देयाऽत्र तद्वद्धरितालभागम् ॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
सम परिभमइ तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९
वाम-सहस्सं अलक्खिय-जराए ।

सम्मर्द्य गाढं नवसादरश्च तालात्तृतीयांशयुतश्च सर्वम् ।
कौमारिकाम्भःपरिमर्दितं वा तत्काकमाचीस्वरसेन तद्वत् ॥
सार्द्रश्च तत्काचघटे निधाय दृढं पचेद्वै सिकताख्ययन्त्रे ।
सपञ्च सप्तप्रहरांश्च याव देवं पचेद्भूय इह त्रिवारम् ॥
तत्सिद्धसूतं विनिगृह्य युक्त्या सर्वेषु योगेषु निवेशनीयम् ।
योगमहार्णव ।

अर्थ—पारद ३० तोले और बलि २५ तोले इन दोनोंकी कज्जली करे, फिर इसमे फिटकरी बलिसे बराबर भाग और इतनी ही हरताल और हरताल से ⅓ तीसरा भाग नौसादर मिलाकर घीकुंवारका रस और मकोयके रसमे एक एक दिन मर्दन करके शीशीमे भर वालुका यन्त्रमे चढाकर १२ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे, फिर इसको निकालकर घीकुंवाररस और मकोयके रसमे एक एक भावना देकर फिर इसी शीशीमे चढादे इसतरह तीनबार शीशीमे पाक करे तो यह रस सिद्ध होजायगा । इसको युक्तिके साथ हरएक रोगमे दे । मात्रा १ रत्ती ।

त्रिनेत्ररस

रसगन्धकताम्राणि सिन्धुवाररसै र्दिनम् ।
मर्दयेदातपे पश्चाद्वालुकायन्त्रमध्यगम ॥
अन्धमूषागतं यामत्रयं तीव्राऽग्निना पचेत् ।
पर्णखण्डेन सर्वेषु योज्यो रोगेषु वै रसः ॥
गुञ्जामितं देहसिद्ध्यै पुष्टिवीर्यबलाय च ।
रसोऽयं हेमताराभ्यामपि सिद्ध्यति कन्यया ॥ रसायनसग्रह ।

अर्थ—पारद, बलि और ताम्र सद समभाग लेकर संभालूके रस या क्वाथ मे खरल करके कूपीमे भर मध्यम अग्निपर वालुका यन्त्रमे रखकर ३ प्रहरकी अग्नि दे । कई जगह ताम्रके स्थानपर अभ्रकभस्म डालनेका विधान आया है, यह तल लग्नरस है । मात्रा—१ रत्ती ।

यह योग पीछेभी अन्य नामोंसे आया है ।

त्रिनेत्ररस (दूसरा)

रसताम्रगन्धकानां द्विगुणान्तरवर्धितांशानाम् ।
हस्तेन मर्दितानां पुटपक्वानां निषेवितं भस्म ॥
गुञ्जाप्रमाणमार्द्रकसिन्धूद्भवचूर्णसंयुक्तम् ।
सैरण्डतैलमाक्षिक मथवा तद्धिंगुदुग्धकोपेतम् ॥
शमयति शूलमशेषं तत्तद्रसभावितं बहुशः ।
उपचूर्णैरनुपानैस्तैस्तैः सहितंकफानिलार्तिहरम् ॥
एतच्च हरिणशृङ्गं मृतकाञ्चनहरिणटङ्कणोपेतम् ।
सघृतमधुपक्तिशूलं शमयति नक्तं त्रिनेत्ररसः ॥

रसरत्नसमुच्चय ।

अर्थ—पारद १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, बलि ४ भाग, जम्बीरी निम्बू के रसमें खरल करके सम्पुटमें बन्द करके बालुका यन्त्रमें २ प्रहर मध्यम अग्नि पर पकावे यह तललग्न रस है। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान और गुण—सैंधवचूर्णसे या एरण्ड तेलसे या शहद दे तो यह उदरशूलको दूर करता है। यह योगभी पीछे अन्य नामोंसे आया है।

त्रिपुरभैरवरस

भागो रसस्याऽश्महेम्नां भागो ग्राह्योऽतियत्नतः ।
तेभ्यो द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥
पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः ।
माषो मध्वाऽऽज्य संयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे ॥
अन्यस्मिन्रुबुतैलेन हिंगुत्रययुतो रसः ॥

रसेन्द्रसार सग्रह ।

अर्थ—पारद, बलि और सुवर्णभस्म एक एक भाग इनको कुमारीरसमे खरलकर इनसे बारहवां $\frac{1}{12}$ भाग ताम्रपत्र बारीक कराकर उनपर उक्त कल्क-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
सम्मं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९
चाम-मड्डस्सं अलक्खिय-जराए ।

रूप कज्जली चुपड़ सुखादे और इन्हें शराव सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरके मध्यम उत्ताप पर पकावे। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—मधु घृतके साथ देनेपर परिणाम शूलको दूर करता है। तथा अन्य अनुपानसे अन्य शूलमें भी लाभदायक है।

सम्मति—हमारा तो अनुभव है कि यदि इसमे सुवर्णभस्म न भी डाली जाय तबभी यह त्रिनेत्ररस शूलपर अच्छा लाभ करता है।

त्रिविक्रमरस

मृतताम्रमजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये गते द्रवे।
तत्ताम्रं शुद्धसूतश्च गन्धकश्च समंसमम॥
निर्गुण्ड्युत्थद्रवै र्मर्द्य दिनं तद्गोलमन्धयेत्।
यामैकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम्॥
वीजपूरस्य मूलन्तु सजलं चाऽनुपाययेत।
रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाऽश्मरीप्रणुत्॥

रसरत्नसमुच्चय।

अर्थ—ताम्रभस्मको प्रथम बकरीके दुग्धमे पकावे पश्चात् निकाल कर उसके बराबर पारद व बलि डालकर संभालूके क्वाथमे एक दिन खरल करके गोला बनाय शराव सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमे १ प्रहर २००° शतांशके उत्तापपर रखकर निकाल ले। मात्रा—१ रत्ती।

गुण और अनुपान—बिजौराकी जड़के छिलकेके क्वाथसे या बिजौरा जड़ छालको घोटकर उसका पानी निकाल उसके साथ देनेसे एक मासमे यह रस पथरीको निकाल देता है।

त्रिविक्रमरस (दूसरा)

शुद्धसूतं विषं तालं भृङ्गनीरेण मर्दितम्।
प्रहरद्वयमात्रञ्च वालुकायन्त्रके पचेत॥

वज्रमूषागतं पक्वं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ।
वल्लद्वयप्रमाणेन देयं निर्गुण्डिकाद्रवैः ॥
त्रिविक्रमरसो नाम सन्निपातकुलान्तकः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया और हरताल सब समभाग भांगरेके रसमे एक दिन खरलकर सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमें रख २ प्रहर २००° शतांश का उत्ताप देकर उतार ले । मात्रा—६ रत्ती ।

गुण—संभालूपत्र रसके साथ देनेसे सन्निपातमें लाभ करता है ।

त्रिसङ्कटरस

सूताऽर्कहेमताराणां समां पिष्टिं प्रकल्पयेत् ।
जम्बीरनीरसंयुक्ता मातपे शोषयेद्दिनम् ॥
ऊर्ध्वाऽधोद्विगुणांगन्धं दत्त्वा स्रावे निरोधयेत् ।
भाण्डगर्भे निरुद्ध्याऽथ द्वियामं पाचयेल्लघु ॥
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं त्रिसङ्कटो महारसः ।
हरीतक्या समं देयं द्विगुञ्जं पाण्डुरोगजित् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, ताम्रभस्म, रजतभस्म और सुवर्णभस्म सब बराबर लेकर निम्बूके रसमे एक दिन खरल करके टिकियां बनाले इससे द्विगुण बलिचूर्ण लेकर सम्पुटमें आधा नीचे आधा ऊपर बिछाकर दूसरे सम्पुटसे बन्द करके बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहर १५०° शतांशके उत्ताप पर पकावे ।

मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—हरड़ चूर्णके साथ सेवन करनेसे पाण्डुरोगमे लाभ होता है ।

त्रैलोक्य चूडामणिरस

सूतं सुगन्धं दरदेन तुल्यं विमर्दयेदम्लजलैर्दिनैकम् ।
निर्गुण्डिकाभृङ्गकृशानुहिंगुकोरण्टतोयेन दिनत्रयञ्च ॥

कोऊहल-विरइया [१२०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[1] ।
भमं परिभमइ तरुण-मय-चाउग दिट्ठी ।। १२०९
गाम-सहस्सं अलक्खिय- ।

सूतेन तुल्ये रविसम्पुटेऽथ निक्षिप्य संवेष्ट्य पुटं ददीत ।
गुडूचिकान्यूषणजातधारा विमृद्य यत्नेन पचेत्सकृत्तम् ॥
दत्त्वा विषञ्चाऽस्य कलाप्रमाणं गुडूचिका शुण्ठिकृशानुतोयैः ।
त्रैलोक्यचूडामणिरेष सूतः कणाऽऽर्द्रकेणाऽस्य ददीत वल्लम् ।

रसदीपिका ।

अर्थ—पारद, बलि और सिंगरफ बराबर एक दिन जम्बीरी निम्बूके रसमे खरल करके पश्चात् संभालु, भांगरा, चित्रक, हींगजल, पियावांसा आदिके रसोंमें तीन २ दिन खरल करके पारदके बराबर ताम्रके कटक वेधीपत्र बनाकर उन पत्रोंपर उक्त कज्जलीका लेप चढाकर सुखाले । पश्चात् उसे शराव सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरका मध्यम उत्ताप देकर शीतल करले । पश्चात् निकालकर गिलोय, त्रिकटु और मकोयके रसमें खरल करके इसमे सोलहवां $\frac{1}{16}$ भाग मीठातेलिया मिलाकर रखले । मात्रा—३ रत्ती ।

अनुपान और गुण—गिलोय और शुण्ठीके जलसे देनेपर ज्वरको नष्ट करता है ।

त्रैलोक्य मोहनरस

शुद्धसूतस्तथागन्धो वङ्गभस्म शिलाजतु ।
मौक्तिकञ्च समं सर्वं शुष्कमादौ विमर्दयेत् ॥
पाषाणभेदक्वाथेन कुमारीस्वरसेन च ।
मूर्वागुडूचीत्रिफलाकषायेण पृथक्पृथक् ॥
दिनानि पञ्च सम्मर्द्य घर्मे संशोषयेत्ततः ।
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य मुखं तस्या विमुद्रयेत् ॥
माषान्नविषचूर्णानां कल्केन भिषगुत्तमः ।
संस्थाप्य वालुकायन्त्रे चतुर्यामं विपाचयेत् ॥
चोपचीनीयचूर्णेन माषमानेन योजितः ।

त्रैलोक्यमोहनो नाम्ना गुञ्जामात्रो रसोत्तमः ॥
पर्णखण्डेन दातव्यः प्रमेहमथनः परः ॥

रसप्रदीप ।

अर्थ—पारद, बलि, वंगभस्म, शिलाजतु और मोती सब समभाग प्रथम सबको एक दिन सूखा खरल करनेके पश्चात् पाषाणभेद क्काथ, कुमारीरस, मूर्वाक्काथ गिलोयक्काथ त्रिफलाक्काथमे पांच २ दिन फिर खरल करे और प्रति भावनाके पश्चात् उसे खूब धूपमे रखकर सुखावे, पश्चात् कांचकूपीमे डाल बालुका यन्त्रमे चढ़ाकर ४ प्रहरकी मध्यमाग्निपर पकावे। शीतल होने पर निकालकर पीस रखे। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान एक माशा—चोपचीनी चूर्णके साथ देवे।

गुण—समस्त प्रमेह और वातु विकारोंमे लाभदायक है।

दरदसिन्दूररस

नवकर्षमितः शुद्धः पारदस्तत्प्रमाणतः।
रसकपूरकश्चैव रसार्द्धो दरदः स्मृतः॥
सार्धपञ्चाक्षमात्रः स्याद्गन्धकश्च सुशोभितः।
सर्वमेकत्र सम्पिष्य पूरयेत्काचकूपिकाम्॥
वालुकायन्त्रमध्यस्थां तां पचेत्क्रमवह्निना।
अहोरात्रद्वयादूर्ध्वं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥
युक्तानुपानतो हन्याद्रसोऽयं वातजान्गदान्।
सन्निपातादिकांश्चापि ज्वरादीन्हन्त्यशेषतः॥
नाम्ना दरदसिन्दूरो रसोऽयं सर्वरोगहृत्॥

रसायन संग्रह।

अर्थ—पारद, रसकपूर ९-९ तोला, सिंगरफ ४½ तोला और बलि ५½ तोला सबको खरल करके कांचकूपीमे डाल बालुका यन्त्रमे रखकर आठ प्रहर तक मध्यम उत्ताप देकर शीतल करले। मात्रा—१ रत्ती।

कोऊहल-विरइया [१३०९-

णिम्मज्जिय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
ममं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

वाम-सहस्सं

गुण—वातव्याधि, सन्निपात तथा ज्वरोंमे लाभदायक है ।

सम्मति—बलिके साथ जब रसकपूर मिलाकर अग्नि पर चढ़ाया जाता है तो रसकपूरका यौगिक नष्ट होजाता है और सारा पारद बलिकाइदमे परिणत होजाता है । इसलिये यह रससिन्दूर ही बनता है, जो गुण रसायन संग्रहवाला इसमे बतलाता है यदि रसकपूर मे बलि मिलाकर उसे कूपीपाक किया जाय तो वहभी रससिन्दूर बन जाता है और इस जैसाही गुण करता है ।

दरदेश्वररस

दरदं पञ्चपलिकं पलमेकं बलेस्तथा ।
मृदुवह्निगतां कुर्यात्कज्जलीमञ्जनाऽऽकृतिम् ॥
बलिमानं शुद्धतालं निक्षिपेत्तत्र बुद्धिमान् ।
पश्चात्खल्वे विनिःक्षिप्य त्रिदिनं मर्दयेत्तथा ॥
नियोज्य काचकूप्यान्तु लिप्तायां मृत्तिकाऽम्बरैः ।
सिकतासु पचेद्दहनैः षडहं तदनु स्वत एव हिमं दहनात् ॥
दरदेश इति क्षयकासहरो भवतीह रसः सकलाऽऽमयजित् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—सिंगरफ २० तोला और बलि ४ तोला दोनोंको पीसकर किसी करछीमे डालकर गलावे, जब द्रव रूप धारण करले तो उतार खरलमे डालकर उसमे ४ तोला हरताल मिलाकर ३ दिन खरल करनेके पश्चात् शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमे चढाकर ६ दिनकी मध्यम अग्निदे । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—क्षय, कास, कुष्ठ और वातव्याधिमे लाभदायक है ।

दृष्टप्रभावरस

प्रागुक्तेन विधानेन रसं सम्यग्विशोधितम् ।
आदाय सूतं खल्वे च निक्षिप्याऽथ प्रमर्दयेत् ॥
हंसपाद्यर्कताम्बूलीलाङ्गलीचक्रमुण्डिकाः ।
एषां रसैः सम्मिलितै दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥

तस्य सूतस्य भागैकं गन्धकं द्विगुणं मतम् ।
कुमारीपत्रनिर्यासैस्त्रिदिनं मर्दयेद् दृढम् ॥
ततोगोलकमापाद्य भाण्डमध्ये निवेशयेत् ।
सूतात्रिगुणताम्रस्य पात्रेणाऽधो मुखेन च ॥
निरुद्ध्य सम्यग्लेपेन पात्रं पूर्येत भस्मना ।
उपरिष्टाच्छरावं तु दत्वा सम्यङ्निरोधयेत् ॥
चुल्यामारोपयेत्पश्चादग्निंप्रज्वालयेदधः ।
प्रचण्डं प्रहरांस्त्रींस्तु स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ॥
तत्सर्वं सूतकं ग्राह्यं सह ताम्रेण भस्मितम् ।
जम्बीरवारिणा घृष्ट्वा रोधयेत्स्त्रावसम्पुटे ॥
आरण्यच्छगणकै वैद्यः पुटं दद्यात्तु कौक्कुटम् ।
स्वाङ्गशीतलमाकृष्य पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥
पूर्ववत्पुटनं कृत्वा मर्दयित्वा पुनः पुटेत् ।
त्रिःसप्तवारान् कुर्वीत पुटान्यत्र रसेश्वरे ॥
ततः सूतं समादद्यात्क्षिपेत्पूर्वोक्तभाण्डके ।
ज्वरेऽतिविषमे घोरे जीर्णे वा सन्निपातिके ॥
नवे वा तं प्रयुञ्जीत रसेन्द्रं चन्द्रसंयुतम् ।
गुञ्जामात्रं ददीतैनं ज्वरितायाऽनुपानकम् ॥

रसालकार ।

अर्थ—पारदको खरलमें डालकर प्रथम हंसराज, आक, पान, लांगुली, पनवाड़ और गोरखमुण्डी इनके रस मे तीन दिन खरल करे, पश्चात् इसमे पुनः बलि डालकर कुमारीके रसमे तीन दिन खरल करके गोला बनाले, पारदसे तिगुने ताम्रकी कटोरीमे रख सम्पुटमे बन्द कर भस्म यन्त्रमे रखकर ३ प्रहरकी अग्निदे। जो ताम्र बलिकाइद बन गया हो उसे कटोरी तोड़कर उस पारदमें मिलाकर जम्बीरी निम्बूके रसमे खरल करके पुनः शराव सम्पुटमे रखकर २-२½ सेर

पिम्मंक्किय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
समं परिभमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

[१] वाम-सहस्सं अलक्खिय-जगाए

उपलोंकी अग्निमें पकावे। इसप्रकार जम्बीरीरसमे खरल करके १० वार अग्नि दे, तव यह रस तय्यार होता है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—विषमज्वर, जीर्णज्वर, सन्निपात और नवज्वरमे लाभदायक है।

नवग्रहरस

रसश्च गन्धकश्चैव मौक्तिकश्च मनःशिला।
कंकुष्ठं शङ्खभस्माऽपि टङ्कणं माक्षिकं तथा॥
नेपालश्च समांशानि निक्षिपेत्खल्वमध्यतः।
मर्दयित्वा शनैः सम्यक् त्रिफलास्वरसेन च॥
निम्बदाडिममूर्वाश्च वालचित्ररसैः पृथक्।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य वालुकायन्त्रमध्यतः॥
पटमृत्तिकयोगेन सप्तवारं विपाचयेत्।
पक्त्वा सप्तदिनान्येतत् स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत्॥
गुञ्जामात्रं प्रयुञ्जीत नागवल्लीदलाऽन्वितम्।
सर्वे ज्वरा विनश्यन्ति शीतिकाविषमादयः॥
मरीचमागधीविश्वैः पित्तवातकफोत्तरे।
कूष्माण्डफलनीरेण तापज्वरनिवारणम्॥
तिन्तिडीभस्मनीरेण पञ्च गुल्मान्विनाशयेत्।
सैन्धवेन समायुक्तमष्टशूलनिवारणम्॥
भृङ्गस्वरससंयुक्तं श्लेष्मरोगं निहन्ति च।
तत्तत्सौम्याऽनुपानेन सर्वरोगहरं भवेत्॥
नवग्रहरसो नाम्ना प्रसिद्धो भुवि राजते॥

रसकौमुदी।

अर्थ—पारद, गन्धक, मोती, मैनसिल, रेवंद उसारा, शंखभस्म, भुना सुहागा, सोनामक्खीभस्म और ताम्रभस्म सब समभाग खरलमें डालकर त्रिफला निम्ब, अनार, मूर्वा, सुगन्धवाला चित्रक इनके क्वाथों रसोंमें एक २ दिन

भावना देकर शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमे रखकर मन्द अग्निपर ७ दिन पकावे। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—पानके रससे दे।

गुण—विषमज्वर तथा अन्य ज्वरोंमे लाभदायक है।

सम्मति—यह तल लग्नरस है। १ दिनमे बन जाता है। हमें तो ७ दिन इसके परिपाक करने का कोई महत्त्व दिखाई नहीं देता।

नवग्रहरस (दूसरा)

गौरी शिला हिंगुलगन्धकञ्च रसश्च दुग्धाऽश्ममयूरतुत्थम्।
तालं शिला खर्परसंयुतञ्च कृत्वा समांशं नवखल्वमध्ये॥
सकारवल्लीरसनिम्बतोयैः यामद्वयेनाऽपि विमर्द्य गाढम्।
कूप्याश्च मध्ये विनिवेशयेच्च सबालुकाग्निं च दिनं ददीत॥
सुस्वाङ्गशीतञ्च समुद्धरेत्तं व्रीहिप्रमाणं नवनीतयुक्तम्।
समस्तवातादिसपायुजञ्च सग्रन्थिकोटिस्वहुमार्गजालम्॥
निवारयेच्चाऽपि विचित्रमेतन्नीरोगदेही सुखमाप्नुयाच्च।
नवग्रहो नाम रसोत्तमो हि समस्तगुल्मोदरशूलनाशी॥

रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—सोमल, हिंगुल, बलि, पारद, दूधपथरी, नीलाथोथा, हरताल, मैनसिल और खपरिया सब बराबर लेकर खरलमे डालकर करेले व पानके रसमे एक २ दिन खरल करनेके पश्चात् कांचकूपीमे डाल बालुका यन्त्रमे चढाकर एक दिनकी मध्यम अग्नि दे, यह तललग्नरस है। मात्रा—१ चावल।

अनुपान और गुण—मक्खनमे डालकर सेवन करनेसे वातविकार, अर्श, भगन्दर, उदरकी रसौलियां, पेटकी गाठें, गुल्म, शूलमें लाभदायक है।

नागसिन्दूर

रसेन्द्रंकुडवं सार्धं कुडवं शुद्धश्च गन्धकः।
सीसकमर्धकुडवं नवसादरतथापि च॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो¹ ।
तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

कज्जलीं कारयेदेषां भावना दापयेदिमाः ।
पलाशमूलं नायित्री तथा चाऽमरवल्लिका ॥
एतेषां स्वरसैर्भाव्यं काचकूप्यां ततः क्षिपेत् ।
मुखं सम्मुद्रय सिकतायन्त्रे वह्निं ददीत च ॥
चतुर्विंशतिभि र्यामैः क्रमवृद्धया च पाचयेत् ।
दीपाऽग्निं ह्यष्टभिर्यामै र्मध्याग्निं षड्भिरेव च ॥
हठाग्निं नेत्रयामैश्च स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
युक्ताऽनुपानतो हन्यात्सर्वरोगान् रसोत्तमः ॥

रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद २० तोला, वलि ३० तोला, सीसा २० तोला, नौसादर १० तोला सीसा गलाकर उसमे पारद डालदे फिर सबको खरलमे डालकर कज्जली करे पश्चात् पलाश मूलके क्वाथकी, नाईछोटीके रसकी, अमरबेलके रसकी एक २ भावना देकर कांचकूपीमें भर बालुका यन्त्रमें चढाकर २४ प्रहरकी मन्द, मध्यम व तीव्र अग्नि दे। ग्रन्थकार कहता है कि १६ प्रहरकी दीपाग्नि और ६ प्रहर मध्यम तथा २ प्रहर तीव्र अग्नि दे। मात्रा—१ रत्ती।

सम्मति—यह ऊर्ध्वलग्न रस बनता है रससिन्दूर तो ऊपर जाकर लग जाता है तलमे सीसा रहजाता है वह सीसाभी वलिकाइदमे परिणत होजाता है अर्थात् सीसाकी भी भस्म बन जाती है, इस सीसाको भी पीसकर रखलेना चाहिये। यह सीसाभस्म भी प्रमेह, प्रदर, वीर्य निर्बलता आदिमे लाभदायक है। यदि ऊर्ध्वलग्न और तललग्न दोनोंको मिलाकर दिया जाय तब भी बहुत लाभ करता है।

नारसिंहरस

वेदरामसुनिपक्षवेदकं, नागवंगरसगन्धकामृतम् ।
भृङ्गराजरसमर्दितंदृढं, चित्रकार्द्रकरसैर्दिनैककम् ॥

गोलकं विपच यामयुग्मकं, वालुकाघटितपूर्णयन्त्रके ।
शीतलश्च परिमर्दयेद्दृढं, वेदभागममृतं विनिक्षिपेत् ॥
नारसिंहरस एष दुर्लभो वल्लयुग्ममथ भक्षयेद्बुधः ।
राजयक्ष्मबहुमूत्रविद्रधीं श्वासकासविषमज्वराञ्जयेत् ॥
सूतिकासततापशूलहृत् मेहजालमखिलं विनाशयेत् ।
शोषपाण्डुगलरोगशान्तये रोगराजगिरिवज्रखण्डनम् ॥

रसायनसंग्रह ।

अर्थ—नागभस्म ४ भाग, बंगभस्म ३ भाग, पारद ७ भाग, बलि २ भाग और मीठातेलिया ४ भाग सबको भांगरा, चित्रक और अद्रकरसमे एक एक दिन खरल करके शराव सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर दो प्रहर की अग्निपर पकावे। पश्चात् निकालकर सबका चौथाई मीठातेलियाचूर्ण मिला खरल करके रखले। मात्रा—६ रत्ती।

गुण—भिन्न भिन्न अनुपान द्वारा देनेपर राजयक्ष्मा, बहुमूत्र, विद्रधि, श्वास, कास, विषमज्वर, सूतिकाज्वर, अवधिबन्धीज्वर, शूल, प्रमेह, पाण्डु आदि रोगोंमे लाभदायक है।

नाराचरस

रसभस्मसमं गन्धं विषं मरिचनागरम् ।
त्रिक्षारं पञ्चलवणं समभागञ्च खल्वके ॥
जीरकस्य कषायेण द्वियामाऽन्तं विमर्दयेत् ।
काचकूप्यन्तरे क्षिप्त्वा वालुकायन्त्रके पचेत् ॥
शनैर्मृद्वग्निनापाच्यं स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ।
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं क्रोधपित्तं विनश्यति ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—रससिन्दूर, बलि, मीठातेलिया, मिर्च, सोंठ, तीनों खार और पांचों नमक सब बराबर इनको जीराके काढ़ेसे दो प्रहर खरल करके सुखावे,

कोऊहल-विरइया [१२०९-

...न्निय-विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो¹ ।
...मइ तरुण-मय-चोउरा दिट्ठी ॥ १२०९

फिर शीशीमें भर वालुका यन्त्रमे चढ़ाकर मन्द अग्निपर २ प्रहर पकावे; शीतल होनेपर निकालले और पीसकर रखले । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—यह रस क्रोध जनित पित्तकोपको शान्त करता है ।

निधीश्वररस

मेघनादवचाहिंगु लशुनं काकमाचिका ।
धत्तूरो लवणं कन्या सर्वैः सूतं विमर्दयेत् ॥
दिनान्ते गोलकं कृत्वा हिंगुना वेष्टयेद्बहिः ।
पचेल्लवणयन्त्रस्थं दिनैकं चण्डवह्निना ॥
ऊर्ध्वलग्नं समादाय दृढं वस्त्रेण गालयेत् ।
काकमाच्या नागनेत्र्या हंसपाद्या विमर्दयेत् ॥
तं क्षिपेदिष्टिकायन्त्रे समं गन्धकचूर्णकम् ।
दत्त्वादत्त्वा पुटे पाच्याद्यावज्जीर्यति षड्गुणान् ॥
मृतस्तत्र न सन्देहो सर्वकार्येषु योजयेत् ।
स्वाङ्गशीतं ततो नीत्वा काकमाच्या विमर्दयेत् ॥
हंसताप्यं समश्चैव दरदं कुनटी तथा ।
अर्धभागश्च सूतश्च काकमाच्या विमर्दयेत् ॥
त्रिदिनं तं कृतं गोलं काचकूप्यां विनिः क्षिपेत् ।
यामान्द्वात्रिंशताचैव पक्त्व्यश्च हठाग्निना ॥
स्वाङ्गशीतं विमृद्नीयाद् व्याघ्रीकन्दोत्थकण्डनैः ।
एकविंशतिभि र्यामै र्घृष्ट्वा पक्वश्च कारयेत् ॥
पूजयेद्गजवक्त्रश्च भैरवं योगिनीं तथा ।
वलिदानं यथोक्तेन पूजयेच्च रसोत्तमम् ॥
शतवेधिरसं दिव्यं चन्द्रार्कौ वेधयेद् ध्रुवम् ।
देहसिद्धिश्च षण्मासै राजिकाऽर्धाऽधमानतः ॥
जरामृत्युविनिर्मुक्तः पथ्यं दुग्धौदनंसिता ।

भूगृहे च स्थितो यत्नात्सर्वरोगहरः परः ॥
शूलाऽऽध्मानादिगुल्मेषु प्लीहाऽर्शोजठरेष्वपि ।
राजयक्ष्मण्यतीसार ग्रहण्याञ्च भगन्दरे ॥
वातरोगेषु सर्वेषु ज्वरपित्तकफादिषु ।
वलीपलितनिर्णाशः पाण्डुकामलकासजित् ॥
श्वासबन्ध्यादयोरोगा नश्यन्त्येव न संशयः ।
शतवर्षोऽधिकस्यापि पुंसो वीर्यविवर्धकः ॥
दिव्यदृष्टिर्भवेत्तस्य पारदस्य निषेवणात् ॥ रससागर ।

अर्थ—प्रथम पारदको चौलाई, वच, हींग, लहसुन, मकोय, धतूरा, नमक घीकुंवार रसमें एक एक दिन खरल करे उस पारदकी गोली बनाले और उसपर हींगका लेप चढ़ाकर उसे सम्पुटमें बन्दकर वालुका यन्त्रमे रखकर एक दिन मन्द अग्निपर पकावे । पश्चात् इसको अग्नि इतनी देना चाहिये कि पारद उड़ने न पावे,पश्चात् पारदको निकालकर मकोय सर्पाक्षी हंसराजके क्वाथमे खरल करके पुनः बराबरकी बलि देकर कज्जली बनाय सम्पुटमे रखकर २००° शतांशकी अग्निपर पकावे जब बलि जीर्ण होजाय तो निकालकर पुनः बलि देकर जारण करे इस तरह षट्गुण बलि जारण करे । पश्चात् इसको मकोयके रसमे खरल करके इसमे रूपामक्खी पारदके बराबर, सिंगरफ और मेनसिल पारदसे आधा मिलाकर मकोयके रसमे ७ दिन खरल करके छोटी २ गोलियां बनाकर सुखाले इसे शीशीमे भर ३२ प्रहर यथाविधि मन्द उत्ताप पर पका कर शीतल करले; पश्चात् निकालकर व्याघ्री कन्दके रसमे २१ प्रहर खरल करके पुनः सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमे रखकर पुनः पकावे तो यह रस तय्यार होता है । मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—शूल, आध्मान, गुल्म, प्लीहा, अर्श, पेटकी बीमारियां, राजयक्ष्मा, अतिसार, ग्रहणी, भगन्दर, वातरोग, ज्वर, कामला, श्वास, वन्ध्यापन और वातपित्तके रोगोंमे लाभदायक है । इस रसकी बड़ी महिमा गाई गई है ।

फोऊहल-विरइया [१३०९-

कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
तरुण-मय-वाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

नैलि सिन्दूर

पारदं सप्तदशकं नैली त्रयोदशांशिका ।
स्तोकं स्तोकं क्षिपेत्खल्वे नैलिकां पारदे तथा ॥
उभयोर्मर्दनात् रम्यं रूपंसंजायते परम् ।
उष्मा संपद्यते तत्र नैली-पारद योगतः ॥
तापं दृष्ट्वा ततोरक्षे दात्मानं नैलि धूमतः ।
स्वांगशीतल मुद्भाव्य कूपीमध्ये निवेशयेत् ॥
कूप्यां सैकत यन्त्रेण स्थापनीयं यथा विधि ।
मन्दं मन्दं चूल्लिकाग्निः देयः प्रहर युग्मकम् ॥
बालार्क सदृश कान्ति मूर्ध्वे लग्नं रसं हरेत् ।
आनन्द परपदेन स्वामी हरिशरणेन हि ॥
आविष्कृतो रसो ज्ञेय नैल सिन्दूर नामकः ।
श्लीपदं चुल्लिकाग्रन्थि वृद्धि च मेदस स्तथा ॥
वात ग्रन्थि रुजमुग्रां गलगंडं तथा हन्यात् ।
अनुपानं तथा पथ्यं प्रदेयं बुद्धिपूर्वकम् ॥

अर्थ—पारद १७ भाग और नैलिका १३ भाग। पारदको खरलमें डालकर थोड़ा २ नैलिका डालता जाय और साथही साथ खरल करता जाय, जब नैलिकाकी वाष्पें उठने लगें उस समय अपनेको उस वाष्पसे बचावे जब सारी नैलिका पारदमे पड़ जाय और उसकी यौगिक प्रक्रिया बन्द होजाय उसे खुरचकर शीशीमें डाल बालुका यन्त्रमे रखकर २ प्रहर मन्द २ उत्ताप पर पकावे तो बड़ा सुन्दर सिन्दूरवर्ण रस ऊर्ध्व भागमें जाकर लगता है इसको खुरचकर रखले। यह मेरा नव्य आविष्कृत रस है। मात्रा—$\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती

गुण—गलगण्ड, श्लीपद तथा चुल्लिका ग्रन्थिकी निर्बलतासे होनेवाले रोग मेदोवृद्धि ग्रन्थिवात आदिमें लाभदायक है। अनुपानकी योजना स्वयं वैद्य करे।

पञ्चबलरस

तीक्ष्णहिंगुलनागानां तारहेमरसान्वितम् ।
क्रमवृद्ध्या तु संगृह्य चाङ्गेर्या मर्दनं कुरु ॥
सर्वार्द्धं गन्धकं दत्वा रसस्य त्रिगुणीकृतम् ।
बृहद्भाण्डे विनिक्षिप्य बालुकायां प्रयोजयेत् ॥
अग्निं प्रज्वालयेच्चण्डं प्रमाणं युगसङ्ख्यया ।
रसः पञ्चबलो नाम वल्लः क्षौद्रघृतान्वितः ॥
वीर्यस्तम्भं अतिमात्रं गात्रसङ्कोचनं तथा ।
आलस्यं बहुनिद्राञ्च वेदनां सर्वसन्धिषु ॥
कासं श्वासं प्रसक्तिञ्च निशायां तप्तगात्रताम् ।
आध्मानमग्निमान्द्यञ्च यक्ष्माणञ्चापि नाशयेत् ॥

रसराजशङ्कर ।

अर्थ—तीक्ष्ण लोहभस्म, हिंगुल, सीसाभस्म, रजतभस्म, सुवर्णभस्म इन्हें क्रम विवर्द्धित मात्रामें लेकर खरलमें डाल चांगेरी रसमें खरल करे, पुनः सबसे आधा बलि मिलाकर कांचकूपीमें डाल बालुका यन्त्रमे रख ४ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे । ग्रन्थकारने तीव्र अग्नि देनेके लिये लिखा है किन्तु यह तललग्नरस है, इसीलिये मेरी सम्मतिमें मध्यम अग्नि देनी चाहिये जिससे पारद यौगिक न उड़े ।

मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—वीर्य को अति स्तम्भन करता है शरीर को दृढ करता है, आलस्य, अतिनिद्रा, सन्धिपीड़ा, कास, श्वास, शरीरका गरम हो जाना, रातको हाथ पैर तपना, आध्मान और मन्दाग्नि आदिमे लाभदायक है ।

पंचलोह भूपतिरस

पलं रसं गन्धकवत्सनाभौ, शुल्वञ्च तीक्ष्णं रवितारकञ्च ।
ताप्यं ह्ययस्कान्तसुचारुपुष्पं, सर्वं विमर्द्य धूतराष्ट्रतोये ॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

विउल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९
मदसं

तच्छोषयेदातपवर्जितश्च, वटीकृतं काचघटे निदध्यात् ।
मृद्भाण्डमध्ये सिकताऽऽख्ययन्त्रे,क्रमाऽग्निना षोडशयाममेतत् ॥
गाढाऽग्निमुद्दीप्य यथाक्रमेण, तदौषधं बर्हिसमानवर्णम ।
संघर्षणाद्यत्र च रक्तरेखा, पूर्वार्धयुक्तं दृढवत्सनाभम ॥
पलं मरीचस्य सुमर्दितं तत्, ताम्बूलवल्लीदलकं समानम् ।
गुञ्जमात्रां वटीं कृत्वा सम्यक् छायासुशोषिताम् ।
पिवेद्युक्ताऽनुपानेन विषमज्वरनाशनम् ॥
सर्वाऽऽमयहरं सद्यः सदा विजयवर्धनम् ।
वाताऽर्दितं वातमेहं श्वासकासादिरोगनुत् ॥
क्षतक्षयं कफोत्थश्च पांडुकामलशूलनुत् ।
सन्निपातं निहन्त्याशु चाऽम्लपित्तं नियच्छति ॥
अजीर्णमामवातश्च ह्यर्शांसि ग्रहणीगदम् ।
अन्नद्वेषमुदावर्तमाध्मानं सोमरोगकम् ॥
पञ्चलोहक्षितीशश्च विंशतिक्षयरोगनुत् ।

रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद, बलि, मीठातेलिया, ताम्रभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, माणिक्य-भस्म रजतभस्म, सोनामक्खीभस्म, कान्तलोहभस्म और कांस्यभस्म इन सबको हसराजके रसमे एक दिन खरल करकेसबकी छोटी २ गोलियां बनाकर सुखाले, पश्चात् शीशीमे डालकर वालुका यन्त्रमे रखकर १६ प्रहरकी अग्नि देवे । इस रसका वर्ण मयूरकी ग्रीवा जैसा नीली आभायुक्त होगा और रगडनेसे लाल रेखा देगा । इसको पीसकर इससे आधा भाग मीठातेलिया और इसीके बराबर मिर्च मिलाकर सब दवाके बराबर पानका रस डालकर खरल करके एक २ रत्तीकी गोली बनावे । यह ऊर्ध्व लग्न रस है । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—उचित अनुपानके साथ देनेपर विषमज्वर, वातरोग, वातमेह, श्वास, कास, क्षय, क्षत-क्षय, कफरोग, पाण्डु, कामला, शूल, सन्निपात, अम्लपित्त,

अजीर्ण, आमवात, अर्श, ग्रहणी, अरुचि, उदावर्त, आध्मान और सोमरोगमे लाभदायक है।

पञ्चाननरस

गौरं म्लेच्छं रसं गन्धं गोलाश्च सुषवीरसैः।
मर्दनं त्रिदिनं कार्यं शुल्वपत्रेषु लेपयेत्॥
बालुकाऽऽख्ये पचेद्यन्त्रे सम्यग्यामचतुष्टयम्।
स्वाङ्गशीतं समुत्तार्य सताम्रं परिमर्दयेत्॥
गुञ्जाद्वयमितः सूतः स सितो विषमज्वरम्।
शीतोष्णापूर्वं सहसा जयेत्पञ्चाननो रसः॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च तथा त्रिदिवसज्वरम्।
चातुर्थिकं महाघोरं दुग्धभक्ताशिनां द्रुतम्॥

रसावतार।

अर्थ—सोमल, सिंगरफ, पारद, बलि और मैनसिल सबको बराबर लेकर करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करके ताम्रके कंटक वेधीपत्रोंपर यह कज्जली चढ़ादे, पश्चात् सुखाकर सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी अग्नि दे। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—शक्करके साथ दे।

गुण—शीतज्वर तथा आठों प्रकारके विषमज्वरोंमे लाभदायक है।

पाणिवद्धरस

गन्धकं पारदञ्चैव भस्मलोहाष्टकं समम्।
जीरकस्यकषायेण मर्दितं याममात्रकम्॥
कूपिकायां विनिक्षिप्य बालुकाग्निप्रयोजितम्।
गाढाग्नौ त्रिदिनञ्चैव स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत्॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं पैत्ये पादकरे स्मृतम्।
निहन्यात्सर्वपित्तार्तिं योगोऽयं पाणिवद्धकः॥ वैद्यचिन्तामणि।

कोऊहल-विरइया [१३०९-

विउल-कवोल-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो[1] ।
भमइ तरुण-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

अर्थ—पारद, बलि, आठलोहकीभस्में सब बराबर इनको एक दिन जीराके काढ़ेमे मर्दन करके सुखाले फिर शीशीमें भर वालुका यन्त्रमें रखकर तीन दिन की मध्यम अग्नि दे। यह भी तललग्नरस है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—हस्तपाद दाह तथा समस्त पित्त विकार या उष्ण प्रकृतिके रोगोंमें लाभदायक है।

पाण्डुदलनरस

हेमरौप्यरविसूतगन्धकास्तुल्यभागमिलिता विमर्दिताः ।
धातुमाक्षिकयुता द्विलोहका देवदारुशिखितोयभाविताः ॥
पाचिताः कमठयन्त्रके ततः पाण्डुरोगदलनः प्रजायते ।
वल्लमात्रमशितो मरिचाऽऽज्यैः पिप्पलीमधुयुतःसशोथहा ॥

रसावतार।

अर्थ—सुवर्णभस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, पारद, बलि, सुवर्णमाक्षिकभस्म प्रत्येक एक भाग और लोहभस्म २ भाग इन सबको देवदारु और अपामार्गके क्राथमे खरल करके शीशीमे डाल वालुका यन्त्रमें शीशी रखकर १ प्रहरकी अग्निमे पकावे। यह तललग्नरस है। मात्रा—३ रत्ती।

गुण और अनुपान—मिर्च और घृतके साथ देनेसे पाण्डुको तथा पिप्पली मधुके साथ देनेसे शोथमे लाभ करता है।

पाण्डुसूदनरस

सूतं तीक्ष्णकमेव गन्धसहितं भागेन सम्वर्धितं,
पश्चात्खल्वतले विमर्द्य विधिना चूर्णीकृतं गोलकम् ।
कूप्यां संविनिवेश्य वै सुमृदुना संलेपितायां पचत,
यामद्वादशमात्रकं हि सिकतायन्त्रेण वैद्यः सदा ॥
प्रक्षिपेच्च वरशाल्मलीरसं, त्रैफलञ्च गुडवल्लिकाद्रवम् ।
पाचयेच्च मृदुवह्निना दिनं, स्वाङ्गशीतलतमं प्रगृह्य च ॥

त्र्यूषणार्द्रकरसेन भावयेत्, पाण्डुसूदनरसोऽयमीरितः ।
शुष्कपाण्डुविनिवृत्तिदायको, रोगराजहरणः प्रकीर्तितः ॥

रसप्रकाश सुधाकर ।

अर्थ—पारद १ भाग, तीक्ष्णलोहभस्म २ भाग, बलि ३ भाग सबको खरल करके कांचकूपीमे भर बालुका यन्त्रमे रखकर १२ प्रहरकी मन्द मन्द अग्निपर पकावे । पश्चात् निकालकर पुनः सेमल, त्रिफला और गिलोय क्वाथमे एक एक भावना देकर गोला बनाकर सम्पुटमें बन्द करके पुनः बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी अग्नि देकर निकाललें; पश्चात् त्रिकटु अद्रकरसकी एक २ भावना देकर ३ रत्तीकी गोली बनाले ।

गुण—यह रस पाण्डुरोगमें लाभदायक है ।

पारदादिवटी

सुवर्णं रसभस्माऽथ माक्षिकं चाऽभ्रसत्वकम् ।
मुक्ताफलसमायुक्तं सर्वं खल्वे विमर्दयेत् ॥
जम्बीरफलजैर्द्रावैर्मर्दयेत्त्रिदिनं भिषक् ।
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्द्यं यामचतुष्टयम् ॥
चित्रमूलकषायेण मर्दयेत्त्रिदिनं भिषक् ।
हंसपादीरसे चैव मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥
आतपे शोषयित्वाऽथ कूपिकायां निवेशयेत् ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्बालुकायन्त्रमागतः ॥
पचेद्विंशतियामन्तु स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
वाराह्या च शतावर्या गोक्षुरेण च मर्दयेत् ॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य पूर्ववत्परिपाचयेत् ।
गुञ्जाद्वयं सदा खादेदनुपानविशेषतः ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो दृढदीपनपाचनः ।
वृद्धेषु सेवयेन्नित्यं पूर्णचन्द्रोदयो यथा ॥

कोऊहल-विरइया [१३०९-

नवोल-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो ।
मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

वीर्यवृद्धिर्दण्डवृद्धिः षण्डोऽपि पौरुषं भजेत् ।
अस्य सेवनमात्रेण बहुस्त्रीवल्लभो भवेत् ॥

रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—सुवर्णभस्म, रससिन्दूर, सोनामक्खीभस्म, अभ्रकसत्व और मोती सब समभाग इन्हें जम्बीरी निम्बूमे ३ दिन, अद्रकरसमें १०, दिन चित्रक क्राथमे ३ दिन, हंसराजमे ३ दिन खरल करके गोला बनाय सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमे रख २० प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—नामर्दी, वीर्य-क्षीणता, मन्दाग्नि आदि अनेक रोगोंमे लाभप्रद है।

पाशुपतास्त्र रस

पारदं म्लेच्छभस्माऽथ गन्धकश्च मनःशिला ।
पाषाणद्वितयश्चाऽथ भृङ्गीनीरेण मर्दयेत् ॥
द्विदिनं वालुकायन्त्रे चण्डाग्नौ च द्वियामकम् ।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यमार्द्रकश्चाऽनुपानकम् ॥
पाशुपताऽस्त्रनामाऽयं सर्वोऽहिकं ज्वरं हरेत् ॥

रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद, वलि, मैनसिल, ताम्रभस्म और सोमल इनको भांगरेके रसमें दो दिन मर्दन कर शीशीमे भरकर वालुका यन्त्रमे रखकर २ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—अद्रकरस और शहदसे देनेपर शीतज्वर और विषमज्वरमें लाभदायक है।

पित्तभञ्जनरस

पारदं गन्धकं ताम्रं मुशलीरसमर्दितम् ।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य वालुकायन्त्रके तथा ॥
पचेद्विपक्वं च सञ्चूर्ण्य खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ।
त्रिक्षारं पञ्चलवणं हिंगुगुग्गुलकुष्ठकम् ॥

कटुत्रयञ्च त्रिफला गान्धारी जातिकाद्वयम् ।
दीप्यत्रयं त्रिफेनश्च सूषाम्लं विषवत्सकम् ॥
एलाद्वयञ्च सौभाग्यं कुवेरो वह्निमूलकम् ।
तितिन्डीफलग्रन्थी च चूतं च दाडिमीफलम् ॥
समभागानि सञ्चूर्ण्य खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
भावयेत्सप्तवाराञ्च श्रृङ्गबेररसेन च ॥
निष्कार्धं मधुना लेह्यं यामे यामे च भक्षयेत् ।
अम्लपित्तं निहन्त्याशु ग्रहणीं दुस्तरां तथा ॥ वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, बलि, ताम्रचूर्ण, समभाग मूसलीके रसमे एक दिन खरल करके कांचकूर्पीमे भर बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्निदे; पश्चात् निकालकर इसमें निम्नलिखित वस्तुएं मिलावेः—तीनों खार, पांचोनमक, हींगसुनी, गुग्गुल, कुठ, त्रिकटु, त्रिफला, कटेरी, जायफल, जावित्री, अजवायन, अजमोद, करफस, त्रिफेन, मूपाम्ल, मीठातेलिया, इन्द्रयव, इलायची दोनों, सुहागा, करञ्ज, चित्रक, तितड़ीक, पीपरामूल, आमचूर और अनार सब बराबर चूर्ण करके अद्रकरसकी ७ भावना देकर एक २ माशेकी गोली बनाले

अनुपान और गुण—संग्रहणी वालेको यह रस तीन २ घण्टेके बाद एक २ मात्रा शहदमें देना चाहिये। अम्लपित्त और संग्रहणीमें अत्यन्त लाभदायक है।

नोट—अहिफेन तथा समुद्रफेनतो है तीसरा फेन और मूषाम्ल का पता नहीं लगता।

पित्तान्तकरस

रसेन्द्रो वत्सनाभश्च गगनं दरदं बलिः ।
तालं तुल्यानि सर्वाणि खल्वे कज्जलिकां कुरु ॥
दिनैकं भृङ्गनीरेण मर्दयेच्च ततो भिषक् ।
कूपिकोदरमध्यस्थं दिनमेकं विपाचयेत ।

[१२०९ -

कोऊहल-विरइया

[illegible]-कवोल-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो ।
[illegible]-मय-चोज्झ दिट्ठी ॥ १२०९

मात्रा चणोन्मिता योज्या पित्तजेषु गदेषु च ।
रसः पित्तान्तको नाम पित्तरोगनिकृन्तनः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, अभ्रकभस्म, सिंगरफ, बलि और हरताल सब बराबर लेकर भांगरेके रसमें एक दिन खरल करके शीशीमें भर बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्निपर पकावे । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—पित्त रोगमें लाभदायक है ।

पीतमृगाङ्करस

संशुद्धं पारदञ्चैव सुशुद्धं गन्धकं भवेत् ।
वङ्गं शुद्धं समादाय नवसादरमेव च ॥
समभागानि सर्वाणि मर्दयित्वा सुखल्वके ।
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य पावके स्थापयेद्बुधः ।
मुखे मुद्रा च नो देया धूमं संलक्षयेत्ततः ।
निर्धूमे जायमाने तु सिद्धः पीतमृगाङ्ककः ॥
मधुमेहन्तु मेहानां गणांनाशयते ध्रुवम् ।
मधुना भक्षयेच्चैव सूक्ष्मैलाचूर्णकेन च ।
रससागरसिद्धान्ते सुश्रेष्ठं स्वर्णभस्म तत् ॥

रसचण्डांशु ।

अर्थ—पारद, गन्धक, बंग और नवसादर बराबर लेकर सबको खरलमें डालकर मर्दन करनेके पश्चात् कांचकूपीमें डाल बालुका यन्त्रमें रखकर पकावे; जब निर्धूम होजाय तो शीतल होने देवे । नीचे सुनहरे वर्णका वंगभस्म प्राप्त होगा । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—इलायची शहदके साथ सेवन करनेसे मधुमेह, प्रमेह में लाभदायक है ।

सम्मति—यह वास्तवमें पारदका यौगिक नहीं होता प्रत्युत बंगका बलिसे बलिकाइद नामक यौगिक बनता है। इसका विस्तृत वर्णन आगे आपको सुवर्ण बंगमे मिलेगा।

पीयूषघनरस

हेमाऽभ्रताराणि मृतानि सूते दत्त्वा तु सूतेन समं च गन्धम्।
गन्धेन तुल्यं दरदञ्च दत्त्वाऽमृतारसेनैकदिनं विमर्द्य॥
कौरण्टभृङ्गाऽग्निविषै र्दिनैकं सूतेन तुल्येऽथ विनिक्षिपेत्तु।
पुटे सुताम्रस्य मृदा च लिप्त्वा सामुद्रपूर्णेऽथ पुटेत भाण्डे॥
ससम्पुटं तच्च विमर्द्य यामं गुडूचिकात्र्यूषणभृङ्गवेरैः।
ददीत वल्लं गदिताऽनुपानै र्ज्वरेषु पीयूषघनो रसेन्द्रः॥

रसदीपिका।

अर्थ—सुवर्णभस्म, रजतभस्म, अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, सिंगरफ और बलि सब बराबर गिलोय, पियाबांसा, भांगरा, चित्रक और मीठातेलिया इनके क्वाथ में खरल करके पारदके बराबर ताम्रकी कटोरी बनाकर उसमें रसको रख सम्पुट कर बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी मध्यम अग्निदे। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—विषमज्वरोंमे लाभदायक है।

पूर्णचन्द्रोदय

रजतसुवर्णताम्रनागबङ्गाऽभ्रककान्ततीक्ष्णविद्रुममुक्तापारदहेममाक्षिकभस्मानि, शुद्धटङ्कणमनःशिलागन्धकांश्चेति सर्वान्समभागान्गृहीत्वा मुद्गपर्णीरक्तकर्पासपुष्पक्षीरविदारीमाषपर्णीजम्बीरतुलस्यमृतास्वरसैरेकैकदिनं विमर्द्य शुष्कां वटिकां विधाय काचकूपिकायामवरुद्धय दिनत्रयपर्यन्तं त्रिविधाग्निभिर्वालुकायन्त्रे पाकं कुर्यात्। स्वाङ्गशीतमौषधं खल्वे निक्षिप्य मृगमदजातीपत्रकर्पूरैलामरिचनागकेशरत्वक्कोलकलवङ्ग पिप्पलीजातीफलानां समभागानां चूर्णं समानं मेलयित्वा नागवल्लीदलरसेन विमर्द्य गुञ्जाप्रमाणा

विरेल्ल-कवोल-कंति-भासलिय-पम्ह-वित्थारो[१] ।
. गयवाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

वटिकाः कुर्यात् । ताम्बूलीस्वरसेन सहैकैका सेवनीया । अनेनोन्मादमूर्च्छाक्षयपाण्डुकामलाहलीमककफवातदुर्ग्रहणीस्वराऽऽमयश्वासकासरक्तपित्ताऽऽनाहराजयक्ष्मप्रमेहादयो नश्यन्ति । गरुड-दृष्टिर्देहपुष्टिरक्तवृद्धिश्च भवति । दुग्धशर्करान्नं पथ्यम् ॥

सिद्धसम्प्रदाय ग्रन्थात् ।

अर्थ—रजत, सुवर्ण, ताम्र, नाग, बंग, अभ्रक, कान्त, तीक्ष्ण, प्रवाल मुक्ता, पारद, सोनामक्खी इन सबोंकी भस्म टंकण, मैनसिल, बलि सब बराबर मुद्गपर्णी, रक्तकर्पासपुष्प, क्षीरविदारी, माषपर्णी जम्बीरी, तुलसी और गिलोय इनके रस या क्वाथमे एक २ दिन मर्दनकर गोलियां इतनी बड़ी बनावे जो शीशीमे डाली जासकें, इन्हें सुखाकर कांचकूपीमें भर वालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मन्द, मध्यम अग्निपर पकावे; पश्चात् निकालकर उसमे कस्तूरी, जावत्री, कपूर, इलायची, मिर्च, नागकेशर, दारचीनी, सर्दचीनी, लवङ्ग, पिप्पली और जायफल सब उक्त रसके बराबर डालकर पानके रसमे खरल करके १ रत्तीकी गोली बनाले ।

अनुपान और गुण—पानके रससे सेवन करनेपर उन्माद, मूर्च्छा, क्षय, पाण्डु, कामला, हलीमक, संग्रहणी, गलेकी बीमारी, श्वास, कास, रक्तपित्त, आनाह, राजयक्ष्मा और प्रमेह आदिमे लाभदायक है और इसके सेवनसे नेत्र ज्योति बढ़ती है ।

पूर्ण चन्द्रोदयरस

तुल्यं तुल्यं रसं गन्धं खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
कपित्थमूलसारेण मर्दितश्च दिनत्रयम् ॥
वटिकां छायया शुष्कां भाण्डमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य बालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥
दीप्ताऽग्नौ च छिपञ्चयामं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
कपित्थमूलसारेण त्रिदिनं मर्दयेत्क्रमात् ॥

बिल्वमूलकषायेण मर्दयेत्त्रिदिनं पुनः ।
चतुर्जातक कर्पूर लवङ्गकुसुमान्वितम् ॥
सर्वं रससमञ्चैव मेलयित्वाऽथ चूर्णकम् ।
लाजचूर्णं सितामिश्रं मधुना सह सेवयेत् ॥
वल्लद्वयमितः सूतो वमनस्तम्भनस्तथा ।
कासादिपञ्चछर्दीना मरुच्येर्नाशकः परः ॥
हृद्रोगं स्वरभङ्गञ्च मन्दाग्निञ्च निवारयेत् ।
पूर्णचन्द्रोदयो नाम निर्मितः शूलपाणिना ॥ वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, बलि समभाग लेकर कज्जलीकर कैथामूल क्वाथमे ३ दिन मर्दनकर शीशीमें डाल बालुका यन्त्रमे रखकर १२ प्रहरकी तीव्र अग्नि दे । फिर निकालकर कैथामूल छालके क्वाथमे, बिल्वमूल छाल क्वाथमे तीन ३ दिन खरल करे पश्चात् इसमें तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर, कपूर और लवङ्ग यह सब उक्त रससिन्दूरके बराबर मिलाकर ६ रत्तीकी गोली बनाले ।

अनुपान और गुण—लाई चूर्ण, मिश्री, मधुके साथ सेवन करनेसे वमन, कास, अरुचि, हृद्रोग स्वरभंग और मन्दाग्निमें लाभ होता है ।

पूर्णाभ्रकरस

शुद्धं सूतं समं गन्धमभ्रकञ्च मनःशिलाम् ।
चूर्णितं वरुणाद्रावे मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥
काचकूप्यां निवेश्याऽथ बालुकायन्त्रके पचेत् ।
षड्यामान्ते समुद्धृत्य सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं शीतपैत्यनिवारकम् ॥ वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, बलि, अभ्रकभस्म और मैनसिल सब बराबर इनको वरुणा क्वाथमे दो दिन खरल करके गोलियां बनाकर सुखाले फिर शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमे रखकर ६ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे । मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—इसके सेवनसे शीतपित्त और उदर्दमे लाभ होता है ।

प्रताप तपन रस

गन्धकं गरलं तालं सूतकं लोहटङ्कणम्।
खर्परं स्वर्जिकाक्षारं मञ्जिष्ठां हिंगुलं समम्॥
रसेन मर्दितं पिण्डं निर्गुण्डीहस्तितुण्डयोः।
अष्टयामं पचेत्कूप्यां निरुद्धय सिकताह्वये॥
ततः सिद्धं समादाय रक्तिकामार्द्रकेण तु।
सन्निपातविनाशाय प्रतापतपनो रसः॥
दधिभक्तं तथा दुग्धं छागमांसञ्च योजयेत्॥

रसराज सुन्दर।

अर्थ—वलि, मीठातेलिया, हरताल, पारद, लोहचूर्ण टङ्कण खर्पर सज्जीखार, मंजीठ और सिंगरफ सब बराबर हाथीसुण्डी, सभालूके रसमे खरल करके शीशीमे भर वालुका यन्त्रमें रखकर ८ प्रहरकी मध्यम अग्नि दे।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण—सन्निपातमे लाभदायक है।

प्रतिज्ञा वाचक रस

सूतं शुद्धं भागमेकञ्च तालाद् द्वौ भागौ चेद्वेदसङ्ख्या शिलायाः।
ताम्रस्यैवं भागयुग्मं प्रकुर्याद्गल्लातं वै वेदभागं तथैव॥
अर्कक्षीरै र्भावयेच्च त्रिवारं कृत्वा चूर्णं कारयेद्गोलकं तत्।
स्थालीमध्ये स्थापितं तच्च गोलं दत्त्वा मुद्रां भस्मना सैन्धवेन॥
धूमस्यैवं रोधनञ्च प्रकुर्यात्क्षणौ दद्यात्स्वेदनं मन्दवह्नौ।
पश्चात्तोयेनैव भाव्यञ्च चूर्णं गोलं कृत्वा मन्दवह्नौ विपाच्य॥
पश्चादेनं भक्षयेद्वै रसेन्द्रं वल्लश्चैकं शर्कराचूर्णमिश्रम्।
तद्वत्कृष्णामाक्षिकेणैव ज्वरं हन्यादेतत्सर्वदोषोत्थितां वै॥

रसप्रकाश सुधाकर।

अर्थ—पारद १ भाग, हरताल २ भाग, मैनसिल ४ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, भिलावां ४ भाग सबको आकके दूधमे ३ दिन खरल करके गोला बनाकर सुखाले सम्पुटमे बन्दकर लवणयन्त्र या भस्मयन्त्रमे रखकर मन्द अग्नि पर ४ प्रहर पकावे। मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान और गुण—पीपल और शहदसे देनेपर समस्त ज्वरोंमे लाभ करता है।

प्रमदेभाऽङ्कुशरस

विशुद्धो रसो माससुन्मत्ततैले दशाऽहानि तैले तथोषर्बुदेषु।
विपाच्योऽष्टयामैः क्षति बैल्वतैली मृदुस्वर्णपत्राणि सूताऽष्टमांशात् ॥
दिनं पेषयेत्तत्समं गन्धकं हि कृतां कज्जलीं तां विनिक्षिप्य कूप्यां।
ततो भस्म सादर्कं यामं विधाय स्वशीतं समादाय सिन्दूरकल्पम् ॥
त्र्यहं खाखसत्वक्कषायै विमर्द्य त्र्यहं वैजवी जातिसारै दिनैकम्।
तथा कोकिलाक्षस्य घस्रं कषायैर्विदार्याऽथ भूमौ क्षिपेद्गोलकं तत् ॥
मृदा द्व्यंगुलोन्मानयाऽऽच्छाद्य पश्चादरण्योपलद्वन्द्ववह्निं विधाय।
सुशीतं मृदुस्वेदमाप्तं रसेन्द्रं गृहीत्वा ततः भागमानं वदामः ॥
रसाद्ध्योसवैक्रान्तजातीप्रसूनं लवङ्गं द्विभागं त्रिभागं भुजङ्गम्।
सितं कान्तसंज्ञं विषं केशराख्यं त्रिजातं तथा वङ्गभस्मं द्विभागम् ॥
अहेःफेनतापीजयोरर्द्धभागं विमर्द्याऽथ यामं मरुद्भूप्रसूनैः।
विदारीवरावासकैः नागवल्ली बलाशाल्मलीमर्कटीमूलजातैः ॥
पयोभिश्च गोधाऽङ्घ्रिरम्भासमुत्थैः शताह्वासहादीप्यमुण्डीसमुत्थैः।
महापत्रिकायष्टिहस्तिद्रवैश्च विभाव्यं त्रिवारं ततो गोलकस्य ॥
दिनं स्वेदयेत्खाखसत्वक्कषायैर्निबध्याऽम्बरे दोलिकायन्त्रमध्ये।
अकूपारशोषस्य तैलेन भाव्यो द्विवारं तथा स्वर्णबीजस्य तैलैः ॥
तथा वैजयै जातिसारस्य तैलैर्द्विवारं विभाव्योऽथ गोलं निबध्य।

कोऊहल-विरइया [१२०९-

चिउर-कवोल-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो । ...

... रस-भय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

ततोमृत्पटैस्त्रिर्धराधारयन्त्रे पचेत्पूर्ववत्स्वाङ्गशीतं ततस्त्रिः ॥
उशीरेण भाव्यः सुगन्धेन तद्वत्तथाऽजोङ्ककेनाऽथ कस्तूरिकाद्भिः ।
त्रिभाव्यं शिवद्विट्कुचाद्भिः शिफालीद्रवैः शातपत्रोद्भवैः सिद्ध एषः ॥
तमेनं स्वतुर्यांशकर्पूरयुक्तं निषेवेत वल्लद्वयं वाऽस्य मात्रा ।
लवङ्गं सिता पुष्पसारोऽनुपानं हितं क्षीरपानं विवर्ज्योऽम्लवर्गः ॥
पठित्वा च पञ्चाऽक्षरं राजमन्त्रं कुमारीश्च यन्त्राणि सम्पूज्य यत्नात् ।
निषेवेत पूर्वोक्तरीत्या रसेन्द्रं निषेवेदसौ कामिनीसङ्गमञ्च ॥
त्रिदोषघ्न एषोऽबलागर्वहारी वशीकार्यकारी महास्तम्भकारी ।
सदा पुंध्वजोत्थानकारी नराणां तथा पातकारी न चार्चाक्र च कारी ॥
यामेकवारं भजते नवाऽङ्गनां साऽऽजन्मदास्यं भजते विनिश्चला ।
बहुप्रकारं भजतोऽपि सङ्गमं तेजो बलं नैव जहाति किञ्चित् ॥

रसमेनं सेवयित्वा न सेवेत स्त्रियं यदि ।
निर्गच्छेन्नेत्रयो वीर्यं नेत्रनाशस्तथा भवेत् ॥

नाऽङ्गं शैथिल्यभावं व्रजति न च कटिस्त्रुट्यते तस्य कान्तिः,
हेमाभा जायतेऽष्टादशविधमतुलं नाशमेति प्रमेहम् ।
नष्टं वीर्यं प्रपन्नं भवति यदि पुमान् सेवते रम्यकान्तां,
षण्ढो वा वाजितुल्यो जनयति तनयान् सिंहतुल्यप्रतापान् ॥
एनं रसश्च प्रमदा भजेत कुमारिकातुल्यवपुष्मती स्यात् ।
एतद्रसास्वादनतः पुमांस्तां युवाऽपि यातुं न समर्थ एव ॥

गर्भाशयगतान्दोषाहनन्ति वातकफोद्भवान् ।
प्रमदेभांकुशोनाम रसराजः सुसिद्धिदः ॥

बृहद्योग तरङ्गिणी ।

अर्थ—पारदको धतूरेके तेलमें १००° शतांशके उत्तापपर एक मासतक पकावे, फिर ८ दिन इसीतरह बिल्वबीज तेलमे पकावे । पकानेका विधान इन्नी मन्द अग्निपर बतलाया है कि २४ घण्टेमे उस पाककी स्थितिमे धतूर

तेल ४-५ तोले जले। जब यह क्रिया पूरी होजाय तो निकालकर खरलमें डाल उसमें पारदसे अष्टमांश $\frac{1}{8}$ सुवर्ण मिलादे; पश्चात् बराबरका बलि डालकर कज्जली बनाकर इसको बालुका यन्त्रमें चढाकर १२ प्रहरकी मध्यम अग्निपर पाक करे तो यह सिन्दूर नामा रस तैयार होजाता है।

इस रससिन्दूरको खरलमे डालकर पोस्तके क्राथसे ३ दिन भङ्गबीज या विजया बीजसारमें ३ दिन जायफलके क्राथमे १ दिन तालमखानाके क्राथमें एक दिन खरल करके विदारीकन्दके मध्यमे भरकर इस कन्दपर दो-दो अंगुल मिट्टीकी तह चढ़ाकर कोई ४-५ सेर जङ्गली उपलोंमें रखकर मृदु स्वेदित करे, पश्चात् निकालकर अभ्रकभस्म, वैक्रान्तभस्म, जावत्री और लौंग इसमे दो दो भाग, सीसा ३ भाग, रजतभस्म, कान्तलोहभस्म, मीठातेलिया, केशर, तज, पत्रज, इलायची और बगभस्म यह पारदसे दो भाग, अफीम, सोनामक्खी, जावत्री पारदसे आधा २ भाग सबको एकत्र करके आकके फूल, विदारी, त्रिफला, बांसा, पान, खरैटी, सेमल, कौंच, गोदुग्ध, छोटीगोरखमुण्डी केला, सौंफ, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, अजमोद, बड़ीगोरखमुण्डी, जावत्री, कङ्घी, मुलहटी, हस्तिकर्णपलाश इन सबके स्वरस या क्राथोंकी तीन २ भावना देकर गोला बनाकर इसको कपड़ेमें बांधकर दोलायन्त्रमे लटकाकर पोस्त क्राथ में एक दिन स्वेदन करे, पश्चात् निकालकर समुद्रशोषके तेलमे एकबार, धतूरा के तेलमे दोबार, भांगबीजोंके तेलमे, जायफलके तेलमें दो दो बार भावना देकर पुनः इसका गोला बनाकर विदारीकन्दके बीचमे भरकर दो अंगुल मोटी मिट्टीकी तह चढ़ाकर भूधरयन्त्रमें रखकर चार पांच सेर बनोपलकी अग्निदे। पश्चात् निकालकर खस, त्रिसुगन्ध, केशर, कस्तूरी, केवड़ा, तुलसी, गुलाब, हारसिंहारके रसकी तीन २ भावना देवे तो यह रस तय्यार होता है।

मात्रा—६ रत्ती।

अनुपान—यह रस आधी रत्ती कपूर, १½ रत्ती लौंग ३ रत्ती मिश्री ६ माशे १ तोला शहद मिलाकर खावे और ऊपरसे दूध पान करे।

फोऊदल-विरइया [१२०९-

विंदेल-कन्तोल-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो।
मयचोउरा दिट्ठी ॥ १२०९
अलक्खिय-जराए।

गुण—इस योगकी बड़ी महिमा गाई गई है कि मनुष्य कैसाही नामर्द हो उसे मर्द बना देता है, अति वीर्यवर्द्धक, स्तम्भक स्त्रीवशकारक है। बुढापेमे भी इसके सेवनसे पुरुष अनेकों स्त्रियोंसे रमण कर सकता है इसके सेवनसे एकबार फिर नवजीवन प्राप्त होता है इत्यादि।

प्रमेह सेतु रस

एकः सूतो द्विधा वङ्गो द्वाभ्यां द्विगुणगन्धकः।
कूपीपक्वो महासेतु वङ्गस्थानेऽथवा विधुः॥

रसचिन्तामणि।

अर्थ—पारद १ भाग, बंग २ भाग, बलि ६ भाग, बंगको गलाकर उसमे पारद डाल फिर बलि डालकर कज्जली बनाकर कूपीमे भरकर वालुका यन्त्रमे पाक करे, यह ऊर्ध्व लग्न रस है।

इस योगमे वगके स्थान पर रजत और सीसाभी डालकर यह रस तय्यार करते हैं।

सम्मति—यह रस दो भिन्न २ यौगिक बनाता है। पारदका बलिकाइद यौगिक तो ऊपर उड़कर लगता है और तलमे बग, रजत या सीसाका बलिकाइद यौगिक होता है। जब शीशी तोड़कर इस रसको निकाला जायतो ऊपर का रससिन्दूर और नीचेका वग, सीसा आदि जो हो दोनोंको पीसकर मिलादे, कुछ आचार्योंकी सम्मति है कि इस रसको तललग्न बनाना चाहिये। यदि तललग्न या उर्ध्वलग्न किसी तरहभी बनाना हो मेरी सम्मतिमें तो इसमे बलि, पारद और वग यौगिकके अनुकूल डालना चाहिये। अधिक मात्रामे डाली हुई बलि जल जाया करती है रहती नहीं, इस रसका दूसरा नाम महासेतु रस भी है।

प्रमेहहर रस

मृतं सूतं मृतं ताम्रं तारभस्म च हाटकम्।
हंसपादीरसेनैव समभागञ्च खल्वके॥

दिनैकंमर्दयेद्गोलं काचकूप्यां निवेशयेत् ।
बालुकायन्त्रके चैव द्वियामं परिपाचयेत् ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य गुञ्जामात्रं प्रदापयेत् ।
पञ्चाङ्ग निम्बतुल्यानां कषायमनुपाययेत् ॥
हन्ति हारिद्रकं मेहं सर्वमेहकुलान्तकः ॥ वसव राजीय ।

अर्थ—रससिन्दूर, ताम्रभस्म, रजतभस्म, सुवर्णभस्म सब बराबर लेकर इनको हंसराजके क्राथमे भावना देकर सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर २ प्रहरकी मन्द अग्निपर परिपाक करे। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान और गुण—वकायन पञ्चाङ्गके काढेसे देनेपर हरिद्राप्रमेह—जिसमे हल्दी जैसा मूत्र आता है—उसके लिये लाभकारी है और इससे भिन्न अन्य प्रमेहोंमे भी लाभदायक है।

प्रमेहान्तकरस

बङ्गं नागं चाऽभ्रकञ्च लोहं कान्तञ्च पारदम् ।
ताम्रञ्च तीक्ष्णादरदं गन्धकं टङ्कणान्तथा ॥
रसकञ्च समांशानि खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
हंसपादीरसेनैव मर्दितञ्च दिनत्रयम् ॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य बालुकायन्त्रमध्यगम् ।
यामद्वयेन सम्पक्वं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥
कर्पूरं कुंकुमञ्चैव चातुर्जातञ्च चन्दनम् ।
जातीफलं जातिपत्रं चूर्णांशं सकलं क्षिपेत् ॥
बिम्बीपत्ररसेनैव मर्दितञ्च दिनत्रयम् ।
पुनस्तु गोलकं कृत्वा छायाशुष्कं सुषेवयेत् ॥
शर्करानवनीताभ्यां हन्ति मेहांश्चिरोत्थितान् ।
मेहान्तकरसो नाम रसोऽयं सर्वरोगजित् ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

...न विठेल-कलोल-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो ।
... तुरगा-मय-चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९
... रसं अलक्खिय-जराए ।

अर्थ—वंग, सीसा, अभ्रक, मुण्डलोह, कान्तलोह, पारद, ताम्र, तीक्ष्णलोह, सिंगरफ, बलि, टङ्कण और खपरिया इन सबकी भस्मे बराबर ले। और इनको हंसराजके रसमे ३ दिन खरल करके कांचकूपीमे चढाकर बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्नि दे, शीतल होनेपर निकाल कपूर, केशर, तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर, चन्दन और जायफल सब उपर्युक्त रसके बराबर डालकर कन्दूरीके रसमे ३ दिन मर्दन करके २ रत्तीकी गोली बनाले।

अनुपान और गुण—शक्कर और मक्खनसे सेवन करनेपर समस्त प्रमेहों मे लाभ होता है।

प्रमेहारिरस

सूतं बाहुमितं बलिं शशिमितं सम्मर्द्य तत्कज्जलीं ।
कृत्वा मागधिकाशिवोत्थसलिलैः सम्मर्द्य घस्रं पुनः ॥
कूप्यां पारदकालिकां सुपिहितां मृत्स्नां शुकैः सप्तभिः ।
संवेष्ट्य त्रिदिनं विशोष्य लवणाऽऽपूर्णो क्षिपेद्भाण्डके ॥
पक्त्वायामचतुष्टयं तु शिशिरां भित्त्वा च तां कूपिकां ।
तं सूतं द्विलवं लवश्च गगनं लोहं लवं मर्दयेत् ॥
सिद्धो वल्लमितः सितासुमधुना वत्सादनीसत्वतो ।
नोचेत्क्षौद्रकणायुतश्च सरसा सर्वप्रमेहाञ्जयेत् ॥
रोगाधीश्वरपाण्डुकामलहरिद्राभत्वपित्तोद्भवान् ।
सर्वांश्च प्रदरामयान्विजयते मेहारिनामा रसः ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—पारद २ भाग, बलि १ भाग दोनोंको पीपल और हरड़के क्वाथमे एक दिन खरल करके शीशीमे डालकर बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी तीव्र अग्नि दे इस रससिन्दूरसे आधा भाग अभ्रक और इतनाही लोह मिलाकर रखले। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—शक्कर मधुके साथ या गिलोय सत्व पीपल और मधुके साथदे।

गुण—प्रमेह, राजयक्ष्मा, पाण्डु, कामला, पित्ताधिक्य और प्रदर मे लाभदायक है।

प्रलयानलरस

पारदं वत्सनाभञ्च हिंगुलं टङ्कणं समम्।
त्रिक्षारं पञ्चलवणं दीप्यकं कृष्णजीरकम्॥
मृतं तीक्ष्णं मृतं ताम्रं सर्वं खल्वे विमर्दयेत्।
कटुत्रयकषायेण वालुकायन्त्रके पचेत्॥
षड्यामान्ते समुद्धृत्य फणिपित्तेन भावयेत्।
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं सर्वेषां सन्निपातिनाम्॥
अनुपानविशेषेण रसोऽयं प्रलयानलः॥

वैद्यचिन्तामणि।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, सिंगरफ, टङ्कण, सज्जीखार, जवाखार, नवसादर, नमक पांचो, अजवायन, कालाजीरा, तीक्ष्णलोहभस्म और ताम्रभस्म सब बराबर लेकर त्रिकटुके क्काथकी एक भावना देकर सम्पुटमें बन्द करके वालुका यन्त्रमे रखकर ६ प्रहरकी अग्निदे। पश्चात् निकालकर कालेसर्पके पित्त की एक भावना देकर १ रत्तीकी गोली बनाले।

गुण—विशेष २ अनुपानसे समस्त सन्निपातोंमे लाभदायक है।

प्रलय कालाग्निरुद्र रस

हिंगुलोत्थरसाद्भागौ द्वौ भागौ गन्धकस्य च।
बाणभागौ खगोदन्तौ कालभागा मनःशिला॥
टङ्कणं नेत्रभागञ्च रसकाद्दतुभागकाः।
एकभागन्तु नैपालं नेत्रभागं हलाहलम॥
दरदं चाऽग्निभागञ्च द्वौ च द्वौ ताम्रलोहयोः।
खल्वे रसैरशेषन्तु क्षीरेणाऽर्कस्य मर्दयेत्॥

फोऊहल-विरइया [१३०९-

न्निय-विडंक-कवोल-कंति-भामलिय-पम्ह-वित्थारो ।
तरुणा-मय-चोउरा दिट्ठी ॥ १३०९

अलक्खिय-उत्तरा ।

सिन्धुवाराऽग्निधत्तूरजम्बीरैः कारवेल्लकैः ।
विपचेत्ताम्रपात्रान्ते द्वियामं बालुकाऽग्निना ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य खल्वमध्ये विमर्दयेत् ।
गन्धतालं विषं म्लेच्छं भागार्धं निक्षिपेत्ततः ॥
दशमूलकषायेण मर्दये द्यामयुग्मकम् ।
पिप्पलीबृहतीपक्व फलनीरेण मर्दयेत् ॥
पञ्चकोलकषायेण मर्दये द्यामयुग्मकम् ।
वल्लमात्र प्रमाणेन शृङ्गवेररसेन च ॥
योजयेत्तरुणे पित्तश्लेष्मवातज्वरेऽपि च ।
द्व्याहिके तरुणे चाऽपि चातुर्थिकत्रिरात्रिके ॥
प्रत्यहान्तरिते चाऽपि धातुगे चाऽस्थिगेऽपि वा ।
अन्यैश्च विविधै दोषै जनिते रुजि योजयेत् ॥
दाहस्वेदोल्वणे जाते मुहुर्मुहुरुपागते ।
पयः शाल्योदनं पथ्यं दधितक्रसमन्वितम् ॥
सितयामिश्रतोयेन नारिकेलाम्बुना तथा ।
कदलीफलपक्वानि सर्वे च मधुरा रसाः ॥
ताम्बूलं चन्द्रसंयुक्तं देयं तत्र भिषग्वरैः ।
वापीकूपतडागादिस्नानं कुर्याद्यथेच्छया ॥
प्रलयानलरुद्राऽऽख्यो रसः कालाऽग्निभैरवः ।
प्रसन्नभैरवो नाम्ना कथ्यते प्राणिनां हितः ॥
शिवेन बलिनाऽचिन्त्यकिरातेनोदितः पुरा ॥

रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग, अभ्रकभस्म, गोदन्ती हरतालभस्म पांच पांच भाग, मैनसिल, टङ्कण तीन तीन भाग, रसक ६ भाग, जैपाल १ भाग सबको अर्क दुग्धमें, संमालू, चित्रक, धतूरा, जम्बीरी और करेले के रसमें

या इन द्रव्यों के क्वाथमे खरल करके ताम्रकी कटोरीमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर २ प्रहरकी मन्द अग्नि दे, पश्चात् निकालकर बलि, हरताल, मीठातेलिया, सिंगरफ पारदसे आधा २ भाग लेकर मिलादे और दशमूल, पीपल, बड़ीकटेरीफल, पंचकोल आदिके काढ़ेमे दो दोप्रहर मर्दनकर ३ रत्तीकी गोली बनाले।

मात्रा—१ गोली।

गुण—प्रत्येक विषमज्वर, सन्निपात, विविध दोषजनितज्वर, धातुगत-ज्वर आदिमें लाभदायक है।

प्राणेश्वर रस

गन्धकाऽभ्रं समं सूतं वाराहीरसमर्दितम्।
हंसपादीरसेनाऽपि मर्दयेत्त्रिदिनं मृदु॥
काचकूप्यन्तरे क्षिप्त्वा मुखं तस्य निरुद्ध्य च।
पाचयेद्बालुकायन्त्रे तथा यामचतुष्टयम्॥
स्वाङ्गशीतलमादाय मर्दयेदेभिरौषधैः।
पञ्चकोलञ्च त्रिक्षारं जीरकद्वयदीप्यकम्॥
मरिचं पञ्चलवणं गुग्गुलुञ्च विषद्वयम्।
त्रिजातकं लवङ्गञ्च वरारास्नाऽश्वगन्धिका॥
जम्बीराऽऽर्द्रकभृङ्गाणां रसैः सम्मर्दयेत्पृथक्।
सप्तरात्रं ततो गुञ्जाप्रमाणां वटकीकृतम्॥
तत्तद्रोगाऽनुपानेन सेवयेत्सर्वरोगजित्।
सन्निपातमभिन्यासं धनुर्वातञ्च तान्द्रिकम्॥
कासश्वासाग्निमान्द्यञ्च पाण्डुकामलिपीनसान्।
शोफं गुल्मं तथाऽर्शांसि क्षयञ्च ग्रहणीगदान्।
ज्वरं कुष्ठं प्रमेहञ्च नाशयेन्नाऽत्र संशयः।
सर्वेषां वातरोगाणां महाप्राणेश्वरो रसः॥ वैद्यचिन्तामणि।

अर्थ—वलि, पारद, अभ्रकभस्म सब वरावर वाराहीकन्दके रस और हंसराजके रसमें तीन २ दिन मर्दनकर शीशीमें डाल वालुकायन्त्रमें रख ४ प्रहरकी अग्नि देकर निकाल ले फिर उसको पञ्चकोल, तीनों खार, दोनों जीरा, अजवायन, मिर्च, पांचों नमक, गुग्गुल, मीठातेलिया, लांगली, त्रिजात, लौंग, त्रिफला, रास्ना, असगन्ध, जम्बीरी निंबू, अद्रक और भृङ्गराज इनके रसमें या क्वाथमें भिन्न २ सात दिन मर्दन कर १ रत्तीकी गोली वनाकर रखले और भिन्न २ अनुपानसे दे।

गुण—सन्निपात, धनुर्वात, अभिन्यास, तन्द्रिक, कास, श्वास, अग्निमान्द्य, कामला, पाण्डु, पीनस, शोथ, गुल्म, अर्श, त्तय, ग्रहणी, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह और वातरोगमें लाभदायक है।

प्राणेश्वररस

रसाऽभ्रगन्धान्सविषान्समानान् सुशुद्धियुक्तान्निपुणः प्रगृह्य ।
पुनर्नवालाङ्गलिदेवदालीसुवर्णदुग्धीजरसेन वृक्याः ॥
दिनं दिनं घर्मविभावितं तच्छुष्कं विधायाऽथ पुनश्च तत्र ।
धत्तूरकासघ्नसुकाकमाचीब्राह्मीसहादेव्यपराजितानाम् ॥
सर्वोत्थवारिभिश्च विमर्द्य सम्यक् मृत्कर्पटैः सम्पुटके निरुद्ध्य ।
भाण्डे पचेद्वालुकसम्भृते तमूर्द्ध्वपुटत्र्यूषणटङ्कणाख्यैः ॥
कलांशकं तत्र चिपं नियोज्यं प्राणेश्वरोऽयं शिव एव साक्षात् ।
पात्रेऽष्टकोणे विरचय्य पद्मं मध्ये रसं सर्वदले दिगीशान् ॥
सम्पूज्य वल्लं सहनागवल्लीदलेन सिद्धं सिकताऽनुपानम् ।
ज्वरग्रहण्योरतिसारगुल्मत्तयेष्वजीर्णे सहकासपाण्डौ ॥
जीर्णे देयं न तु पौत्रिकाणि मांसानि शस्तोऽत्र जलाभियोगः ।

रसराजशङ्कर ।

अर्थ—पारद, वलि, मीठातेलिया; अभ्रकभस्म सब वरावर, पुनर्नवा लांगली, देवदाली, सत्यानासी, पाठा, धतूरा, कसौंदी, मकोय, ब्राह्मी, सहदेवी,

विरनुक्रान्ता इनके रसोंमें या क्वाथमें भावना देकर धूपमें सुखाकर शीशीमे भर बालुकायन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्नि देकर निकाल ले, पश्चात् इसमें पारदसे सोलहवां भाग त्रिकटु, टङ्कण और मीठातेलिया चूर्ण मिलाकर ५-६ घण्टे सूखा खरल करके रखले।

मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान—पानका रस या मधु शर्करासे दे।

गुण—ज्वर, अतिसार, गुल्म, क्षय, जीर्णज्वर, खांसी और पाण्डुमें लाभदायक है।

फणिपति रस

शुद्धं सूतं समं गन्धं चाऽभ्रकं लोहभस्मकम्।
ताम्रभस्म समं मर्द्यं जम्भनीरेण संयुतम्॥
द्विदिनं गुटिका कार्या काचकूप्यां विनिक्षिपेत्।
विलिप्य मृत्तिकावस्त्रं बालुकायन्त्रके पचेत्॥
षड्यामान्ते समुद्धृत्य गुञ्जामात्रं प्रदापयेत्।
अनुपानविशेषेण शुक्रवातं निहन्ति च॥

वसव राजीय।

अर्थ—पारद, बलि, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और ताम्रभस्म सब बराबर जम्बीरीरसमें दो दिन खरल करके कांचकूपीमे डाल बालुकायन्त्रमे रखकर ६ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण—शुक्रवातमें लाभदायक है और शुक्रवातका ग्रन्थकारने निम्नलिखित लक्षण दिया है।

इन्द्रियंपुंस्त्ववर्ज्यं च विदाहं च विकारिताम्।
अन्तर्वायुः प्रकुर्वीत शुक्ल वातस्य लक्षणम्।

वसव राजीय।

नव-[illegible]-कंति-मालिय-पम्ह-वित्थारो ।
तम्मा-भय-चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

[illegible]

फणिभूषणरस

पारदं दरदं वङ्गं मृतनागं मृताऽभ्रकम् ।
सर्वैः समं शुद्धताल मर्द्यो निर्गुण्डिजे रसे ॥
पाचितो वालुकायन्त्रे द्वियामं मन्दवह्निना ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य मात्स्यमाहिषकच्छपैः ॥
वाराहशिखिजैः पित्तै र्भावितश्च पृथक् पृथक् ।
अनुपानविशेषेण देयो वल्लद्वयो मितः ॥
सन्निपातान्निहन्त्याशु त्विच्छापथ्य समाचरेत् ।
शम्भुना कथितः पूर्वं रसोऽयं फणिभूषणः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, सिंगरफ, बङ्गभस्म, सीसाभस्म और अभ्रकभस्म सब बराबर और सबके बराबर हरताल मिलाकर सभालूके रसमे एक दिन खरल कर गोला बनाले फिर सम्पुटमे बन्दकर बालुकायन्त्रमे रख दो प्रहर मन्द अग्निपर पकावे; पश्चात् निकालकर रेहूमछली, भैंसा, कछुआ, सुअर और मोरपित्तकी एक २ भावना देकर ६ रत्तीकी गोली बनाले ।

गुण—अनुपान विशेष के साथ देवे तो यह समस्त सन्निपातोंमे लाभदायक है ।

बद्धतालक

शुद्धतालकं २ पलं, मनःशिला १ पलं, आमलसारगन्धं १ पलं, रसकर्पूरमर्धपलं गृहीत्वा चूर्णीकृत्य काचकूप्यां निक्षिप्य मुखमुद्रां विधाय वालुकायन्त्रविधानेन सार्धैकयामपर्यन्तं पाकं कुर्यात् । स्वाङ्गशीतमौषधं तण्डुलद्वयपरिमितं मधुना त्रिकटु-चूर्णेन वा देयम् । सदोषज्वराः श्वासकासादिसंयुक्तक्षयाश्च नश्यन्ति । अम्लरसादिकं वर्ज्यम् ॥

व्यास सम्प्रदायग्रन्थात् ।

अर्थ—हरताल ८ तोला, मैनसिल ४ तोला, बलि ४ तोला और रस-कपूर २ तोला सबको पीसकर सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमें रखकर १½ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे। मात्रा—२ चावल।

अनुपान—त्रिकटुचूर्ण और शहदके साथ दे।

गुण—श्वास, खांसी और क्षय आदिमे लाभदायक है।

बद्धदरद

शुद्धदरदः २ पलम्, गन्धकः १ पलम्, शलाकारसकर्पूरं १ पलं, एतत्त्रयमपि विचूर्ण्य काचकूपिकायां निक्षिप्य पूर्ववन्मुद्रणादिकं कृत्वा बालुकायन्त्रे एकयाम पचेत्। स्वाङ्गशीतमर्द्धगुञ्जापरिमितं मधुना तत्तद्रोगोचितक्वाथेन वा सेवितं सर्वान्वातव्याधीन् सविकाराञ्ज्वरांश्च निकृन्तति।

व्यास सम्प्रदायग्रन्थात्।

अर्थ—सिंगरफ, ८ तोला, बलि ४ तोला और रसकपूर ४ तोला सबको पीसकर सम्पुटमें बन्दकर यथाविधि १प्रहर मन्दअग्निपर पकावे। मात्रा—½ रत्ती।

गुण—समस्त वातव्याधि और ज्वरोंमें लाभदायक है।

बद्धमयः

बद्धं समुद्रलवणं, शुद्धं लोहचूर्णं, तन्तुरजतं, पारद-गन्धकश्चैतानि प्रत्येकपलानि, शुद्धतालकं मनः-शिला चेति प्रत्येकं सपादतोलकं गृहीत्वाऽनवद्धि-चूर्ण्य दिनद्वयं कन्यारसेन विमर्द्य त्रिदिनं शोषयित्वा काचकूप्यां निक्षिप्य मुखमुद्रां विधायाऽष्टयामं बालु-कायन्त्रे विपाच्य स्वाङ्गशीतां घनीभूतां गुटिकामर्ध-गुञ्जामितां मधुना सह दद्यात्। अनेन सकल सन्नि-पाता वातमेहादयश्च नश्यन्ति।

व्यास सम्प्रदायग्रन्थात्।

कोऊहल-चिरइया [१३०२-

[illegible] कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो । [illegible] दिट्ठी ॥ १३०१ [illegible]

अर्थ—सांभर नमक, लोहचूर्ण, रजतकी पतली तार या वर्क, पारद, वलि सब ४-४ तोले, हरताल और मैनसिल ५-५ तोले सबको पीसकर घीकुंवारके रसमें तीन दिन खरल करके सम्पुटमें बन्दकर वालुका यन्त्रमें रख ८ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे । मात्रा—½ रत्ती ।

गुण—सन्निपात, वातरोग और प्रमेहमें लाभदायक है ।

वद्धमहारस

शुद्धपारददरदमाणिक्यविद्रुममल्लरजतगन्धकरसकर्पूरमुक्ताताल-कसुवर्णानां समभागानां सूक्ष्मचूर्णं विधाय समूलचित्रकस्वरसेन द्वियामं मर्दयित्वा विशोष्य काचकूप्यां निक्षिप्य मन्दमध्यखराग्नि-भिर्वालुकायन्त्रे यामचतुष्टयं पाकं कृत्वा खल्वे निक्षिप्य मृगमदः गोरोचना चन्द्रसारः एतान्येकैकतोलकान्यौषधे मेलयित्वा स्तन्येन चित्रमूलस्वरसेन च माषप्रमाणां वटीं कृत्वाऽनुपानविशेषैः सकलरोगेषूपयोजनीयाः । अज्ञातवद्धमूलरोगाः सर्वे नश्यन्ति ।

व्यास सम्प्रदायग्रन्थात् ।

अर्थ—पारद, सिंगरफ, माणिक्य, प्रवाल, सोमल, रजत, वलि, रसकर्पूर, मोती, हरताल और सुवर्ण सब बराबर प्रथम पारदमें रजत और सुवर्ण मिलाकर पुनः समस्त वस्तुओंका चूर्ण बनाकर चित्रकमूल क्वाथमें खरलकर सम्पुटमें बन्दकर वालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरके मध्यम उत्ताप पर पकावे; पश्चात् निकाल इसमें कस्तूरी, गोरोचन, कपूर प्रत्येक १ तोला मिलाकर गोदुग्ध, चित्रक क्वाथमें खरल करके उर्द बराबर गोली बनाकर समस्त रोगोंमें देवे । ग्रन्थकार कहता है कि इसे ऐसे रोगोंमें दे जिनका कारण न ज्ञात होता हो उनमें भी लाभदायक सिद्ध होगा ।

सम्मति—उक्त चारों वद्धरस कांचकूपीमें बनाने लिखे हैं किन्तु इन्हें सम्पुटमें बनाने पर ठीक और अच्छे बनते है कोई त्रुटि नहीं होती ।

ब्रह्मराक्षस रस

वेदकर्षो रसः प्रोक्तो नवसारस्तु कर्षकः ।
सूततुल्यं गन्धकं स्यात्तदर्धं तालकं मतम् ॥
तालतुल्यो यवक्षारो नागः कर्षमितो भवेत् ।
काकमाच्यारसै र्भाव्यं सप्तवारं प्रयत्नतः ॥
उन्मत्तस्य रसेनाऽपि सप्तवारन्तु भावयेत् ।
पचेत्तं बालुकायन्त्रे द्वादशप्रहरावधिः ॥
पुनस्तत्र क्षिपेद्गन्धं वेदकर्षञ्च भावयेत् ।
पूर्वोक्तैस्तु द्रवै र्यन्त्रे बालुकाख्ये पचेत्ततः ॥
अधःस्थो भस्मतामेति तावत्कूपीषु योजयेत् ।
सप्तभि र्भस्मतामेति ब्रह्मराक्षसपारदः ॥
नानाऽनुपानमात्रेण सर्वरोगान्निकृन्तति ।
मणैकं भुज्यते नित्यं नरेणैतत्समासता ॥

रसकौमुदी ।

अर्थ—पारद ४ भाग, नवसादर १ भाग, बलि ४ भाग, हरताल २ भाग यवक्षार २ भाग और सीसाभस्म १ भाग इन सबको मकोयके, रसकी सात धतूरेके रसकी ७ भावना देकर शीशीमें भर बालुका यन्त्रमे रखकर १२ प्रहर की तीव्र अग्नि दे पश्चात् ऊर्ध्वलग्न और अधः लग्न दोनोंको मिलाकर उसमे पुनः ४ भाग बलि और मिलाकर पुनः मकोय और धतूरा रसकी भावना देकर बालुका यन्त्रमें पूर्व विधिसे पकावे । ग्रन्थकार कहता है कि इसीतरह तब तक कूपीपाक करता रहे जबतक पारद तलस्थ भस्म न बन जाय । वह कहता है कि ७ बार इसतरह करनेसे पारदकी तलस्थ भस्म बन जाती है ।

ग्रन्थकार कहता है कि भिन्न २ अनुपानके साथ देनेसे यह नानाप्रकार के रोगोंको दूर करता है और इसके सेवनसे भूख बहुत लगती है ।

[illegible]-विरह्या [१३०९-

[illegible]-[illegible]-[illegible]-[illegible]-[illegible]-विन्यागों।
[illegible] [illegible] ॥ १३०९
[illegible]

भास्करोत्कीर्ति रस

अलरसबलिताप्यं टङ्कणं म्लेच्छगोलं,
मुनिसमहतताम्रं सैन्धवेनाऽथ युक्तम् ।
रसदलविषमिश्रं मर्दयेन्निम्बुनीरै-
र्जयति सकलवातं भास्करोत्कीर्तिनामा ॥
व्योषाऽऽर्द्रके गुञ्जमितं प्रयोज्यं
दुर्नामपाण्ड्वामयशूलकुष्ठे
अपित्तजे योऽखिलसन्निपाते
रामाय दत्तः सुखदः शिवेन ॥

रसराजशिरोमणि

अर्थ—पारद, हरताल, वलि, सोनामक्खी, सुहागा, सिंगरफ और मैनसिल सब बराबर निम्बूरसमें खरल करके गोला बनाले सबके बराबर ताम्रका सम्पुट बनाय उसमें भरकर लवणयन्त्रमें रख ८ प्रहरकी अग्निमें पकावे, पश्चात् इसमें जितना ताम्र वलिकाद्दमें बदल जाय उस समेत एकत्र कर पारदसे दो भाग मीठातेलिया मिलाकर निम्बू रसमें खरल करके १ रत्तीकी गोली बनाकर रखले

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—अद्रकरस मधु या त्रिकटुचूर्ण मधुके साथसे देवे।

गुण—अर्श, पाण्डु, शूल, कुष्ठ और वातश्लेष्म युक्त सन्निपातमें लाभदायक है।

भास्कर रस

मृतमाक्षिकशिलाऽऽलगन्धकाः खर्परञ्च कुरु तुल्यभागिकम् ।
निम्बुनीरपरिमर्दितं दृढं स्वेदितं लवणमूत्रके दिनम् ॥
तुल्यहेमगविसम्पुटावृतं लेप्य कर्पटमृदा पुटेत्ततः ।
पूर्ववद्भवति यद्दिमाः [illegible]तः शूलगुल्मकृमिमान्द्यनाशनः ॥

रसावतार।

अर्थ—पारद, सोनामक्खी, मैनसिल, हरताल, वलि और खपरिया सब बराबर लेकर ४ प्रहर निम्बू रसमे खरल करके गोला बनावे, प्रथम एक दिन दोलायन्त्रमे लटकाकर गोमूत्रमे लवण डालकर स्वेदन करे, पश्चात् पारदके बराबर सुवर्णभस्म मिलाकर ताम्रकी कटोरीमे भरकर सम्पुट करके लवण यन्त्रमे ४ प्रहरकी मध्यम अग्निपर पकावे; पश्चात् निकालकर ताम्रयुक्त पीसकर रख छोड़े। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—शूल, गुल्म, कृमि, अग्निमांद्य और राजयक्ष्मामे लाभदायक है।

भास्कर रस (दूसरा)

तालं ताप्यं गन्धकं सूतकञ्च शैलाह्वं वै खेचरंतत्समं हि।
चूर्णं कृत्वा चाऽऽटरूषेण मर्द्य सार्द्रेणैवं सौरसेयै रसैश्च॥
मर्दितं हि तदनुताम्रनिर्मिते धारयेच्च सकलं हि सम्पुटे।
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य सम्पुटं पाचयेच्च सततं दृढाऽग्निना॥
यामयुग्ममितमेव मात्रया यन्त्रके हि कुरु शीतलं स्वयम्।
जायतेऽतिरुचिरोमहारसो पूर्ववद्भवति भास्करोदयः।
चित्रकार्द्रकरसेन योजितो राजयक्ष्मकफवातनाशनः॥

रसप्रकाश सुधाकर।

अर्थ—हरताल, सोनामक्खी, वलि, पारद, मैनसिल और कसीस सब समभाग लेकर इनको अद्रक, बांसा और तुलसीके रसमे एक एक दिन मर्दन करके गोला बनावे फिर ताम्र सम्पुटमे बन्द करके लवणयन्त्रमे रखकर २ प्रहर की तीव्र अग्निदे। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान और गुण—चित्रक अद्रक रससे देने पर राजयक्ष्मा और कफ-वातके रोगोंमे लाभ होता है।

सम्मति—यह सब तललग्नरस हैं इनमे ताम्र भी वलि प्रभावसे यौगिकमे परिणत होकर भस्म रूपको प्राप्त होता है जितना ताम्र बलिकाइदमे परिणत होजाय उसे भी इस रसमें पीसकर मिला लेना चाहिये।

गिंडेल-कवोल-कंति-मासलिय-पम्ह-वित्थारो ।
तरुग-भय-चंचला दिट्ठी ॥ १२०९

भूतनाथ रस

सूतं ताम्रमयोऽभ्रकं समलवं सर्वैः समं गन्धकं ।
हेमार्कोऽग्निहयारिपुष्कररसै र्मर्द्यः पृथग्वासरम् ॥
कूप्यन्ते विनिवेशितं लवणमृच्चूर्णैः समावेष्ट्य तत् ।
यन्त्रे सैकतके निवेश्य विपचेन्नत्वा गणेशं दिने ॥
स्वाङ्गे शीतलतामुपागतमपि त्यक्त्वा च कूप्यादिकं ।
भूपांशेन विषेण खल्वतलगं तन्मर्दयेद्यत्नतः ।
गुञ्जा स्पर्शचलापनोदनकरी स्तुक्शर्करासंयुता ।
भूतेशस्य सुलेपनं हितकरं स्यात्कृष्णालाभिः कृतम् ॥

रसदीपिका ।

अर्थ—पारद, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म सब बराबर और सबके बराबर बलि मिलाकर धतूरा, आक, चित्रक, कनैर और पुष्करमूलक्काथकी पृथक्-पृथक् भावना दे शीशीमे भरकर बालुका यन्त्रमे रख १२ प्रहरकी मन्द अग्नि दे; पश्चात् निकालकर १/१६ भाग मीठातेलिया मिलाकर एक दिन खरल करके रखले । मात्रा—१ रत्ती ।

अनुपान और गुण—गुड़ और शक्करके साथ देनेसे स्पर्श वातको नष्ट करता है ।

भैरव रस

द्विगुणितशुचिगन्धं पारदं कन्यकाद्रि-,
दिनमृदितमशेषं चिन्यसेत्कूपिकायाम् ।
वमनमृदवलिप्तं सप्तशः सैकते तद्-,
विपच तरणियामं वह्निवृद्ध्या क्रमेण ॥
तदनु दरदतुल्यं कूपिकानाललग्नं,
रसममलमतन्द्रोमूर्च्छितं चाददीत ।
हरिदलविजयाम्भोमर्दितं चातपे तत,

त्रिगुणितमुनिवारान् सप्तकृत्वो विमर्द्य ॥
क्षितितलगतयन्त्रे सल्लवङ्गात्सजाती-
फलगलितसुतैलाद्भैरवोऽयं द्विवल्लः ॥
निशि सह सितया यैः सेवितो दुग्धभोज्यै-
र्दृढयति बहुशुक्रं नान्यथा यावदुक्तिः ॥ रसराजशङ्कर ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग कुमारीरसमें खरल करके शीशीमें भरकर बालुकायन्त्रमे रख १२ प्रहरकी तीव्र अग्नि दे; पश्चात् निकालकर भांग और तुलसी रसमे मर्दन कर पुनः भूधरयन्त्रमे स्वेदन करे पश्चात् लौंग तेल और जायफल तेलमें दो दो भावना देकर रखले। मात्रा—६ रत्ती।

गुण—वीर्यको गाढ़ा करता है और स्तम्भन शक्ति बढ़ाता है।

सम्मति—यह रससिन्दूर ही है, यदि रससिन्दूरको ही उक्त वस्तुओंकी भावना दे तबभी उपरोक्त लाभ मिलेगा।

मकरध्वज रस

वज्रहेमार्क सूताऽभ्रं लोहभस्म क्रमोत्तरम् ।
सर्वं कन्याद्रवै मर्द्य शाल्मल्याश्च द्रवैस्त्र्यहम् ॥
तद्रुध्वा काचकूप्यन्ते बालुकायां त्र्यहं पचेत् ।
तत्कल्कं मुशलीक्वाथै वज्रार्कक्षीरसंयुतैः ॥
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे रुध्वाऽन्तर्भूधरे पुटेत् ।
यामादुद्धृत्य संचूर्ण्य सिताकृष्णात्रिजातकैः ॥
समैः समं विमिश्र्याऽथ गुञ्जैकं भक्षयेत्सदा ।
मागधी मुशली यष्टी वानरीबीजकं समम् ॥
चूर्णं सिताऽऽज्यगोक्षीरैः पलाऽर्द्ध पाययेदनु ।
कामिनीनां सहस्रैकं रममाणो न मुह्यति ॥
सेवनाद् दृढकामः स्याद्रसोऽयं मकरध्वजः ॥

रसरत्नाकर रसायन खण्ड

...अन्नोन्न-कंति-मामलिय-पम्ह-वित्थारो ।
नह-मय-चोउरा दिट्ठी ॥ १२०९

अर्थ—हीराभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म और लोहभस्म सब क्रमसे विवर्द्धित भाग लेकर घीकुंवारके रसमें, सेमलके रसमे तीन दिन खरल करके कांचकूपीमे भर वालुका यन्त्रमे रख ३ प्रहरकी मन्द अग्नि पर पकावे; पश्चात् निकालकर स्नुहीदुग्ध, आक दुग्ध और मूसलीके क्वाथमे एक दिन खरल करके सम्पुटमें बन्दकर भूधर यन्त्रमे स्वेदित करे, पश्चात् निकाल पीसकर रखले। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—खाण्ड, त्रिजात, पीपलचूर्णमे मिलाकर दे। अथवा पीपल, मूसली, मुलहटी और कौंचबीज चूर्णमें बराबरकी खाण्ड घी मिलाकर रखले, इसके साथ खाकर ऊपरसे दूध पीवे।

गुण—इसके सेवनसे विषय करता हुआ मनुष्य तृप्त नहीं होता।

मदनकामदेव रस

परण्डशृङ्गवेराऽम्बुकाकमाचीद्रवै रसः।
प्रत्येकमर्दनाच्छुद्धो जायते दोषवर्जितः॥
श्वेताऽङ्घ्रिकल्कमूषायां सप्तकृत्वोऽथ शोषयेत्।
लिप्त्वा सूतं साऽङ्घ्रिचूर्णं मूषायामेवमेव हि॥
एवं शुद्धं रसं कृत्वा समगन्धेन योजयेत्।
काकमाच्याः शुभैस्तोयैर्मर्दयित्वा द्वयं शनैः॥
लिप्त्वा काचघटीमध्ये मृदा कर्पटसञ्ज्ञया।
काचपात्रीमुखं रुद्ध्वा दत्त्वा वक्त्रेऽथ चक्रिकाम्॥
मृल्लिप्तकर्पटे बद्ध्वा काचपात्रमधोमुखम्।
लिम्पेद्भस्ममृदा गाढमङ्गुलद्वयमुत्थितम्॥
शोषयित्वा क्षिपेद्भाण्डे वालुकाभिः प्रपूरिते।
अधोमुखं काचपात्रं पचेद्यामत्रयं शनैः॥
स्वाङ्गशीतं समादाय योजयेद्रोगशान्तये।
गुञ्जाद्वयं क्रमेणैव पर्णखण्डेन संयुतम्॥

अत्र देयं प्रयत्नेन रसवीर्यविवृद्धये ।
अनेनाऽशीतिवर्षोऽपि युवेव सुरतं चरेत् ॥

रसेन्द्र कल्पद्रुम

अर्थ—प्रथम पारदको एरण्ड, अद्रक और मकोयके रसमें खरल करले, पश्चात् पुनर्नवा मूलको कूटकर उसकी मूषा बनाय उसमे पारद रखकर भूधरयन्त्र में स्वेदित करे, इसतरह ७वार करे; पश्चात् बराबरकी वलि मिलाकर मकोयके रस मे खरलकर शीशीमें डाल बालुकायन्त्रमे रखकर ३ प्रहरकी अग्नि देकर निकाल ले। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—पानके साथ सेवन करे।

गुण—इसके सेवन से ८० वर्षका बुड्ढाभी युवावत् स्त्रियोंसे रमण कर सकता है।

सम्मति—यह रस भी रससिंदूर ही बनता है।

मदनकामदेव रस (दूसरा)

प्रत्येकं चतुरंशकौ रसबली तारं मृतं चांऽशकं-
तावद्धेम ततश्च शाल्मलिरसात्तत्सर्वमामर्दयेत् ।
काकोल्याऽथ सुदुग्धयाऽप्यपरया त्रिस्त्रिर्विदार्याशता-
वर्या त्रिस्त्रिरथो विभाव्य सकलं काचस्य कूप्यां क्षिपेत् ॥
पक्वं यामचतुष्टयं सिकतिकायन्त्रात्स्वतः शीतलं-
प्रोद्धृत्याऽत्र विभावना वितनुयात्साप्ताऽथ वारान् क्रमात् ।
रक्तादुत्पलतः क्षुरेण च शतावर्या विदार्या रसैः-
तालीजातरसेन नागवलया पश्चाद्रसैश्शाल्मलैः ॥
पद्मकन्दरसतोऽथ गोस्तनीशर्करेक्षुरसतोऽश्वगन्धया ।
आमलक्युदककोलकन्दतो हस्तिकन्दरसतश्च भावयेत् ॥
पृथगेभिरौषधगणै र्विभावितो रसएष सिद्धिमुमपाति रोगिणाम् ।
अनुरागदो मदनकामदेव इत्यभिविश्रुतो रतिविशेषफलदायकः ॥

फोजछन्द-विरइया [१२०९-

विउँन्-कओल-केति-मानलिय-पम्ह-वित्थारो। तरग-मय-चाउग दिट्ठी ॥ १२०९

गुञ्जाचतुष्टयमितं सितया समेतंद्राक्षान्वितं समुपयुज्य कलाविलासी
क्षीरेणाथेक्षुकरसेन कृतानुपानःशाल्यन्नमुद्गवटिकामिषमाषभुक् स्यात्
कलमान्नश्च भुञ्जानः कलरवपललेन जाङ्गलेनाऽपि ।
मदन इव कामदेवो महिषीशतशो मनोरमा रमयेत् ॥
वृद्धमिह कामदेवं जग्धवतो ह्यश्वगन्धरसादस्य ।
सुरतं भवति वधूभिः सुरतस्त्रीभि र्यथा सुरेन्द्रस्य ॥ वसामृत ।

अर्थ—पारद, बलि चार-चार भाग, रजतभस्म और सुवर्णभस्म एक-एक भाग इन सबोंको सेमल, काकोली, दूधी, विदारीकन्द और शतावरके रसमे तीन तीन दिन मर्दनकर शीशीमे डाल वालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मन्दाग्नि पर पकावे; पश्चात् निम्नलिखित रसों क्वाथोंकी सात सात भावना दे; कमल, तालमखाना, शतावर, विदारीकन्द, मूसली, नागबला, सेमल, कमलफूल, द्राक्षा, शर्करा, गन्नारस, असगन्ध, आंवले, वाराहीकन्द, सुगन्धवाला और हस्तिकन्द। पश्चात् ४ रत्ती की गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

अनुपान—खांड या मुनक्का के साथ सेवन करे और ऊपर से दुग्ध पान करे। मांसादि वृष्य पदार्थों का खूब सेवन करे।

गुण—इसके सेवनसे वीर्यवृद्धि व वीर्यस्तम्भन होता है।

मदनकामदेव रस (तीसरा)

तारं वज्रं सुवर्णञ्च ताम्रं सूतकगन्धकम् ।
लोहं क्रमाविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावै र्न्यसेत्काचमये घटे ।
विमुच्य पिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवाऽऽवृते ॥
पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक् ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् ।
वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥
स्वाङ्गशीतञ्च सञ्चूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ।
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा ॥

त्रित्रिंवेलं रसैरेषां शतावर्याश्च भावयेत् ।
पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत् ॥
रक्तिकैकां रसस्याऽस्य चूर्णेनैतेन योजयेत् ।
कस्तूरीव्योषकर्पूर कंकोलैलालवङ्गकम् ॥
प्रति रक्तिद्वयश्चैतच्छर्करासमकं भजेत् ।
गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥
अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं लभेताऽत्र न संशय ।
तरुणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानि र्न जायते ॥ बृहद् योगतरङ्गिणी ।

अर्थ—रजतभस्म, हीराभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, पारद, बलि और लोहभस्म सब क्रम से विवर्द्धित भाग लेकर एक दिन कुमारीरसमे खरल करके शीशीमें भरकर बालुका यन्त्रमें रखकर एक दिनकी मन्द अग्निपर पकावे; पश्चात् निकालकर निम्नलिखित औषधियोंकी तीन २ भावना दे । आकदूध, असगन्ध, काकोली, कौंच, मूसली, तालमखाना, शतावर, कमलकन्द, कसेरू और कांसके जड़की । मात्रा—१ रत्ती ।

अनुपान—कस्तूरी, त्रिकटु, कपूर, शीतलचीनी, इलायची और लौंग इनके चूर्णमें शर्करा मिलाकर इसके साथ सेवनकर ऊपरसे दुग्ध पान करे ।

गुण—इसके सेवनसे कामेच्छा बनी रहती है यह रस अच्छा वाजीकर है ।

मदनांकुशरस

टङ्कणात्तत्तृतीयांशं सैन्धवं लवणं न्यसेत् ।
पञ्चमांशं सोममलं षडंशं हरितालकम् ॥
एकादशांशं सूतश्च मर्दयेच्च शिवाम्बुना ।
रसोनभल्लातरसे वातहारिरसे पुनः ॥
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य वह्निं यामांस्तु षोडश ।
दत्त्वा तच्चातसीवर्णं टङ्कणं मदनांकुशम् ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन स्वरभेदादिनाशनम् ॥ रसकामधेनु ।

अर्थ—टंकण से सैंधानमक तृतीयांश, सोमल पञ्चमांश, हरताल षट्‌यंश, पारद ग्यारहवांश लेकर सबको हरड़क्वाथ लहसुन रस, तेलभिलावा और एरण्ड रसमें एक एक दिन खरलकर शीशीमे भर बालुकायन्त्रमे रखकर १६ प्रहरकी अग्नि दे, यह तललग्नरस बनेगा।

गुण—स्वरभेद, कास, श्वास, आनाह और आध्मानमें लाभदायक है।

मदनोदय रस

शुद्धं सूतं समं गन्धं रक्तोत्पलदलद्रवैः।
यामं मर्द्यं पुनर्गन्धं सार्धं तत्र विनिःक्षिपेत्॥
पूर्वद्रावे दिनं मर्द्यं रसार्द्धं गन्धकं पुनः।
दत्त्वा तद्वद्दिनं मर्द्यं काचकूप्यां निरोधयेत्॥
दिनैकं वालुकायन्त्रे पक्वमुद्धृत्य चूर्णयेत्।
भूकुष्माण्डकषायेण भावयेद्दिनसप्तकम्॥
छायायां तत्सितातुल्यं निष्कैकं भक्षयेत्सदा।
शणामूलं सबीजञ्च मुशली शर्करा समम्॥
गवां क्षीरैः पलार्द्धं तु अनु रात्रं सदा पिबेत्।
अनन्तं वर्द्धते वीर्यं रसोऽयं मदनोदयः॥ रसमञ्जरी।

अर्थ—पारद, बलि समभाग, लाल कमलफूल रसमे १ प्रहर मर्दनकर पुनः इसमें पारदसे आधा बलि मिलाकर फिर कमलफूल रसमे १ प्रहर मर्दन करके फिर पारदसे आधा बलि देकर पुनः उसीतरह कमलरस डालकर मर्दन करें; पश्चात् शीशीमें डग्न वालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी तीव्र अग्नि देकर पकावें; पश्चात् विदारीकन्दके रसमें ७ दिन खरल करके बराबरकी खाण्ड मिलाकर रखले। मात्रा—४ माशे। यह मात्रा अधिक है।

अनुपान—सनकी जड़ और बीज मूसली तीनों बराबर तथा इनके बराबर शर्करा मिलाकर २ तोला इसे अनुपानके रूपमें रसके साथ खाकर ऊपरसे दूध पीवें।

गुण—अत्यन्त वीर्यवर्द्धक बाजीकर है।

सम्मति—यह रस और अभिनव कामदेव तथा अनङ्गसुन्दर एक है। सबके सब रससिन्दूर रूप है।

मनोभैरव रस

त्रिक्षारं पञ्चलवणं मृततास्रं रसं समम्।
अर्कमूलकषायेण दिनानि त्रीणि मर्दयेत्॥
संशोष्य बालुकायन्त्रे दिनैकं वज्रमूषया।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य खरपित्तेन भावयेत्॥
दातव्यं माषमात्रञ्च मधुकस्याऽनुपानतः।
तत्क्षणेन विनश्येत्तु तान्द्रिकः सन्निपातकः॥
मनोभैरवनामाऽयं रसः सर्वत्र पूज्यते॥

वैद्यचिन्तामणि।

अर्थ—तीन खार, पांच नमक, ताम्रभस्म, रससिन्दूर सब बराबर आक मूलके काढेमे तीन दिन खरल करके शीशीमे भरकर बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी अग्निपर पकावे, पश्चात् निकालकर गदहेके पित्तेकी एक भावना देकर रखले। मात्रा—१ माशा। यह मात्रा अधिक है।

अनुपाल—मधुके साथ देवे।

गुण—तन्द्रिक और सन्निपातमे लाभदायक है।

मन्थानभैरव रस

शुद्धं सूतं गन्धकं ताम्रभस्म सर्वं पिष्ट्वा चाऽथ जम्बीरमध्ये।
दोलायन्त्रे पाचयेत्तद्दिनैकं पक्वं पिष्ट्वा चाऽपि जम्बीरमध्यात्॥
नीत्वा भाव्यं वक्ष्यमाणद्रवैस्ततपिष्ट्वा पिष्ट्वा खल्वमध्ये यथावत्।
हिंगुद्रावैश्चाटरूषेन्द्रनिम्बजातै द्रावैः सर्पनेत्र्या रसैश्च॥
ब्राह्मीद्रावै र्मीननेत्रीरसैश्च द्रावैस्तद्वद्धंसपाद्या रसैश्च।
हस्तीशुण्डी रुद्रपादीसुवर्णा द्रावैस्तद्वद्वातशत्रैः क्रमेण॥

अणोन्नकेति-मालिय-पम्ह-विरयारो ।
मय चाउरा दिट्ठी ॥ १२०९

द्रावैस्तद्वद्वायसीसम्भवैश्च नित्यं नित्यं चैकमेकं दिन तत् ।
सर्वं पिष्ट्वा लोहपात्रे विमुद्रय पक्त्वा यन्त्रे बालुकायां दिनैकम् ॥
विशालिकाचित्रकदीप्यजीरकटुत्रयाणां सविषैरजोभिः ।
समैं विमिश्रं खलु सन्निपाते रक्तित्रयं मुद्गजयूषभोक्त्रे ॥

चिकित्साक्रम कल्पवल्ली ।

अर्थ—पारद, बलि बराबर लेकर जम्बीरी रसमें १ दिन खरल करके गोला बनाकर जम्बीरी रसमे ही १ दिन दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करे; पश्चात् निम्नलिखित द्रव्योंकी एक एक भावना दे । हींग, बांसा, इन्द्रयव, निम्बफूल, मेहंदी, ब्राह्मी, सर्पाक्षी, हंसराज, हाथीसुण्डी, भूतकेशी धतूरा, एरण्ड और मकोयके रसमे । पुनः सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमें रखकर मन्द अग्निपर ४ प्रहर पकावे; पश्चात् निकालकर इन्द्रायण, चित्रक, अजवायन, जीरा, त्रिकटु और मीठातेलिया यह सब सममाग लेकर चूर्णकर उस रसके बराबर मिलाकर रखले । मात्रा—३ रत्ती ।

गुण—समस्त सन्निपातोंमे लाभदायक है ।

मन्मथ रस

मुसलीकदलीकन्दवाजिगन्धाकसेरुकैः ।
मर्दितं हेमसूताऽभ्रं मूषास्थं पुटयाच्चितम् ॥
गन्धकेन रसः पिष्टः कल्हाररसमर्दितः ।
विपक्को बालुकायन्त्रे चतुर्यामैः क्रमाऽग्निना ॥
शाल्मलीचूर्णसंयुक्तं वासराण्येकविंशतिम् ।
भक्षयित्वा चतुर्गुणं गव्यं क्षीरं पिवेदनु ॥
सर्वाङ्गोद्वर्तनं कुर्यात्सयवैः शाल्मलीरसैः ।
अन्वहं मधुराहारः रमेत स्त्रीसहस्रकम् ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—एक खरलमें सुवर्णभस्म, रससिन्दूर और अभ्रकभस्म तीनों बराबर लेकर मूसली, केलाकन्द, असगन्ध और कसेरूके रस या क्काथमे एक एक भावना देकर सम्पुटमे रखकर पुटपाक करे, दूसरे खरल मे पारद और बलिको कमलरसमे खरलकर कूपीमें चढ़ाकर रससिन्दूर तय्यार करे पश्चात् दोनों रस बराबर मिलाकर मूसली, केलाकन्द, असगन्ध, कसेरू और कमलरसकी एक-एक भावना देकर ४ रत्तीकी गोली बनाले।

अनुपान—सेमल और मूसलीचूर्ण २-२ माशे इसमें मिश्री मिलाकर उसके साथ खाकर ऊपरसे दूध पीवे।

गुण—इसके सेवनसे बूढ़ाभी अनेक स्त्रियोंसे रमण कर सकता है।

मल्लसिन्दूर

नवकर्षमितः सूतो रसचन्द्रश्च तत्समः।
चतुःकर्षमितो मल्लः सार्द्धपञ्चात्तसम्मितः॥
गन्धकश्चेति तत्सर्वं काचकूप्यां निधापयेत्।
क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्वालुकायन्त्रगं पचेत्॥
वह्निं षोडशयामञ्च दत्त्वा शीतं समुद्धरेत्।
रसोऽयं मल्लसिन्दूरः सर्ववातविकारनुत्॥
युक्तानुपानतो हन्यात्सन्निपातादिकान्गदान्॥

रसायन संग्रह।

अर्थ—पारद, रसकपूर ९-९ तोला, सोमल ४ तोला और बलि ५½ तोला सबको खरल करके शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमें रखकर १६ प्रहरकी मध्यम अग्निदे। यह ऊर्ध्वलग्नरस है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—सन्निपात, श्वास, कास और वातविकारमें लाभदायक है।

सम्मति—इसमे रसकपूरका यौगिक टूट जाता है और बलिका यौगिक बलिकाइद बन जाता है।

कन्तेन कंति-भामलिय-पम्ह-वित्थारो ।
... चाउरा दिट्ठी ॥ १३०९

मल्लसिन्दूर (दूसरा)

स्नुहीपयस्त्वर्कपयस्सु मल्लं त्रिर्भावितं मर्दनशुष्करूपम् ।
बुभुक्षुसूतद्विगुणेन शुद्धगन्धेन घृष्ट्वा च मसिं विदध्यात् ॥
तां कूपिकास्थां सिकताऽऽख्ययन्त्रे यथा वहिर्धूमविधि प्रबोद्धा ।
पिदध्युरह्नोऽर्द्धमतो ददीत शीशीमुखे मृत्कवलीं सुरूद्धाम् ॥
अर्द्धद्वितीयं दिनमग्नितापं बब्बूरकाष्ठस्य ददीत तीव्रम् ।
कृत्वा स्वयं शीतमथोर्द्धशीशीगलस्थचन्द्रोदयमाददीत ॥
कर्पूरजातीफलदेवपुष्पकस्तूरिकानक्रमदैलिकाभिः ।
लिह्यादिमं मासमशक्तशुक्र आरोग्यहेतो मेधुना मनुष्यः ॥
रसायनसार ।

अर्थ—आकके दूधमे और थोहरके दूधमे सोमलको घोटकर पश्चात् इसमे बराबर पारद तथा द्विगुण बलि मिलाकर खरल करके शीशीमें भर बालुका यन्त्रमें रखकर दो दिनकी तीव्र अग्नि देवे । मात्रा—१ रत्ती ।

अनुपान—कपूर, जायफल, लौंग, कस्तूरी, अम्बर और इलायची मिलाकर दे ।

गुण—प्रत्येक रोगमें लाभदायक है ।

मल्लसिन्दूर (तीसरा)

मनःशिलालाऽसितप्रस्तराणां मन्दारदुग्धेन सुभावितानाम् ।
दिनानि चत्वारि विधाय गोलं छायासु शुष्कं च पयोभिरर्कैः ॥
समन्ततो ह्यर्कदलैस्सुलिप्तं तच्चाऽऽच्छाद्य शुष्कं निखनेत्पृथिव्याम् ।
त्रिंशद्दिनान्येव ततो बुभुक्षुसूतेन तुल्येन विमर्दयेत ॥
ताभ्यां समानेन च गन्धकेन दुग्धाज्यशुद्धेन मसिं विदध्यात् ।
चन्द्रोदयप्राप्तिक्रिया पचेत दिनानि चत्वार्यवधानचेताः ॥
घटीश्चतस्रोऽनलके तु गत्या रूद्धोग्रवेगं असिताग्निकेतुम् ।
स्वयञ्च शीते सिकताख्ययन्त्रे कूपीगलस्थं रसमाहरेत ॥

अत्यन्तमुग्रं यदि तं विधित्सुर्नलीडमर्वाख्यविधे तु पूर्वम् ।
षट्सप्तविंशाधिकजीर्णगन्धं सूतं नियुञ्ज्यादिह कर्मसिद्धौ ॥

रसायनसार ।

अर्थ—मैनसिल, हरताल और सोमल समभाग लेकर सबको आकके दूधमे घोटककर गोला बनावे फिर एक मिट्टीकी लुटियामे डाल उसमें आकका दूध भरकर सम्पुट करके ३० दिनतक भूमिमे गड़ा रहने दे; पश्चात् निकालकर इसमे बराबर पारद मिलाकर खरल करे, पश्चात् सबके बराबर बलि डालकर कज्जली करे और शीशीमें भरकर बालुका यन्त्रमें रखकर ४ दिनकी अग्निपर पकावे । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—सन्निपात, ज्वर और वातरोगोंमें लाभदायक है ।

सम्मति—इसमें काला सोमल डालनेका विधान ग्रन्थकारने दिया है, किन्तु ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्त्ताको इस बातका ज्ञान नहीं था कि काला सोमल असली सोम्ल नहीं होता; प्रत्युत वह तो यौगिक होता है और वह ३५०° शतांशके ऊपरके उत्तापपर उड़ता है इसलिये यदि काला सोमल डाला जाय तो वह साराका साराही नीचे पड़ा रहता है बहुत कम उसका हिस्सा उड़ कर पारद बलि यौगिकमे मिश्रित होता है । इसलिये श्वेत सोमल से बने रस जैसा यह रस नहीं बनता । दूसरे ग्रन्थकारने ३० दिन प्रथम आकके दूधमे डुबाकर भूमिमे गाड़ देनेका विधान बतलाया है । हमने परीक्षा लेकर देखा है कि आकके दूधमे भिगोकर बनाया हुआ और बिना आकके दूधमें भिगोकर बनाया मल्लसिंदूर दोनोंके गुणोंमें कोई अन्तर नहीं आता ।

महाभैरव रस

मृतं सूतं मृतं ताम्रं मृतंलोहं मृताऽभ्रकम् ।
मृतं कान्तं समं खल्वे मर्द्यं हंसपदीरसे ॥
विशोष्य वालुकायन्त्रे काचकूप्यन्तरे दिनम् ।
पक्वं विचूर्णयेत्खल्वे कोलपित्तेन मर्दयेत् ॥

मोहनहन्द-विरह्या [१३०२-

नैनि-नामलिय-पम्ह-विन्यागो ।
मरचौउग दिट्ठी ॥ १३०१

गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं सर्वथा सन्निपातजित ।
महाभैरवनामाऽयं रसो भैरवनामतः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म कान्तलोहभस्म सव बराबर लेकर हंसराजके रसमें एक दिन खरल करके शीशीमें डाल वालुका यन्त्रमें रख ४ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावें; पश्चात् सुअरके पित्तेमें १ भावना देकर एक एक रत्तीकी गोली वनालें ।

गुण—सन्निपातमें लाभदायक है ।

माणिक्य रस

पलं तालं पलं गन्धं शिलायाश्च पलार्द्धकम् ।
चपलः शुद्धसीसञ्च ताम्रमभ्रमयोरजः ॥
एतेषां कोलभागञ्च वटक्षीरेण मर्दयेत् ।
ततो दिनत्रयं घर्मे निम्बक्काथेन भावयेत् ॥
गुडूचीवालहिन्तालवानरीनीलझिण्टिका: ।
शोभाञ्जनमुराऽजाज्योनिर्गुण्डीहयमारकौ ॥
एषां शाणमितं चूर्णमेकीकृत्य सरित्तटे ।
मृत्पात्रे कठिने कृत्वा मृदम्बरयुते दृढे ॥
एकाकी पाकविद्वैद्यो नग्नः शिथिलकुन्तलः ।
पचेदवहितो रात्रौ यत्नात्संयतमानसः ॥
शनैर्मध्यमवेगेन वह्निना प्रहरद्वयम् ।
प्रातःसम्पूज्य मार्तण्डं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥
यदि भाग्यवशादेतन्माणिक्याभं शुभं भवेत् ।
तद्धि जानीहि भैषज्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥
सर्पिषा मधुना लौहपात्रे तद्गण्डमर्दितम् ।
द्विगुञ्जं सर्वकुष्ठानां नाशनं बलवर्द्धनम् ॥

शीतलं सरसं तोयं दुग्धं वा पाकशीतलम् ।
आनीतं तत्क्षणादाजमनुपानं सुखावहम् ॥
वातरक्तं शीतपित्तं हिक्काञ्च दारुणाञ्जयेत् ।
ज्वरान्सर्वान् वातरोगान् पाण्डुं कण्डूञ्च कामलाम् ॥
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बहुयत्नतः ॥

रसराजसुन्दर ।

अर्थ—हरताल, बलि ४-४ तोला, मैनसिल २ तोला, पारद, सीसा ताम्र, अभ्रक और लोह भस्मे प्रत्येक ८ माशे लेकर ३ दिन वटदुग्धमे और ३ दिन निम्ब क्काथमें भावना देकर फिर इसमे गिलोय, ताल वृक्षकी कोंपल, कौंच, पियाबांसा, सहिजनां, मुरामांसी, जीरा, संभालू और स्वेत कनेर प्रत्येक ४ माशे सबका चूर्ण करके इसमे मिला दे और इसे एक शीशीमे भरकर बालुकायन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी अग्नि दे। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—वातरक्त, शीतपित्त, हिचकी, समस्त ज्वर वातरोग, पाण्डु, खुजली कामला और कुष्ठमे लाभदायक है।

सम्मति—यह ऊर्ध्वलग्नरस है यह जिस विधिसे ग्रन्थकारने बतलाया है इस विधिसे बनानेका उल्लेख रसचण्डांशु, रसचिन्तामणि आदि ग्रन्थोंमे भी है किन्तु इस विधिसे यह रस ठीक नहीं बनता; तभीतो ग्रन्थकार कहता है कि भाग्यवश माणिक्य रूप रस बन जाय तो सिद्ध हुआ समझे। यदि इसे बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर तीव्र अग्निपर बना लिया जाय तो २ प्रहरमे ही माणिक्यरस माणिक्यरूप वाला तय्यार होजाता है। नम्र होकर और भाग्यके चक्करमे पड़कर बनानेकी आवश्यकता नहीं।

माणिक्य रस (दूसरा)

शुद्धं सूतं पलान्यष्टौ कुनटी तालकं समम् ।
नागपत्रं चाष्टपलमष्टौ भागाश्च गन्धतः ॥
एकत्र कज्जलीं कृत्वा काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।

वालुकायन्त्रमध्ये तु वह्निः षोडशयामकम् ॥
भवेन्माणिक्यवर्णोऽयं शुक्रस्तम्भं करोति च ।
जराव्याधिविनाशाय राजरोगकुलान्तकृत् ॥
दशरात्रप्रयोगेण महाव्याधिविनाशनम् ।
रक्तिकार्द्धं सदा पथ्यं वृद्धः संयाति यौवनम् ॥ रसचण्डांशु ।

अर्थ—पारद, बलि, मैनसिल, हरताल और सीसा यह सब बराबर लेकर प्रथम सीसा गलाकर उसमे पारद सम्मेलन बनाले पुनः सबको एकत्र खरल करके शीशीमे डाल वालुका यन्त्रमे रखकर १६ प्रहरकी अग्नि दे।

मात्रा—½ से १ रत्ती।

गुण—राजयक्ष्मा, प्रमेह, कुष्ठ और वृद्धावस्थाके रोगोंमे लाभदायक है।

सम्मति—यह रस हमने तललग्न और ऊर्ध्वलग्न दोनों प्रकारका बनाया है, दोनों ही बनते है। तललग्न तो काला लाल मिश्रित बनता है, केवल तलभागमे सीसा बलिकाइद होता है और उसके ऊपर पारद व सोमलका बलिकाइद होता है। सीसा बहुत भारी होता है, इसलिये तलमे द्रव होकर वह बलिकाइद बनाता है उससे ऊपर दूसरे यौगिक होते है, इन दोनोंको निकालकर पीसकर मिला देते है और उसका उपयोग करते है।

ऊर्ध्वलग्न—ऊर्ध्वलग्न रसमे माणिक्यरूप रस ऊपर आकर लगता है, और सीस बलिकाइद नीचे बैठा हुआ रहजाता है; बहुतसे वैद्य ऊपर लगे हुए रसको ग्रहण करलेते है। नीचे सीसाकी भस्मको निरर्थक समझकर फेंक देते हैं वास्तवमे ऐसा करना भूल है तलमें रही हुई सीस बलिकाइद नामक भस्मको भी पीसकर रख लेना चाहिये, इसे सीसाकी भस्मके नामसे उपयोगमें ला सकते हैं। यह भस्म प्रमेह पर अति लाभ करता है।

माणिक्य रस (तीसरा)

शुद्धसूतसमं गन्धं कज्जलीं कारयेद्बुधः ।
षोडशांशं सुवर्णञ्च माणिक्यञ्च तदर्द्धकम् ॥

सर्वमेकत्र सम्मर्द्य कन्यानीरेण भावयेत् ।
काचकूप्यां सप्तमृद्भिर्लिप्तायां तन्निवेशयेत् ॥
धारयेत्सिकतायन्त्रे वह्निं प्रज्वालयेच्छनैः ।
यामषोडशपर्यन्तं शलाकाञ्च ददीत वै ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सूतं माणिक्यसञ्ज्ञितम् ।
गन्धकञ्च पुनर्दत्त्वा पुनर्माणिक्यहेमके ॥
पूर्ववन्मर्दयेत्तञ्च पाचयेत्तद्वदेव हि ।
एवं षड्गुणकं कार्यं सर्वयोगोपकारकम् ॥
जायते सिद्धिदं देहे सर्वप्रत्ययकारकम् ।
सेवयेद्रोगनाशाय तत्तद्रोगाऽनुपानतः ॥
वल्लं वा वल्लयुग्मं वा मधुना कणया सह ।
सेविनं कामिनीं यामं दर्शयेद्रतिकौतुकम् ॥
वीर्यबन्धकरश्शीघ्रं योषामदविनाशनम् ॥

रसायनसंग्रह ।

अर्थ—पारद, बलि समभाग, पारदसे $\frac{1}{16}$वां भाग उसमें सुवर्ण मिलादे । और पारदसे आधा माणिक्य भस्म मिलाकर सबको घीकुंवारके रसमें एक दिन खरल करके शीशीमे डाल बालुका यन्त्रमें रखकर १६ प्रहरकी अग्निमे पकावे, पश्चात् ऊर्ध्वलग्न रसको निकाल उसमे फिर बलि, सुवर्ण और माणिक्यभस्म मिलाकर उसी तरह बालुका यन्त्रमे पकावे इस प्रकार ६ बार करनेसे यह रस तय्यार होता है । मात्रा—६ रत्ती ।

अनुपान—मधु पीपलसे ।

गुण—शुक्रस्तम्भक, वाजीकर और नपुंसकतामे लाभदायी है ।

माणिक्य रस (चौथा)

शुद्धं सूतं पञ्चपलं कुनटीं तत्समां क्षिपेत् ।
हाटकन्तु पलं पञ्च माणिक्यन्तु चतुःपलम् ॥

फोड़ान-विरद्या [१३०९-

नि मामलिय पम्ह विन्थारो ।
मव चोडग दिट्ठी ॥ १३०९

मुक्ताश्च विद्रुमश्चैव प्रत्येकं द्विपलन्तथा ।
नागपत्रं पलश्चैकं शुद्धगन्धकमष्टकम् ॥
एकत्र कज्जलीकृत्य काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।
वालुकायन्त्रगं चाग्निं यामषट्त्रिंशकं हठात् ॥
भवेन्माणिक्यदिव्योऽयं कामाग्निबलवर्धनः ।
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा बलमांसाऽग्निवर्जिताः ॥
व्यवायरहितानाञ्च धातुपुष्टिकरः परः ।
वातिकाः श्लैष्मिकाश्चैव व्याधयः सम्भवन्ति ये ॥
अस्य प्रभावाद्ग्रहणी कासश्वासाऽरुचिक्षयाः ।
वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यान्ति वेगतः ॥
तिमिरं पटलं काचं पिल्लं नक्तान्ध्यमर्जुनम् ।
आसन्नतिमिरं यच्च शशिनः पश्यति द्वयम् ॥
जराव्याधिविनाशाय राजरोगविनाशनम् ।
दशरात्रप्रयोगेण महाव्याधिविनाशनम् ॥
रक्तिकार्द्धं सदा सेव्यो वृद्धस्तरुणतां व्रजेत् ॥रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद, मैनसिल, सुवर्ण प्रत्येक २० तोले, माणिक्यभस्म १६ तोले मोती और प्रवालभस्म प्रत्येक ८ तोला, सीसा ४ तोला, बलि ३२ तोला सबको विधिपूर्वक एक शीशीमे भर वालुका यन्त्रमें रखकर ३६ प्रहरकी अग्नि पर पकावे । मात्रा—½ रत्ती ।

गुण—कामवर्द्धक, बलवर्द्धक और नपुंसकता नाशक है, इसके सेवनसे वीर्यवृद्धि, बलवृद्धि व मांसवृद्धि होती है तथा ग्रहणी, कास, श्वास, अरुचि, क्षय और प्रतिश्यायमें लाभदायक है । आगे ग्रन्थकार कहता है कि—तिमिर, जाला, मोतियाबिन्द, वर्त्मविकार, रतौंधा, अर्जुन आदि नेत्र रोगोंको दूर करता है यहांपर ग्रन्थकारने यह नहीं बतलाया कि उक्त नेत्ररोग खानेसे दूर होते हैं या लगानेसे ।

सम्मति—मैंने यह रस नहीं बनाया किन्तु नेत्ररोगमे लाभदायकका विधान पढ़कर मेरी अपनी सम्मति यह है कि यह रस तललग्न ही तय्यार करना चाहिये और इसमे सुवर्णपत्रके स्थानपर सुवर्णभस्मका उपयोग करना चाहिये, जब यह रस तललग्न बनेगा तो यह खाने और नेत्रमें लगानेके लिये दोनों ही काम दे सकता है।

सम्भव है ग्रन्थकर्ता ऊर्ध्वलग्न माणिक्यको खानेमे और तललग्नको नेत्र में डालनेके काममे लाता हो ऐसा होना सम्भव है क्योंकि सीसा, मुक्ता और प्रवाल आदि नेत्रमें डालनेसे नेत्ररोगोंमें हितकर हैं।

मुक्तागर्भपोटली रस

मृतं स्वर्णं मुक्ता विषचपलमंशं समबलिं,
द्विघस्त्रं सम्मर्द्य ज्वलनपयसा गोलकमिदम्।
समृद्धस्त्रैर्वेष्ट्यं मुनिमितमथो रोपय पुटे,
सुभाण्डस्थं भाण्डे विपच दिनमेकं हिममिदम्॥
तथा गुञ्जे पाण्डौ ज्वररुजि समेहे गदपतौ।
विशुक्रे मुक्तापोटलिरथ मरीचाज्यविहिता॥

रसराजशङ्कर।

अर्थ—सुवर्णभस्म, मोती, मीठातेलिया और पारद सब बराबर और सबके बराबर बलि मिलाकर चित्रकमूल क्राथमें ७ दिन खरल करके गोला बनाय सम्पुटमे बन्दकर लवणयन्त्रमें रखकर ४ प्रहरका मन्द उत्ताप दे।

मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—मिर्च और घृतसे।

गुण—जीर्णज्वर, प्रमेह, राजयक्ष्मा और शुक्रक्षय आदिमें लाभप्रद है।

मुक्तामृगाङ्क रस

रुक्मं तीक्ष्णाभ्रं कान्तं रजतरसभवं भस्मवङ्गा हि तुल्यं।
मुक्ता सर्वैः समाना द्विगुणमथ रसाद्गन्धकं टङ्कणाभ्रं।

पादांशं सर्वमेतत्तुपभवसृदितं पूर्ववद्यन्त्रपक्वं ।
स्वाङ्गं शीतं मृगाङ्कं मृगमदतुलितं यक्ष्मरोगे प्रशस्तम् ॥
रसपद्धति ।

अर्थ—सुवर्ण, तीक्ष्णलोह, कान्तलोह, रजत इनकी भस्में, पारद सब एक एक भाग, वग और सीसाभस्म ढाई ढाई भाग, मोती १० भाग, वलि २ भाग, टङ्कण ५½ भाग सबको १ दिन काञ्जीमे खरल करके गोला बनावे, फिर मैनफलके पत्तोंमें लपेटकर सम्पुटमे बन्द करके लवणायन्त्रमे रखकर ४ प्रहर मन्द उत्ताप पर पकावे । पश्चात् निकालकर धतूरा, भांग, खसखस, तिल और कुमारी रसमें एक-एक दिन खरल करके पुनः सम्पुटमे बन्दकर लवणायन्त्रमे रखकर ३ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे, पश्चात् इसमे बराबरकी कस्तूरी मिला कर रखले। मात्रा—३ रत्ती ।

गुण—राजयक्ष्मामे महान् लाभदायक है ।

मृगांक रस

भूर्जवत्तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत् ।
तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥
काञ्चनाररसेनैव ज्वालामुख्या रसेन वा ।
लाङ्गल्या वा रसैस्तावद्यावद्भवति पिष्टिका ॥
ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टङ्कणं तत्र निक्षिपेत् ।
पिष्टमौक्तिकचूर्णञ्च हेमद्विगुणमावपेत् ॥
तेषु सर्वसमं गन्धं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत् ।
तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत् ।
पश्चान्मृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत् ॥
शरावसम्पुटस्यान्ते तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥
लवणापूरिते भाण्डे धारयेतञ्च सम्पुटं ।
मुद्रां दत्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयैः पुटेत् ॥

ततः शीते समाहृत्य गन्धं सूतसमं क्षिपेत् ।
घृष्ट्वा च पूर्ववत्खल्वे पुटेद्गजपुटेन च ॥
स्वाङ्गशीतं ततो नीत्वा गुञ्जायुग्मं प्रकल्पयेत् ।
अष्टभिर्मरिचैर्युक्तः कृष्णात्रययुतोऽथ वा ॥
विलोक्य देया दोषादीन्नैकैका रसरक्तिका ।
सर्पिषा मधुना वाऽपि दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥
लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ।
श्लेष्मारां ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम् ॥
अग्निमान्द्यं धातुशोषं प्रवलान् कफजान्गादान् ।
मृगाङ्कोऽयं रसो हन्यात्कृशत्वं बलहीनताम् ॥

शार्ङ्गधर संहिता ।

अर्थ—सुवर्णके वर्कके बराबर पारद दोनोंको मिलाकर कचनारकली और ज्वालामुखी व कलिहारीके रसमे खरल करे; जब पिष्टि बन जाय तो सुवर्णसे चौथाई टङ्कण तथा सुवर्णसे दूने मोती चूर्णकर इसमें मिलादे; पश्चात् सबके बराबर बलि देकर खरल करके एक गोला बनावे उस गोलाको सम्पुटमे बन्द करके, पश्चात् लवण यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्नि दे। कुछका मत है भूधर यन्त्रमे रखकर १ मन वन-उपलोंकी अग्नि दे, इसको पुनः निकालकर इसमे बराबरका बलि और पारद दोनों वस्तुएं मिलाकर खरल करके सम्पुटमे बन्दकर गजपुटकी अग्नि देकर निकाल रखे। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—घी और शहदसे देवे या लोकनाथमे कहे अनुपानसे दे।

गुण—श्लेष्मरोग, संग्रहणी, कास, श्वास, राजयक्ष्मा, अरुचि, अग्निमान्द्य, धातु शोष और कफरोगमे लाभदायक है।

मृगांक रस (दूसरा)

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत् ।
गन्धकश्च समं तेन रसतुल्यन्तु टङ्कणम् ॥

तत्सर्वं मृदितं कृत्वा काञ्जिकेन च पेपयेत् ।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
मृगाङ्कसञ्ज्ञको ज्ञेयो राजयक्ष्मनिकृन्तनः ।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य मरिचैः सह भक्षयेत् ॥
पिप्पलीदशकै र्वाऽपि मधुना सह लेहयेत् ।
पथ्यन्तु लघुभि र्मांसैः प्रयोगेऽस्मिन् प्रयोजयेत् ॥
व्यञ्जनै र्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैरहिंगुभिः ।
एलाजाजीमरीचैस्तु संस्कृतैरविदाहिभिः ॥
वृन्ताकविल्वतैलानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत् ।
स्त्रियं परिहरेद्दूरं कोपञ्चाऽपि विवर्जयेत् ॥

रसेन्द्रसार सग्रह ।

अर्थ—पारद, सुवर्णभस्म १-१ भाग प्रथम सम्मेलन बनावे फिर मोती, बलि २-२ भाग, टङ्कण १ भाग मिलाकर काञ्जीमे एक दिन खरल करके सम्पुटमे बन्द करके लवणयन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे ।

मात्रा—४ रत्ती ।

गुण—राजयक्ष्मामे लाभदायक है ।

मृगांक रस (तीसरा)

शुद्धं सूतं स्वर्णभस्म जम्बीरै र्मर्दयेद्दिनम् ।
तयोर्द्विगुणितं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यन्तु गन्धकम् ॥
टङ्कणं गन्धकार्द्धञ्च सर्वं जम्बीरजै र्द्रवैः ।
मर्द्यं यामैश्चतुर्भिस्तद्वस्त्रे बद्ध्वा विपाचयेत् ॥
दोलायन्त्रे सारनाले यामादुद्धृत्य शोषयेत् ।
ततो मृन्मयभाण्डान्तर्लवणञ्चाऽङ्गुलद्वयम् ॥
ऊर्ध्वाऽधः पृष्ठतः कृत्वा गोलकं वस्त्रवेष्टितम् ।
लवणैः पूरयेद्भाण्डमन्धयित्वा दिनं पचेत् ॥

चुल्यां क्रमाग्निसिद्धः स्याद्रसो महामृगाङ्कः ।
अनेनैव प्रकारेण मृगाङ्कान् पाचयेद्रसान् ॥
राजरोगनिवृत्यर्थं देयं गुञ्जामितं घृतैः ।
दशभिर्मरिचैः सार्द्धं पिप्पलीमधुनाऽपि वा ॥ रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, सुवर्णभस्म समभाग लेकर इन दोनोंको एक दिन जम्बीरी के रसमे खरल करके दोनोंसे द्विगुण ताम्रभस्म और सबके बराबर बलि और बलिसे आधा टङ्कण मिलाकर जम्बीरीके रसमें १ दिन खरल करके गोला बनाकर दोलायन्त्रमें काञ्जी द्वारा स्वेदन करे; पश्चात् उस गोलेको शराव सम्पुट मे बन्द करके लवणयन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी क्रमाग्नि दे ।

मात्रा—१ रत्तीसे ३ रत्ती तक ।

अनुपान और गुण—घृत, मिर्च, मधुसे या पीपल मधुके साथ सेवन करानेसे राजयक्ष्मा रोगमे लाभ होता है ।

मृगांक रस (चौथा)

रसभस्म स्वर्णभस्म पृथङ्निष्कं प्रकल्पयेत् ।
शङ्खगन्धकमुक्तानां द्वौद्वौ निष्कौ च चूर्णितम् ॥
मुक्तापादं वराटानां रसपादञ्च टङ्कणम् ।
वरारसेन क्काथेन मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ॥
तद्गोलकं विशोष्याऽथ भाण्डे लवणपूरिते ।
पचेद्यामचतुष्कञ्च मृगाङ्कोऽयं रसोत्तमः ॥
राजरोगनिवृत्यर्थं चतुर्गुञ्जामितं घृतैः ॥ रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—रससिन्दूर, सुवर्णभस्म १-१ भाग, बलि और मोती २-२ भाग, कौड़ीभस्म आधा भाग, टङ्कण चौथाई भाग सबको त्रिफलाके क्काथमे मर्दन करके गोला बनाकर सम्पुटमें रख लवणयन्त्रमे ४ प्रहरकी अग्नि दे ।

मात्रा—४ रत्ती ।

गुण—राजयक्ष्मामे लाभदायक है ।

सोऊलल-विरह्या [१३०२-

मानलिय-पम्ह-विन्थारो ।
चैाउग दिट्ठी ॥ १३०१

मृतसञ्जीवन रस

गन्धकं गगनं तालं माक्षिकञ्च मनःशिला ।
पारदश्चाऽश्वगन्धा च नैपालं टङ्कणं तथा ॥
सुवचा रोहिणी चैव कटुकाऽलाबुबीजकम् ।
मरिचं मागधी चैव मधूकस्य च बीजकम् ॥
वङ्गताम्रविभीतञ्च ह्यभया धरणीफलम् ।
पञ्चक्षारयुतं चैव समभागानि योजयेत् ॥
खल्वोदरे विनिःक्षिप्य कारवल्लीरसद्रवैः ।
निम्बजम्बीरधत्तूरमातुलुङ्गरसेन च ॥
कटुकाऽर्करसैश्चित्रैश्चाताम्बूलोत्थै रसैर्मुहुः ।
वह्निना सैन्धुवारैश्च रसै धीमान् विमर्दयेत् ॥
श्लक्ष्णभाण्डे विनिःक्षिप्य वालुकाग्नौ विपाचयेत् ।
बलिमन्त्रविधानैश्च ग्राहयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥
करण्डशीशकेस्थाप्यं रक्षयेन्मृत्युमृत्युदम् ।
कालसंहरणं नाम पूजयेदीश्वरं शिवम् ॥
आर्द्रकस्वरसेनैव गुञ्जामात्रं प्रदापयेत् ।
मृतसञ्जीवनो नाम रसोऽयं भैरवोदितः ॥
प्रलयानिलसंहार यथा मेघाऽनिलेन च ।
तथैव सन्निपातश्च नष्टो भवति तत्क्षणात् ॥
मृतवत्काष्ठतुल्योऽपि बोध्यते शीघ्रमद्भुतम् ।
प्राणानेव प्रसुतेभ्यः पुनरावर्तयेद्ध्रुवम् ॥
विषोपविषसङ्घातैरभिन्यासादिदोषकैः ।
उन्मादभ्रान्तिसम्भूतै मूर्च्छातस्य प्रयोजयेत् ॥
कासे श्वासे महाशूले पक्षाघाते जलोदरे ।
अनुपानविशेषैश्च सर्वान्नाशयति क्षणात् । रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—बलि, अभ्रकभस्म, हरताल, सुवर्णमाक्षिक, मैनसिल, पारद, असगन्ध, जैपालबीज, टङ्कण, वच, रोहणी, कुटकी, कड़वी तुम्बीके बीज, मिर्च, पीपल, महुआके बीज, बङ्गभस्म, ताम्रभस्म, त्रिफला, पांचों क्षार, सब बराबर लेकर निम्नलिखित रसों या क्वाथोंकी एक २ भावना दे। करेला, निम्ब, जम्बीरी, धतूरा, बिजौरा, कुटकी, आक, इमली, पान, चित्रक और संभालू की; पश्चात् सूखने पर शीशीमे भर वालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी क्रमाग्नि दे।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण—सन्निपातमें अत्यधिक लाभदायक लिखा है, रोगी मृत्युके मुखमे पड़ा हुआ संज्ञाहीन होरहा हो इसकी एक मात्रा खानेसे एकबार तो बातें करने लग जाता है।

मृतसञ्जीवन रस (दूसरा)

पारदं सुमृतं ताम्रं तार्प्यं मौक्तिकमेव च।
हेमवज्रप्रवालञ्च सर्वमेकत्रचूर्णयेत्॥
चतुर्थांशं शुद्धगन्धं दत्त्वा कूप्यां सुधीः पचेत्।
खादेद्गुञ्जाद्वयञ्चाऽस्य यथाबलमथाऽपि वा॥
पिप्पलीमधुना चैवं पिप्पलीखण्डकेन वा।
गुडशुण्ठिकया वाऽपि पञ्चकोलेन वाऽथवा॥
मृतसञ्जीनोनाम शिरोरोगं निकृन्तति।
अनुपान प्रभेदेन सर्वशीर्षामयापहः॥

रस रत्नमणिमाला

अर्थ—पारद, ताम्रभस्म, सोनामक्खीभस्म, मोती, सुवर्णभस्म, प्रवाल, हीरा सब समभाग और बलि सबसे चौथाई डाल खरल करके शीशीमे भर वालुका यन्त्रपर रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्नि दे।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण—अनुपान भेदसे देने पर समस्त सिरके रोग दूर होते हैं।

मृतसञ्जीवन रस (तीसरा)

मरिचं टङ्कणं सूतं माक्षिकं कान्तलोहकम् ।
अभ्रकञ्च समांशानि वह्निक्वाथेन मर्दयेत् ॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य वालुकायन्त्रपाचितम् ।
मरिचाऽऽर्द्रकसंयुक्तं द्विगुञ्जं भक्षयेत्सदा ॥
पथ्यं क्षीरोदनञ्चैव तापे दद्यात्सशर्करम् ।
प्रातःकाले तु सेवेत सद्यः स्वेदं विमुञ्चति ॥

वसव राजीय ।

अर्थ—मिर्च, टङ्कण, पारद, सोनामक्खीभस्म, कान्तलोहभस्म और अभ्रकभस्म सब समभाग लेकर इनको चित्रकके काढेमे खरल करके शीशीमे डाल वालुकायन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी अग्नि दे । मात्रा—२ रत्ती ।

अनुपान और गुण—मिर्च और अद्रकरसके साथ सेवन करानेपर अत्यन्त पसीना आना बन्द होता है । खाण्डमे डालकर देनेसे ज्वरमे लाभ होता है ।

मृतोत्थापन रस

क्षारत्रयं शम्भुवीर्यं दरदं देवपुष्पकम् ।
पञ्चटङ्कमितानेतान् द्विटङ्कांश्चाऽप्यतः परम् ॥
शिला शुद्धा प्रयोक्तव्या तालकं गन्धकं वचा ।
मस्तकी गरलं कुष्ठं मृतताम्राऽभ्रटङ्कणम् ॥
लोहभस्म च सम्मेल्य कटुतैलेन मर्दयेत् ।
कूपिकां वालुकायन्त्रे विपचेद्यामयुग्मकम् ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
लशुनस्याऽथ तैलेन नेपालबीजतैलतः ॥
चित्रकस्य कषायेण ह्यार्द्रकस्य जलेन वा ।
सन्निपातं निहन्त्याशु गुञ्जामात्रप्रमाणतः ॥
मृतः सोऽपि पुनर्जीवेद्रोगमृत्युभयापहः ।

मिष्टान्नं पायसं दद्यादुपचारैश्च शीतलैः ॥
राजोपचारैः कुर्वीत गात्रलेपंसुचन्दनैः ।
मृतोत्थापनको नाम रसोऽयं सर्वरोगजित् ॥

रसराजशङ्कर ।

अर्थ—तीनों खार, पारद, सिंगरफ, लौंग प्रत्येक पांच तोला, मैनसिल, हरताल, बलि, वच, मस्तगी, मीठातेलिया, कुठ, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, टङ्कण, लोहभस्म प्रत्येक २ तोला लेकर सबको सरसोंके तेलमे खरल करके शीशीमें डाल बालुका यन्त्रमे उस शीशीको रखकर मन्द मन्द अग्निपर २ प्रहर पकावे; पश्चात् निकालकर लहसुनके तेलकी एक, जैपाल बीजतेलकी १, और चित्रकके काढेकी १, अद्रकरसकी १ भावना देकर १ रत्तीकी गोली बनाकर रखले ।

गुण—इसके सेवनसे मृत-तुल्य सन्निपातका रोगी एकबार उठकर बातें करने लगता है और तमाम उपद्रव शान्त होजाते है, इसके सेवनसे दाह हो तो शीतलोपचार करे ।

सम्मति—इस रसको इतनी अग्नि पर पकाना चाहिये जिससे सरसोंका तैल गाढ़ा होजाय उस समय उतार ले, यदि अधिक पकाया जायतो काष्ठौपध बिलकुल जल जायंगी और उनका गुण भाग नष्ट हो जायगा ।

मेघनाद रस

षट्पलं सूतराजश्च तदर्द्धं गन्धकं मतम् ।
त्रिशं गन्धसमं योज्यं शिलातालकसीसकम् ॥
दरदं वत्सनाभश्च पर्पट धूर्तबीजकम् ।
प्रत्येकाऽर्द्धपलं दद्याच्छुष्के खल्वे भिषग्वरः ॥
सम्मर्द्य कज्जलीं कृत्वा कन्यानीरेण भावयेत ।
काकमाचीशिफातोये हस्तिशुण्डीजले ततः ॥
हंसपादीरसे सम्यगष्टधा परिभावयेत् ।

कौऽठल-विरइया [१३०९-

मान्लिय-पम्ह-विल्थारों ।
चौउग दिट्ठी ॥ १३०९

ततः काचघटे देयं घटीं सैकतयंत्रगाम् ॥
कृत्वा द्वादश यामान्वै ज्वालयेत्तदधोऽनलम् ।
स्वाङ्गशीतं समुत्तार्य खल्वे कृत्वा विचूर्णयेत् ॥
पुनः शिलादिकं योज्यं भावयेत्कन्यकादिभिः ।
सिकताख्ये पुनर्देयो वह्निर्यामार्कमानतः ॥
स्वाङ्गशीतं समुत्तार्य मेघनादो रसोत्तमः ॥
करोति वह्निं बलपुष्टिकान्तिं हन्याच्च वातं कफपित्तमुग्रम् ।
श्वासं सकासं परिणामशूलमेघाग्निहन्यात्किल मेघनादः ॥

टोडरानन्द ।

अर्थ—पारद २४ तोला, बलि और सोंठ १२-१२ तोले, मैनसिल, हरताल, हराकसीस, सिंगरफ, मीठातेलिया, पित्तपापड़ा और धतूरेके बीज प्रत्येक २ तोले लेकर इनको घीकुंवार, मकोय हाथीसुण्डी और हंसराजके रसकी ८-८ भावना देकर शीशीमे भर बालुका यन्त्रमे रखकर १२ प्रहरकी अग्नि दे।

मात्रा—१ रत्तीसे ३ रत्ती तक।

गुण—श्वास, कास परिणामशूलमे लाभदायक है तथा क्षुधावर्द्धक और बलवर्द्धक है।

मेघनाद (दूसरा)

शुचिरसबलिताभ्रं भागतस्तुल्यभागं,
द्विगुणितशरभागो पत्तभागोऽपि गौरः ।
प्रहरमपि चतुष्कं निम्बुनीरेण भाण्डे,
पचनमुपगतोऽग्नौ जायते मेघनादः ॥
जयति विषममुग्रं कारवेल्यम्बुयुक्तः,
त्रिकटुकरसयुग्वा चक्रपर्णम्बुयुग्वा ।
सुरभिसलिलयुग्वा गुञ्जमानः सिताऽऽढ्यो,
गुडजरणायुतो वा क्षीरभक्ताशिनाञ्च ॥ रसावतार ।

अर्थ—पारद, बलि, ताम्रभस्म बराबर, सोमल ६ भाग या १५ भाग लेकर सबको निम्बूरसमें खरल करके सम्पुट करे फिर बालुका यन्त्रमें रखकर मन्द अग्निपर पकावे। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान और गुण—इस रसको करेलारस, त्रिकटुक्काथ, तुलसीरस, गोदुग्ध, शर्करा, गुड़ और जीरा आदि किसी प्राप्य अनुपानके साथ सेवन कराने से विषमज्वर, मलेरिया ज्वरमे लाभदायी है।

यक्ष्मशत्रु रस

स्वर्णं ताम्रं पारदं चाऽष्टभागं गन्धाद्भागाः षोडश स्युश्च शुद्धात्।
सर्वं खल्वे न्यस्य भाव्यं दिनैकं पार्थक्येन व्योषलुङ्गाऽऽर्द्रकाऽद्भिः॥
वह्निद्रावैस्त्रैफलै भृङ्गधारा कन्याम्भोभिः शोणकार्पासपुष्पैः।
ब्राह्मीमुण्डीन्द्रग्णितालीसगुप्ता भूकूष्माण्डीन्दीवरीवारिणा च॥
गुञ्जाबीजैः कज्जलीं काचकूप्यां क्षिप्त्वा किञ्चिट्टंकणंचाऽत्र देयम्।
पाच्यं यामान् षोडशैवं प्रयत्नात्सिद्धः सूतो जायते यक्ष्मशत्रुः॥
ताम्बूलिनां पत्रयुग्मे लवङ्गैः सायं प्रातः सप्तभिः सेवनीयः।
अग्नौमन्दे मारुते क्षीणदेहे कासे श्वासे रोगराजे प्रशस्तः॥
वर्ज्यश्चाऽस्मिन् प्रायशो भोज्यमाषास्तैलं तीक्ष्णां राजिकामत्स्यमांसम्
अश्विभ्यां वै षण्मुखे चोपदिष्टस्ताभ्यामुक्तस्तारकानायकायै॥

रसायन संग्रह।

अर्थ—सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, पारद प्रत्येक समभाग, बलि सुवर्णसे द्विगुण, सबको एकत्र करके त्रिकटु, बिजौरा, अद्रक, चित्रक, त्रिफला, भांगरा कुमारी, रक्तकपासपुष्प, ब्राह्मी, गोरखमुण्डी, इन्द्रायण, तालीसपत्र, कौंच, विदारीकन्द, शतावर और गुञ्जास्वेत इनके रस या क्वाथोंकी एक एक भावना देकर सुखाले फिर शीशीमे भरकर उसमे सुवर्णसे $\frac{1}{16}$ सोलहवां भाग टङ्कण पीसकर डाल दे पुनः बालुका यन्त्रमें रखकर १६ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे। यह तललग्नरस है। मात्रा—३ रत्ती।

गुण—मन्दाग्नि, निर्बलता, कास, श्वास और राजयक्ष्मामें लाभप्रद है।

योगवाहक रस

सूतं ताम्रं कान्तशपाणगन्धं कार्पासास्थिक्वाथतो वासरैकम्।
वर्षेत्पश्चात्पाचनाख्ये च यन्त्रे शौल्वेपात्रे यत्नतः पाचयेच्च ॥
ताम्रे लग्नं नागवल्लीगुडूचीनीरे सूतं मर्दयेद्वासरैकम्।
उक्तः सूतो योगवाहोऽस्य वल्लं दद्याद्रोगोपूक्तमानेन नूनम् ॥
रसदीपिका।

अर्थ—पारद, ताम्रचूर्ण, कान्तलोह और बलि समभाग लेकर बिनौलेके क्वाथमें एक दिन खरल करके ताम्रकी कूपीमें भरकर वालुका यन्त्रमें रखकर ८ प्रहरकी तीव्र अग्निपर पकावें यह ऊर्ध्वलग्न रस बनेगा। जो रससिन्दूर ताम्रकूपीमें ऊपर जाकर लगे उसको खुर्च ले, इस रससिन्दूरको पान और गिलोय स्वरसकी एक एक भावना देकर २ रत्तीकी गोली बनाकर रखले। भिन्न २ अनुपानसे समस्त रोगोंमें लाभदायक है।

सम्मति—यह रससिन्दूर ही है, इसमें और रससिन्दूरमें कोई अन्तर नहीं होता। यह रस ताम्र कूपीकी अपेक्षा काचकूपी में बनाना ठीक है।

योगी रस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं चतुर्भागं मृताऽभ्रकम्।
निर्गुण्डीकारवल्लीभ्यां धत्तूराऽऽर्द्रकचित्रकैः ॥
गिरिकर्णीजयन्तीभ्यां तिलपर्ण्या भृङ्गराजकैः।
कार्पासीकांचनीदन्तीकदम्बकेशराजकैः ॥
मर्दयित्वा तु तच्चूर्णं कटुतैलेन सेचयेत्।
शरावसम्पुटे रुद्ध्वा वालुकायन्त्रके पचेत् ॥
स्वाङ्गशीतलमादाय हेमभस्म तु तारकम्।
नागवल्लौ पंचपट्ठ त्रिक्षारं हिंगुलं समम् ॥
पूरयेद्वालुकायन्त्रे त्रियामं पाचयेद् दृढम्।

स्वाङ्गशीतलमाकृष्य विषं पादमितं क्षिपेत् ॥
बल्लीजपञ्चभागांश्च पञ्चपित्तै र्विभावयेत् ।
नानाऽनुपानैः संयुक्तं रेणुमात्रं प्रयोजितम् ॥
साध्याऽसाध्यांश्च दोषांश्च सर्वरोगान्विनाशायेत् ।
सर्वशास्त्राऽनुसारेण योगीरस उदाहृतः ॥

रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग, अभ्रकभस्म ४ भाग सबको एकत्र करके संभालू, करेला, धतूरा, अद्रक, चित्रक, अपराजिता; जयन्ती, हुरहुर, भृङ्गराज, कपासपुष्प, हल्दी, दन्ती, कदम्ब और भाङ्गराकी एक एक भावना दे, पश्चात् सरसोंके तेलमें खरल करके गोला बनाले फिर सम्पुटमें बन्द कर, बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे ।

पश्चात् इसमे निम्नलिखित वस्तुएं पारदके बराबर मिलावे । सुवर्णभस्म, रजतभस्म, नागभस्म, बंगभस्म, पांचों नमक, तीनों खार और सिंगरफ । इन सबको मिलाकर खरल करे, पुनः सम्पुटमें बन्द करके बालुका यन्त्रमे रखकर ३ प्रहर फिर पकावे, पश्चात् निकालकर समस्त वस्तुओंका चतुर्थांश मीठातेलिया चूर्ण और पञ्चमांश कालीमिर्च चूर्ण मिलाकर पांच पित्तोंकी एक एक भावना देकर रखले । मात्रा—इसकी १ सरसों दाने जितनी ।

गुण—ग्रन्थकार कहता है कि इसे समस्त रोगोंपर भिन्न २ अनुपानसे देवे तो समस्त साध्य और असाध्य रोग इसके सेवनसे दूर होजाते हैं, ऐसेही रस साधु-महात्मा अपने बटुवेमे रखे हुए तिनकेपर रखकर जिसे दे जाते थे जनता और वैद्य उसके चमत्कृत गुणोंको देखकर हैरान रह जाते थे ।

रत्नेश्वर रस

अर्द्धभागेन सूतेन तारं ताम्रेण मेलयेत् ।
मारयेत्सिकायन्त्रे शिलाहिंगुलगन्धकैः ॥
अयं रत्नेश्वरः सूतः सर्वरोगनिकृन्तनः ।

अलं ज्ञात्वा चतुःषष्टिरोगांस्तैस्तैश्च लक्षणैः ॥
एष रत्नेश्वरः सूतः सर्वरोगेषु युज्यते ।

रसायन संग्रह ।

अर्थ—पारद २ भाग, रजत, ताम्र एक एक भाग, मैनसिल, हरताल और सिंगरफ पारदका चौथाई भाग मिलाकर शीशीमें डालकर बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहरकी मन्द अग्निपर पकावे तो यह रस सिद्ध होता है। इस रसको समस्त रोगोंपर देवे। मात्रा—१ रत्ती।

रवितारडव रस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम् ।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ततस्तेन प्रलेपयेत् ॥
तयोः समं ताम्रपत्रं हरिडकान्तर्निवेशयेत् ।
तद्भाराडं भस्मनाऽऽपूर्य चुल्यां तीव्राग्निना पचेत् ॥
द्विदिनान्ते समुद्धृत्य चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ।
जम्बीरस्य रसैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटैः पचेत् ॥
गुञ्जैकं मधुनाऽऽज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम् ।
मुशलीं लवणाश्चानु ह्यारनालयुतं पिवेत् ॥
भुञ्जीत मधुराहारं दिवास्वापञ्च मैथुनम् ।
वर्जयेच्छीतलाहारं रसेऽस्मिन्रवितारडवे ॥ रसेन्द्रसार संग्रह ।

अर्थ—पारद १ भाग, वलि २ भाग कज्जली कर घीकुंवारके रसमे खरल करके ताम्रके कंटकवेधी पत्र इस कज्जलीके बराबर लेकर उसपर उक्त कज्जलीका लेप चढ़ादे। जब वह सूख जाय सम्पुटमे बन्द करके उसे भस्मयन्त्रमे रखकर दो दिनकी अग्निपर पकावे, पश्चात् निकालकर जम्बीरी निम्बूके रसमे खरल करके टिकिया बनाकर सम्पुटमें रखकर मंद अग्निपर पकावे; इस तरह सातबार करे तब यह रस तय्यार होता है। अग्निकी पुट इतनी हल्की देनी चाहिये कि पारद यौगिक न उड़े। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—भगन्दरमें लाभ करता है।

अनुपान—मूसली, सैंधानमक मिलाकर काञ्जीसे यह दवा सेवन करावे।

रवितारडव रस (दूसरा)

दशभागं ताम्रभस्म दरदो दशभागिकः।
उभयोः कज्जलीं कृत्वा लुङ्गनीरेण मर्दयेत् ॥
पत्रीकृतस्य नागस्य दशभागान् प्रकल्पयेत्।
कूप्यां निधाय वै पश्चात्क्रमवृद्धाऽग्निना दिनम् ॥
एवं कुर्वीत नवधा वह्निं दद्याद्यथाविधि।
रसः कुङ्कुमवर्णः स्यात्प्रोक्तोऽयमनुभूतितः ॥ रसायन संग्रह।

अर्थ—ताम्रभस्म, और सिंगरफ सीसा तीनों समभाग लेकर ताम्र और सिंगरफको बिजौरा निम्बूके रसमे खरल करके सीसाके पत्र बनाय उसपर लेप करके उसे शीशीमें डालकर तीव्र अग्निदे इसतरह प्रतिवार सीसामे सिंगरफ डाल कर ९ बार पकानेपर सीसाकी केशर सदृश वर्णकी भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण—यह रस समस्त रोगोंको दूर करता है।

सम्मति—इस रसको निर्माण करनेपर प्रतिवार रससिन्दूर शीशीके गलेपर आकर लगेगा, उसे निकालकर एकत्र करते रहना चाहिये। यह रससिन्दूर या नागसिन्दूर बनता है। तलमे विद्यमान सीसा कुंकुम वर्ण नहीं बनता वह श्यामवर्ण होता है ग्रन्थकार कहता है कि वह कुंकुमवर्णका रस होगा मगर इस कथनसे तो ग्रन्थकारका अभिप्राय ऊर्ध्वलग्नरससे ज्ञात होता है। इसे हमने निम्नलिखित विधिसे तैयार किया है सिंगरफ, सीसीके बराबर प्रतिबार डाला किन्तु जो रससिन्दूर ऊपर जाकर लगता था उसे भी उसीमें प्रतिबार खुरचकर मिला देते थे इसीसे रससिन्दूरकी मात्रा प्रतिबार बढ़ती चली गई। किन्तु सीसा लाल नहीं हुआ। इससे हम इस परिणामपर पहुंचे कि ग्रन्थकारने ऊर्ध्वलग्न रससिन्दूरको उपयोगके लिये ग्रहण किया है।

कोकाल-निरया [१२०९-

नालिय-पम्ह-निल्यारो।
चौउरा दिट्ठी ॥ १३०९,

रसराजेश्वर रस

सुशुद्धं पारदं भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
भागार्द्धं स्फटिकीं दद्यात्खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥
स्नुहीक्षीरै दृढं भाव्यं त्रिदिनं मर्दयेत्तथा ।
अर्कक्षीरै दिनं त्रीणि कुमारीरसतस्तथा ॥
धुस्तूररसकेनैव क्रमाद्भाव्यं पृथक् पृथक् ।
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य वालुकायन्त्रके पचेत् ॥
चतुर्यामन्तु पक्वञ्च स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ।
रसराजमिदं भस्म पूर्णचन्द्रसमानकम् ॥
अनुपानविशेषेण सर्वरोगप्रशान्तये ।
व्रीहिमात्रप्रमाणेन सर्वव्याधिनिवारणम् ॥

लघुवैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, हरताल दोनों बराबर और पारदसे आधी फटकड़ी मिला-मरको खरल करे, पश्चात् तीन दिन थोहरके दुग्धमें, तीन दिन आकके दुग्धमे, तीन दिन घीकुमारीके रसमे और तीन दिन धतूरेके रसमें खरल करके सुखावे, फिर शीशीमें भरकर ४ प्रहरकी अग्निपर यथाविधि पकावे ऊर्ध्वलग्नरस बनेगा।

मात्रा—एक चावल। गुण—समस्त रोगोंमे लाभदायक है।

सम्मति—यहभी एक प्रकारका मल्लसिन्दूर या तालसिन्दूर ही है।

रसराक्षस रस

गन्धकं पलमानेन पारदं कर्षसम्मितम् ।
कुनटी नवसारञ्च रसकं कर्षकर्षकम् ॥
कारवल्लीरसै मर्द्यं लेपयेत्सम्पुटोदरे ।
कण्टवेधिप्रकर्तव्यं पलैकं ताम्रसम्पुटम् ॥
दृढमृल्लेपं बहिः कुर्यात्ततो मृन्मयसम्पुटे ।
कृत्वा मृत्कर्पटान्सप्त वालुकायन्त्रगं पचेत् ॥

यामाष्टकं प्रयत्नेन ज्वलिते खादिराऽनले ।
क्षुधां बहुतरां कुर्यात्सुसिद्धो रसराक्षसः ॥
नागवल्लीदलै र्युक्तं वल्लमानेन दापयेत् ।
ज्ञातव्यो गुरुमार्गेण पक्वाऽपक्वस्य निर्णयः ॥

रससंग्रह सिद्धान्त ।

अर्थ—बलि ४ तोला, पारद, नवसादर, मैनसिल और खपरिया प्रत्येक तोला लेकर सबको करेलेके रसमें खरल करके ४ तोला ताम्रपत्रों पर इसका लेप चढ़ाकर सुखाले, इसे फिर सम्पुटमे बन्दकर मन्द उत्ताप पर बालुकायन्त्रमें रखकर ८ प्रहर पकावे तो यह रस सिद्ध होता है । मात्रा—२ रत्ती ।

अनुपान—पानके रससे देवे ।

गुण—यह भूख बहुत लगाता है ।

रसराक्षस रस (दूसरा)

ताम्रं पारदगन्धकौ त्रिकटुकं तीक्ष्णाभ्र सौवर्च्चलं ।
खल्वे मर्दनकं विधाय सिकताकुम्भेऽष्टयामं ततः ॥
स्विन्नं तस्य च रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं मेलयेत् ।
लुङ्गाऽम्लोत्थरसै विभाव्य सकलं नाम्ना रसो राक्षसः ॥
मन्दाग्नौ सततं ददीत हुतभुक्काथेन संयोजितं ।
व्याधिग्रस्तकलेवराय नितरां भुक्तोत्तरं शूलिने ॥
श्रीसूर्याय महेश्वराय गुरवे कृत्वा नतिं चादरात् ।
रुग्णानां क्रमतोऽस्य दानसमये गुञ्जाऽष्टकं वर्धयेत् ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—ताम्रभस्म, पारद, बलि, त्रिकटु, तीक्ष्णलोहभस्म और कालानमक सब समभाग लेकर सबको खरल करके शीशीमे भरकर बालुकायन्त्रमें रखकर ८ प्रहर मन्द २ अग्निपर पकावे; पश्चात् निकालकर लोनीखार बराबर मिलाकर जम्बीरी निम्बूके रसमें खरल करके रखले । मात्रा—१ रत्तीसे ८ रत्ती ।

अनुपान—चित्रक क्वाथसे सेवन करे ।

गुण—यह रस मन्दाग्निमे तथा परिणाम शूलमे अत्यन्त लाभदायक है ।

रसराक्षस रस (तीसरा)

सूतं विषं त्रिकटुकोरगफेनयुक्तं
मर्द्यं चतुर्गुणमितं मलभागयुक्तम् ।
आर्कैः पयोभिरथ पिष्टतमं दिनैकं
निक्षिप्य पिष्टममलं सितकाचकूप्याम् ॥
मुद्रां विधाय सुदृढां भिषगष्टयामं
पक्त्वा पुनर्दिनचतुष्टयवह्निवृद्ध्या ।
द्वात्रिंशदूर्द्ध्वमधरे विपरिक्रमेण
कुर्याद्दिनानि दश सावहितो हितार्थी ॥
गुञ्जार्द्धकं तु सितया सह नागवल्ल्या
ऋक्षो यथा विधृतमांसचयोऽन्नभक्ष्यात् ।
स्यादिन्द्रियादिषु वृषश्च यथेष्टभोज्ये
तृप्तः कदापि न पुमानपि मन्दवह्निः ॥ रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, त्रिकटु, अफीम प्रत्येक १ भाग, सोमल ४ भाग, सबको आकके दुग्धमे एक दिन खरल करके कांचकूपीमे डाल बालुका यन्त्रमे रखकर ८ प्रहरकी अग्नि दे पुनः निकालकर आकके दुग्धमे खरल कर पुनः दूसरी शीशीमे चढ़ाकर पुनः इसी प्रकार पकावे । दसवार पाक करनेपर यह रस सिद्ध होता है । मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—क्षुधावर्द्धक है । इसके सेवनसे मनुष्य पशु जितना खाता है ।

सम्मति—यह रस ऊर्ध्वलग्न बनेगा । इसे प्रतिवार उड़ानेपर अग्नि प्रभाव से इसके गठनमे कुछ अन्तर पड़ता है तभी गुणवृद्धि होती है । इस रसको निर्माण करनेपर नीचेका अवशिष्टभाग और ऊर्ध्वलग्न भाग दोनोंको प्रतिवार एकत्र कर पुनः पुनः तीव्र अग्निपर पकाना चाहिये ।

रसकपूर

कासीसं खटिकां च सिन्धुलवणं चुणणं त्रिभागं रसात् ।
मर्द्यं शुष्कमिदं दिनं मृदुतरं विद्याधरे वह्निना ॥
ताम्रेणोर्ध्वविलीनशङ्खधवलं संगृह्यकूप्यांन्यसेत् ।
तद्वल्लं सुरपुष्पमध्यनिहितं भुक्तं फिरङ्गं जयेत् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—हराकसीस, खड़ियामिट्टीपीली, नमकसैंधव पारदसे प्रत्येक चीज तिगुनी लेवे फिर इसमें पारद मिलाकर सुखा इतना खरल करे कि पारद उसमे मिल जाय, पश्चात् शीशीमे भरकर यथाविधि कूपीपाक करे या डमरूयन्त्रमे रखकर उड़ावे, जो ऊर्ध्वलग्नरस मिलेगा उसे दूसरीबार पुनः कूपीपाक करे ।

रसकपूर (दूसरा)

भागाः षट् च रसस्य सिन्धुलवणा त्सप्तैव सौराष्ट्रितः ।
तद्वृद्धया च सुवर्णगैरिकभवा भागास्तथा विंशतिः ॥
एकीकृत्य रसेन मर्दितमिदं यन्त्रे सुविद्याधरैः ।
पक्त्वा षोडशयामकै रसवरं फैरङ्गिके योजयेत् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद ६ भाग, नमकसैंधव ७ भाग फटकड़ीकी मिट्टी या मैग्नीज की मिट्टी ८ भाग, सोना गेरू २० भाग सबको सूखा खरल करे फिर डमरूयन्त्रमें रखकर प्रथम पाक करे; पश्चात् दूसरा पाक शीशीमें करे ।

रसकपूर (तीसरा)

कासीसं खटिका सुवर्णगिरिमृद्धर्मञ्जिका मृत्तिका ।
वल्मीकप्रभवा खटी च लवणं सिन्धुः समं हरिडका- ॥
मध्ये न्यस्य तदूर्ध्वतश्च विमलं फेनस्य मूषाद्वयं ।
मध्येऽस्मिन्रसराजकं विनिहितंदत्त्वातदूर्ध्वपुनः ॥

[१२०९-

चौडाल-विरदया

आनन्दिय-पम्ह-वित्यारो।
चौडा दिट्ठी ॥ १२०९

मृत्स्नान्तः परितो निरुध्य विमलं पात्रं मुखं मुद्रितम्।
दद्याद्वासरसप्तकं दृढतरं वह्निं क्रमाद्वर्धितम्॥
स्वाङ्गैः शीततरं विघट्य वदनं कुन्देन्दुकर्पूरभं।
ग्राह्यं तत्सुखकारणं रसवरं दद्याद्यथायोगतः॥

रसकामधेनु।

अर्थ—हराकसीस, खड़ियामिट्टीपीली, सोनागेरू, हिरमिज्जी, बांबीकी मिट्टी, दूबपथरी, सैंधानमक, सब समभाग लेकर इनको पीसकर एक हण्डीमे बिछाकर समुद्रफेनकी मूषामें पारद रखकर उसमूषाको उक्त चीजोंके बीचमे दबाकर सम्पुटकर पारदको उड़ावे तो पारद यौगिक बनकर ऊपर आ लगेगा, उसको पुनः दूसरीबार शीशीमे उड़ावे तो उत्तम रसकपूर बन जायगा।

रसकपूर (चौथा)

भागैको नवसारटङ्कणफणी तुल्यांशिका तुवरी।
श्वेतागैरिकसम्भवं मलयजं सर्वैः समं पारदम्॥
आकाशस्थितवल्लिकाक्षसुलतातोयैस्त्रिभि मर्दयेत्।
कूप्यां न्यस्य निरोधयेच्छुभदिने यन्त्रस्थितं पाचयेत्॥
आदौ कुर्याच्चमन्दं तदनु दृढतरं वेदसङ्ख्या दिनान्ते।
पश्चाच्छीतं करोतु स्फटिकमणिनिभं जायते सूतभस्म॥

रसकामधेनु।

अर्थ—नवसादर १ भाग, टङ्कण १ भाग, समुद्रफेन १ भाग, फटकड़ी २ भाग, खड़ियामिट्टी २ भाग, सोनागेरू २ भाग, लालचन्दन २ भाग और पारद सबके बराबर लेकर इनको आकाशबेल और बहेड़ाके रसमे तीन दिन खरल करके शीशीमे या डमरूयन्त्रमे डालकर पारदको उड़ावे तो पारद यौगिक ऊपर आकर लग जाता है, इसे पुनः उड़ाले तो उत्तम रसकपूर बनता है।

सम्मति—भिन्न २ आचार्योंने बीसों प्रकारके रसकपूर बताये है वास्तवमे वे सब एक ही प्रकारके पारद यौगिकमे परिणत होते है उनमें जरा भी

अन्तर नहीं आता, इसी कारण उसके गुणोंमे भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। जो एक ग्रन्थकार उपदंशके लिये लाभदायक बताता है वही गुण अन्य ग्रन्थकार भी कहते हैं।

रसकपूर (पांचवां)

विशुद्धं रसमादय काचकूप्यां विनिःक्षिपेत्।
चतुर्गुणं बलिद्रावं दत्त्वाऽङ्गारेष्वधिक्षिपेत्॥
व्यजनेन धमेदग्निं धूमाच्छ्वासं च रक्षयेत्।
शलाकया लोहमय्या मध्येमध्ये च चालयेत्॥
गन्धसारे क्षयं याते रसे कुन्देन्दुसन्निभे।
दृष्टेऽवतारयेद्भूमौ कूपीं न्युब्जां विधाय च॥
रसचूर्णं समाहृत्य तत्समानञ्च सैन्धवम्।
मिश्रय्य सिकतायन्त्रे प्रहराभ्यांविपाचयेत्॥
कूपिकामुखसंलग्नं रसं कर्पूरमाहरेत्।
औपदंशिकरोगादौ स्वानुपाने नियोजयेत्॥

नूतनविधि।

अर्थ—पारदसे चौगुना बलिकाम्ल (गन्धकका तेजाब) लेकर दोनोंको कांचकूपीमे एकत्र करके कोयलों पर रखकर पंखा मारकर अङ्गारोंको खूब प्रज्वलित करे तो एकाएक कुछ देरमे बलिकाम्लके साथ पारद मिलकर बलि-काइदमें परिणत होजाता है उस समय सारा पारद बलिकाम्लसे मिलकर स्वेत चूर्णरूप बन जाता है। उस समय उसके धुएं से बचे, जब बलिकाम्ल जल जाय तब उतार कर उस पारदमे बराबर सैंधवनमकचूर्ण मिलाकर डमरुयन्त्रमे एकबार उड़ाकर फिर उसको दूसरीवार शीशीमे उड़ाले।

सम्मति—यही रसकपूर बनानेकी आधुनिक विधि है, इसी विधिसे विला-यतमें तथा सूरत और दक्षिण हैदराबाद आदि शहरोंमे बनता है। जिसका विस्तृत वर्णन हम रसनिर्माणके सिद्धान्त नामकशीर्षकमें कर आये है।

ग्रन्थकारने वलिकाम्ल के साथ इसे शीशीमे बनानेका विधान बतलाया है, और वलिकाम्लकी मात्रा चौगुनी बतलाई है। सम्भव है जिस समय ग्रन्थकारने इसे बनाया हो उस समय शुद्ध वलिकाम्ल न प्राप्त होता हो, इस समय तो शुद्ध वलिकाम्ल पारदके बराबर कढाईमे डालते है और उसे तीव्र अग्नि देते है तो उस कढ़ाईमे एकाएक अग्नि लग जाती है उस समय उसे हिलाते रहनेसे सारा पारद स्वेत भस्मके रूपमें बदल जाता है। फिर बराबर नमक डालकर उड़ा लेते है।

ग्रन्थकार एकवारमे रसकपूर बनानेका जो आदेश देते हैं एकबारमे उत्तम रसकपूर कभी तय्यार नहीं होता दोबार बनानेपर ही उत्तम रसकपूर बनता है।

रससिन्दूर

पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रन्तु गन्धकम्।
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधांऽकुरवारिभिः॥
भावनात्रितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत्।
विरच्य कवचीयन्त्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत्॥
दद्यात्तदनु मन्दाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम्।
जायते रससिन्दूरं तरुणादित्यसन्निभम्॥
अनुपानविशेषेण करोति विविधान्गुणान्॥

निघण्ट रत्नाकर।

अर्थ—पारद और वलि दोनों बराबर लेकर कज्जली करके वटांकुर क्वाथ या रसमें ३ भावना देकर विधिवत् ४ प्रहर कूपीपाक करे तो उत्तम रससिंदूर बनता है।

रससिन्दूर (दूसरा)

शुद्धं सूतं शुभं गन्धं प्रत्येकं तु चतुष्पलम्।
द्विपलं नवसारञ्च फेनञ्चापि पलं ततः॥
पलार्द्धं वत्सनाभञ्च वत्सनाभसमा खटिः।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यः पृथक्कर्षं नियोजयेत् ॥
त्रिदिनं मर्दयेत्खल्वे यावत्कज्जलसन्निभम् ।
विजयाधूर्तशुण्ठीनां जातसारेण सप्तधा ॥
प्रत्येकं मर्दयेत्खल्वे काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।
सप्तभि र्मृत्तिकावस्त्रै र्बालुकायन्त्रके पचेत् ॥
क्रमाऽग्निना सप्तदिनं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
इन्द्रगोपसमच्छायं सिन्दूरं सर्वसिद्धिदम् ॥
परं वृष्यतमं पुंसां रमयेत्स्त्रीशतं मुदा ॥

रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—पारद, बलि ८-८ तोला, नवसादर ४ तोला, अफीम ४ तोला, मीठातेलिया २ तोला, खड़ियामिट्टी २ तोला और त्रिकटु ३ तोला सबको एकत्रकर ३ दिन खरल करे, पुनः भांग धतूरा, सोंठ, गुलदली प्रत्येकके रसकी या क्वाथकी ७ भावना देकर विधिवत् ७ दिन कुपीपाक करे।

गुण—वाजीकर, वृष्य और सर्वरोग नाशक है ।

रससिन्दूर (तीसरा)

भागो रसस्य त्रय एव भागा गन्धस्य माषः पवनाशनस्य ।
सम्मर्द्य गाढं सकलं सुभाण्डे तां कज्जलीं काचघटे निदध्यात् ॥
संरुद्ध्य मृत्कर्पटकै र्घटीं तां मुखे सचूर्णां खटिकाञ्च दत्त्वा ।
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा तां बालुकायन्त्रगतां ततःस्यात् ॥
बन्धूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ।
निजानुपानै र्मरणं जराञ्च हन्त्यस्य वल्लः क्रमसेवनेन ॥

रसेन्द्रसारसंग्रह ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि ३ भाग, सीसा $\frac{1}{8}$ आठवां भाग सबको खरल करके विधिवत् ३ दिन कूपीपाक करे ।

मात्रा—३ रत्ती ।

भोजदत्त-विरह्या [१२०९-

अनि मागलिय यम्ह विल्यारो।
मय चाउग दिट्टी ॥ १२०९

रससिन्दूर (चौथा)

पलद्वयं शुद्धसूतं गन्धकञ्च तदर्धकम् ।
स्नुह्यर्कज रसेनैव भावना दिनसप्तकम् ॥
सर्पस्य गरलेनैवं काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।
कूप्या दृढं मुखं रोध्यं धृत्वा सैकतयन्त्रके ॥
यामषोडशकं वह्निं ज्वालयेत् क्रमसंस्थितम् ।
कूपिकागलसम्बद्धं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥
अयं सूतवरः ख्यातो देवै विजयदायकः ।
गुञ्जार्द्धं रोगहृत्सर्वक्षुधार्तो जायते शिवः ॥

निघण्टुरत्नाकर ।

अर्थ—पारद २० तोला, बलि १० तोला कज्जली करके सेहुंड और आकदूधमें सात सात दिन खरल करके पुनः सर्पविषकी १ भावना देकर विधि पूर्वक १६ प्रहर कूपीपाक करे। मात्रा—½ रत्ती।

गुण—क्षुधावर्द्धक, बलवर्द्धक और बाजीकर है।

सम्मति—ऊपर तीन प्रकारके रससिन्दूरके योग दिये गये है इसीतरह थोड़े थोड़े अन्तर तथा भिन्न २ वनस्पतियोंकी भावना देकर कई आचार्योंने अनेकों रससिन्दूर बनाये है, किन्तु इन समस्त रससिन्दूरोंकी रासायनिक रचना एक जैसीही बनती है। तीसरे रससिन्दूरमें सर्पके विषकी भावना दीगई है; बहुतसे वैद्योंका ख्याल होगा कि सर्पविषके कारण रससिन्दूर अत्यन्त उग्र प्रभावी होगा। पर यह हो किस तरह सकता है ? भावना देनेके पश्चात् तो इसे कूपीपाक करते है, कूपीपाक करनेमें समस्त सेन्द्रिय पदार्थ, अर्कदुग्ध सर्प विषादि जल जाते हैं और उनके यौगिक टूटकर भिन्न होजाते है, इनका कोई अंश उस पारद यौगिकमें तो रहता नहीं, फिर इनकी भावना देना न देना एक जैसाही है। जो वैद्य यह समझते हैं कि कूपीपाकसे पूर्वकी दी हुई भावनासे रसमे गुणवृद्धि होती है वह इसकी सत्यताकी विना किसी वानस्पति रसकी भावना दिये करें

और भावना देकर रससिन्दूर बनाकर दोनोंके गुणोंकी तुलना आसानीसे करें हमें तो इसमे आजतक कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया। हां! अग्नि देने की अवधिका अवश्य कुछ न कुछ प्रभाव होता है।

रससिन्दूर (पांचवां)

भागाश्चाऽष्टौ पारदस्य द्वादशैव बले मताः।
तदर्धं तालकं प्रोक्तं तालकार्धा मनःशिला॥
शुद्धं ताम्रं शिलातुल्यं रसकं ताम्रतुल्यकम्।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य कुमारीदाडिमीद्रवैः॥
त्रिदिनं मर्दयेत्सम्यक् काचकूप्यां विनिःक्षिपेत्।
निश्छिद्रं वेष्टयेत्पश्चाद्वस्त्रखण्डैः समृत्तिकैः॥
शोषयित्वा क्षिपेद्भाण्डे बालुकासहिते भिषक्।
त्रिदिनं पाचयेच्चुल्यां मृदुमध्योत्तमक्रमैः॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य सिन्दूरं रक्तवर्णकम्।
सिद्धं भवति सिन्दूरं सर्वरोगेषु योजयेत्॥
सन्निपाते ज्वरे घोरे क्षयकासे तथैव च।
विशेषाद्वातरक्तश्च कुष्ठान्यष्टौ दशाऽपि च॥
उदराणि च सर्वाणि वातरोगान्विनाशयेत्।
सतताऽभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनम्॥
गुञ्जाद्वयं प्रयुञ्जीत तत्तद्रोगानुपानकैः।
नाशयिष्यति तत्सर्वं शिवेन परिभाषितम्॥
महाविक्रमरसो नाम भिषगाश्चर्यकारकम्॥

रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—पारद ८ भाग, बलि १२ भाग, हरताल ६ भाग मैनसिल ३ भाग ताम्र ३ भाग, खपरिया ३ भाग सबको कुमारीरसमें, अनारके रसमें ३ दिन खरल करके ३ दिन विधिवत् कूपीपाक करे। इसका नाम भी ग्रन्थकार रस-

सिन्दूर देता है। वास्तवमे यह तालसिन्दूररस है रत्नाकर औषधयोगमे इसका नाम वीरविक्रमरस दिया है। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—इस रसको १३ सन्निपात, अन्य भयङ्करज्वर, क्षय, कास, वातरक्त, १८ कुष्ठ, ८ उदरके रोग और ८४ वातरोगोंमे लाभदायक बताया है और कहा है कि इस रसका निरन्तर सेवन करनेसे बुढापा दूर होजाता है। इसे भिन्न २ अनुपानसे देवे तो वैद्योंको आश्चर्यमे डालने वाले इसके गुण दिखाई देंगे।

रसाऽभ्रक रस

भुवने विप्रगेहेषु पत्रिका देवकन्दली।
पवित्रा सर्वदेवानां मस्तकादिमनोहरी॥
शुद्धसूतकमानीय सम मभ्रेण मेलयेत्।
तस्या रसं विनिक्षिप्य मर्दयेत्सूतमभ्रकम्॥
याममात्रेण तत्सर्वं मिलत्येकत्र निश्चितम्।
पिण्डरूपमिदं सर्वं घृष्यते दिवसत्रयम्॥
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य वालुकायन्त्रमध्यगम्।
देवकन्दलयष्टीनां ज्वालयेद्याममात्रकम्॥
पश्चादपरकाष्ठानि ज्वालनीयानि यन्त्रतः।
द्वादशप्रहरस्यान्ते शीतीभूतं तदुद्धरेत्॥
रक्तिकात्रितयं दत्त्वा मधुना सह भक्षणे।
अत्यग्निं कुरुते दीप्तमतिपाकं करोति च॥
अक्षीणाङ्गश्च जायेत कल्पजीवी भवेन्नरः।
जराजर्जरदेहानां पलितानि विनाशयेत।
यामादपि भवेच्छ्रीमान्मतिमांश्च भवेद्ध्रुवम्॥ रसचिन्तामणि।

अर्थ—पारद, और अभ्रकचूर्ण समभाग लेकर तुलसीके रसमे खरल करे जब पिष्टि बन जाय फिर उसको विधिवत् १२ प्रहर कूपीपाक करे। ग्रन्थकार

कहता है कि भट्ठीमें प्रथम तुलसीकी लकड़ी १ प्रहर जलावे फिर ११ प्रहर अन्य लकड़ियोंको जलाकर रस तय्यार करे। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—शहदके साथ दे।

गुण—अत्यन्त क्षुधावर्द्धक है, खूब भोजन करनेपर पच जाता है, इसके सेवनसे क्षीणकाय प्राणी हृष्ट पुष्ट हो जाते है और उनकी आयु बढ़ जाती है, बुढ़ापा दूर होजाता है बाल काले निकल आते हैं। इत्यादि—

रसेन्द्रमङ्गल रस

तालसत्त्वं मृतं ताम्रं मृतं लोहं मृतं रसम्।
हतमभ्रं हतं तारं गन्धं तुत्थं मनःशिला॥
सौवीराञ्जनकासीसं नीली भल्लातकानि च।
शिलाजत्वर्कमूलन्तु कदलीकन्दचित्रकम्॥
त्वचमङ्कोलजां कृष्णां कृष्णधत्तूरमूलकम्।
आवल्गुजानि बीजानि गौरीमाक्षीफलानि च॥
हेमाह्वां फेनमाहेयं फलिनीं विषतिन्दुकम्।
तेजिन्यो लोहकिट्टश्च पुराणममृतश्च तत॥
त्वचश्च मीनकाक्षस्य पुनरुक्तपलं पृथक्।
तैलिन्यो वटकास्तासु सर्वमेकत्र चूर्णयेत॥
खल्वे निधाय दातव्या पुनरेषाञ्च भावनाः।
ब्रह्मदण्डी शिखा पुङ्खा देवदाली च नीलिका॥
बाणशोणा नृपतरु निम्बसारो विभीतकः।
करञ्जो भृङ्गराजश्च गायत्री तिन्तिडीफलम्॥
मलयूमूलमेतेषां तिस्रस्तिस्रस्तु भावनाः।
दातव्या कुप्पिकां कृत्वा सम्यक् संशोष्य चातपे॥
भाण्डे तन्धारयेद्भाण्डं मुद्रितं चाथ कारयेत्।
यामं मन्दाग्निना पक्वो पुटमध्ये ह्यसौ रसः॥

पुण्डरीकं निहन्त्येव नात्र कार्या विचारणा ।
द्विमासाभ्यन्तरे पुंसामपथ्यं न तु भोजयेत् ॥
रोगाः सर्वे विलीयन्ते कुष्ठानि सकलानि च ।
भानुभक्तिप्रवृत्तानां गुरुभक्तिकृतां सदा ॥
रसेन्द्रमङ्गलो नाम्ना रसोऽयं प्रकटीकृतः ।
अनुग्रहाय भक्तानां शिवेन करुणात्मना ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—हरतालसत्व, ताम्र, लोह, अभ्रक, रजत, अञ्जन, कसीस, तुत्थ इनकी भस्मे रससिन्दूर, बलि, मैनसिल, वत्सनाभ, भिलावे, शिलाजीत, आक की जड़, केलाकन्द, चित्रकछाल, अङ्कोलछाल, पीपल, कालाधतूरामूल, बावची, प्रियंगु व खजूरफूल, सत्यानासी, अफीम, मालकांगनी, कुचला, तेज-बलछाल, मण्डूरभस्म, मछेछी प्रत्येक ४ तोला तैलीयबीज (सरसों तिलादि) ८-८ माशे सबको खरलमे डालकर निम्नलिखित वनस्पतियोंकी तीन तीन भावना दे। ब्रह्मदण्डी, मयूरशिखा, शरपुंखा, घघरबेल, नील या वत्सनाभ, पियाबांसा, कपासफूल, अमलतास, नींबकामद, बहेड़ा, करञ्ज, भृङ्गराज खदिर, डांसरिया, जङ्गली अञ्जीरछाल, खरलके पश्चात् सूख जाने पर सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर १ प्रहर मन्द अग्नि देकर उतार ले। अग्नि इतनी मन्द दे कि वानस्पतिकअंश दग्ध न होने पावे। मात्रा—१ माशा।

गुण—इसको दो मास तक सेवन करते रहने पर यह रस पुण्डरीक नामक कुष्ठको दूर करता है अन्य कुष्ठोंमें भी लाभदायक कहा है।

रसेन्द्र रस

शुद्धं सूतं समञ्चाऽभ्रं मृतताम्रं विषं समम् ।
गन्धकञ्च समं पिष्ट्वा सूर्यमूलकषायके ॥
मूषान्ते वालुकायन्त्रे दिनैकं मन्दवह्निना ।
पाच्यं चूर्णीकृतं सूक्ष्मं माषं चैवाऽनुपानतः ॥

खादेद्दोषज्वरं हन्ति सन्निपातनिकृन्तनः ।
रसेन्द्ररसनामाऽयं शम्भुना परिकीर्तितः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म सब बराबर भाग अर्क मूल क्वाथमें १ दिन खरल करके सम्पुटमे रखकर विधिवत् ४ प्रहर मध्यम अग्निपर कूपीपाक करे। मात्रा—१ माशा।

गुण—विषमज्वर और सन्निपातमें लाभदायक है।

राजराजेश्वर रस

हरवीर्यं शुद्धगन्धं तालकं माक्षिकं समम् ।
त्रिक्षारं दीप्यकं हिंगु मर्दितं दिवसद्वयम् ॥
चित्रमूलकषायेण बालुकायन्त्रके पचेत् ।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं सर्वेषां सन्निपातिनाम् ।
अनुपानविशेषेण राजराजेश्वरो रसः ॥

वैद्यशिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, बलि, हरताल और सोनामक्खीभस्म, सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, अजवायन और हींग सब समभाग लेकर इनको दो दिन चित्रकके काढेमे खरल करके २ प्रहर विधिवत् कूपीपाक करे, पश्चात् निकालकर मत्स्य पित्तकी एक भावना देकर १ रत्तीकी गोली बनाले। यह तललग्नरस है।

गुण—अनुपान विशेष के साथ समस्त सन्निपातोंमे लाभदायक है।

रौप्यराज रस

रसेन्द्रभागद्वितीयं म्लेच्छतारं चतुर्गुणम् ।
काकजङ्घरसै मर्द्यं खल्वे दिवसपञ्चकम् ॥
ताम्रसम्पुटके रुद्ध्वा सच्छिद्रे हण्डिकान्तरे ।
निवेश्य बालुकां दत्त्वा देयोऽग्निः प्रहराष्टकम् ॥

[illegible] [१३०९-

[illegible] ।
[illegible] ॥ १३०९

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मधुटङ्कणसंयुतम् ।
धमेन्मूषागतं तावद्यावद्भ्रमति तारवत् ॥
रौप्यराजरसः सोऽयं भगन्दरकुलान्तकः ।
वल्लमात्रममुं लीढ्वा मधुना सह पथ्यभुक् ॥
त्रिफलायाः पिबेत्क्वाथं पश्चात्पथ्यं हितञ्चरेत् ।
मुक्तः स्वल्पैरहोभिः स्याद्भगन्दरमहागदात् ॥

वृहद्योग तरङ्गिणी ।

अर्थ—पारद २ भाग, म्लेच्छसार ४ भाग, दोनोंको काकजङ्घाके रसमें ५ दिन खरल करके ताम्रके सम्पुटमें बन्दकरके मध्यम अग्निपर बालुकायन्त्रमें ८ प्रहर पकावे; पश्चात् निकालकर इस रसको कुठालीमें रखकर उसपर शहद सुहागा देकर गलावे जब यह गल जाय तब उतार कर शीतल करले। और इसे पीसकर रख ले। मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान—शहदमें मिलाकर खाय और ऊपरसे त्रिफलाकाथ पीवे।

गुण—इसके सेवनसे भगन्दर रोगमें लाभ होता है।

लङ्केश्वर रस

तालकं माक्षिकं तुत्थं हरबीजं सगन्धकम् ।
कर्कोटीकन्दतोयेन मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥
चुल्ल्यां पाच्यं चतुर्यामं सितया च ज्वरापहः ।
अयं लंकेश्वरो नाम शीतमातङ्गकेसरी ॥

रसराजसुन्दर ।

अर्थ—हरताल, सोनामक्खी, तुत्थ, पारद और बलि सब समभाग लेकर इन्हें ककोड़के कन्दमें ७ दिन खरल करके ४ प्रहर विधिवत् कूपीपाक करे। यह तालकरस है। मात्रा—३ रत्ती।

गुण—विषमज्वर मलेरियामें लाभदायक है।

ललितनाथ रस

ग्राह्यो बुभुक्षितः सूतः सर्वदोषविवर्जितः
सहदेवी च मुशली कर्कटी च कुमारिका ॥
मुण्डी भृङ्गी रसैरेषां प्रत्येकं सप्त भावनाः ।
दुग्धाऽम्भसो पलद्वन्द्वं स्वेदयेत्त्रिदिनं भिषक् ॥
सूरणान्तर्विनिक्षिप्य मृत्कर्पटविलेपिते ।
शरावयन्त्रे वह्निश्च दद्याद् द्वादशयामकम् ॥
मृत्कूपिकायां निक्षिप्य वह्नावाकाशयन्त्रतः ।
मदिरापुष्पविप्रुड्भिः पाचयेद्दिनसप्तकम् ॥
तत परण्डतैलेन ज्योतिर्यन्त्रे विपाचयेत् ।
पुनः शीतं गृहीत्वा तत्तैलेनाऽनेन मर्दयेत् ॥
विषतिन्दुकभल्लातनिम्बस्नुग्बीजपञ्चकम् ।
ऋषिज्योतिष्मतीधूर्तनाकुलीकरवीरकम् ॥
अजमोदाफलै रेषां तैले पातालयन्त्रजे ।
विषं विभाव्य तत्तैले गन्धं तास्रं विमर्दयेत् ॥
जैपालं सर्वतुल्यञ्च गन्धतुल्यं लवङ्गकम् ।
जातीपत्रफले कृष्णामेतेषां तैलमाहरेत् ॥
तत्तैले मर्दयेत्सूतं तच्च जातीफलान्तरे ।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य वह्नि द्वादशयामकम् ॥
सुसिद्धोऽयं रसः प्रोक्तो नाथस्तु ललिताह्वयः ।
रक्तिकापादमानेन हन्ति सर्वाऽऽमयाञ्जवात् ॥
मदात्ययक्षयश्वासोन्मादकासादिकान्गदान् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारदको प्रथम सहदेई, मूसली, ककड़ी, घीकुंवार, गोरखमुण्डी और भृंगराज रसमे ७ ७ दिन खरल करे, फिर उस पारदको दोलायन्त्रमे

लटकाकर दुग्धमे तीन दिन स्वेदन करे, फिर जिमीकन्दके भीतर रखकर सम्पुट करके पुटपाक करे, पश्चात् इस पारदकी पोटली बनाकर पुनः दोलायन्त्रमें लटकाकर मद्यपुष्पमें ७ दिन स्वेदन करे, पश्चात् ऐरण्ड तेलमे लटकाकर ज्योतियन्त्र द्वारा एक दिन पकावे, फिर उस पारदको उसी तेलमें मर्दन करे, इसके बाद कुचला, भिलांवा, निम्बबीज सेहुड बीज, अगस्ति, मालकङ्गनी, धतूराबीज, चांदमरवा कनैरबीज, अजमोद और मैनफलबीज इन सबके बीज लेकर उनका पातालयन्त्रसे या चापयन्त्रसे तेल निकालकर उस तेलमे मीठातेलिया को भिगोदे और इसी तेलमे बलि तथा हरताल और पारद सब बराबर लेकर खरल करे, पश्चात् इन समस्त वस्तुओंके बराबर जैपालबीज और बलिके बराबर लौंग, जावत्री, पीपल सब एकत्र करके इनको चापयन्त्रसे तेल निकालकर उसमें पारदको खरल करे पश्चात् सबको एकत्र करके शीशीमें डाल १२प्रहर विधिवत् कूपीपाक करे तो यह रस तय्यार होता है। मात्रा—½ रत्ती।

गुण—मदात्यय, क्षय, श्वास, उन्मादादि और कास रोगमें लाभप्रद है।

लहरीतरङ्ग रस

मृताभ्राऽयोऽर्कवङ्गानां शुद्धपारदगन्धयोः।
पञ्चविंशतिभागाः स्युः पृथक् पञ्च विषस्य च॥
नवसारकृताः पञ्च भागा द्वादश टङ्कणात्।
भानवो दारुमूष्याश्च भावयेत्कन्यकाद्रवैः॥
एकविंशतिवारांश्च तावदार्द्रकजै रसैः।
सप्तधा धूर्त्ततैलेन तथा कन्यारसेन च॥
काचकूप्याश्च संरुद्ध्य बालुकायन्त्रगं पचेत्।
यामद्वादशकं यावत्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥
गुञ्जाद्वयं त्रय वापि यथायोग्यञ्च भक्षयेत्।
सन्निपातज्वरान्हन्ति राजयक्ष्मागणमुद्धतम॥
योगो ब्रह्मास्त्रलहरीतरङ्गोऽयं महारसः॥ रसराजसुन्दर।

अर्थ—अभ्रक, लोह, ताम्र, बङ्ग सबकी भस्में, पारद बलि प्रत्येक २४ भाग मीठातेलिया, नवसादर ५-५ भाग, टङ्कण और दारुविष १२-१२ भाग लेकर सबको कुमारीरस और अद्रक रसमें २१-२१ भावना, धतूरा तेलमें ७ तथा कुमारीरसमें एक भावना देकर शीशीमें डाल १२ प्रहरकी मन्द-मध्यम अग्निपर विधिवत् पाक करे। मात्रा—३ रत्ती।

गुण—सन्निपात और राजयक्ष्मामे लाभदायक है।

लक्ष्मीविलास रस

शुद्धं सूतं समं गन्धं दिनं शुष्कं विमर्दयेत्।
दिनं जम्बीरनीरेण मर्दयेन्मतिमान् भिषक्॥
निःक्षिपेद् दृढमूषायां वासोभि मुनिसंज्ञकैः।
वेष्टयेत्सिकतायन्त्रे यामै द्वादशभिः पचेत्॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य श्लक्ष्णे खल्वे विमर्दयेत्।
ताम्रभस्म कणा कुष्ठं प्रत्येकं सूतभागतः॥
प्रक्षिप्य मर्दयेद्गाढं त्रिदिनं लुङ्गवारिणा।
प्रदद्यादस्य सूतस्य शृङ्गवेर सितायुतम्॥
वल्लयुग्मं दीर्घतापे वातरोगे महत्यपि।
निरामं नाशयेदाशु पिप्पलीमधुसंयुतम्॥
विषमज्वरजीर्णाऽर्शः क्षयमेहहलीमकाः।
स्वानुपानात्क्षयं यान्ति रसराजप्रभावतः॥
सेवितो मधुसर्पिर्भ्यां वर्षमेकं जितेन्द्रियैः।
जरामरणरोगादीन् कुष्ठरोगान् सुदारुणान्॥
लक्ष्मीविलासनामाऽयं शङ्करेण कृतो हरेत्॥

रसकामधेनु।

अर्थ—पारद, बलि दोनों बराबर १ दिन खरल करे, पश्चात् जम्बीरीके रसमे एक दिन खरल करके १२ प्रहरकी अग्निमें विधिवत् पाक करने पर रससिन्दूर

तय्यार होता है पश्चात् इसमे ताम्रभस्म, पीपल, कुठ पारदके बराबर मिलाकर बिजौरा निम्बूके रसमे ३ दिन खरल करके ६ रत्तीकी गोली बनावे ।

अनुपान और गुण—अद्रकरस और शक्करके साथ देनेसे वातरोगोंमे, पीपल और शहदके साथ देनेसे साम (कच्चे नये) ज्वर, विषमज्वर, जीर्ण-ज्वर, क्षय और हलीमकमे लाभ होता है । यदि घृत और शहदके साथ इसको सेवन करता रहे तो मनुष्य दीर्घायु होता है ।

लोकेश्वर रस

तालकं दरदं वत्सनाभं सर्वं समं समम् ।
सर्वं भूनिम्बनीरेण मर्दयेद्गोलकीकृतम् ॥
वज्रमूषान्तरे क्षिप्त्वा लेप्या वस्त्राऽनुमृत्तिका ।
वालुकायन्त्रके पाच्यं द्वियामं मन्दवह्निना ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य छागपित्तेन भावयेत् ।
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं सन्निपातान्निहन्ति च ॥
लोकेश्वररसो नाम्ना शम्भुना परिकीर्तितः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—हरताल, सिंगरफ और मीठातेलिया सब समभाग लेकर सबको चिरायताके काढ़ेमे खरल करके सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमे रखकर २ प्रहर मन्द अग्निपर पकावे । यह तललग्नरस है; पश्चात् इसे बकरीके पित्तेकी एक भावना देकर १ रत्तीकी गोली बनाले । मात्रा—१ गोली ।

गुण—सन्निपातोंमे लाभदायक है ।

वङ्गेश्वर रस

रसमेकं त्रयो वङ्गं वङ्गसाम्येन गन्धकम् ।
मर्दयेद्दिनमेकन्तु कुमार्याः स्वरसे बुधः ॥
संस्थाप्य गोलकं भाण्डे रोधयेत्सुदृढं मुखम् ।
पाचयेद्वालुकायन्त्रे दिनमेकं दृढाग्निना ॥

स्वाङ्गशीतलमादाय सम्पूज्य द्विजदेवताः ।
पिप्पलीमधुना युक्तं सर्वमेहेषु योजयेत् ॥
क्षीरान्नं योजयेत्पथ्यमनल्पात्क्षारवर्जितम् ।
रसो वङ्गेश्वरो नाम सर्वमेहानिकृन्तनः ॥

निघण्टुरत्नाकर ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि और बङ्ग तीन तीन भाग सबको मिलाकर घीकुंवारके रसमें एक दिन मर्दन करके सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर ४ प्रहर मन्द अग्निपर पाक करे। यह भी तललग्नरस है। मात्रा—३ रत्ती। किसी ग्रन्थमें पारद, बंग और बलि समभाग बतलाये हैं, किसी ग्रन्थमे बलि द्विगुण है।

गुण—समस्त प्रमेहोंमे लाभदायक कहा है।

वङ्गेश्वर रस (दूसरा)

शुद्धं तालं शुद्धसूतं वङ्गं शुद्धश्च गन्धकम् ।
ग्राहयेत्समभागेन सूर्यक्षीरैः विमर्दयेत् ॥
दिनसप्तकपर्यन्तं मर्दयेच्च निरन्तरम् ।
काचकूप्यां क्षिपेन्मुद्रां दत्त्वा चैव भिषग्वरः ॥
द्वादशप्रहरं दद्यान्मन्दाग्निश्च न संशय. ।
पुनरेव प्रकर्तव्यो विधिरेष न संशयः ॥
रसो ग्राह्यः प्रयत्नेन रक्तिकार्द्धं प्रदीयते ।
ताम्बूलपत्रसंयुक्तं वातव्याधिं विनाशयेत् ॥
उन्मादे नष्टशुक्रे च वह्निहीने च दीयते ।
कुष्ठं व्रणां ज्वरश्चैव नाशयेच्च किमद्भुतम् ॥

रसराजसुन्दर ।

अर्थ—हरताल, पारद, बंग और बलि सब बराबर लेकर आकके दूधमे ७ दिन खरल करके शीशीमे डालकर १२ प्रहर तीव्र अग्निपर विधिवत् पाक

करे। फिर सबको एकत्र करके दूसरीबार उसी तरह आकके दूधमे खरल करके पुन. विधिवत् पाक करे। मात्रा—आधी रत्ती।

अनुपान और गुण—पान पत्रमे रखकर खानेसे वातव्याधि, उन्माद, नष्टवीर्य, मन्दाग्नि, कुष्ठ, व्रण और ज्वरमे लाभदायक है।

वङ्गेश्वर रस (तीसरा)

वङ्गभस्म त्रयोभागा वङ्गपादं रसं क्षिपेत्।
रसतुल्यं विषं योज्यं त्रिभिस्तुल्यं मृतायसम् ॥
गन्धकं विषतुल्यं स्यान्मर्दयेद्भृङ्गजद्रवैः।
कूपिकायां विनिक्षिप्य तेजोयन्त्रे तु पाचयेत् ॥
यामद्वादशपर्यन्तं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत।
देवपुष्पं सकर्पूरं चतुर्जातं फलत्रिकम् ॥
जातीफलत्रिकं सर्वमेतदेकत्र चूर्णयेत्।
सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा भृङ्गद्रावैर्दिनत्रयम् ॥
मर्दयेन्मधुना गाढं नाम्ना वङ्गेश्वरो रसः।
प्रमेहेषु च सर्वेषु मूत्रकृच्छ्रे क्षये तथा ॥
मूत्रोत्थवातरोगेषु गुल्मे सर्वहरः स्मृतः ॥ रसायनसंग्रह।

अर्थ—वंगभस्म १२ तोले रससिन्दूर, मीठातेलिया ३-३ तोले और लोहभस्म सबके बराबर, बलि मीठातेलिया के बराबर सबको एकत्र करके भृङ्गराजके रसमें खरल करके शीशीमे डाल १२ प्रहर अग्निपर विधिवत् पकावे; पश्चात् इसमें लौंग, कपूर, इलायची, दारचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, त्रिफला, जावत्री द्राक्षा, फालसा, गम्भारीफल यह सब उक्त रसके बराबर मिलाकर भृङ्गराज रसमें ३ दिन खरल करके पश्चात् शहदमें खरल करके ४ रत्तीकी गोली बनाले।

मात्रा—१ गोली।

गुण—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, मूत्रविकारजन्यवातरोग और गुल्ममें लाभदायक है।

वज्रघन रस

कण्टकारीरसैः सप्तदिनं भावयन्तु सोमलम् ।
एवं वारत्रयं काचकूप्यां सत्त्वं तु पातयेत् ॥
एतत्सत्त्वे पादसूतं सगन्धं कज्जलीकृतम् ।
कण्टकारी मूषिकायां शरावे पाचयेत्पुनः ॥
यामाष्टकं वज्रघनो रसः सर्वोदरार्तिजित् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—सोमलको कंटकारी छोटीके रसमे खरल करके उसका जौहर उड़ावे इसतरह तीनबार करे, पश्चात् इस जौहरका चौथाई पारद तथा पारद के बराबर बलि मिलाकर कंटकारी रसमे खरल करके किसी प्यालेमें उक्त कंट-कारीचूर्ण बिछाकर उसमें उक्त रस रखकर सम्पुट कर बालुका यन्त्रमे रखकर ८ प्रहर मन्द अग्निपर पकावे । तललग्नरस बनेगा । इसको अद्रकरस और पीपलके काढ़ेमे ७ दिन खरल करले तो इसके गुणोंमे वृद्धि होजाती है ।

मात्रा—¼ रत्तीसे ½ रत्ती तक ।

गुण—यह उदरकी समस्त बीमारियोंको दूरकर भूख बढ़ाता है इसके सेवन करने पर खूब घी दूध सेवन करना चाहिये ।

वज्रधर रस

वज्रसूताऽभ्रहेम्नान्तु भस्म शुद्धं तु माक्षिकम् ।
तुल्यं सप्तदिनं मर्द्यं दिव्यौषधिरसै र्दृढम् ॥
रुद्ध्वा तत्त्रिदिनं पाच्यं बालुकायन्त्रगं पुनः ।
उद्धृत्य त्रिदिनं भाव्यं भृङ्गसर्पादिजै र्द्रवैः ॥
माषैकं मधुसर्पिभ्यां वज्रधारारसं लिहेत् ।
मासषट्कप्रयोगेण रुद्रतुल्यो भवेन्नरः ॥
वलीपलितनिर्मुक्तो वायुवेगो महाबलः ।

रसायनसंग्रह ।

[१२०१-

अर्थ—हीरा, पारद, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म सब समभाग और सबके बराबर सोनामक्खीभस्म सबको एकत्र करके दिव्य ओषधियोंके रसमें खरल करके शीशी या सम्पुटमें बन्दकर तीन दिन विधिवत् मन्द अग्निपर पाक करे। पश्चात् निकालकर भृङ्गराज, सर्पाक्षीके रसमें ३ दिन खरल करके १ रत्तीकी गोली बनाले।

अनुपान—घी और शहदके साथ देवे।

गुण—इसको ६ मास तक सेवन करने से वृद्ध भी युवावस्थाको प्राप्त होजाता है।

वसन्तराज रस

सूतं गन्धकलोहमभ्रकनकं ताप्यञ्च ताम्रं मृतं।
वङ्गं मौक्तिकविद्रुमं विमलकं कान्तञ्च नागं समम्॥
वाराहीद्रवभावितं मुनिदिनं कूप्यां न्यसेन्मुद्रितं।
पाच्यं वालुकया सुपूर्णपिठरे घस्रं सुशीतं पुनः॥
कस्तूरीघनसारकुंकुमरसैः श्रीखण्डलामज्जकै।
रस्तानस्य रसेन भावितमिदं त्रिस्त्रिः सुसिद्धो रसः॥
नाम्ना राजवसन्त एष कथितः पित्तामयिभ्यो हितः।
क्षीणानां क्षतकासिनां मधुसितायुक्तो द्विवल्लोन्मितः॥

रसपद्धति।

अर्थ—पारद, बलि, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म, सोनामक्खीभस्म ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, रजतमाक्षिकभस्म, कान्तभस्म और नागभस्म सब समभाग लेकर वाराहीकन्दके क्वाथमें ७ दिन भावना देकर सम्पुटमें या शीशीमें बन्द करके विधिवत् कूपीपाक करे, पश्चात् निकालकर कस्तूरी, कपूर, केशर, चन्दन सफेद, खश, पियावांसाके रसकी तीन २ भावना देकर ६ रत्तीकी गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

गुण—पित्तज या उष्ण-प्रकृतिके रोग, अत्यन्त निर्बलता, क्षतजकास और राजयक्ष्मामे लाभदायक है ।

वह्निसिद्ध रस

लोहं गन्धं टङ्कणं भ्रामयित्वा साधैस्तस्मिन्सूतकोऽन्यश्च गन्धः ।
कन्याम्भोभि र्मर्दितः काचकूप्यां क्षिप्तो वह्नौ सिद्धये वह्निसिद्धः ॥

योगमहार्णव ।

अर्थ—लोहचूर्ण, बलि और टङ्कण तीनोंको कुठालीमे डालकर गलावे, लोहचूर्ण बलिके साथ मिलकर और टङ्कणकी सहायतासे यौगिकरूपमे आजाने पर कुछ द्रव होजाते हैं और पीसनेके योग्य होजाते है इनको निकालकर पीस लेवे और लोहसे आधाभाग पारद और इतना ही इसमें और बलि मिलाकर कुमारीरसमें एक दो दिन खरल करके, पश्चात् मध्यम उत्तापपर एकदिन कूपीपाक करे, यह तललग्न रस है। मात्रा—२ रत्ती। समस्त रोगोंमे भिन्न २ अनुपानसे इसको देना चाहिये ।

वातरक्तशोषी रस

भावयेत्तालकं शुद्धं शरपुङ्खाजलै भिषक् ।
एकविंशतिवारं हि सैव त्रिफलाम्बुना ॥
दिनत्रयं सोमराज्या भल्लातेन दिनत्रयम् ।
शोषयेदातपे खल्वे न्यस्य सर्वं सुचूर्णितम् ॥
तालार्द्धं शम्भुवीर्यन्तु तालतुल्यं मृताऽभ्रकम् ।
पचेद्गजपुटे वह्नौ काचकूप्यामथापि वा ॥
त्रिवारञ्च तदुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं सुचूर्णयेत ।
चूर्णेन शरपुङ्खायाः शाणमात्रेण भक्षयेत् ॥
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जाञ्चाऽधिकं क्वचित् ।
वर्जयेल्लवणं यत्नादेतद्धन्त्यचिरेण तु ॥

वातरक्तमसाध्यं हि कुष्ठमष्टादशाभिधम् ।
पामाकराड्डुविचर्चीन्तु दद्रुविस्फोटकानि च ॥

रसरत्नमणिमाला

अर्थ—हरतालको २१ भावना शरपुंखाके रसकी, ७ त्रिफलाक्वाथकी, ३ बावचीक्वाथकी, ३ भल्लातककी देकर फिर इसे धूपमे रखकर सुखाले । जब यह सूख जाय तब हरतालके बराबर अभ्रकभस्म और इतनाही पारद मिलाकर शीशीमे डाल विधिवत् पाक करे । ग्रन्थकार कहता है कि सम्पुट करके गजपुट की अग्निमें रखे, एकवार अग्नि देनेपर निकालकर पुनः इसीतरह दूसरीबार । और तीसरीवार अग्नि दे अर्थात् ३ बार अग्नि दे । मात्रा—१ रत्तीसे ३ रत्ती ।

गुण—१८ कुष्ठ, और असाध्य वातरक्तमे लाभदायक कहा है ।

सम्मति—इस रसको यदि शीशीमे बनाया जाय तो इसका ऊर्ध्वलग्नभाग माणिक्यरसवत् बनता है । तीनबार अधः और ऊर्ध्वलग्न एकत्र करके कूपीपाक करे तो यौगिकसे अधिक बलि जल जायगा, सम्भव है कि मैनसिलके यौगिकमें भी—जो पारद बलिकाइदके साथ विद्यमान रहता है कुछ फेरफार हो । कूपीमे इस रसके बनाने पर तो यह सुरक्षित बन सकता है, किन्तु ग्रन्थकारके आदेशानुसार गजपुटकी अग्निपर इसे बनाया जाय तो इसकी अग्नि (उत्ताप) तीव्र लगती है इसलिये पारद और हरतालके यौगिक उड़ जायंगे और केवल सम्पुट मे अभ्रकभस्म प्राप्त होगी । अभ्रकभस्ममे ऐसा कोई यौगिक नहीं जो कुष्ठ या वातरक्तमें लाभदायक हो । इसलिये सम्पुटमे बन्दकर गजपुटमे बनाने पर उद्देश्यकी सिद्धि नहीं होगी, कांचकूपीमे ही यह रस ठीक बन सकता है ।

वातविध्वन्स रस

मृतमभ्रकसत्त्वञ्च कांस्यं शुद्धञ्च माक्षिकम् ।
गन्धकं तालकं सर्वं भागोत्तरविवर्धितम ॥
कज्जलीकृत्य तत्सर्वं वातारिस्नेहसंयुतम ।
सप्ताह मर्दयित्वा तु गोलकीकृत्य यत्नतः ॥

निम्बुद्रवेण सम्पीड्य तिलकल्केन लेपयेत् ।
अर्धांगुलदलेनैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥
प्रपचेद्बालुकायन्त्रे द्वादशप्रहरं ततः ।
जठरस्य रुजः सर्वास्तथा च मलसंग्रहम् ॥
आध्मानकं तथाऽऽनाहं विसूचीं वह्निमान्द्यकम् ।
आमदोषमशेषञ्च गुल्मं छर्दिञ्च दुर्जयाम् ॥
ग्रहणीं श्वासकासौ च क्रिमिरोगं विशेषतः ।
हन्यात्सर्वाङ्गशूलञ्च मन्यास्तम्भं तथैव च ॥
ज्वरे चैवाऽतिसारे च शूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुसारेण देयमस्मिन् भिषग्वरैः ॥
कथितो नन्दिनाथेन वातविध्वंसनो रसः ॥ रसेन्द्रसार सग्रह ।

अर्थ—पारद, अभ्रकसत्व, कांस्यभस्म, सोनामक्खीभस्म, बलि और हरताल इन सबको क्रम विवर्द्धित भागमे लेवे । सबको एरण्ड तेलमें ७ दिन खरल करके गोला बनाकर सुखा ले, पश्चात् तिलको निम्बूके रसमे पीसकर उस गोले पर आधा अंगुल मोटा लेप चढ़ाकर उसे सुखाले पश्चात् इसे शराव सम्पुटमें बन्द करके बालुका यन्त्रमे रखकर मन्द मध्यम उत्ताप पर १२ प्रहर रखकर निकालले । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती ।

गुण—यह नन्दीनाथका कहा हुआ रस समस्त उदररोग, मलसंग्रहणीय रोग, आध्मान, आनाह, विशूचिका, अग्निमांद्य, आमदोष, गुल्म, असाध्य, वमन, ग्रहणी, श्वास, कास, कृमिरोग, सर्वांगशूल, मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार, त्रिदोषजशूल आदिमे लाभ करता है इस रसको विद्वान् वैद्य भिन्न २ अनुपान से देकर यश प्राप्त करें ।

वातव्याधिगजांकुश रस

रसेन द्विगुणं गन्धं रसैराकाशवल्लिजैः ।
बृहतीफलजैश्चाऽथ भृङ्गराजैश्च सप्तधा ॥

भर्जयित्वाऽतसीतैलै. कुक्कुटाण्डरसे पुनः ।
अर्कक्षीरेण सम्पर्द्य कूप्यां द्वादशयामकम ॥
वह्निं दत्त्वा रसोऽयं स्याद्वातव्याधिगजांकुशः ॥

रसकामधेनु

अर्थ—पारदसे दुगना बलि मिलाकर कज्जली बनावे उस कज्जलीको कडाईमे डालकर उसपर अमरबेल (आकाशवेल) का रस डालकर मध्यम अग्निपर पकावे जब यह रस सूखने लगे और बलि द्रव होने लगे तो और रस डालदे इसी प्रकार ७ बार उक्त रस डालकर फिर बडीकटेरीका रस डाले इसकी सात भावना होजानेपर फिर इसी तरह भृङ्गराज रसकी ७ भावना देकर उसरसको क्रमसे अग्निपर सुखावे फिर अलसीका तेल डालकर उस तेलको शुष्क करे पश्चात् मुर्गीके अण्डेकी सफेदी उसमे डालकर उसे भी शुष्क करे फिर आकके दूधकी इसी तरह ७ पुट दे, सबकी सात सात पुट देकर पुनः शीशीमे डालकर तीव्र अग्निपर १२ प्रहर विधिवत् कूपीपाक करे । यह रससिन्दूर बनेगा । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—भिन्न २ अनुपानमे समस्त व्याधियोंमे दे ।

वातशूलहर रस

पारदेन च विलिप्य दलानि ताम्रकस्य बलिना द्विगुणेन ।
चारकत्रितयमध्यगतानि वस्त्रखण्डनिविडानि च पङ्कैः ॥
लेपितानि विधिना पुटितानि मर्दितानि कनकाऽतलतोयैः ।
आर्द्रकस्य च कटुत्रययुक्तं षोडशांशकसुशुद्धविषेण ॥
पेषितश्च खलु वल्लमलं वा वातशूलरुजि चास्य ददीत ।
वातशूलहर एष रसश्च सेवनान्नयति शूलविनाशम् ॥

चिकित्साक्रम कल्पवल्ली ।

अर्थ—पारदसे द्विगुणा बलि मिलाकर निम्बूरसमे घोटे और पारदके बराबर ताम्रपात्र लेकर उसपर कज्जली कल्कका लेप चढ़ाकर सुखाले पश्चात् इसके

बराबर सुहागा, सज्जीखार और यवक्षारको एक प्यालेमें आधा रख उसपर उक्त ताम्र रख उसको अवशेष क्षारचूर्णोंसे ढककर सम्पुट करके बालुकायन्त्रमें रखकर ८ प्रहरकी अग्निमें पकावे; पश्चात् निकालकर सबके बराबर त्रिकटु और $\frac{1}{16}$वां भाग मीठातेलिया मिलाकर धतूरारस, चित्रकक्वाथ और अद्रकरसकी एक एक भावना देकर ३ रत्तीकी गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

गुण—यह वातजन्य शूल तथा अन्यशूलोंमें लाभदायक है।

सम्मति—यह रस कई नामोंसे पीछे आया है किन्तु इसमें एक विशेषता यह है कि ताम्र यौगिक निर्माण करते समय क्षारोंका भी संमिश्रण किया गया है।

वातारि रस

गन्धकाद्द्विगुणं तालं तालकाद्द्विगुणा शिला।
शिलया द्विगुणं ताप्यं तस्माच्च द्विगुणो रसः॥
कल्पयेत्सर्वमेकत्र यावत्स्याद्दिनसप्तकम्।
सर्वस्याऽष्टमभागेन दत्त्वा रक्तामृतं शुभम्॥
विषतिन्दुकजैर्द्रावैः पिष्ट्वा गोलकमाचरेत्।
विशोष्य बालुकायन्त्रे तद्धर्मे दिवसद्वयम्॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य तुल्यहिंग्वष्टकान्वितम्।
भावयेद्बीजपूरस्य सप्तवारं रसेन च॥
सप्तवारं तथा भाव्यं चित्रमूलस्य वारिणा।
इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं सर्ववातारिसञ्ज्ञकः॥
घृतेन सहितो लीढो वल्लद्वयमितो नृभिः।
निहन्ति शीतवातार्तिं गुल्मानष्टविधानपि॥
चतुर्विधञ्च मन्दाग्निं स्थूलानुदरजान् क्रिमीन्।
आध्मानञ्च तथा हिक्कां रूढवातञ्च विग्रहम्॥

रत्नाकर औषधयोग।

[१३०२-

अर्थ—वलि १ भाग, हरताल २ भाग, मैनसिल ४ भाग सोनामक्खी ८ भाग और पारद १६ भाग लेकर सबको ७ दिन तक खरल करके सबका आठवा भागलालशृङ्गिकविष मिलाकर फिर कुचलाक्काथकी एक भावना देकर गोला बना सम्पुटमे बन्दकर वालुका यन्त्रमें रखकर ८ प्रहरकी मन्द अग्नि देकर तललग्नरस तय्यार करे; पश्चात् निकालकर इस रसके बराबर हिंग्वाष्टकचूर्ण मिलाकर बिजौरा, निम्बूके रसकी ७ और चित्रकक्काथकी ७ भावना देकर ६ रत्तीकी गोली बनाकर रख ले। मात्रा—१ गोली।

अनुपान—घृतमे मिलाकर दे।

गुण—विविध प्रकारके उदर, गुल्मरोग, मन्दाग्नि, पेटके मोटे कृमि अर्थात् कद्दूदाने, अफारा, हिचकी, मूढवात और मलबन्ध आदि रोगों लाभप्रद है।

वारिशोषण रस

चतुर्विंशतिभागाः स्युर्गन्धाढङ्गं तदर्द्धकम्।
वङ्गभागाद्धवेदर्द्धः पारदः कृष्णमभ्रकम्॥
चतुर्दशविभागं स्यान्मृतं तद्दीयते पुनः।
मृतलौहमष्टभागं मृतताम्रं नवाऽत्र तत्॥
मृतहेमद्वयं तत्र मृतरौप्यश्च सप्तकम्।
अतिशुद्धमतिस्थूलं मृतं हीरं त्रयोदश॥
भागा ग्राह्या माक्षिकस्य विशुद्धस्याऽत्र षोडश।
अष्टादशमितं ग्राह्यं नव काशीशकं पुनः॥
तुत्थकञ्च पडेवाऽत्र नवीनं ग्राह्यमेव च।
तालकञ्च चतुर्भागं शिलाभागत्रयं मतम्॥
शैलेयं पञ्चभागं स्यात्सर्वमेकत्र नूतनम्।
मृतमौक्तिकभागैकं सौभाग्यं भागयुग्मकम्॥
कुट्टयित्वा विचूर्ण्याथ जम्बीरस्य रसेन वै।
भावयेत्सप्तधा गाढं गुटिका तस्य कारयेत्॥

पानकद्वितये कृत्वा मुद्रयेत्पानकद्वयम् ।
घटमध्ये निवेश्याऽथ दत्त्वा पूर्वञ्च वालुकाम् ॥
अर्द्धञ्च तां पुनर्दत्त्वा वालुकाम्मुद्रयेन्मुखम् ।
अहोरात्रं देहदग्नौ स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥
वकुलस्य च बीजेन कण्टकारीद्वयेन च ।
गुडूचीत्रिफलावारा भावयेत्सप्तसप्तकम् ॥
वृद्धदारूरसेनाऽपि तथा देयास्तु भावनाः ।
गिरिकर्ण्या रसेनाऽपि मत्स्यरोहितपित्ततः ॥
एवं सिद्धो भवेत्सम्यग्रसोऽसौ वारिशोषणः ।
देवान्गुरून्समभ्यर्च्य यतिनो ब्राह्मणांस्तथा ॥
रक्तिकाद्वितयं देयं सन्निपाते समुच्छ्रिते ।
मरिचेन समं देयं तेन जागर्ति मानवः ॥
श्लैष्मिके च गदे देयं ग्रहण्यामग्निमान्द्यके ।
प्लीह्नि पाण्डौ प्रयोक्तव्यं त्रिकटुत्रिफलाम्भसा ॥
शूलरोगे प्रयोक्तव्यमुदावर्ते विशेषतः ।
कुष्ठे सुदुष्टे देयोऽयं काकोदुम्बरिकाम्भसा ॥
अतिवह्निकरः श्रीदो वलवर्णाग्निवर्धनः ।
धन्वन्तरिकृतः सद्यो रसः परमदुर्लभः ॥
सर्वरोगे प्रयोक्तव्यो निःसन्देहं भिषग्वरैः ॥

रसेन्द्रसार सग्रह ।

अर्थ—वलि २४, वङ्गभस्म १२, पारद ६, अभ्रकभस्म १४, लोहभस्म ८, ताम्रभस्म ६, सुवर्ण २, रजत ७, सीसाभस्म १३, सोनामक्खीभस्म १६ हराकसीसभस्म १८, तुत्थभस्म ६, हरताल ४, मैनसिल ३, शिलाजतु ५, मुक्ताभस्म १ और टङ्कण २ भाग लेकर सबको ७ दिन जम्वीरी निम्बूके रसमे खरल करके गोलियां बनाकर सुखाले फिर सम्पुटमे बन्द करके वालुकायन्त्रमे

[१३०२-

रख एक अहोरात्रिका मन्द उत्ताप देकर निकाल मौलश्रीके बीज दोनों कंट-कारी, गिलोय और त्रिफला इनके क्वाथकी सात सात, विधाराकी १, विश्नु-क्रान्ताकी १, रेहू मछलीके पित्तेकी १ भावना देकर २ रत्तीकी गोली बनाले।

मात्रा—१ गोली।

गुण—सन्निपातिक मूर्च्छा, कफरोग, ग्रहणी, अग्निमान्द्य, प्लीहा, पाण्डु-रोग, शूल, उदावर्त और कुष्ठमें लाभदायक है अत्यन्त अग्नि व बलवर्णको बढ़ाने वाला यह धन्वन्तरि कृत रस है।

वारिसागर रस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं सूततुल्यं मृताऽभ्रकम्।
निर्गुण्डी काकमाची च धत्तूरार्द्रकचित्रम्॥
गिरिकर्णी जयन्ती च तिलपर्णी च भृङ्गराट्।
दन्तीशिग्रुकदम्बस्य कुसुमं नागकेशरम्॥
जयाकृष्णामहाराष्ट्रीद्रवैरासां यथाक्रमात्।
यामं पृथग्विशोष्याऽथ कटुतैलेन भावयेत्॥
शरावसम्पुटे रुद्ध्वा वालुकायन्त्रगं पचेत्।
यामैकं तत्समुद्धृत्य चूर्णितं कृष्णलत्रयम्॥
ऊषणं पञ्चलवणं द्विक्षारं जीरकद्वयम्।
वचाऽऽर्द्रोऽग्नियमान्यश्च समभागानि कारयेत्॥
अनुपाने चतुर्माषं सन्निपातहरं परम्।
माहिषं दधि पथ्यं स्याद्रसवीर्यविवर्धनम्॥
साध्याऽसाध्येप्रयोक्तव्यो रसोऽयंवारिसागरः॥

योगमहार्णव।

अर्थ—पारद, अभ्रकभस्म समभाग और दोनोंके बराबर बलि मिलाकर सभालू, मकोय, धतूरा, अद्रक, चित्रक, विश्नुक्रान्ता, जयन्ती, हुलहुल, भांगरा दन्ती, सहंजना, कदम्ब, कुसुम्भा, नागकेशर, भांग, पीपल, मुलहटी, इनके

क्वाथ या रसोंकी एक एक एक भावना दे; पश्चात् सूखने पर कटुतेलकी एक भावना देकर सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमें रखकर १ प्रहरकी मध्यम अग्नि का उत्ताप देकर उतार ले मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—त्रिकटु, पांचोंनमक, दो त्तार, दोनों जीरा, वच, अद्रक, चित्रक, अजवायन सब चीजें सम भाग मिलाकर रखले। इस चूर्णकी मात्रा—४ माशे है। यह तललग्नरस है।

गुण—विशेष अनुपानसे साध्यासाध्य सन्निपातमे लाभदायक है। यह रस बलवीर्यको बढ़ाने वाला भी बतलाया है।

विकरालवक्त्र भैरवरस

रसगन्धौ रविक्षीरैस्तिथिवारान्विभावयेत।
यामद्वादशकं वह्नि बालुकायन्त्रतो मतः॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य वज्रीक्षीरेण भावयेत्।
दद्यात्पूर्ववदग्निश्च ततश्च तिथिभावनाः॥
भावनाः स्युश्च कम्पिल्लबीजतैलेन चानलः।
यामषोडशकः सोयं विकरालास्यभैरवः॥

रसकामधेनु।

अर्थ—पारद और बलिकी कज्जली करके इनको १५ दिन आकके दूध मे खरल करके शीशीमें डाल १२ प्रहरकी तीव्र अग्निपर यथाविधि कूपीपाक करे, पुनः उस रससिन्दूरको निकालकर सेहुण्डके दूधमे १५ दिन खरल करके पुनः उसी विधिसे कूपीपाक करे, पश्चात् इसे निकालकर कबीला बीज (वाय विडङ्ग असली) के तेलमें १५ दिन खरल करके पुनः पूर्वोक्त विधिसे कूपी पाक करे तो यह रस तय्यार होता है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—ज्वर, सन्निपात और वातव्याधि में लाभदायक है।

सम्मति—यह रससिन्दूर ही है, वैद्योंको इसे बनाकर इस बातका अनुभव लेना चाहिये कि क्या वास्तवमे यह रस रससिन्दूरसे अधिक गुण करता है?

विजयचूड़ रस

मर्दयेन्निम्बुकद्रावे रसं वङ्गञ्च गन्धकम् ।
मूषायां भूधरे पाकं कुर्याद्वासरपञ्चकम् ॥
तत्र गन्धं मृतं ताम्रं सौवर्चलमथो क्षिपेत् ।
गायत्रीतोयसंश्लिष्टं ताम्रोदरविलेपितम् ॥
न्युब्जभाण्डोदरे रुद्ध्वा वालुकाभिः प्रपूरयेत् ।
रुद्ध्वा यामद्वयं पक्त्वा ग्रहण्यां धातुकज्वरे ॥
गुल्मप्लीहोदराऽष्ठीलाऽपस्मारे मूत्रकृच्छ्रके ।
परिणामभवे शूले क्षयादौ सम्प्रयोजयेत् ॥
वल्लं रोगाऽनुपानेन रसस्य भिषजांवरः ॥

रसेन्द्र कल्पद्रुम ।

अर्थ—पारद, वङ्गभस्म और वलि सब बराबर लेकर इनको निम्बूके रसमें खरल करके सम्पुटमें बन्दकर प्रथम ५ दिन भूधर यन्त्रमें रखकर पकावे, पश्चात् निकालकर इसमें ताम्रभस्म, वलि और काला नमक उक्त रसके बराबर मिलाकर खदिरक्वाथकी एक भावना देकर गोला बनाय ताम्र सम्पुटमें बन्द करके २ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—संग्रहणी, धातुगत ज्वर, गुल्म, प्लीहावृद्धि, उदररोग, अष्ठीला, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, परिणामशूल और क्षय आदि रोगोंमें अनुपान विशेषसे लाभदायक है।

विजयभैरव रस

हरवीर्यं वत्सनाभं वङ्गं नागं मृताऽभ्रकम् ।
मर्दयेद्दिनमेकञ्च कटुत्रितयजै रसैः ॥
द्वियामं वालुकायन्त्रे पाचितं वज्रमूषया ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य शुनीपित्तेन भावयेत् ॥

चणमात्रं पिबेच्चाऽनु नारिकेलोदकेन च ।
तत्क्षणेन विनश्येत्तु ह्यन्तकः सन्निपातकः ॥
इच्छापथ्यं प्रदातव्यं रसो विजयभैरवः ॥

वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ---पारद, मीठातेलिया, बंगभस्म, नागभस्म और अभ्रकभस्म सब समभाग लेकर इनको एक दिन त्रिकटुके क्वाथमें खरल करके सम्पुटमे बन्दकर वालुकायन्त्रमें रखकर मन्द अग्निपर २ प्रहर पकावे, पश्चात् कुतियाके पित्तेकी एक भावना देकर चनेके बराबर गोली बनाले । मात्रा—१ गोली ।

अनुपान—नारियलका जल ।

गुण—इसके सेवनसे अन्तक सन्निपातमे उसी समय लाभ होता है ।

विजय सिन्दूर

रसं गन्धं नागतालं सप्तधाधूर्तभावितम् ।
शुष्कं कूप्यान्तु वह्निः स्याच्चतुर्विंशतियामकम ॥
शीतं गृहीत्वा त्रिकटुकर्च्चूरैरहिफेनतः ।
भृङ्गारसेन गुटिका गुञ्जा सर्वाऽतिसारजित् ॥
रसो विजयसिन्दूरो ग्रहणीं हन्ति दुर्धराम् ॥ रसकामधेनु

अर्थ—पारद बलि, सीसा भस्म, हरताल सब बराबर सात भावना धतूरा रसकी देकर शीशीमे भरकर २४ प्रहरकी अग्निपर यथाविधि कूपीपाक करे । पश्चात् निकालकर इसमे त्रिकुट, कचूर और अफीम उक्त रसके बराबर मिलाकर भांगरेके रसमे खरल कर १ रत्तीकी गोली बनाले । मात्रा—१ गोली ।

गुण—यह रस अतिसार और संग्रहणीमे लाभदायक है ।

सम्मति—इसमें और माणिक्यरसमे इतना ही अन्तर है कि वहां मैनसिल भी पड़ता है । मैनसिल डालनेसे मैनसिल यौगिककी मात्रा इस रसकी अपेक्षा उस पारद यौगिकसे अधिक होती है और इसमे कम है, किन्तु यौगिकका रूप वही है ।

विदारण नरसिंह रस

एकेन्दुवेदाऽष्टरविक्षितीशाः सारं नवं भानुरसाः सुरेशाः ।
मनःशिलाखर्परसंयुतास्ते जम्भाऽम्भसाऽऽपेष्य तु कूपिकायम् ॥
विन्यस्य नालं परिरभ्य चैलमृत्स्नाऽऽवृतां तां लवणाऽऽख्ययन्त्रे ।
भाण्डे पचेद्यामचतुष्टयं तं संगृह्य सूतं चणकप्रमाणम् ॥
गौल्येन केनाऽपि वटी प्रदत्ता निहन्ति सर्वान्विषमज्वरान्सा ।
त्रिःसप्तकं गौल्यमतीव पथ्यं तैलाऽम्लमुख्यं परिवर्जनीयम् ॥
अयं रसोऽपस्मृतिमाशु हन्यान्नस्यं विदध्यान्नृकपालतैलात् ।
पित्ते च वान्तिर्भवतीह किञ्चिद्धठात्प्रदद्याद्विषमज्वरार्तौ ॥ रसराजशंकर

अर्थ—लोहभस्म, ताम्रभस्म, १-१ भाग पारद, ४ भाग सुवर्णभस्म ८ भाग मेनशिल १२ भाग खर्पर १६ भाग सबको जम्बीरी निम्बूके रसमें खरलकर शीशीमें भर यथाविधि ४ प्रहर मन्द अग्निपर कूपीपाक करे। तललग्न रस है। मात्रा—चनेके बराबर। अनुपान—हलवामें रखकर खिलावे।

गुण—विषमज्वर, अपस्मारमें लाभदायी है।

विद्यावल्लभ रस

रसो म्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्व्यग्न्यर्कभागिकाः ।
पिष्ट्वा तान्कुपवीतोयैस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥
न्युब्जशरावे संरुद्ध्य वालुकामध्यगं पचेत् ।
स्फुटन्त्यो व्रीहयो यावत्तच्छिरस्थाः शनैः शनैः ॥
सञ्चूर्ण्य शर्करायुक्तं द्विवल्लं सम्प्रयोजयेत् ।
नाशयेद्विषमाख्यञ्च तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥ रसचिन्तामणि

अर्थ—पारद १ भाग, सिंगरफ २ भाग, मेनसिल ३ भाग हरताल १२ भाग सबको १ दिन करेलेके रसमें खरलकर सबके बराबर ताम्रके संपुटमें बन्द कर यथाविधि उस समय तक कूपीपाक करे जब ऊपर वालुका पर धानकी खील बनने लग जाय। मात्रा—६ रत्ती शक्करके साथ दे।

गुण—विषमज्वरमें लाभदायी है।

सम्मति—यह रस पीछे कई नामोंसे आचुका है। केवल वस्तुओंकी मात्रामें अन्तर है रस एक ही बनता है; इसमेभी ताम्रकी कटोरी बलिकाइद में परिणत होजाती है इसीलिये उस कटोरी समेत समस्त रसको एकत्रकर पीस रखना चाहिये।

विद्यावागीश्वर रस

शुद्धं सूतं विषञ्चाऽभ्रं विषटङ्कणगन्धकम्।
मृतलोहाऽष्टकञ्चैव कर्षमात्रञ्च खल्वके॥
जम्बीरोन्मत्तवासाभिस्त्रिकटुत्रिफलोद्भवैः।
याममात्रन्तु प्रत्येकं मर्दयित्वा तु गोलकम्॥
काचकूप्यां निवेश्याऽथ ससवस्त्रमृदा बहिः।
लवणैः पूरिते यन्त्रे त्रिदिनं मन्दवह्निना॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य गुञ्जामात्रं प्रदापयेत्।
आर्द्रकस्याऽनुपानेन मञ्जिष्ठाया निकृन्तनम्॥
विद्यावागीश्वरो नाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः॥

वसवराजीय

अर्थ—पारद, मीठा तेलिया, अभ्रकभस्म, सोमल, टङ्कण, अष्टधातु भस्म सब बराबर इनको जम्बीरी, धतूरा, बांसा, त्रिकटु, त्रिफला आदिके रस या क्वाथोंमे एक एक प्रहर खरलकर गोला बना सम्पुटमें बन्दकर लवण यन्त्रमे रख ३ दिन मन्दाग्निपर पकावे। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान अद्रक रस।

गुण—मंजिष्ठामेहमें लाभदायी है। मजिष्ठामेहसे ग्रन्थकारका अभिप्राय उस प्रमेहसे दिखाई देता है जिसमे मूत्र लाल वर्णका आता हो।

विश्वमूर्ति रस

स्वर्णनागार्कपत्राणां भागाः पञ्च पृथक् पृथक्।
त्रयाणां द्विगुणः सूतो जम्बीराऽम्लेन मर्दयेत्॥

पिष्टिं तां निम्बुके क्षिप्त्वा दोलायन्त्रे दिनद्वयम् ।
पाचयेदारनालान्तस्तस्मादुद्धृत्य चूर्णयेत् ॥
ऊर्ध्वाऽधो गन्धकं दत्त्वा तालकञ्च रसोन्मितम् ।
लोहसम्पुटगं कृत्वा क्षिप्त्वा चैव प्रपूरयेत् ॥
लवणस्य च चूर्णेन त्र्यहं मन्दाग्निना पचेत् ।
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं दद्याद्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥
आर्द्रकस्य रसोपेतं शीघ्रं पथ्यं न दापयेत् ।
विश्वमूर्तीरसो नाम्ना सन्निपातादिरोगजित् ॥
अर्कमूलत्वचः क्वाथं मरिचै मिश्रितं पिबेत् ।
दशमूलकषायं वा ह्यनुपानं सुखावहम् ॥ रसचिन्तामणि

अर्थ—सुवर्ण, सीसा, और ताम्रके सूक्ष्म पत्र प्रत्येक पांच भाग पारद इन तीनोंसे तिगुना मिलाकर जम्बीरीके रसमें खरलकर इसी पिष्टिको निम्बूरस में भिगोकर दोला यन्त्रमें लटकाकर दो दिन काजी द्वारा स्वेदन करे पश्चात् निकालकर उक्त पिष्टीके बराबर हरताल और वलिका चूर्ण करके एक लोह सम्पुटमें उक्त चूर्णका आधा भाग नीचे बिछाकर उसपर उक्त गोला रखकर पुनः अवशेष चूर्ण डाल सम्पुटको बन्द कर ३ दिन यथाविधि लवण यन्त्रमे पचावे। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान अद्रक रस, अर्कमूल त्वचा क्वाथ मिर्च मिला हुआ या दशमूल क्वाथसे दे।

गुण—सन्निपातमें लाभदायी है। इसमें औषध जब पच जाय तब पथ्य देना चाहिये।

विषमज्वरहर रस

शिलातविमलारसं रसकताप्यगन्धाश्मयुङ् ।
त्रिवारमिति भावितं विमलकारवल्लीरसैः ॥
विशोष्य निहितं शुभे लघुनि शुल्वपात्रे दृढं ।
कपालपिहिते पचेत्तु सिकताख्ययन्त्रस्थितम् ॥

ज्वलदूर्ध्वेशालिवह्नेरुत्तार्यैतत्त्रिवारं तु ।
कूष्माण्डकारवल्लीतोयैर्भाव्यं ततस्त्रिवल्लञ्च ॥
गुडमोचखण्डयोगात्क्षीरान्नैकाशनस्य दाहादीन् ।
विषमज्वरान्निहन्यात्सर्वानेव त्र्यहेणैव ॥

रसायन संग्रह ।

अर्थ—मैनसिल हरताल, रूपामक्खी, पारद खपरिया, सोनामक्खी और बलि सब बराबर भाग, कटेलीके रसकी ३ भावना देकर उक्त रसके तुल्य ताम्र पत्र लेकर उसपर उक्त रसका लेप चढ़ा दे या मिलाकर सम्पुटमे बन्दकर बालुका यन्त्रमे रखकर उतने समय अग्नि दे जब बालूपर डाली हुई धानकी खील होजाय, फिर शीतल होने दे। पश्चात् इसको कूष्मांडरस और करेलाके रसकी तीन तीन भावना देकर ६ रत्तीकी गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

गुण—विषम ज्वरमे लाभदायी है। दाह होनेपर शीतलोपचार करे।

विषमान्तक रस

रसम्लेच्छालकुनटीगन्धखर्परमाक्षिकम् ।
पिष्ट्वा जम्भाऽम्भसा छिन्नताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥
गन्धकेन च संलिप्य तत्पचेत्कांस्यपाकवत् ।
भाण्डे लवणपूर्णे तु मध्ये पात्रं निरुद्ध्य च ॥
याममात्रं ततः शीते तुत्थपादं विनिःक्षिपेत् ।
विमृद्य वटिकां कुर्याद्रक्तिकात्रयसम्मिताम् ॥
दद्यद्गौल्येन केनाऽपि पर्णखण्डोषणैर्युताम् ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च तृतीयकचतुर्थकौ ॥
प्रस्कन्दनञ्च शमयेत्क्रूरं मुद्गसितायुतम् ।
पथ्यञ्च वर्जयेन्मासं राजिकां तैलमम्लकम् ॥ टोडरानन्द ।

अर्थ—पारद सिंगरफ, हरताल, मैनसिल, बलि खपरिया, सोनामक्खी, सब बराबर जम्बीरीके रसमें १ भावना देकर उक्त चीजोंसे दुगना ताम्र लेकर उसकी

कटोरी बनाय उस ताम्र कटोरीमें बलिका लेप लगाकर उसमें उक्त औषधियां रख सम्पुट कर लवण यन्त्रमें १ प्रहर पकावे। पश्चात् इसमें उक्त सब वस्तुओं का चौथाई नीलाथोथा भस्म मिलाकर जम्बीरी निम्बूके रसमें खरल कर ३ रत्तीकी गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

अनुपान—त्रिकटु या मिर्चके साथ पानमें रखकर दे।

गुण—अन्तरा, वेला, तृतीयक, चातुर्थिक आदि समस्त विषमज्वरोंमें लाभदायी है।

सम्मति—इस रसमें ताम्रके दो यौगिक सम्मिलित होते हैं एक बलिका दूसरा तुत्थकी भस्मका जो कुछ ऊष्माइद युक्त होता है। इन्हीं ताम्र यौगिकोंके प्रभावसे यह ज्वरमें लाभ करता है। इस रसमें ताम्र ऊष्माइदका योग होनेसे यह अधिक वामक रस है।

विषमारि रस

अशोधितं रसं तालं खर्परञ्च मनःशिलाम्।
माक्षिकं हिंगुलं गन्धं शिखितुत्थं यथाक्रमम॥
मर्दयेद्याममेकन्तु भिषक् सम्यग्गुरूक्तितः।
इन्द्रागिकाभृङ्गराजकारवल्लीजयारसैः॥
वेदयन्त्रं विमर्देत ततः कुर्यात्सुगोलकम।
भाराङ्गमध्यगतं ताम्रपात्रेणान पिधापयेत॥
अभयारुष्करखटीकल्कैः सन्धिं लिम्पेद्गुरूक्तितः।
सिकतापूरितं कृत्वा पात्रं किञ्चित्प्रदर्शयेत॥
तत्र त्रिचतुराः सम्यङ्निवेश्याः शालयः शुभाः।
तीव्राग्निना पचेत्तावद्यावल्लाजा भवन्ति ताः॥
स्वभावशीतलं ग्राह्यमपक्वार्कं न मेलयेत।
इन्द्रागिकाकारवल्लीस्वरसेन विमर्दयेत॥
गुञ्जात्रयं कोलकेन तुलसीरसतोऽपि वा।

निर्गुण्डीमरिचाभ्यां वा रसोनेन गुडेन वा ॥
ज्वरांश्च विषमान्सर्वान्नाशयेच्छीतपूर्वकान् ।
दाहपूर्वांश्छीतयुक्तान्नाशयेद्विषमज्वरान् ॥
पथ्यं ददीत गोक्षीरैः स्नेहाम्लौ वर्जयेद् ध्रुवम् ।
स्त्रीसङ्गो दूरतस्त्याज्यः शीताम्भः सम्परित्यजेत् ॥
विषमारि महान् प्रोक्तः शम्भुना रससागरे ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, हरताल, खपरिया, मैनसिल, सोनामक्खी, सिंगरफ, वलि नीलाथोथा, सब बराबर इन्द्रायण, भांगरा, करेला, और भांगके रसमें एक २ दिन खरल कर ताम्र सम्पुटमें बन्द कर बालुका यन्त्रमे रखकर उस समय तक अग्नि दे जब बालू पर पड़ी धानकी खील होजाय, जितना ताम्रकटोरीका भाग बलिकाइदमें परिणत होजाय उतना उस रसमें कूटकर मिलादे पश्चात् इसको इन्द्रायण फल और करेलेके रसकी एक २ भावना देकर ३ रत्तकी गोली बनाले । मात्रा—१ गोली ।

अनुपान—बेर जङ्गली, या तुलसीपत्र, या संभालु रस मिर्चके साथ या गुड़में रखकर सेवन करावे ।

गुण—प्रत्येक विषमज्वरमें लाभदायी है ।

वेदविद्या रस

रसभस्म त्रिभागश्च भागैकं तारभस्मकम् ।
मृतमभ्रश्च लोहश्च कासीसश्च मनःशिलाः ॥
एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
निर्गुण्डीमुशलीवासाजयाजैरग्निमन्थजैः ॥
अभयाऽऽर्द्रकजै मर्द्यं सप्ताहश्च पृथक् पृथक् ।
तद्गोलं कूपिकायन्त्रे षड्यामं तु तुषाग्निना ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं रक्तमेहप्रशान्तये ।

निम्बबीजकषायञ्च बोलयुक्तं पिबेदनु ॥
वेदविद्यारसो नाम्ना रक्तमेहकुलान्तकः ॥

वसव राजीय ।

अर्थ—रससिंदूर ३ भाग रजतभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, कसीस, मनसिल, प्रत्येक एक भाग इनको संभालू मूसली, बांसा, भांग, अग्निमन्थ, हरड़, अद्रक रसमें पृथक् पृथक् एक एक सप्ताह खरल करके गोला बनाय सम्पुटमें रखकर वालुकायन्त्रमें ६ प्रहर तुषाग्नि द्वारा पकावे।

मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—निम्बमज्जाके क्वाथसे बीजाबोलयुक्त सेवन करावे।

गुण—रक्तप्रमेहमें लाभदायी है।

वैक्रान्तबद्ध रस

स्वर्णस्य वसुवर्णस्य तोलकं रेतितस्य च ।
कर्षञ्च शुद्धवैक्रान्तं रसं षोडशकार्षिकम् ॥
शरावमात्रं गन्धस्य खल्वमध्ये विचूर्णयेत् ।
हस्तिकर्ण्याश्च पर्णोत्थं रसं दत्त्वा दिनद्वयम् ॥
कृष्णधत्तूरकार्पासदलोत्थेन रसेन च ।
सुशोधितं रेतितञ्च नागं दत्त्वाऽथ तोलकम् ॥
कुमारीस्वरसेनैव मर्दयेच्च दिनद्वयम् ।
सप्त मृच्चेलसंलिप्ते काचकुम्भे क्षिपेद्रसम् ॥
तन्मुखे खटिकां दत्त्वा लेपयेत्सप्तधा मृदा ।
मृत्कर्पटविधानञ्च परिभाषां विलोकयेत् ॥
संस्थाप्य वालुकायन्त्रे पचेद्दिनचतुष्टयम् ।
शनैः शनैः प्रदातव्यो वीतिहोत्रो भिषग्वरैः ॥
स्वाङ्गशीतो रसो ग्राह्यो यथारोगानुपानतः ।
द्रावयेत्सर्वरोगाणां विनिहन्ता न संशयः ॥

जातीफलं जातिपत्रीं कुंकुमं सलवङ्गकम् ।
कोलाकंकरभश्चैव स्वस्थे स्यादनुपानकम् ॥
अतीव कान्तिजननमतीवोत्साहवर्धनम् ।
अतीव कामवृद्धिश्च वह्निवृद्धिं करोत्यसौ ॥
शोषं क्षयं राजरोगं प्रमेहं विषमज्वरम् ।
प्रलेपकश्च जीर्णश्च तथा मन्दज्वरं जयेत् ॥
वृद्धानां कान्तिजननं पुत्रदं श्रीकरं परम् ।
ओजोवृद्धिकरं श्रेष्ठं महावातविनाशनम् ॥
श्लेष्मामयप्रशमनं कर्मजव्याधिनाशनम् ।
वैक्रान्तबद्धसूतोऽयं बृंहणो परमो मतः ॥

टोडरानन्द ।

अर्थ—सुवर्णपत्र १ तोला, वैक्रान्त १ तोला, सीसा १ तोला, पादर १६ तोला, बलि सबसे दुगना इनको हस्तिकर्णपलाशपत्ररस, धतूरा, कपास पत्तोंके रसमे दो दो दिन खरल करके शीशीमे भर ४ दिन मन्द अग्निपर यथाविधि कूपीपाक करे। मात्रा—लिखी नहीं है। २ रत्तीके लगभग दे।

गुण—शोष, क्षय, प्रमेह विषमज्वर, जीर्णज्वर मन्दज्वर, मे लाभदायी है इससे भिन्न बलवर्द्धक, कान्तिप्रद, कामोत्पादक, पुत्र जनक है।

व्याधिहरण रस

सुपक्वं पीनमानीय तिक्ततुम्बीमहत्फलम् ।
उपरिभागे छेत्तव्यं तन्मध्ये नरसारकम् ॥
कुडवं निक्षिपेत्पश्चात्कलं पूर्ववन्न्यसेत् ।
मृत्कर्पटेन संवेष्ट्य छिद्राणि त्रीणि कारयेत् ॥
गर्तमध्ये न्यसेद्भाण्डं तस्योपरि न्यसेत्फलम् ।
वस्त्रमृत्तिकयायुक्तं न्यसेत्सप्तदिनावधि ॥
पश्चादुद्धृत्य भाण्डस्थं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ।

[१:०२-

कुडवं रसकर्पूरं खल्वे सम्मर्द्य बुद्धिमान् ॥
पश्चात्तद्रससंयुक्तं चतुर्दश दिनावधि ।
अर्कस्य क्षीरसंयुक्तं चतुर्दश दिनावधि ॥
सम्मर्द्य चक्रिकां कुर्याद्भाण्डे संस्थाप्य युक्तितः ।
तिर्यक्पातनयन्त्रेण गृह्णीयादुत्तमं रसम् ॥
कृत्वैवं सम्प्रदायेन कर्पूराद्रसमुद्धरेत् ।
तद्रसञ्च समं गन्धं रसार्द्धन्तु विमिश्रयेत् ॥
खल्वे कज्जलिकां कृत्वा महाकोशातकीद्रवैः ।
रसञ्च भावयित्वा तु पश्चात् कूप्यां विनिक्षिपेत् ॥
वालुकामध्यगं कृत्वा दत्त्वाऽग्निं खदिरस्य च ।
द्विपादगन्धकं शेषं चूर्णं कृत्वा विचक्षणः ॥
कूपिकायामुखे धूमं दृष्ट्वा गन्धं पुनः पुनः ।
दीयते सूर्ययामान्तं तदा सिद्धो भवेद्रसः ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य कूपिकाकण्ठगं रसम् ।
तस्याऽरुणसंकाशं सिन्दूरं जायते वरम् ॥
नाम्नाऽयं व्याधिहरणो रसो वैद्यैः सुपूजितः ।
उपदंशे तथा मेहे पाण्डुरोगे भगन्दरे ॥
मन्दानले क्षये कासे श्वासे कुष्ठे व्रणे तथा ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥

रसायनसंग्रह ।

सारांश—ग्रन्थकारने इस रसको बनानेका बड़ा लम्बा चौड़ा आडम्बर पूर्ण विधान बताया है वास्तवमें रसकपूरसे पारद निकालकर उससे रससिंदूर बनानेका यह एक शास्त्रीय विधान है। रसकपूरसे निकला पारद और उस से बना रससिन्दूर अधिक गुणदायी है। इसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। इसीलिए इसका अर्थ छोड़ दिया है।

व्रणमर्दन रस

दरदोत्थं रसं शुद्धं गन्धकञ्च पलंपलम् ।
पलत्रयं शुद्धतालं मर्दयेत्तुलसीद्रवैः ॥
दिनत्रयं प्रयत्नेन रेतितं शुक्तिमात्रकम् ।
निक्षिप्य रजतं शुद्धं काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥
प्रमुद्रचास्यं भिषक् पश्चात्सिकतायन्त्रके पचेत् ।
मन्दमध्यक्रमेणैव वह्निं प्रज्वालयेदधः ॥
दिनत्रयं प्रयत्नेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
ततस्तु कूपिकान्तस्थं काचिन्माणिक्यसन्निभम् ॥
पतङ्गीं चातियत्नेन ग्राहयित्वा पृथक्पृथक् ।
नीत्वाऽधःस्थं समस्तञ्च पृथक्कुर्यादतः परम् ॥
सर्षपाभा पतङ्गीनां गुञ्जामात्रं तथा रसम् ।
चूर्णितं पर्णखण्डेन भक्षयेद्वा यथाबलम् ॥
यावद्गुञ्जापतङ्गी स्याद्रसो माषमितो भवेत ।
तदूर्ध्वं वर्धनं नैव कारयेद्रोगिणां प्रति ॥
यदाऽग्निरोधान्न भवेत्पतङ्गी तदा रसः केवल एव नित्यम् ।
सेवेद्व्रणानां प्रशमाय विद्वांस्ततः सुखी स्यादसृगामयार्तः ॥

रसरत्नमणिमाला ।

अर्थ—पारद, बलि, ४-४ तोला हरताल १२ तोला इनको प्रथम ३ दिन तुलसीके रसमे खरल करके ४ तोला इसमे रजत चूर्ण मिलाकर शीशीमे डाल यथाविधि ३ दिन कूपीपाक करे। यह तललग्न रस है किन्तु मैनसिल का कुछ भाग ऊपर उड़कर जो थोड़ा बहुत आलगे उस लालवर्ण रसको ग्रन्थकार कहता है कि भिन्न रखले। यदि इस रसको तीव्र उत्तापपर बनाया जाय तो माणिक्य रसवत् यह ऊर्ध्वलग्न बनता है, नीचे रजत बलिकाइद का यौगिक रह जाता है ग्रन्थकार कहता है कि तललग्न और ऊर्ध्वलग्न

दोनोंका उपयोग करे। ऊर्ध्व लग्नकी मात्रा—१ रत्ती। तललग्न की मात्रा १ माशा। अनुपान—पानका पत्ता।

गुण—रक्तविकार, फोड़ा फुन्सीको दूर करता है।

व्रणवड़वानल रस

समाने द्वे च पाषाणे तदर्द्धं बलिपारदम्।
कुनटीक्षारमेकैकं सूतपादं सुतालकम्॥
सर्वं शुद्धं तु खल्वे च मर्दयेद्दिवसत्रयम्।
नागवल्ली च निर्गुण्डी भृङ्गराजपुनर्नवौ॥
प्रत्येकपत्रसारेण मर्दनेन पुनःपुनः।
वटकान्बदरीबीजमात्रांश्छुष्कांस्तु कारयेत्॥
शुल्वे काण्डके क्षिप्त्वा सप्तशो वस्त्रमृत्तिकाः।
सुपक्वं वालुकायन्त्रे द्वादशाहं निरन्तरम्॥
स्वाङ्गशीतलमादाय सर्वं गोलं विचूर्णयेत्।
अनुपानविशेषेण व्रणांश्च विविधाञ्जयेत्।
शीतिकां विषमान्हन्ति शीतज्वरहरं परम्॥

रत्नाकर औषध योग।

अर्थ—सोमल सफेद, सोमलकाला, मैनसिल सुहागा प्रत्येक ८ तोला पारद, बलि. ४-४ तोला, हरताल १ तोला सबको पान, संभालू, भृंगराज, पुनर्णवाके रसमे तीन तीन दिन खरल करके गोलियाँ बना शीशीमे भर १२ दिनके मध्यम व तीव्र उत्तापपर यथाविधि कूपीपाक करे। मात्रा—आधी रत्ती।

गुण—भिन्न भिन्न अनुपानके साथ देनेपर नाड़ीव्रण, व्रणरक्तविकार, विषमज्वर, शरीरका एकाएक शीतल होना आदि व्याधिमे लाभदायी है।

शरभेश्वर रस

सुशुद्धं पारदं गन्धं वत्सनाभञ्च हिंगुलम्।
टङ्कणञ्च समं मर्द्यं चित्रमूलकषायके॥

संशोष्य बालुकायन्त्रे द्वियामं वज्रमूषके ।
समुद्धृत्य विचूर्ण्याऽथ देयस्त्रिकटुकद्रवैः ॥
वातपित्तकफैश्चोग्रं ज्वरं हरति तत्क्षणात् ।
सन्निपातं निहन्त्याशु रसोऽयं शरभेश्वरः ॥
वैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, बलि, मीठातेलिया, सिंगरफ, टङ्कण सब बराबर चित्रक मूलके काढ़ेमे खरल करके सम्पुटमे बन्दकर दो प्रहर मन्द अग्निपर यथाविधि कूपीपाक करे । अनुपान—त्रिकुट क्वाथ ।

गुण—सन्निपातमें लाभदायी है ।

शिलासिंदूर

मनःशिलामार्द्रे रसै विमर्द्देकाधिकं विंशतिकृत्व आद्यम् ।
संशोष्य संशोष्य तया समेशं तत्तुल्यगन्धेन मसिंच कुर्यात् ॥
भृत्वा च कूप्यामथ बालुकाख्ये यन्त्रे पचेद्घस्रचतुष्टयं तत् ।
काष्ठाऽग्निना शीतमथावतार्य गले विलग्नं रसमाददीत ॥
चन्द्रोदयश्चैष मनःशिलाद्िः कुष्ठादिरोगापनयाय दिष्टः ।
इष्टश्च गुञ्जाद्वयमात्रमात्रो हेमन्तकाले पुरुषाय यूने ॥ रसायनसार

अर्थ—प्रथम अद्रक रसमे मैनसिलको खरलकर सुखाले । पश्चात् इसमे पारद और बलि सम भाग मिलाकर ४ दिनका उत्ताप देकर यथाविधि कूपीपाक करे । मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—विषमज्वरमे लाभदायी है ।

शिलासिंदूर (दूसरा)

हारिद्रमल्लालविषोत्थतैले जैपालभल्लातककुष्ठतैले ।
व्यस्ते समस्तेऽप्युतगालितायां मनःशिलायां दधिवापितायाम ॥
उष्णाम्बुसंक्षालितशोषितायां घर्मेऽतितीव्रे समशुद्धगन्धकम् ।
सुवर्णसंग्रासितसूतराजं नीत्वा समं लोहकटाहिकायाम ॥

मन्दाग्नितप्तं त्रयमेतदेकीकृत्य प्रघर्षे सुरसेन भूयः ।
चुल्लेः कटाहीमवतार्य पङ्कं निस्सार्य कुर्यात्पटगालितञ्च ॥
समृत्पटायामनुकूपिकायां भृत्वा मषीं यामचतुष्टयेन ।
सर्वाधिकार्या सिकताख्ययन्त्रे पक्त्वा गलस्थं रसमाददीत ॥
रक्तस्थदोषापहरत्वतोऽयं धातूनशेषानुपजीवयेत ।
शिलादिचन्द्रोदयसञ्ज्ञकः स्यादुष्णास्वभावो नवनीतसेव्यः ॥

रसायनसार ।

अर्थ—हल्दीके योगसे सोमल और हरतालका तेल निकाले मीठा तेलियाका तेल जैपाल और भिलावांका तेल भिन्न भिन्न या सबको एकत्रकर उसमें मैनसिलको डालकर मैनसिलको गलावे । जब मैनसिल तेलमें मिल जाय उसमें दही डालकर करछीसे चलाता रहे पश्चात् शीतलकर उस कढ़ाईमें उष्ण जल डालकर तेल और दहीको उस मैनसिलसे इलहदा करदे, कई बार गरम जलसे धोनेपर मैनसिल साफ होजायगी । यह मैनसिल, बलि और पारद सब बराबर लेकर किसी कढाईमें डालकर ११४° शं० के उत्तापपर बलिको गलावे जब बलि गलने लगे उस समय पारदको उसमे मिलाता जाय जब सब मिलकर एकरूप होजायें उतारकर उसे कूट छान शीशीमें भर यथाविधि ४ प्रहरकी तीव्र अग्निपर कूपीपाक करे । मात्रा—१ रत्ती ।

सम्मति—शिलासिन्दूर और इसकी रासायनिक रचनामे जराभी अन्तर नहीं आता । दूसरे ग्रन्थकर्ताने इस रसको बनाते समय हल्दीके योगसे सोमल और हरतालका तेल निकालनेका विधान बतलाया है और लिखा है कि इसकी विधि परिभाषा प्रकरणमे देखो । हमें तो वहां इनके तेल निकालनेका कोई विधान नहीं मिला । जिस पातालयन्त्र द्वारा इनका तेल निकालनेका आप आदेश देते हैं उस यन्त्रसे सोमल,हरतालका तेल नहीं निकलता । प्रत्युत केवल हल्दीका ही कुछ जल और तैलांश प्राप्त होता है जिसे सोमल या हरतालका तेल कहना भूल है ।

आगे चलकर आपने "**व्यस्ते समस्ते**" कह कर उसका अर्थ आपने किया है कि "इन पांचों प्रकारके पृथक् २ तेलोंमे अथवा पांचोंको इकट्ठे करके मैनसिलको मन्द अग्निपर रखकर गलावे।' आपके इस संदिग्ध कथनसे स्पष्ट होता है कि आपने यह योग स्वयम् कल्पित तो किया किन्तु निर्माण नहीं किया। वरना भिन्न २ तेलोंमे गलानेसे मैनसिलकी जो स्थिति होती है तथा एकत्रित तेलोंमे गलानेसे जो स्थिति उत्पन्न होती है इन दोनों विधियोंमे जो अन्तर आता है उसका आपको ज्ञान होता, ऐसी दशामे आप इसे संदिग्ध रूपमे न रहने देते। भिन्न भिन्न तेलोंमे मैनसिलको गलानेपर वह तेलोंकी स्थितिके अनुसार घुलती चली जाती है और उसकी मात्रा बहुत घट जाती है एकत्रित तेलोंमे गलानेपर समय थोड़ा लगता है इतनी अधिक नहीं गलती, क्योंकि वहां पांचवार तेलोंमे गलाना होता है, यहां एकवार एकत्रित तेलोंमे। दूसरे आपने वहां लिखा है कि इस तेलको दद्रु, गजचर्म, खाज, स्वेतकुष्ठ आदि चर्म रोगों पर लगावे। आपने इस तेलका उपयोग किसीकी त्वचापर किया होता तो आप भल्लातकतेल और जैपाल तेलोंके त्वचापर लगानेका जो भयङ्कर परिणाम होता है उससे आप अवगत होते और उसकी चिकित्सा भी लिखते। ग्रन्थका लिखना आसान है किन्तु प्रायोगिक अनुभव लेना कठिन है।

शिलासिन्दूर (तीसरा)

बीजं हरस्य च तदंशमनःशिलाञ्च धत्तूरमाल्यरसमर्दितमष्टवारम्।
तत्काचकूपीनिहितं सुमुद्रितं द्वात्रिंशयामपिहितं सिकताख्ययन्त्रे॥
तत्पारदं भवति कुंकुमपुष्पतुल्यं तद्योगवाहि फलदं च रसायनं च॥

योगमहार्णव।

अर्थ—पारद और मैनसिल सब समभाग लेकर खरल करे; पश्चात् धतूरे के फूलोंके रसमे ८ भावना देकर सुखाय शीशीमे भरकर यथाविधि ४ अहोरात्रि अग्निपर रखकर कूपीपाक करे। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—योगवाही है, रसायन है।

सम्मति— इस योगमे वलि नहीं डाला गया है किन्तु मैनसिलमें विद्यमान वलिका एक परमाणु पारदके एक परमाणुसे जा मिलता है तो मैनसिलका यौगिक बदल जाता है, इसमें सोमल वलिकाइद (सो२व) का और पारद वलिकाइदका मिश्रण होता है। इस रसके गुण पूर्वके शिलासिन्दूर के गुणोंसे बिलकुल भिन्न होंगे क्योंकि उन दोनों योगिकोंमे मैनसिलका यौगिक (सो २ व २) विद्यमान रहता है। इस यौगिकमे नहीं होता।

शिलासिन्दूर (चौथा)

मनःशिला सूतकञ्च माक्षिकं तालकं विषम्।
गन्धकञ्च समं योज्यं त्रिदिनं मर्दनं ततः॥
वटशृङ्गद्रवेणैव दिनमेकं प्रयत्नतः।
हंसपादीरसेनैव मर्दयेत्त्रिदिनं भिषक्॥
गुटिका वल्लिजाकाराः काचकूप्यां निवेशयेत्।
अधोमुखीं घटीं क्षिप्त्वा क्षिपेदुपरि वालुकाम्॥
मन्दाग्निना यामचतुष्टयञ्च पचेत्तथा यामचतुष्टयञ्च।
मध्याग्निना यामचतुष्टयञ्च तथाग्निमुद्धृत्य ततः प्रयुञ्ज्यात्॥
जपापुष्पनिभं चैव सिन्दूरं रुचिरं भवेत्।
आर्द्रकस्वरसेनैव सर्वस्मिन् सन्निपातके॥
पञ्चकोलकषायेण सर्वज्वरनिवारणम्।
शाल्यन्नं मुद्गयूषञ्च पथ्यं तक्रं पयो दधि॥
कुलत्थयूषसंयुक्तं अटनाविधितो ददेत्॥

रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—मनसिल, पारद, सोनामक्खी, हरताल, मीठातेलिया और वलि सममाग लेकर पहिले तीन दिन सुखाकर खरल करके पश्चात् एक दिन वटां-कुर रसमें खरल करके फिर तीन दिन हंसराज रसमें खरल करके छोटी २

गोलियां बनाकर सुखाले फिर कांचकूपीमे भरकर १२ प्रहर यथाविधि कूपी-पाक करे। यह ऊर्ध्वलग्न रस बनता है। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान और गुण—अद्रकरससे समस्त सन्निपातमे, पञ्चकोलके काढ़ेसे समस्त ज्वरोंमें देवे। समस्त ज्वरोंमें और सन्निपातमें इसका उपयोग लिखा है।

शीतज्वाला रस

कर्षमात्रं हतं शुल्वं पञ्चांशा खर्परी शिला।
रसद्विगन्धकं तालं कारवल्लीरसैः पुटेत्॥
बालुकायन्त्रसंपक्वं गुञ्जामात्रां नियोजयेत्।
सप्तभि र्मरिचै र्युक्तं शीतज्वालां निकृन्तयेत्॥

रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—ताम्रभस्म १ भाग, खपरिया, मैनसिल ५-५ भाग, पारद, बलि और हरताल २-२ भाग सबको करेलेके रसमे खरल करके शीशीमे डालकर यथाविधि कूपीपाक करे। यह तललग्न और ऊर्ध्वलग्न दोनों प्रकारका बन सकता है। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान और गुण—७ कालीमिर्चके साथ देनेपर पूर्व शीत लगकर दाह उत्पन्न करने वाले ज्वरमें अर्थात् विषमज्वरमें लाभदायक है।

शीतभञ्जी रस

रसहिंगुलतालानि तुत्थं शम्बूकजं रजः।
कन्याद्भिः सप्तधा भाव्यं पक्तव्यञ्च शरावके॥
अहोरात्रं पुनः शीतं कुम्भाधः सिकतान्तरे।
दत्तः पथ्यन्तु तक्रेण भक्तं क्षीरेण वा युतः॥
लवणेन विना सर्वान्नाशयेद्विषमज्वरान्॥ रसकामधेनु।

अर्थ—पारद, सिंगरफ, हरताल, नीलाथोथा और शंखचूर्ण सब समभाग लेकर इनको ७ भावना घीकुंवारके रसकी देकर सम्पुटमे बन्द करके ८ प्रहर यथाविधि मन्द अग्निपर पकावे। मात्रा—१ से २ रत्ती।

गुण—यह रस शीतज्वरमे लाभदायक है ।

पथ्य—दुग्ध भात मीठा युक्त ।

शीतभञ्जी रस (दूसरा)

रसगन्धौ शिला तालं माक्षिकं विषतुत्थके ।
तुल्यं स्नुक्क्षीरपुटितं सघृतं कूर्मपाचितम् ॥
शीतभञ्जी रसो हन्ति द्विगुञ्जो विषमज्वरान् ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, बलि, हरताल, सोनामक्खी, मीठातेलिया और नीलाथोथा सब समभाग एकत्र करके सेहुण्डके दूधमें खरल करके एक टिकिया बनाकर घृतसे स्निग्ध करके सम्पुटमें बन्दकर यथाविधि ४ प्रहर मन्द उत्ताप पर पकावे।

मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—विषम ज्वरोंमे लाभदायक है ।

शीतभञ्जी रस (तीसरा)

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धकम् ।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्लरसैर्दिनम् ॥
मर्दयित्वोदरं लिम्पेत्ताम्रपात्रस्य बुद्धिमान् ।
अंगुलार्द्धार्द्धमानेन तं पचेत्सिकताह्वये ॥
यन्त्रे यावत्स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ततस्तच्छीतलंग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥
मापैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्मरिचैः समम् ।
शीतभञ्जी रसो नाम त्रिदिनान्नाशयेज्ज्वरम् ॥

रसेन्द्रसार संग्रह ।

अर्थ—पारद, खपरिया, हरताल, नीलाथोथा, टङ्कण और बलि समभाग लेकर १ दिन करेलेके रसमें खरल करके इस कल्कको ताम्रके बारीक पत्रोंपर

लेप करके सम्पुटमें बन्दकर यथाविधि मध्यम अग्निपर पकावे। यह तललग्न रस है। यह रस पीछे कहीं ज्वरारिरस कहीं पंचानन रस कहीं शीतारिरस आदि कई नामोंसे आचुका है। मात्रा—१ माशा बतलाई है जो बहुत ज्यादा है।

अनुपान और गुण—पानपत्र या ७ काली मिर्चके साथ देनेपर शीत ज्वरमेंलाभदायी है। इसके सेवनसे वमन होता है।

शृङ्खलावात नाशन रस

शुद्धं सूतं विषं गन्धं चाभ्रकं चाम्लवेतसम्।
द्विदिनं भावयेत्खल्वे हंसपादीरसैस्तथा॥
काचकूप्यां निवेश्याऽथ कुक्कुटीपुटपाचितम्।
भावितं मत्स्य पित्तेन द्विगुञ्जं भक्षयेत्सदा॥
अनुपानविशेषेण शृङ्खलावातनाशनम्।
पथ्यं क्षीरोदनं देयं नारिकेलजलाऽप्लुतम्॥

वसवराजीय।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, बलि, अभ्रकभस्म अम्लवेत सबको दो दिन हसराजके रसमें खरल करके शीशीमें भर यथाविधि ४ प्रहर मन्द अग्निपर पकावे। तललग्न रस है। पश्चात् रेहू मछलीके पित्तेकी एक भावना देकर २-२ रत्तीकी गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

गुण—यह रस शृङ्खलावातमें लाभदायी है।

श्वित्रारि रस

सूते पले भूधरयन्त्रमध्ये सञ्जारयेद्गन्धपलं ततोऽस्मिन्।
सूते च गन्धस्य पलत्रयञ्च दत्त्वाऽथ निम्बूत्थरसै विमृद्य॥
खरांशिकावाकुचिकाग्निभृङ्गकोरण्टनीरैः परिमर्दयेत।
दिनैकमेकं कटुतुम्बिनीजलैर्मर्द्य ततः काचजकूपिकान्तः॥
निक्षिप्य भाण्डे सिकतोदरान्तर्यामद्वयं स्वेदय तं ततश्च।
ददीत वल्लद्वयमस्य कृष्णापर्णेन सार्धं त्वथवा तदर्धम्॥

पलाशमूलं त्वनु पाययीत तक्रेण सार्धञ्च ददीत पथ्यम् ।
उष्णो क्षिपेत्तैलविमर्दितञ्च स्फोटा यदि स्युः सहसा च गात्रे ॥

रसरत्न समुच्चय

अर्थ—प्रथम पारदके बराबर बलि मिलाकर भूधर यन्त्रमें बलिजारण करले, यौगिक बन जानेपर पारदसे त्रिगुण और बलि मिलाकर निम्न-लिखित रसोंमे एक एक दिन खरल करे । जंगली अंजीरछालक्राथ, बावची-बीजक्राथ, चित्रक, भांगरा, पियाबासा क्राथ, पश्चात् खरलमे सूख जानेपर इसे शीशीमे डाल यथाविधि रससिन्दूर तैयार करे । मात्रा—३—६ रत्ती तक ।

अनुपान और गुण—बंगला पानके रसमे रखकर उक्त रस खिलावे । इसके सेवनसे श्वित्र कुष्ठ जाता रहता है । ग्रन्थकार कहता है कि यदि इसके सेवन करनेपर शरीरमें सफेद दागोंपर छाले निकल आवें और दाह हो तो घबरावे नहीं, उन छालोंपर इसी रसको तेल या घृतमें मिलाकर लगावे ।

षण्मुख रस

हरार्कायोवङ्गाऽभ्रकबलिकलैकद्विजलधि-,
द्विपद्वाविंशद्भिर्मिलितमनलेऽसौ यदि पुनः ।
द्व्यहं पक्वः कूप्यां भवति सिकतायन्त्रजुषित-,
स्तलस्थः षण्ढत्वप्रलयकृदयं षण्मुखरसः ॥

रसकौमुदी ।

अर्थ—पारद १६ भाग ताम्रभस्म १ भाग लोहभस्म २ भाग बंगभस्म ४ भाग अभ्रक भस्म ८ भाग बलि २२ भाग सबको खरल कर प्रथम कर्छीमे डाल अग्निपर रखकर पर्पटी बनावे, पुनः खरल कर शीशीमे डाल यथाविधि २ प्रहर मन्द अग्निपर कूपीपाक करे । यह तललग्न रस बनेगा । मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—नपुंसकतामें यह रस लाभकारी है । अच्छा वाजीकर है ।

संकोचरस

शुद्धं रसं लोणिसमुद्भवेन तुषोदकेनाऽपि दृढं विमर्द्य ।
सगन्धकं ताम्रविपाचितश्च भस्मत्वमायाति कृशानुयोगात् ॥
तद्भस्म गन्धाश्मकतुत्थकश्च पुनर्विमर्द्यश्च रसेन तेन ।
मूषागतं तच्च तुषैर्विपक्कं यावद्भवेद्भस्म ततो गृहीत्वा ॥
मर्द्यं सताम्रं सह टङ्कणेन सनागरं मागधिकायुतश्च ।
सिद्धो भवेद्वल्लमितो रसेन्द्रो सङ्कोचनामाऽखिलकुष्ठहारी ॥

रसावतार

अर्थ— पारदको प्रथम लोनी बूटीके रसमें कईबार खरल करके तुषोदकसे धोवे और पुनः खरल करे पुनः धोवे । पश्चात् बराबर बलि मिलाकर कज्जली बनाय ताम्र सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमें रखकर यथाविधि पाक करे । ताम्र सम्पुट सहित समस्त रसको खरलमे डाल पुनः इस रसके बराबर बलि और नीलाथोथा मिलाकर लोनीके रसमे खरल कर पुनः सम्पुटमे बन्द कर इसको फिर भूधरयन्त्रमे रखकर तुषाग्निमे पकावे । तुषकी अग्नि इतनी देनी चाहिये ताकि पारद यौगिक उड़े नहीं । शीतल होनेपर निकाल इस सारे रसके बराबर सुहागा, पीपल, सोंठ मिलाकर रखले ।

मात्रा—२ रत्ती । अनुपान—निम्ब क्काथ या खदिर क्काथ ।

गुण—समस्त कुष्ठोंमे लाभदायक है ।

संजीवन रस

रसगन्धकताम्रञ्च कान्तभस्म समांशकम् ।
मुशलीरससम्पिष्टं काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ॥
पाचयेद्वालुकायन्त्रे द्वियामान्ते समुद्धरेत् ।
सिन्दूरं त्रिफला व्योषं क्षारं लवणपञ्चकम् ॥
हिंगु गुग्गुलवह्नी च कुबेराक्षश्च टङ्कणम् ।
दीप्यत्रयञ्च जाती च सूरणं विश्ववत्सकम् ॥

शिग्रुद्वयं तथा पुङ्खी व्याघ्रीत्रयपटोलकम् ।
राक्षसीवल्लवल्ली च कटभीक्षुरपीलुकम् ॥
समभागानि सञ्चूर्ण्य खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
गृञ्जनं शृङ्गवेरंचजम्बीरी रसभावयेत् ॥
निष्कार्द्ध मधुना लेह्यं यामे यामे च भक्षितम् ।
अम्लपित्तं निहन्त्याशु सर्वव्याधिहरः परः ॥
कुर्यात्प्राणपरित्राणं सञ्जीवनरसः स्मृतः ॥

वसव राजीय ।

अर्थ—पारद, बलि, ताम्रभस्म और कान्तभस्म समभाग लेकर मूसलीके रसमें एक दिन खरल करके शीशीमें भर यथाविधि २ प्रहरकी तीव्र अग्नि देकर कूपीपाक करे, यह ऊर्ध्वलग्नरस बनेगा । इसमे जो ऊर्ध्वलग्न रससिन्दूर निकले उसे तोले, जितना रससिन्दूर हो उसके बराबर निम्नलिखित वस्तुएं और मिलावे :–त्रिफला, त्रिकटु, यवक्षार, पांचों नमक, हींग, गुग्गुल, चित्रक, करञ्जबीज, सुहागा, अजवायन, जावत्री, अजमोद, खुरासानीअजवायन, जिमीकन्द, सोंठ, इन्द्रयव, सहंजना मीठा व कटु, पुनर्णावा, कटेली छोटी, और बड़ी कटेली, छोटे फल वाली कटेली, पटोलपत्र, सेमलमूसली, सोमलता, छोटी मालकांगनी, तालमखाना और पीलु । इन सबोंका चूर्ण बनाकर गाजर, अद्रक और जम्बीरी निम्बुके रसकी १-१ भावना देकर २ माशे की गोली बनाले ।

अनुपान—शहदके साथ तीन २ घण्टेके बाद एक २ गोली खाए ।

गुण—अम्लपित्तमे महान् लाभदायक है । इससे भिन्न और अनेक व्याधियोंमें इसके सेवनसे लाभ होता है ।

सत्वशेखर रस

सूतं रसकसत्त्वेन सारयित्वा समेन च ।
सत्त्वं तालस्य ताप्यस्य सर्वतुल्यबलिं क्षिपेत ॥

मर्दयेत्सुषवीनीरै राजकोषातकीजलैः ।
देवदालीरसै र्यामं यामं लवणायन्त्रके ॥
पचेच्छीतं विचूर्ण्याथ भावयेत्तैस्त्रिभि र्जलैः ।
यवचिञ्चाहरिक्रान्ताकन्यानां सलिलैः पृथक् ॥
द्विवल्ल वटिका चास्य पिप्पली मधुसंयुता ।
प्रयुक्ता हन्ति वेगेन शीतदाहादिकं ज्वरम् ॥

टोडरानन्द ।

अर्थ—पारदके बराबर खपरियाका सत्व लेकर उसे गलावे और उसमे पारद डालकर इसका मिश्रण बनाले; पश्चात् हरताल और माक्षिक सत्व बराबर मिलाकर और सबके बराबर बलि मिलाकर करेला, कड़वीतुरई और बंदाल फल रसमे एक २ दिन खरल करके सुखाकर शीशीमे भर लवणायन्त्रमे रखकर यथाविधि कूपीपाक करे । पश्चात् खरलमे डाल खीरनी विश्नुक्रान्ता और कुमारीके रसमे एक एक दिन मर्दन करके ६ रत्तीकी गोली बनाले ।

अनुपान और गुण—पीपल शहदके साथ देनेपर विषमज्वरमे जो–शीत लगकर आता है उसमे लाभ करता है ।

सन्धिवातारि रस

शुद्धं सूतं विषं गन्धं हिंगुलं कटुरोहिणी ।
लोहताम्रमयोभस्म तालकञ्च मनःशिला ॥
अर्कमूलकषायेण मर्दितं वटकीकृतम् ।
काचकूप्यां निवेश्याथ लेपयेद्वस्त्रमृत्तिकाम् ॥
त्रियामं बालुकायन्त्रे पचेन्मृद्वग्निना ततः ।
गुञ्जामात्रं प्रयुञ्जीत सन्धिवातं निहन्त्यलम् ॥

वसव राजीय ।

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, बलि, सिंगरफ, कुटकी लोहभस्म, ताम्रभस्म, हरताल और मैनसिल सबको आक जड़के क्वाथमे खरल करके छोटी छोटी

गोलिया बनाकर शीशीमें भरकर ३ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। यह तल-लग्नरस है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—सन्निवातमें लाभकारी लिखा है।

सम्मति—यह रस पीछे अन्य नामोंसे आया है, वहां इसे ज्वर, सन्निपात और संधिक सन्निपातमें देना लिखा है

सन्निपात कालानल रस

> वद्धन्तु ताम्रपत्रेण सूतं गन्धकतालकम्।
> विषमर्कं सुवर्णञ्च रसकं हेममाक्षिकम्॥
> कृशानुतोयसङ्घृष्टं दिनं तद्गोलकं पुनः।
> संस्कृत्य मृत्पटैर्गाढं वालुकायन्त्रगं पचेत्॥
> त्रिदिनं स्वाङ्गशीतन्तु पित्तै र्भाव्यञ्च पञ्चभिः।
> देवेशि सर्वतुल्येन धूपितं हि विषेण च॥
> अर्द्धगुञ्जामितं खादेत्सन्निपातं सुदुस्तरम्।
> ऽत्यतन्द्राप्रलापोग्रं सान्द्रवातकफोल्वणम्॥
> जयेदन्नेश्च कृशतां ज्वराजीर्णाश्ववानपि।
> ग्रहण्युदरशोथार्शोऽरुचिदौर्वल्यपीनसान्॥

रसेन्द्र कल्पद्रुम।

अर्थ—पारद और ताम्रचूर्ण समभाग लेकर दोनोंको निम्बूरसमें छोड़कर घोटनेसे पिष्टि बन जाती है, इस पिष्टिमें वलि, हरताल, मीठातेलिया, आक, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, खपरियाभस्म सोनामक्खीभस्म प्रत्येक पारदके बराबर भाग मिलाकर चित्रकके क्वाथमें खरल करके गोला बनावे और धूपमें सुखाकर सम्पुट कर वालुका यन्त्रमें रखकर ३ दिन पकावे, पश्चात् निकालकर पञ्चपित्त की भावना देकर इसके बराबर मीठातेलियाको बन्द बर्तनमें जलाकर उसके धुएंसे उक्त रसको धूपित करके रखले। यह तललग्नरस है। मात्रा—आधी रत्ती।

गुण—शीताङ्गसन्निपात, तन्द्रिकसन्निपात, प्रलापीसन्निपात, नवज्वर, जीर्णज्वर, वातकफोल्बण सन्निपात, ग्रहणी, उदर रोग शोथ, अर्श, अरुचि, दुर्वलता और पीनस आदिमें लाभदायक है।

सन्निपात दावानल रस

मनःशिलारसौ तुल्यौ मर्दनीयौ गवां जलैः।
ततस्तु गोलकीकृत्य शोषयित्वा खरातपे॥
गोपाययित्वा ताम्रेण सन्धिवन्धं विधाय च।
बालुकायन्त्रसम्पक्वमहोरात्रात्समुद्धरेत्॥
अष्टमांशं तत्र योज्यं जातीफलकणाविषम।
मत्स्यमाहिषवाराहमयूरच्छागसम्भवैः॥
पित्तैस्तु सप्तधा भाव्यं टङ्कणं तत्र निक्षिपेत्।
सन्निपाते महाघोरे दद्यात्त प्रच्छनादिभिः॥
व्रीहिमात्रप्रयोगेण सन्निपातविनाशनः॥ रत्नाकर औषधयोग

अर्थ—मैनसिल और पारद समभाग लेकर गोमूत्रमे खरल करके गोला बनाकर सुखाले; पश्चात् ताम्र सम्पुटमे रखकर सन्धि बन्द करके बालुका यन्त्रमें रखकर आठ प्रहर पकावे। पश्चात् जितना ताम्र भस्म हो गया हो कटोरी तोड़ कर निकाल इसमें जायफल, पीपल और मीठातेलिया प्रत्येक अष्टमांश मिलाकर पांच पित्तोंकी सात २ भावना देकर पश्चात् इसमें सबसे दसवां भाग टङ्कण खील मिलाकर रखले। मात्रा—१ यव प्रमाण अर्थात् आधी रत्ती।

अनुपान और गुण—इस औषधको सन्निपातसे मूर्छित रोगीके तालुको जरा खुरच कर उसपर औषध मलनेसे—ग्रन्थकार कहता है कि सन्निपातीकी मूर्च्छा खुल जाती है।

सन्निपातभैरव रस

रसो गन्धस्त्रिस्त्रिकर्षौ कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः।
ताराभ्रताम्रवङ्गाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः॥

शिग्रुज्वालामुखीशुण्ठीविल्वेभ्यस्तण्डुलीयकात् ।
प्रत्येकस्वरसैः कुर्याद्यामैकैकं विमर्दनम् ॥
कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रे लवणापूरिते न्यसेत् ।
काचभाण्डेऽथवा स्थाल्यां काचकूपीं निवेशयेत् ॥
वालुकाभिः प्रपूर्याथ वह्निर्यामद्वयं भवेत् ।
तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत् ॥
प्रवालचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च ।
कृष्णसर्पस्य गरले दिवसं भावयेत्तथा ॥
तगरं मुशली मांसी हेमाह्वा वेतसः कणा ।
नीलिनी पत्रकं चैला चित्रकश्च कुठेरकः ॥
शतपुष्पा देवदाली धत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः ः
मधूकजातिमदना रसैरेषां विमर्दयेत् ॥
प्रत्येकमेकवेलञ्च ततः संशोष्य धारयेत् ।
बीजपूरार्द्रकद्रावै मरिचैः षोडशोन्मितैः ॥
रसो द्विगुञ्जाप्रमितः सन्निपाते च दीयते ।
प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना सन्निपातस्य भैरवः ॥

शार्ङ्गधर ।

अर्थ—पारद, वलि २-२ तोला, रजतभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंग-भस्म, नागभस्म और लोहभस्म प्रत्येक तोला तोला सबको सौभाञ्जन, ज्वाला-मुखी, सोंठ, बेल, चौलाई इनके रसोंमें ३-३ घण्टे खरल करके गोला बनाय सम्पुट करके लवणयन्त्रमें रखकर या वालुकायन्त्रमें रखकर २ प्रहरके उत्तापपर पकावे । पश्चात् इसमें प्रवाल चूर्ण १ तोला, मीठातेलिया ४ माशे मिलाकर सर्पके विषमें १ भावना दे, पश्चात् निम्नलिखित वस्तुओंकी एक एक भावना दे :—तगर, मूसली, जटामांसी, सत्यानासी, समुद्रफल, पीपल, नीलपत्र या वस्मा, इलायची, चित्रक, नगन्दबावरी, सौंफ, देवदाली, धतूरा, अगस्त्य,

गोरखमुण्डी, महुआ, दोनामरुआ जावत्री, मैनफल आदिमें खरल करनेके बाद दो-दो रत्तीकी गोली बनाले। मात्रा—१ गोली।

अनुपान और गुण—बिजौरारस या अद्रक रसमें १६ कालीमिर्च मिलाकर उसके साथ गोली देनेसे समस्त सन्निपातमें लाभदायक है।

समीरपन्नग रस

पारदं गन्धकं मल्लं हरितालं तथैव च।
एतच्चतुष्टयं सर्वं तुलसीरसमर्दितम्॥
वटीं कृत्वाऽभ्रकेणैव वेष्टयेद्गोलकन्तु तत।
शरावयुगले क्षिप्त्वा बालुकायन्त्रगं पचेत्॥
दीपिकाप्रमितं वह्निं दत्त्वायाम चतुष्टयम्।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य नाम्नाऽसौ वातपन्नगः॥
सन्निपाते तथोन्मादे सन्धिबन्धे कफामये।
नागवल्ल्या दलेनैव भक्षयेद्गुञ्जिकाद्वयम्॥

रसचण्डांशु।

अर्थ—पारद, बलि, सोमल, हरताल समभाग सबको तुलसीके रसमें खरल करके छोटी २ गोलियां बनाकर सुखाले, पश्चात् एक शराव इतना बड़ा ले कि उसके भीतर अभ्रकपत्र बिछ जाये, फिर शरावकी आभ्यन्तरिक परधिमें उक्त गोलियां अभ्रकपर रखकर दूसरे अभ्रक पत्रसे ढंककर सम्पुट करके बालुका यन्त्रमें रखकर ४ प्रहर दीपाग्नि द्वारा अर्थात् मन्दाग्नि द्वारा पकावे। ग्रन्थकारने यह तललग्नका विधान बतलाया है। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—सन्निपात, उन्माद, सन्धिवात कफके रोगमें लाभदायक है।

अनुपान—पानके रससे दे।

सम्मति—इस समय इस रसको ऊर्द्धलग्न बनानेकी प्रथा चल पड़ी है। ऊर्द्धलग्न रस तललग्नकी अपेक्षा अधिक अच्छा बनता है। इसके गुणोंमें भी विशेषता आजाती है। मात्रा भी १ रत्ती काफी होती है। हमने इस रसकी

कृपासे अर्धाङ्गके अनेक रोगी राजी किये हैं; जितना अच्छा यह लाभ करता है इनकी तुलनाका हमें एक भी रस नहीं मिला। इससे भिन्न पुराने से पुराने कई गृध्रसी (रींगनवाय) के रोगी राजी कर चुका हूं। रक्तचाप अधिक बढ़जाने पर जब मस्तिष्क केशिकाके फटजानेसे जो रक्त श्राव मस्तिस्कके किसी भागमें होता है उसीके कारण अर्धांङ्ग, सर्वाङ्ग या एकाङ्ग (लकवा) घात आदि रोगोंका एकाएक प्रादुर्भाव होता है। जिन व्यक्तियोंको पक्षाघात होता है उनको प्राय: रक्तचाप बढ़ा हुआ देखा जाता है। ऐसे समय बड़े २ डाक्टर प्रथम रक्तचापको ठीक करनेकी चेष्टा करते है किन्तु सफलीभूत नहीं होते। हमने देखा है कि यह ऊर्ध्वलग्न समीरपन्नग पक्षाघातमे आरम्भसे दिया जाय तो उस बढ़े हुए रक्तचापको भी कम कर देता है और इससे बहुत जल्दी रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है।

समीरपन्नगरसका स्नायुनिर्वलता पर अच्छा प्रभाव होता है और शरीरमें काफी रक्तवृद्धि होती है। हम इसको शहदसे देते हैं। ऊर्ध्वलग्न बनानेके लिये इसे काचकूपीमें डालकर कूपीपाक करना चाहिये। ऊर्ध्वलग्न रस बनाने में जो भाग नीचे बैठा रहता है वह केवल सोमल का होता है।

सर्वज्वरारि रस

रसं गन्धकं हिंगुलं मौक्तिकञ्च पृथक् टङ्कमानं रविञ्चाददीत।
विचूर्ण्य क्षिपेत्कूपिकायां छियामं खरेऽग्नौ पचेज्जूर्तिमेहौ हरेत्तत्॥

रसावतार दूसरा।

अर्थ—पारद, बलि, सिंगरफ, मोती, और ताम्रभस्म सब बराबर इन्हे खरल करके २ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—समस्त ज्वर और १८ प्रमेहमें लाभदायी है।

सर्वलोकाश्रय रस

शुद्धं सूतं पलं गन्धं गन्धार्धं तालताप्यकम्।
अमृतं रसकञ्चैव तालकार्द्धविभागिकम्॥

एतेषां कज्जलीं कुर्याद् दृढं सम्मर्द्य वासरम् ।
त्रिदिनं मर्दयेच्चाथ दत्त्वा निम्बुजलं खलु ॥
वटकीकृत्य विशोष्याऽथ काचकूप्यां निधापयेत ।
निष्कतुल्यार्कपत्रेण पिधायाऽस्यं प्रयत्नतः ॥
सार्धांगुलमितोत्सेधं मृत्स्नया तां विलेप्य च ।
ततो भाण्डतृतीयांशे सिकतापरिपूरिते ॥
निधाय सिकतामूर्ध्नि सिकताभिः प्रपूरयेत ।
रुद्ध्वाऽऽस्यं तदधो वह्निं ज्वालयेत्सार्धवासरम् ॥
स्वाङ्गशीतभवं काचपुटादाकृष्य तं रसम् ।
पटचूर्णं विधायाथ ताम्रमभ्रम् पलद्वयम् ॥
पलार्द्धममृतञ्चैव मरिचञ्च चतुष्पलम् ।
एकीकृत्य क्षिपेत्सर्वं नारिकेलकरण्डके ॥
साज्यो गुञ्जाद्विमानो हरति रसवरः सर्वलोकाश्रयोऽपं ।
वातश्लेष्मोत्थरोगान्गुदजनितगदं शोषपाण्ड्वामयञ्च ॥
यक्ष्माणं वातशूलं ज्वरमपि निखिलं वह्निमान्द्यञ्च गुल्मं ।
तत्तद्रोगघ्नयोगैः सकलगदचयं दीपनं तल्लग्नेन ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—पारद, बलि समान भाग पारदसे आधा हरताल और इतना ही सोनामक्खी, हरतालसे आधा मीठातेलिया और इतना ही खपरिया। सबको खरलकर निम्बूरसमे घोट गोलियां बनाले फिर शीशीमे डाल यथाविधि २ प्रहर मध्यम उत्तापपर पकावे। तललग्न रस है। इसे निकाल इसमे पारद के बराबर ताम्रभस्म और इतनीही अभ्रकभस्म तथा ताम्रसे आधा मीठातेलिया और पारदसे चौगुनी काली मिर्च मिलाकर खरल करके रखले। मात्रा—२ रत्ती।

गुण—वातश्लेष्मजन्यरोग, गुदाके रोग, शोष, पाण्डु, यक्ष्मा, वातशूल, ज्वर, अग्निमान्द्य, गुल्ममें भिन्न भिन्न अनुपानसे देवे, अच्छा लाभदायक है।

सर्वसुन्दर रस

सूतगन्धविषमेव कारयेद्भागवृद्धमथ मर्दयेत्ततः ।
आर्द्रवह्निजरसेन यत्नतः पाचितो हि लवणाख्ययन्त्रके ।
भक्षितो हि किल वल्लमात्रया क्षौद्रकेण सह पिप्पलीयुतः ।
पूर्णचन्द्रवदयं हि सेवितो यत्नमहा भवति वातरोगहा ॥

रसप्रकाश सुधाकर

अर्थ—पारद १ भाग बलि २ भाग मीठातेलिया ३ भाग सबको अद्रक रस व चित्रक रसमें खरलकर काचकूपीमें डाल यथाविधि रस सिन्दूर तय्यार करें । मात्रा—३ रत्ती । अनुपान—पीपल शहद ।

सर्वाङ्गसुन्दर रस

रसालनागशैलानि तुत्थं गन्धकसोमलम् ।
सहदेवीनिम्बबिम्बीरसैः सप्त च सप्त च ॥
दिनानि सम्मर्द्य दद्यं कूप्यां द्वात्रिंशयामकम् ।
वह्निशीतो मेहहरो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, हरताल, सीसा, मैनसिल, नीलाथोथा, बलि, सोमल, सब बराबर सहदेवी निम्ब और कन्दूरीके रसमें सात २ दिन खरल करके ३२ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे । ऊर्ध्व लग्न रस है । मात्रा—२ रत्ती ।

गुण—समस्त प्रमेह और ज्वरोंमे लाभदायी है ।

सर्वाङ्गसुन्दर रस दूसरा

शुद्धसूताभ्रताम्रायो हिंगुलं कार्षिकं समम ।
गन्धकश्चैकभागः स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥
सप्तपर्णार्कस्नुक्क्षीरवासावातारिवारिणा ।
विषमुष्टिसमं सर्वं पेष्यं तद्गोलकीकृतम् ॥
विपचेद्वालुकायन्त्रे द्वियामन्ते समुद्धरेत ।

पिप्पलीविषसंयुक्तो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥
सर्ववातविकारघ्नः सर्वशूलनिषूदनः ॥

रसेन्द्रसार संग्रह ।

अर्थ—पारद, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, सिंगरफ और वलि सब समभाग सबको एकत्रकर सप्तपर्णा, आक दुग्ध, सेहुण्ड दुग्ध, बांसा, एरण्ड इनके स्वरस या क्वाथकी एक एक भावना दे; पश्चात् सबके बराबर कुचला चूर्ण मिलाकर गोला बनाय सम्पुटमे रख यथाविधि दो प्रहर पाक करे। पश्चात् इस रसमें पारदके बराबर पीपल और इतना ही मीठातेलिया मिलाकर पीस रखे। यह तललग्न रस है मात्रा—१-२ रत्ती तक।

गुण—समस्त वातरोग व शूलमें लाभदायी है।

सर्वांगसुन्दर रस तीसरा

मृद्वग्निना द्रुते गन्धे चतुःपाणितलोन्मिते ।
लोहसूताभ्रमेकैकं क्षिप्त्वा समवतारयेत् ॥
मागधी मरिचं हिंगु दीप्यजीरकचित्रकाः ।
कर्षैकैकं विषं चूर्णं कृत्वा खल्वे ततः क्षिपेत् ॥
सर्वेषां पञ्चगुणितं मृतं ताम्रं परिक्षिपेत् ।
आर्द्रकैर्मर्दयेद्द्रावे द्रवैरेरण्डजैश्च वा ॥
दिनैकं शोषयेत्तच्च भाव्यं शिग्रुद्रवै र्दिनम् ।
सर्पाक्ष्या वामृताकन्यारविभृङ्गीपुनर्नवैः ॥
आर्द्रकस्य द्रवे भाव्यं दिनान्ते तन्निरोधयेत् ।
दिनं वा बालुकायन्त्रे समादाय विचूर्णयेत् ॥
जातीफलञ्च कर्पूरं कङ्कोलं मधुमिश्रितम् ।
रसस्यार्द्धमिदं योज्यं माषमात्रञ्च भक्षयेत् ॥
अनुपानं पिबेच्चास्य क्वाथं त्रिकटुसम्भवम् ।
सन्निपातहरः सोऽयं रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ रसकामधेनु

अर्थ—बलि ४ तोलाको करछीमें डालकर गलावे उसमे पारद, लोह भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला डालकर उसे हिलाता रहे जब बलिमें पारद व भस्मे मिल जायें शीतल करले। पश्चात् इसमे पीपलमिर्चकाली, हींग, अजवायन, जीरा, चित्रक, १-१ तोला मिलाकर खरल करे जब सब अच्छी तरह मिल जायें तो समस्त औषधियोंसे पांच गुना ताम्रभस्म इसमे मिलाकर अद्रक, एरण्ड, सहंजना, सर्पाक्षी, गिलोय, घीकुंवार, आक, भांगरा, पुनर्नवाकी एक २ भावना दे, भावना देते समय रसको खूब सूखने दे, जब एक भावनाका रस सूख जाय तब दूसरे रसकी भावना दे, अन्तमे अद्रक रसकी भावना देनेके पश्चात् गोला बनाकर उसे सम्पुटमें बन्दकर अत्यन्त मन्द अग्निपर कूपीपाक विधिसे २ प्रहर पकावे। पश्चात् निकाल इसमें जायफल, कपूर, सीतलचीनी यह रससे आधे भाग मिलाकर शहदसे १ माशेकी गोली बनाले।

मात्रा—१ गोली। अनुपान—त्रिकटु क्वाथ।

गुण—सन्निपातमें लाभदायी है।

सर्वांगसुन्दर रस चौथा

शुद्धं सूतं विषं गन्धं शुद्धं तालकमाक्षिकम्।
एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत॥
हंसपादीरसेनैव छियामं मर्दयेद् दृढम।
काचकूप्यां निवेश्याथ वालुकाभिः प्रपूरयेत॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य द्विगुञ्ज भक्षयेत्सदा।
चिप्पिकासं निहन्त्याशु सर्वकासं नियच्छति॥
सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष रोगगजनिकृन्तनः।
दशभि मरिचैं र्युक्तां पथ्यां पिष्ट्वाऽम्भसा पिबेत॥
नाभिजानाति कासश्च निद्रासुखकरं परम।
मगद्धरसंयुतं लीढं कफवाताग्निमान्द्यनुत॥

बसवराजीय

अर्थ—पारद, मीठातेलिया, बलि, हरताल, सोनामक्खी सब बराबर पीस कर हंसराजके रसमें दो प्रहर खरलकर शीशीमें भरकर यथाविधि कूपीपाक करे

मात्रा—२ रत्ती। गुण—काली खांसी तथा अन्य कासमें लाभदायी है।

अनुपान—खांसीमें १० काली मिर्च और ३ माशे हरड़ पीसकर उसके साथ सेवन करनेपर खांसीवाला आरामकी नींद ले सकता है। तथा मण्डूर भस्म शहदके साथ लेनेपर कफवात रोग व मन्दाग्निमे लाभ होता है।

सर्वेश्वर रस

सहदेवीरसे मर्द्यो दरदाकृष्टपारदः।
अहिफेनकभृङ्गाभ्यां शिवनेत्ररसेन च॥
गोभीविषाभ्यां प्रत्येकं त्र्यहं तच्च क्षिपेत्पुनः।
कुक्कुटाण्डं पुन र्नीत्वा सम्यङ् मासत्रयं क्षिपेत॥
अर्कक्षीरेण सम्मर्द्य त्रियामं शोषयेत्पुनः।
दिनैकं डमरूयन्त्रे वह्निं दद्यात्पुनश्च तत॥
शीतं गृहीत्वा रसके समे च गलिते पुनः।
पाययित्वा च मूर्वाया रसं सम्मर्दयेत्पुनः॥
एकविंशतिवारांश्च गृह्णीयात्पञ्चभागिकम्।
वङ्गं नागश्च सारश्च माक्षिकं सोमजं मलम॥
तालसत्त्वं शिलासत्त्वं प्रत्येकञ्च तदर्धकम्।
ताम्रं सार्धपलं गन्धं गृह्णीयाच्च चतुःपलम॥
तत्सर्वं मर्दयेत्त्रिस्त्रिरर्कक्षीरेण वा पुनः।
धूर्ततैलेन च विषं फेनं सार्धपलद्वयम्॥
मूर्वारसेन सम्मर्द्य रसैरेतैः पुनस्तथा।
रविधूर्तजयास्नुग्भिः सप्ताहं स्नुतैलतः॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य शुष्कं सम्मुद्रय्य यत्नतः।
गर्ते छागविशा पूर्णे पात्रमध्ये च कूपिकाम॥

संस्थाप्याग्निं प्रदद्याच्च यामद्वादशकं तथा ।
गृह्णीयाच्छीतलं तत्तु नीलनीरदसन्निभम् ॥
एवं सर्वेश्वरो नाम्ना रसो भवति दुर्लभः ।
दत्तस्तण्डुलमात्रस्तु सर्वरोगहरः परः ॥
क्षयं क्षतं श्वासकासौ प्रमेहान्विंशतिं तथा ।
ग्रहणीमतिसारांश्च मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीः ॥
इत्यादिरोगाञ्जित्वा तु भवेद्वृष्यो रसायनः ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारदको सहदेवी, अफीम, भृंगराज, सर्पाक्षी, भांतल, मीठातेलिया आदिके क्वाथमे तीन ३ दिन खरल करके उस पारदको मुर्गीके अण्डेमे भरकर तीन मासतक रखे । पश्चात् निकालकर अर्क दुग्धमे ३ दिन खरलकर सुखाले । पश्चात् एक डमरू यन्त्रमे रखकर उस पारदको उड़ाले और इसे वस्त्रमे छान मूर्वाके रसमे २१ भावना देकर बग, नाग, लोह, सोनामक्खी इनकी भस्मे पारदका पांचवां भाग और सोमल, तथा हरताल सत्व और मैनसिल सत्व यह दोनों पारदसे आधा आधा भाग ताम्रभस्म पारदसे १॥ भाग बलि ४ भाग अफीम आधा भाग इन सबको आक दूध, धतूरातेल, मूर्वारसमें ३-३ दिन खरल करके पुनः आकरस, खूरारस, भांगरस, स्नुही दुग्ध, एरण्ड तेल, इनमे ७-७ दिन खरल करके सुखाय शीशीमे भर १२ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे । ग्रन्थकारने तो शीशीको गढ़ेमें रखकर बकरीकी मेंगनी उसमे भरकर मेंगनीकी अग्निपर इसे तय्यार करनेका विधान बतलाया है किन्तु कूपीपाक करनेसे यह रस निर्बाधित बनता है यह मेघवर्ण तल लग्नरस बनता है ।

मात्रा—१ चावल लिखी है ।

गुण—क्षय, सिल, श्वास, कास, प्रमेह, ग्रहणी, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र अश्मरी आदि रोगोंमे लाभदायक है ।

सर्वेश्वर रस दूसरा

पलं सूतं चतुर्गन्धं शुद्धं यामं विचूर्णयेत् ।
मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलं पलम् ॥
जम्बीरोन्मत्तवासाभिःस्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ।
मर्द्य हयारिजै र्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम ॥
एवं सप्तदिनं मर्द्य तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।
बालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णां पलैकं योजयेद्विषम् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥
द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् ।
आजानुस्फुटितं चापि वातरक्तमपोहति ॥
वाकुचीदेवकाष्ठञ्च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ।
लिहेदेरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम् ॥

वृहद् योगतरंगिणी ।

अर्थ—पारद, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सिंगरफ प्रत्येक ४ तोला बलि १६ तोला सबको जम्बीरी, धतूरा, बांसा, स्नुही, अर्कदुग्ध, कुचला, कनेर प्रत्येक के क्वाथ या रसमे ७-७ दिन खरल कर गोला बनाय सम्पुटमे रख मन्द २ अग्निपर यथाविधि तीन दिन स्वेदन करे। पश्चात् निकालकर पारदके बराबर मीठातेलिया और पारदसे दुगना पिप्पली चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल कर रखले। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान और गुण—बावची, देवदारू चूर्ण १ तोला इनको एरण्ड तेलमें मिलाकर उसके साथ उक्त रसको सेवन करनेसे उस वातरक्तमे—जिसमें हाथ पैर फूट गये हों—लाभ होता है। इसीतरह सुप्तकुष्ठ, मण्डल-कुष्ठमेंभी लाभ करता है।

सारस्वत रस

रसगन्धौ वचां शङ्खपुष्प्यास्त्रिस्त्रिदिनं पुटेत् ।
चतुर्विंशतियामांस्तु वह्निं दद्यान्मृदुं भिषक् ॥
माषोऽस्य दुग्धभक्तानुपानेन स्वरभङ्गजित् ।
अयं सारस्वतो नाम रसो जाड्यापहारकः ॥

रसकामधेनु ।

अर्थ—पारद, बलि दोनों बराबर इनकी कज्जलीको बच और शंखपुष्पी के रसमें खरल करके बालुका यन्त्रमें रखकर २४ प्रहर कूपीपाक करे । यह रससिन्दूर बनता है ।

मात्रा—१ माशा । गुण—स्वरभंग और जड़तामें लाभदायी है ।

सिद्धसूत रस

पत्रीकृतं शुद्धसूतं सुवर्णं रौप्यमेकतः ।
मुक्ताफलं यवक्षारं तोलैकैकं प्रकल्पयेत् ॥
रक्तोत्पलदलद्रावे मर्दयेत्पिष्टिकाकृतिम् ।
षड्गुणं गन्धकं दत्त्वा मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुद्ध्य नियामकम् ।
सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतन्तु भक्षयेत् ॥
पञ्चरक्तिप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम् ।
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गञ्च नाशयेत् ॥
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ।
मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमामिषम् ।
पारावतस्य मांसञ्च तित्तिरिश्च सदा हितः ॥

भैषज्यरत्नावली ।

अर्थ—सुवर्ण, चांदीके वर्क, मोती, यवक्षार, पारद सब बराबर सबको लाल कमलके फूलके रसमें खरलकर पिष्टि बनावे पश्चात् पारदसे ६ गुना

बलि डालकर दो दिन खरल करे, पश्चात् शीशीमे भरकर यथाविधि ३ प्रहर तीव्र अग्निपर पकावे। ऊर्ध्व लग्न रस बनेगा। मात्रा—५ रत्ती।

अनुपान—शर्करा मूसली चूर्ण से देवे ऊपरसे दुग्ध पान करे।

गुण—ध्वजभंग निर्बलता, शुक्रक्षीणता, स्मरणापात आदिमे लाभदायी है। ग्रन्थकार कहता है इसके सेवनके साथ घृत, दुग्ध, मांसका सेवन करता रहे।

सुदर्शन रस

त्रिद्व्येकांशा च शिग्रुकंगुतिसिजैस्तैलैश्च पित्तैस्त्र्यह

मामृद्यार्करसामृतं द्विबलियुत् स्यात् वालुकायन्त्रगम्।

मण्डूकीविषमुष्टिशिग्रुपयसा पक्त्वा त्र्यहं स्वेदये

दङ्गारे लघुतस्सुदर्शनरसः स्यात्सन्निपातादिषु॥

टोडरानन्द।

अर्थ—ताम्रभस्म, पारद, मीठातेलिया प्रत्येक १ भाग बलि दो भाग सबको सहंजनेके रससे ३ दिन, मालकंगनी तेलमे २ दिन, रेहू मछलीके पित्ते मे १ दिन खरल करके शीशीमे भर यथाविधि ३ दिनकी अग्निपर पकावे।

मात्रा—१ रत्ती। गुण—इसके सेवनसे सन्निपातमे लाभ होता है।

सुधानिधि रस

गन्धकं पारदं चाभ्रमेलाग्रन्थिककेशरम्।

समभागयुतं खल्वे जीरकेण च मर्दितम्॥

काचकूप्यां निवेश्याथ द्वियामं तु तुषाग्निना।

स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य द्विगुञ्जं भक्षयेत्सदा॥

शर्करामधुसंयुक्तमम्लपित्तविकारनुत्॥

वसवराजीय।

अर्थ—बलि, पारद, अभ्रकभस्म, इलायची, ग्रन्थिपर्ण, केशर समभाग जीराके काढ़ेमे खरल करके शीशीमे भरकर यथाविधि मन्द अग्निपर ४ प्रहर

पकावें। ग्रन्थकार तुषाग्निमें पकानेका आदेश करता है, किन्तु इसे चाहे वालुकायन्त्रमें रखकर पकावें या तुषाग्निमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। उत्ताप १५० शतांश का होना चाहिये। तललग्न रस बनेगा। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—शक्कर मधु। गुण—अम्लपित्तमें लाभदायी है।

सुवर्णभूपति रस

शुद्धं सूतं समं गन्धं मृतं शुल्वं तयोः समम्।
अभ्रलोहकयोर्भस्म कान्तभस्म सुवर्णजम्॥
रजतञ्च विषं सम्यक् पृथक् सूतसमं भवेत्।
हंसपादीरसैर्मर्द्यं दिनमेकं वटकीकृतम्॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य मृदा संलेपयेद्बहिः।
शुष्कां तां वालुकायन्त्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥
चतुर्गुञ्जमितं देयं पिप्पल्यार्द्रद्रवेण तु।
क्षयं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातांस्त्रयोदश॥
आमवातं धनुर्वातं शृङ्खलावातमेव च।
आढ्यवातं पंगुवातं कम्पवाताग्निमान्द्यनुत्॥
कटीवातं सर्वशूलं नाशयेन्नात्र संशयः।
गुल्मशूलमुदावर्तं ग्रहणीमतिदुस्तराम्॥
प्रमेहमुदरं सर्वामश्मरीं मूत्रविड्ग्रहम्।
भगन्दरं सर्वकुष्ठं विद्रधिं महतीं तथा॥
श्वासं कासमजीर्णञ्च ज्वरमष्टविधन्तथा।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शिरोरोगञ्च नाशयेत्॥
अनुपानविशेषेण सर्वरोगान्विनाशयेत्।
यथा सूर्योदये नश्येत्तमः सर्वगतन्तथा॥
सर्वरोगविनाशाय सर्वेषां स्वर्णभूपतिः॥

निघण्टु रत्नाकर।

अर्थ—पारद, बलि, समभाग दोनोंके बराबर ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तलोहभस्म, सुवर्णभस्म, रजतभस्म, मीठातेलिया प्रत्येक पारदके बराबर सबको हंसराजके रसमे खरल करके गोलियां बनाय शीशीमे डाल बालुकायन्त्रमें रख ४ प्रहर मन्द उत्तापपर कूपीपाक करे। तललग्न रस है।

मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—पिप्पली अद्रक रस।

गुण—क्षय, सन्निपात, आमवात, धनुर्वात, शृंखलावात तथा अन्य वातरोग कटिपीड़ा शूल, अग्निमान्द्य, गुल्म; उदावर्त, ग्रहणी, प्रमेह, अश्मरी, मूत्रावरोध भगदर; कुष्ठ, विद्रधि श्वास, कास, अजीर्ण, ज्वर, कामला, पाण्डु शिरोरोग आदिमे लाभदायी है। उक्त रोगोंमे भिन्न भिन्न अनुपानसे देवे।

सुवर्णवङ्ग

रसेन्द्र वङ्गं समभागमेतत्पिष्टिं विदध्यात् सहमग्नि योगात्।
घृष्ट्वाम्लसिन्धूत्थ सुआरनाले सुशोधनीयं दश वारमेतत्॥
रसेन्द्र तुल्यं नवसारपक्वं समं च गन्धं कुरु कज्जली तत्।
घटे विपाकाददतिमन्द वह्निना भवेत्सुवर्णप्रभवर्णवंगम्॥

स्वनिर्मित।

अर्थ—पारद, वंग, नवसादर समभाग और सबके बराबर बलि ले।

निर्माण विधि :—वंगको गलाकर उसमे पारद डाल दे और उसे शीतल करले; पश्चात् बराबर नमक मिलाकर खरलमे डाल निम्बू या जम्बीरीरस देकर खरल करे और दिनभर खरल होता रहे शामको उस पिष्टिको स्वच्छ कांजी या जलसे धो डाले, इस तरह १० वार करे। पश्चात् नवसादर भून कर और बलि मिलाकर कज्जली बनावे जब कज्जली तय्यार हो जाय तो घड़ेमे या कांचकूपीमें भरकर बालुका यन्त्रमे रखकर मन्द अग्निपर पकावे। उत्ताप १७५° शतांशसे अधिक नहीं लगना चाहिये। जब कूपीमे से स्वेत धुंआ निकलना बन्द हो जाय तो शीतल करले, अवशिष्ट नवसादर बलि उड़ जाता है और कुछ भाग कूपीके ग्रीवापर आकर लग जाता है, नीचे तलमे सुवर्ण

सदृश वंग होता है उसके ऊपर पारद बलिकाइदके यौगिकके श्यामता युक्त वर्णोंका संघट पपड़ी रूपमें जमा होता है। इस पारद बलिकाइदको शीशी तोड़कर भिन्न करले, इस काले रसको शीशीमें डालकर पुनः यथाविधि कूपीपाक करनेसे वंग सिन्दूर बन जाता है, यदि इसमे अधिक बलि न डाली जाय तो उत्तम वर्णका सुवर्णवङ्ग नहीं बनता। कोई २ इसमे पारदसे षोडशांश शोराभी डालते हैं इसके डालनेसे वंगका वजन बढ़ जाता है।

सुवर्णराज वङ्गेश्वर

रसाद्द्विगुणितं वङ्गं वङ्गाद्द्विगुणगन्धकम्।
रसार्द्धं हेमभागश्च तत्समं मौक्तिकन्तथा॥
रसभागन्तु मरिचं तत्समं कान्तनागयोः।
कुमारीरससम्पिष्टं खल्वे चूर्णन्तु कारयेत्॥
सप्त मृद्वसनं कृत्वा काचकूप्यां विनिक्षिपेत्।
वालुकायन्त्रगं कृत्वा दिनमेकं हठाग्निना॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पुनः खल्वे विमर्दयेत्।
एवं सप्तदिनं कृत्वा वटिकाः कारयेद्बुधः॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन योजयेदनुपानतः।
सर्वरोगेषु दातव्या प्रमेहान्हन्ति विंशतिम्॥
मूत्रघातं मूत्रकृच्छ्रं प्रदरार्शो वसीस्तथा।
रसायनमिदं श्रेष्ठं स्वर्णवङ्गेश्वरो रसः॥

रसायन सग्रह।

अर्थ—पारद १ भाग, वंग २ भाग, बलि ४ भाग, सुवर्णभस्म, मुक्ता पारदसे आधा २ भाग, मिर्च, कान्तलोहभस्म, नागभस्म पारदके बराबर सबको घीकुवारके रसमें खरल करके शीशीमें डाल यथाविधि कूपीपाक करे, यह तल-लग्नरस बनेगा। इसे निकाल खरल करके पुनः ७ बार तक कूपीपाक करे, तब यह रस सिद्ध होता है। मात्रा—४ रत्ती।

गुण—प्रमेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर और वमनमें लाभदायक है।

सुवर्ण सिन्दूर

पारदं गन्धकं स्वर्णं जम्बीररसमर्दितम्।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य बालुकायन्त्रमध्यगम्॥
दिनार्धं पाचयेदेतत्स्वाङ्गशीतलताङ्गतम्।
हेमसिन्दूरकं नाम नागताम्राभ्रसंयुतम्॥
प्रयोगे सर्वदोषादि हन्ति सत्यं न संशयः॥ रत्नाकर औषधयोग।

अर्थ—पारद, बलि और सुवर्ण सब समभाग लेकर प्रथम पिष्टि बनाकर कज्जली करे, पश्चात् जम्बीरी निम्बूके रसमे खरल करके आधा दिन यथाविधि कूपीपाक करे। ऊर्ध्वलग्नरस बनेगा। इसको निकालकर इसके बराबर ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर अनेक रोगोंमे देवे। मात्रा—२ रत्ती।

सूचिकाभरण रस

मृताभ्रहेमवैक्रान्ततीक्ष्णताम्रामृतं समम्।
पारदो गन्धकस्ताप्यं नागवङ्गौ समंसमम्॥
सर्वं निर्गुण्डिकाद्रावै र्मर्दित खल्वके ततः।
भृङ्गो पुनर्नवा पाठा चित्रकं बालकाऽमृते॥
अर्कधत्तूरतुलसीमुण्डीजम्बीरलाङ्गलीम्।
कुमारी नागवल्ली च द्रवैरेषां विमर्दयेत्॥
काचकूप्यन्तरे क्षिप्त्वा विलेप्य वस्त्रमृत्तिकाम्।
दिनैकं बालुकायन्त्रे पचेन्नीत्वा च चूर्णयेत॥
मत्स्यस्य च वराहस्य कमठ्या महिषस्य च।
अजायाश्च मयूरस्य कृष्णसर्पस्य कौक्कुटैः॥
मनुष्याश्वश्वसण्डूकजातैः पित्तैश्च भावयेत्।
दापयेत्सूचिकाग्रेण सर्वेषां सन्निपातिनाम्॥

प्लीहगुल्मोदरांश्चैव ग्रहण्यातीतिसारिणम् ।
धनुर्वातं कम्पवातं हिक्कावाधिर्यमूकताः ॥
कौब्ज्यं हिमोर्द्ध्वश्वासांश्च ह्यपस्माराऽतिविभ्रमान् ।
तत्क्षणेन निहन्त्याशु यथेच्छं पथ्यमाचरेत् ॥
नारिकेलोदकं दाहे दध्यन्नं पथ्यमाचरेत् ।
तृषार्ते शीतलजलमिक्षुखण्डानि भक्षयेत् ॥
सूचिकाभरणो नाम सर्वरोगविनाशकृत् ॥रत्नाकर औषधयोग ।

अर्थ—अभ्रक, सुवर्ण, वैक्रान्त, तीक्ष्णलोह, ताम्र, सीसा, वंग और सोनामक्खी इन सबकी भस्मे, पारद, बलि, मीठातेलिया सब समभाग लेकर खरलमे डालकर निम्नलिखित वनस्पति रसोंकी एक २ भावना दे । संभालू, भांगरा, पुनर्नवा, पाठा, चित्रक, सुगन्धवाला, गिलोय, आक, धतूरा, तुलसी, गोरखमुण्डी, जम्बीरी, कलिहारी, घीकुंवार और पान इनकी भावना देनेके बाद सुखाकर १ दिनके मन्द उत्तापपर यथाविधि कूपीपाक करे, यह तललग्नरस है। इसे निकाल खरलमें डालकर, मछली, सुअर, कछुआ, भैंसा, बकरा, मोर, कालासांप, मुर्गा, मनुष्य, कुत्ता, घोड़ा और मेढक इनके पित्तोंकी एक एक भावना देकर रखले । मात्रा—ग्रन्थकार कहता है कि सुईके नोकपर औषध लगाकर रोगीको खानेके लिये देवे ।

गुण—सन्निपात, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, ग्रहणी, अतिसार, धनुर्वात, कम्पवात, हिचकी, बधिरता, मूकपन, कुब्जता, शरीरका ठण्डा पड़ जाना, ऊर्ध्वश्वास, अपस्मार और मतिभ्रम इन व्याधियोंमे उक्त रसके सेवनसे तत्क्षण लाभ होता है । यदि दाह होवे या तृषा लगे तो ग्रन्थकार नारियलका जल शर्बत और शीतल अर्क आदि सेवनका आदेश देता है ।

सूचिकाभरण रस (दूसरा)

तीक्ष्णं मुण्डार्कवैरूप्यनागपारदगन्धकम् ।
ताप्याभ्रालशिलाम्लेच्छविषवैक्रान्तमौक्तिकम् ॥

सप्रवालं समं सर्वं सप्तधा भावयेत्पृथक् ।
जयाजयन्तीनिर्गुण्डीभृमिजम्बूत्थचित्रकैः ॥
जम्भामृताद्रकव्योषैः काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ।
सप्तमृत्कर्पटं कृत्वा सैकतेऽग्निमधो दिनम् ॥
ज्वालयेद्रसराजं तं शीतं कूपीस्थमाहरेत् ।
तदर्द्धममृतं दत्त्वा विषत्रिकटुचित्रकैः ॥
विजयाऽऽकल्लकाद्रैश्च सप्तधा भावयेत्पृथक् ।
पित्तै र्माहिषमायूरच्छागकोलझषोद्भवैः ॥
गरलेन च सिद्धः स्यात्सूचिकाभरणो रसः ।
यवप्रमाणमात्रोऽयं यवत्रिकटुकाम्बुना ॥
सन्निपातेषु सर्वेषु शैत्यस्वेदप्रलापके ।
दातव्यो मूढतायाञ्च दन्तजिह्वागलग्रहे ॥
सूच्याऽङ्गुष्ठनखे भित्त्वा तालुके च विनिक्षिपेत् ।
प्राणे वा काञ्जिके धारा तालुकांगुष्ठमूलयोः ॥
दातव्यो जलयोगश्च क्रमः कार्योऽम्बुयौगिकः ।
महादेवोदितश्चाऽयं रसो रसमहोदधौ ॥

रसराजशङ्कर ।

अर्थ—तीक्ष्णलोहभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, रजतभस्म, नागभस्म, पारद, वलि, सोनामक्खीभस्म, अभ्रकभस्म, हरताल, मैनसिल, सिंगरफ, मीठा-तेलिया, वैक्रान्त, मोती, प्रवाल समभाग लेकर सबको निम्नलिखित वनस्पतियो की सात सात भावना दे। भांग, जयन्ती, संभालू, काठाजमुनी, चित्रक, जम्बीरी, निम्बू, गिलोय, अद्रक और त्रिकटु की। पश्चात् यथाविधि १ दिन मन्दाग्नि पर कूपीपाक करे। यह तललग्नरस है, पश्चात् निकालकर इस रससे आधा मीठातेलिया मिलाकर फिर निम्नलिखित वस्तुओंकी ७-७ भावना दे, मीठा-तेलिया, भांग, अकरकरा, अद्रकरस की फिर भैंसा, मयूर, बकरा, सुअर,

मछली इनके पित्तोंकी एक एक भावना दे; पश्चात् १ भावना सर्प विषकी देकर रखले। मात्रा—१ यव अर्थात् ४ चावल।

अनुपान—त्रिकटु क्वाथसे देवे।

गुण—सन्निपातमें शीतप्रस्वेद, प्रलाप, मूढ़ता, गले मुंहका स्तम्भ और मूर्च्छामें लाभदायक है। इसको मूर्च्छाकी स्थितिमें तालुको खुरचकर वहां मलनेसे मूर्च्छा खुल जाती है।

सूतराज रस

गन्धाश्मा सूतमुक्ताफलमखिलमिदं बीजपूराम्बुमर्द्य।
यामं गोलं विपाच्यं लवणमुपगतं चीरमृद्भ्यां प्रवेष्ट्य॥
सिद्धः स्यात्सूतराजो निखिलगदहरः क्षौद्रकृष्णासमेतो।
यक्ष्माणां पाण्डुगुदजान् श्वसनकसनहृद्व्याधिवातान्निहन्ति॥

रसावतार।

अर्थ—पारद, बलि, मोती सममाग जम्बीरीके रसमें खरल करके गोला बनाकर सम्पुटमें बन्द करके यथाविधि लवणयन्त्रमें १ दिन कूपीपाक करे। यह तललग्नरस है। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—पीपल और मधुके साथ दे।

गुण—राजयक्ष्मा, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, हृद्रोग और वातरोगमें लाभदायक है।

सूतेन्द्र रस

मुक्ताफलं प्रवालञ्च सुवर्णं रौप्यमेव च।
रसंगन्धं च तत सर्वं तोलैकैकं प्रकल्पयेत्॥
रक्तोत्पलपत्ररसै मर्दयेत्तद्घनीकृतैः।
मर्दयेत्तत्पुनर्दत्त्वा गन्धं माषचतुष्टयम्॥
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुद्ध्य प्रयत्नतः।
वालुकायन्त्रमध्यस्थां कृत्वा काचघटीं ततः॥

पाकस्तत्र तथाकार्यो भवेद्यामत्रयं तथा ।
काचपात्रात्समाकर्षेत्सिद्धं सूतं ततः परम् ॥
भक्षयेद्रक्तिकाः पञ्च रोगैराक्रान्तपुद्गलः ।
भोजनं सर्वरोगोक्तं यत्नतः कारयेद्भिषक् ॥
दुर्बलं वपुषस्त्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ।
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गञ्च नाशयेत् ॥

रसरत्न समुच्चय ।

अर्थ—मोती, प्रवाल, सुवर्णभस्म, रजतभस्म, पारद और बलि समभाग लेकर इनको लाल कमलके रसमे खरल करे जब सूख जाय तो इसमें ४ माशे बलि और मिलाकर कांचकूपीमे भरकर ३ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। यह तललग्नरस है। मात्रा—५ रत्ती।

गुण—दुर्बल क्षीणकाय शरीरको पुष्ट करता है और वीर्योत्पादक व नपुंसकतामे लाभदायक है।

सूर्यशेखर रस

रसो द्वादशगद्याणो गन्धकस्याऽत्र षोडश ।
हिंगुलस्य च चत्वारो घृष्ट्वा कूप्यां विनिःक्षिपेत् ॥
द्वात्रिंशदमृतं दद्यात्तस्मिन् सूते विशोधिते ।
मृदा प्रलिप्य तां कूपीं शोषयित्वा खरातपे ॥
धृत्वाऽथ बालुकायन्त्रे वह्निं षट्प्रहरावधिम् ।
दत्त्वोत्तार्य स्वयं शीतं सूतं माणिक्यसन्निभम् ॥
सन्निपाते च दातव्यस्त्रिदोषोत्थे च सूतकः ।
एकैव गुञ्जिका मात्रा चोत्तमा सन्निपातके ॥
रोगोद्रेकं समीक्ष्याऽथ वर्धयेद्वा विचक्षणः ।

रसचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद १२ भाग, बलि १६ भाग, सिंगरफ ४ भाग, मीठा-तेलिया ३२ भाग, सबको पीस शीशीमें भरकर ६ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। यह ऊर्ध्वलग्नरस है। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—सन्निपात और सूतिकाज्वरमे लाभदायक है।

सोमनाथी ताम्र

शुल्वं सूतसमं द्वयोरपि समो गन्धस्तदर्धः पुन-,
स्तालश्चार्द्धशिलायुतो विरचयेत्पिष्टं ततः कज्जलीम्।
लिप्त्वा ताम्रदलानि मार्तिकदृढे पात्रे निधायाऽथतत्
पाच्यं सैकतयन्त्रकेऽर्द्धदिवसं शीतं स्वतो निर्हरेत् ॥
तत्कालश्वसनाग्निमान्द्यगुदजानेकार्तिपाण्ड्वामय-,
प्लीहोरः प्रतिरोधकोष्ठमरुतो रक्तं जयेद्योजितम्।
वल्लद्वन्द्वमितं कणामधुयुतं क्षाराद्र्वारापि वा,
युक्तं सर्वकफामयघ्नमचिराद्यत्सोमनाथाभिधम् ॥

रसचूडामणि।

अर्थ—ताम्रचूर्ण और पारद बराबर लेकर खरलमें डालकर थोड़ा निम्बू रस मिलाकर खरल करनेपर पिष्टि बन जायगी, जब पिष्टि बन जाय तो निकाल कर धो लेवे, पश्चात् दोनोंके बराबर बलि, पारदके बराबर हरताल और हर-तालसे आधा मैनसिल मिलाकर शीशीमे डाल २ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। तललग्न ताम्रभस्म होगी, उसके ऊपर ताम्रसिन्दूर होगा उसे भिन्न निकाल कर दूसरीबार कूपीपाक करले। मात्रा—६ रत्ती। यह मात्रा अधिक है।

अनुपान—पीपल और शहद या यवक्षार अद्रकरसके साथ।

ताम्रभस्मके गुण—श्वास, कास, मन्दाग्नि, अर्श, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, उर-ग्रह, आध्मान, कफरोग आदिमें लाभदायक है। यहां लिखा तो है कि ताम्रके कटक वेधी पत्र करके उसपर कज्जली लेपकर पकावे। किन्तु हमने देखा है इस मे पिष्टि अच्छी रहती है।

सोमनाथी ताम्र (दूसरा)

बलिना पलमात्रेण तद्द्रव्यरजसा मितैः।
विषतिन्दुकसाम्येन वत्सनाभपटूत्तमैः॥
कलिहारिशिलाव्योषतालपूगकरञ्जकैः।
कृत्वा चूर्णं हि जम्बीरद्रवेण विद्रवीकृतम्॥
तत्सर्वं खल्वके भाण्डे विनिःक्षिप्य ततःपरम्।
कृतकण्टकवेध्यानि पलताम्रदलान्यथ॥
लिप्तपादांशसूतानि तस्मिन्कल्के निगूहयेत्।
एतत्सिद्धमुखागतं विनिहतं श्रीसोमदेवोदितं,
गुञ्जायुग्ममितं कणाज्यसहितं सत्पथ्यसंसेवितम्।
गुल्मप्लीहशकृद्विबन्धजठरं शूलाग्निमान्द्यामयं,
वातश्लेष्मलशोषपाण्डुनिचयं जूर्त्यादिकं नाशयेत्॥

रसचूडामणि।

अर्थ—बलि ४ तोला, कुचला ४ तोला, मीठातेलिया, नमक सैंधव, लाङ्गली, मैनसिल, त्रिकटु, हरताल, सुपारी और करञ्जमज्जा प्रत्येक ८ तोला सबको जम्बीरी निम्बूमें पीसकर कल्क बनावे। दूसरी ओर दूसरे खरलमे पारद और ताम्रचूर्ण ४-४ तोला लेकर इनकी पिष्टि करे और उसे जलसे धोकर उक्त कल्क मिलाकर खरल करे जब सूख जाय तो शीशीमे डालकर ४ दिन यथाविधि कूपीपाक करे। उक्त ताम्र बनाते समय ग्रन्थकार कहता है कि कल्कको कंटक वेधी ताम्रपत्र पर लेप करे, किन्तु हमने देखा है कि ताम्रपत्रकी अपेक्षा पारदके साथ पिष्टि बनाकर कूपीपाक करनेपर ताम्रभस्म अच्छी बनती है।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण—गुल्म, प्लीहा, मलबन्ध, उदररोग, शूल, मन्दाग्नि, वातश्लेष्मरोग, शोथ, पाण्डु और ज्वरमे लाभदायक है।

स्थौल्यगज केसरी

रसेन्द्रं रजतं तार्प्यं गगनं ताम्रलोहकम् ।
स्वर्णञ्च क्रमवृद्धानि मर्दयेत्पूरवारिणा ॥
अन्येन चाम्लवर्गेण मर्दयेत्सप्तवासरान् ।
काचकूप्यां निधायाऽथ पचेद्यामाष्टकद्वयन् ॥
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा गृह्णीयात्तञ्च मर्दयेत् ।
आर्द्रकस्वरसेनैव द्रोणपुष्पीरसेन च ॥
बृहत्याः पत्रतोयेन बीजतोयेन वा पुनः ।
प्रत्येकं दिनमेकं हि भावनां दापयेत्क्रमात् ।
पिप्पलीमधुना सार्धं चैतद्गुञ्जाद्वयं भजेत् ॥
स्थूलदुर्दिनविनाशने मरुत्स्थौल्यपर्वतविनाशनेऽशनिः ।
स्थौल्यदोषरसशोषणात्तमः स्थौल्यरोगगजकेसरीरसः ॥

अर्थ—रससिन्दूर, रजत, सोनामक्खी, अभ्रक, ताम्र, लोह, सुवर्ण इन सबकी भस्म क्रम विवर्द्धित भाग लेवे सबको बिजौरा व अन्य अम्लवर्गमें खरल करके सुखाकर शीशीमें भर ८ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे। यह तल लग्नरस है। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—पीपल और शहदके साथ।

गुण—यह रस मोटापन = अत्यन्त स्थूलतामें लाभदायक है।

स्वच्छन्दनायक रस

सूतगन्धकलोहानि रौप्यं सम्मर्दयेत्त्रयम् ।
सूर्यावर्तस्य निर्गुण्ड्यास्तुलस्या गिरिकर्णिजैः ॥
अग्निमन्थार्द्रजै र्वह्निविजयाग्निजयासहा- ।
काकमाचीरसैरासां पञ्चपित्तैश्च भावयेत् ॥
अन्धमूषागतं पश्चाद्वालुकायन्त्रगं दिनम् ।
आदाय चूर्णितं खादेन्माषैकं चार्द्रकद्रवैः ॥

निर्गुण्डीदशमूलानां कषायं सोषणं पिवेत् ।
अभिन्यासं निहन्त्याशु रसः स्वच्छन्दनायकः ॥
छागीदुग्धेन मुद्गैर्वा पथ्यमात्र प्रयोजयेत् ॥

रसचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, बलि, लोहभस्म और रजतभस्म सब समभाग लेकर इनको हुरहुर, संभालू, तुलसी, विशनुक्रान्ता, अरणी, अद्रक, चित्रक, भांग, हरताल, माषपर्णी, मकोय इनके रसमे तथा पञ्चपित्तमें भावित करके गोला बनाकर सम्पुटमे रख १ दिन यथाविधि कूपीपाक करे । मात्रा—१ माशा ।

अनुपान—अद्रक, दशमूलका क्राथ, संभालूरस, त्रिकटु आदिसे देवे ।

पथ्य—बकरीका दूध या मूंगका यूष दे ।

गुण—अभिन्यास सन्निपातमे लाभदायक है ।

स्वच्छन्दनायक रस (दूसरा)

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं सूतांशं मृतहेमकम् ।
मृतरौप्यञ्च ताम्रञ्च सर्वं तुल्यं पृथक् पृथक् ॥
सूर्यावर्तस्य निर्गुण्ड्यास्तुलस्याश्चार्द्रकद्रवैः ।
भृङ्गोन्मत्ताखुकर्णीनामग्निकर्ण्यग्निमन्थयोः ॥
तिलपर्णीचित्रकयोः काकमाच्या रसैः सह ।
मर्दयेत्त्रिदिनं खल्वे शुष्कं पित्तै र्विभावयेत ॥
मात्स्यमाहिषवाराहच्छागमायूरजै र्दिनम् ।
अन्धमूषागतं पाच्यं वालुकायन्त्रगं दिनम् ॥
आदाय चूर्णितं खादेन्माषैकं चार्द्रकद्रवैः ।
निर्गुण्ड्या दशमूलानां कषायं सोषणं पिवेत् ॥
अभिन्यासं निहन्त्याशु रसः स्वच्छन्दनायकः ।
पथ्यं स्यान्मुद्गयूषेण क्षीरै र्वाऽऽजैर्विधापयेत ॥

निघण्टुरत्नाकर ।

अर्थ—पारद १ भाग, बलि २ भाग, सुवर्णभस्म पारदसे चौथाई ¼, रजतभस्म और ताम्रभस्म पारदके बराबर सबको प्रथमके स्वच्छन्दनायक रसमें जो वनस्पतियाँ आई हैं उनमें खरल करके सम्पुटमें बन्द कर १ दिन यथाविधि कूपीपाक करे,

मात्रा—१ मात्रा।

गुण—अभिन्यास सन्निपातमें लाभदायक है।

स्वच्छन्दनायक रस (तीसरा)

मृतं सूतं तीक्ष्णकान्तं तालं माक्षिकगन्धकम्।
तुल्यांशं मर्दयेद्द्रावै विदार्यार्द्रकसम्भवैः॥
भृङ्गचुत्थैः काकमाच्युत्थै गिरिकर्णीद्रवै दिनम्।
सम्मर्द्य भाण्डगं रुद्ध्वा पचेन्मन्दाग्निना दिनम्॥
व्योषाग्निगन्धकविषैररण्युभयटङ्कणैः।
समांशैश्चूर्णितै मिश्रैस्तुल्यांशं पूर्वसंयुतम्॥
त्रिदिनं मर्दयेद्द्रावैं मुण्डीनिर्गुण्डिभृङ्गजैः।
अष्टगुञ्जामितं खादेद्रसः स्वच्छन्दनायकः॥
सर्ववातहरः ख्यातो ह्यनुपानमिदं पिबेत्।
लशुनं सैन्धवं तैलं कर्षमात्रं सुखावहम्॥

रसरत्नाकर।

अर्थ—रससिन्दूर, तीक्ष्णलोहभस्म, कान्तलोहभस्म, हरताल, सोनामक्खी और बलि सब समभाग इन सबको विदारीकन्द, अद्रक, भृङ्गराज, मकोय और विष्णुक्रान्ता इनके रसमें खरलकर सम्पुटमें बन्द करके १ दिन यथाविधि कूपीपाक करे; पश्चात् निकालकर त्रिकटु, चित्रक, बलि, मीठातेलिया, दोनों अरणी टङ्कण सब रसके बराबर चूर्ण करके मिलाकर तीन दिन गोरखमुण्डी, संभालू और भृङ्गराजके रसमें खरल करके ८ रत्तीकी गोली बनाले।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—लहसुन, नमक और तेलमें मिलाकर दे।

गुण—समस्त वातव्याधियोंमें लाभदायक है।

हरगौरीसृष्ट रस

शुद्धं सूतं चतुर्भागं सूतार्द्धं मृतताम्रकम्।
गन्धकञ्च द्वयोस्तुल्यं मस्तुना मर्दयेद्दिनम्॥
गोलकं बन्धयेद्वस्त्रे बालुकायन्त्रगं पचेत्।
मन्दाग्निना पचेत्तावद्यावत्तप्ताश्च बालुकाः॥
स्प्रष्टुं न शक्यते तापमथोद्धृत्य विचूर्णयेत्।
धात्रीफलरसै भाव्यं सप्तधा गोक्षुरेण च॥
श्लक्ष्णचूर्णं ततः कृत्वा सर्वं क्षीरेण गोलयेत्।
वल्लद्वयीं वटीं कुर्याद्घृतमध्ये विपाचयेत्॥
स्वाङ्गशीताञ्च तां खादेत्प्रत्यहं पाचितां घृतैः।
महिषीक्षीरचुलुकीमनुपानञ्च सर्वदा॥
हरगौरीसृष्टरसः सर्वमेहकुलान्तकः।
दुग्धौदनं घृतं पथ्यं शाकञ्चुञ्चुफलं भवेत्॥

रसरत्नाकर।

अर्थ—पारदसे आधा ताम्रभस्म, बलि दोनोंके बराबर सबको दधिमें खरल करके गोला बनाय सम्पुटमे रखकर १ दिन यथाविधि कूपीपाक करे। पश्चात् निकालकर आंवलारस गोखरू क्राथकी एक २ भावना देकर ६ रत्ती की गोली बनाले। इन गोलियोंको घीमें डालकर पकाले पश्चात् निकालकर रखले। मात्रा—१ गोली। अनुपानमें भैसका दूध एक चुल्लू।

गुण—यह रस समस्त प्रमेहोंमे लाभदायक है।

हररुद्र रस

तीक्ष्णं शुल्वं नागतारं स्वर्णञ्च मारितं पृथक्।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च क्रमात्षट् शुद्धसूतकात्॥

चाङ्गेर्याश्च द्रवे मर्द्य दिनैकं कृतगोलकम् ।
मृगाङ्कवत्पचेत्स्थाल्यां वालुकाभिः प्रपूरितम् ॥
उद्‌धृत्य चूर्णयेच्छ्लक्ष्णां हरुद्रो रसोत्तमः ।
मृगाङ्कवत्क्षयं हन्ति तद्वन्मात्रानुपानकम् ॥ निघण्टुरत्नाकर ।

अर्थ—तीक्ष्णलोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, रजतभस्म, सुवर्णभस्म, पारद इन्हें क्रम विवर्द्धित भाग लेकर चांगेरीके रसमे एक दिन खरल करके गोला बनाकर सम्पुटमे बन्द करके यथाविधि कूपीपाक करे ।

मात्रा—१-२ रत्ती ।

अनुपान—मृगाङ्कवत अनुपानसे देवे ।

गुण—क्षयमें लाभदायक कहा है ।

हाटकाख्य रस

रसकर्षाश्च चत्वारो यशदं तावदेव तु ।
शोधितं चूर्णितं कृत्वा उभे खल्वतले क्षिपेत ॥
द्वयोः सम्मेलनं कृत्वा मर्दयेद्याममात्रकम् ।
रसाद्‌द्विगुणितं गन्धं रसार्द्धं नरसारकम् ॥
सर्वेषां कज्जलीं कृत्वा मर्द्य जम्बीरवारिणा ।
दिनैकं मर्दनं कृत्वा सम्यक् शुष्कं समाचरेत् ॥
मृत्कर्पटप्रलिप्तायां काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।
सिकतायन्त्रके पाच्यं क्रमाद्‌द्वादशयामकम् ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्‌धृत्य रसञ्चामीकरप्रभम् ।
गुञ्जार्द्धं मधुना सार्धं लिहेत्प्रातः समुत्थितः ॥
शर्करासंयुतं पेयं द्विकर्षञ्च गवां पयः ।
फणिवल्लीदलेनैव सर्वरोगप्रशान्तये ॥
एककालं द्विकालं वा सायं प्रातर्लिहेत्सुधीः ।
बलवर्णकरं वृष्यं पुंसां पुंस्त्वविवर्धनम् ॥

मेहत्वं षराढदोषत्वं नाशयेन्नात्र संशयः ।
क्षयं क्षयकृतं व्याधिं दौर्बल्यं नाशयेत्क्षणात् ॥
अनुपानविशेषेण सर्वरोगप्रशान्तकृत् ।
हाटकाख्यो रसो नाम सर्वत्र विजयप्रदः ॥

लघुवैद्यचिन्तामणि ।

अर्थ—पारद, यशद समभाग सम्मेलन बनाकर इसमे पारदसे दुगुना बलि और पारदसे आधा नवसादर मिलाकर सबको जम्बीरी निम्बूके रसमें १ दिन खरल करके शीशीमे भर १२ प्रहर यथाविधि कूपीपाक करे यह यशदका बलिकाइद या भस्म है। ऊपरके भागमे रससिन्दूर होगा उसे दूसरीबार कूपी-पाक करले। मात्रा—आधी रत्ती।

अनुपान—पानके रसके साथ दे।

गुण—बलवर्द्धक, पुष्टिकर और नामर्दीमे लाभदायक है। क्षय, दुर्बलता मे उपयोगी लिखा है।

हेमप्रभ रस

शुद्धहेमरसताप्यगन्धकं शिग्रुतुत्थकशिलोषककल्कः
भानुश्रृङ्गिविषवह्निजयन्तीपाठलाङ्गलिसुनीन्द्रपयोभिः ॥
प्रत्येकशः प्रतिदिनं प्रविभावितोऽयं,
पिण्डस्ततो लवणयन्त्रपुटे विपक्वः ।
व्योषार्द्रकाञ्चिततनुर्भृशमाशु हन्ति,
हेमप्रभः क्षयरुजं विधिसेवितोऽयम् ॥
मधुना पिप्पलीभिर्वा सघृतैर्मरिचैस्तथा ।
गुञ्जाद्वयं त्रयं वाऽस्य देयं यक्ष्मापनुत्तये ॥
जयपालरजोभिर्वा गुडाढ्या गोवृतयुक्तया ।
देयं शूलिनि गुल्मे च रोगेऽस्मिस्तु विशेषतः ॥

सन्निपाते दद्यात्तैनमार्द्रकद्रवमिश्रितम् ।
कादिवर्ज्यंचरेत्पथ्यं हृद्यं वल्यञ्च पूर्ववत् ॥

रसावतार ।

अर्थ—सुवर्णभस्म, पारद, सोनामक्खी, बलि, प्रवालमूल, नीलाथोथा, मैनसिल और टङ्कण समभाग लेकर इनको आक, मीठातेलिया, चित्रक, जयन्ती, पाठा, कलिहारी, अगस्तियाके रस या क्वाथकी एक एक भावना देकर गोला बनाकर सम्पुटमे रख लवणयन्त्रमे ४ प्रहर यथाविधि पकावे ।

मात्रा—२-३ रत्ती ।

अनुपान और गुण—त्रिकटु या अद्रकरस और शहदसे राजयक्ष्मामें, जयपालबीजचूर्ण सोंठ घृतसे शूलमे, अद्रकरस और शहदसे सन्निपातमें लाभदायक है ।

क्षयान्तक रस

सूततुल्यं व्योमसत्त्वं तयोस्तुल्यञ्च गन्धकम् ।
कुमारीस्वरसैर्मर्द्यं यन्त्रे सैकतके पचेत् ॥
दिनद्वयान्ते संग्राह्यं भक्षयेद्रक्तिमात्रकम् ।
क्षयं शोफं तथा कासं प्रमेहञ्चापि दुष्करम् ॥
पाण्डुरोगञ्च कार्श्यञ्च जयेच्छीघ्रं न संशयः ॥

टोडरानन्द ।

अर्थ—पारद, अभ्रकसत्त्व बराबर और दोनोंके बराबर बलि, इनको कुमारीरसमे खरल करके कांचकूपीमें भर २ दिन यथाविधि कूपीपाक करे ।

मात्रा—१ रत्ती ।

गुण—क्षय, शोथ, खांसी, प्रमेह, पाण्डुरोग और कृशता आदिमे लाभदायक है ।

॥ इति शम् ॥

परिभाषिक शब्दावली

अणु Molecule
अञ्जनम् Antimony
अलुमीनियम् Aluminium
आर्गन Argon
इरीदियम् Iridium
इण्डियम् Indium
इरबियम् Erbium
इत्रबियम् Ytterbium
इत्रियम् Yttrium
उद्जन Hydrogen
उत्प्रेरक Catalyser
ऊष्मजन Oxygen
ऊष्माइद Oxide
ऋणात्मक Negative
ऋणाणु, ऋणु प्रपराणु Electron
एक्टीनियम् Actinium
ओसमियम् Osmium
कज्जलिका Carbon
कज्जल द्विऊष्माइद Carbon dioxide
काडमियम् Cadmium
कैलसियम् (चूनजम) Calcium
कोलम्बियम Columbium
कौवाल्टम् Cobalt.
क्रिप्तन Krypton
क्रोमियम् Chromium
क्वथनाङ्क Boiling Point
गद्लीनियम् Godolinium
गुणाक अनुपात का नियम Law of Multiple Proportion.
गैलियम् Gallium
घन Density
चाप Pressure
चुक्राम्ल Acetic Acid
जर्मेनियम् Germanium
जिरकोनियम् Zirconium
जेनोन Xenone
टिटेनियम् Titanium
टेलूरिका Tellurium
टंकणिका Boron

तत्त्व Element
तन Volume
ताप Heat
ताम्रम Copper
ताम्रवल्लिकाइद् Copper Sulphide
तिरवियम Terbium
तन्तुलम् Tantalum
तंगस्तनम Tungsten
थूलियम Thulium
थैलियम् Thallium
थोरियम Thorium
दिस्प्रोजियम Dysprosium
द्रवणाङ्क Melting Point
धन प्रपराणु Proton
धनात्मक Positive
धनाणु Proton
निक्लिम Nickel
नियोदीमियम Neodymium
निश्चित अनुपात का नियम — Law of Definite Proportion.
नीयन Neon
नूतन Niton
नैलिका (नैली) Iodine
नोनजन Fluorine
पदार्थ Matter
परमाणु Atom
पवन Nitrogen
पवनाम्ल Nitric Acid
पवनियां Ammonia
पवनियम् पवनेत Ammoniam Nitrate.
पलादियम् Palladium
पारद Mercury
पारदस वल्लिकेत Mercurous Sulphate
पांशुजम् Potassium
पोलोनियम Polonium
पृष्ठतनाव Surface tension
प्रेजियोदेमियम् Praseodymium.
प्लाटिनम् Platinum
फास्फुरिका Phosphorus
वल्लिका (वल्लि) Sulphur
वल्लिकाम्ल Sulphuric Acid
विस्मिथम् Bismuth
बेरियम् Barium

बेरिलियम् Berrylium
ब्रोमीनिका Bromine
मात्रा Mass
मेग्नेजियम् Magnesium
मेग्नेजम Manganese
मेग्नीज द्विऊष्माइद Manganese dioxide
मैसूरियम् Masurium
मोलिबदेनियम् Molybdenum
यशदम् Zinc
यूरेनियम् Uranium
योरूपियम् Europium
यौगिक Compound
रजतम् Silver
रवा Particle
रुबीडियम् Rubidium
रूथेनियम् Ruthenium
रेडियम् Radium
रेनियम् Rhenium
रोडियम् Rhodium
लवणजन Chlorine

लवणाम्ल Choric Acid
लीथियम् Lithium
लुटेशियम् Lutecium
लैन्थेनम् Lanthanum
लोहम् Iron
वंगम् Tin
वंगक ऊष्माइद Stannic Oxide
वंगक बल्किकाइद Stannic Sulphide
वंगस ऊष्माइद Stannous Oxide.
वंगस बल्किकाइद Stannous Sulphide
वैनाडियम Vanadium
व्युत्क्रम अनुपात का नियम Law of Reciprocal Proportion
शक्ति Energy
शैलिका Silicon

समरूपक नियम — Law of Isomeric Proportion

समेरियम् Samarium

स्थिर अनुपात का नियम — Law of Constant Proportion

सिलीनियम Selenium

सीजियम Caeium

सीरियम Cerium

सीसम Lead

सुवर्णम् Gold

सैंधजम् Sodium

सैंधजमगन्धेत Sodium Sulphate

सोमलिका Arsenic

स्ट्रांशियम् Strontium

स्केंडियम् Scandium

हाफनम् Hafnium

हिमजन Helium

होलियम् Holmium

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६३	११	सहमग्नि	सहश्रग्नि

उपोद्घात शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	१७	दर्खन	दर्शन
१६	१	पाश्चात्यज्ञान	प्राच्यज्ञान
१८	६	निश्चय	निश्चित
१६	२४	निन्न	निम्न
२३	२४	धान्यकट	धान्यकटक
३३	२४	चतुःशती	चतुःशीत
३५	१२	निकाला है	निकला है
४४	२५	यौगिकको	यौगिक किसी
५२	६	पद्यछेदन	पदाच्छेदन
५६	७	मध	मद्य
६४	१४	जलसे	जलतत्त्व
६५	१६	गेवेर	गेबर
६६	८	धातुतत्त्व	अधातुतत्त्व
६६	१४	धातुतत्त्व	वायुतत्त्व
११०	६	पारद ३८२	पारद द्रवांक ८२
११०	६	पारद ६७५	पारद क्थनांक ३७५
११०	२५	लगते	लगते है
११२	२५	सिलाकर	मिलाकर
११४	२२	सीतली	शीतल

कूपीपक्व रस-निर्माण ग्रन्थ शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	६	परिश्रुत	परिस्रुत
६	१२	Mxt	Mixt
१४	१३	परिस्कृत	परिष्कृत
१४	१७	द्वार	द्वारै
१५	१५		रसकामधेनु
१५	१७	सीतल	शीतल
२५	१७	रासायिक	रासायनिक
२६	२०	काकी	काफी
२७	१४	प्रसंगवस	प्रसंगवश
२८	२१-२४	परधि	परिधि
३५	८	मृगा	मृषा
३६	१	ज्वालन	ज्वलन
४०	१८	देने	देना
४४	११-१३	पिष्टी	पिष्टि
४६	१६	पटती	पड़ती
४७	२०	भागेकं	भागैकं
४८	१	मृद	मृद्
४८	२४	पीलाई	पिलाई
४८	१४	करा	कर
७२	६	मोरक्को	मोरक्को
७३	१०	स्वभाविक	स्वाभाविक
७४	२०	रसाणव	रसार्णव
८०	१०	तत्किंचित्	सार्किंचित्
९०	३	सीतल	शीतल

कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान ग्रन्थकी महत्ता पर

कुछ सम्मतियां

श्रीयुत बालचन्द्र जी नाहटा सरदार शहर, बीकानेर।

१६-२-४२ को पत्र में लिखते हैं—बहुत अर्से के बाद आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। दो कारणोंसे—एक तो आपको बधाई देने के लिये और दूसरे कुछ जानने के लिये।

बधाई! आपके अनुपम ग्रन्थ "कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान" के प्रकाशनार्थ है जिसको पढ़कर मैंने बहुत अधिक व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त किया। मैं आपके उक्त ग्रथमें दिये विधानकी विद्युत भट्टी बनानेकी इच्छा रहने पर भी समयाभावसे कलकत्तेमें न बना सका। किन्तु सामान साथ लाकर एक विद्युत शास्त्री मित्र की सहायता से यहाँ उसे तय्यार किया और उसमें १० तोला पारद, १० तोला गन्धक, १ तोला सुवर्ण डालकर उस विद्युत भट्टीमें मकरध्वज चढ़ाया। १००० हजार वोल्ट प्रति घंटेके हिसाबसे विद्युत शक्ति खर्च करके ६ घण्टेमें मकरध्वज बना ही लिया।

जिस परीक्षाकी इच्छा वर्षोंसे थी और जिसके लिये कलकत्ते की एक फर्मने विद्युत भट्टीकी कीमत का इस्टीमेट २५०) का दिया था वह विद्युत भट्टी आपकी कृपा से १५) या २०) रुपये में ही बनाकर देख ली; देख ही नहीं ली उसपर कूपीपक्वरस तय्यार भी कर लिया।

इसके लिये आपको बधाई नहीं अनेकानेक धन्यवाद देना चाहिये। किन्तु यदि इतना ही होता तो धन्यवाद देकर ही रह जाता आपने तो

उसमें और और इतनी अधिक प्रायोगिक बाते दी हैं जिसके लिये धन्यवाद पर्याप्त नहीं। बधाई इसलिये कि आप अपने प्रयत्नमें सफल हुए।

आयुर्वेदिक कॉलेज पत्रिका, काशी विश्वविद्यालय. अक्टूबर १९४१

कूपीपक रस निर्माण विज्ञान—आयुर्वेद विज्ञान ग्रंथमाला का छठा पुष्प। लेखक व भाषाकार हरिशरणानन्द वैद्य, प्रकाशक पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर, पृष्ठ संख्या—उपोद्घात १२०, शेष ३७८, छपाई सफाई और कागज आकर्षक।

उपर्युक्त पुस्तक कूपी द्वारा पके हुए रसों पर लिखी गई है। लेखक उन वैद्योंमें से हैं जो हर एक विषयको वैज्ञानिक तरीकोंसे समझने और समझानेका प्रयत्न करते हैं। पूरी पुस्तक इस बात का प्रमाण है। उपोद्घात विद्वत्ता पूर्ण है। रसशास्त्र और उससे सम्बन्धित अन्य विषयों के इतिहास का संग्रह जिस परिश्रमसे किया गया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। स्थान-स्थान पर विषयको नवीन विज्ञानके अनुसार स्पष्ट किया गया है। कई रसों पर प्रयोगोंका वर्णन किया गया है। अग्नि देने के विषयमें निश्चित शतांश दे कर लेखकने रसशास्त्रकी दृष्टिसे आयुर्वेदज्ञ लोगोंका उपकार ही किया है। पृष्ठ १५५ से अन्त तक शास्त्रोक्त कूपीपक्व रसका वर्णन है। नवीन आयुर्वेद जगत् को ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आशा वैद्य समुदाय इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

"सुधानिधि" इलाहाबाद जून ४१

स्वामी हरिशरणानन्द जी ने यह बहुतही गवेषणा पूर्ण और महत्वकी पुस्तक लिखी है। चन्द्रोदय, मकरध्वज, रससिन्दूर, स्वर्णराजवंगेश्वर, समीर पन्नग आदि कूपीपक्व रस कहलाते इस में छोटे बडे सब मिलाकर ढाई सौ से अधिक कूपीपक्व रसोंकी निर्माण विधि, अनुपान और गुण लिखे जाते हैं। किसी किसी रसके सम्बन्धमें यह भी लिख दिया गया है कि इसमें कितनी और कैसी आंच देनी चाहिये। इस पुस्तकमें सबसे महत्वकी बातें १२० पृष्ठ के उपोद्घातमें लिखी हुई हैं। रस निर्माणशाला, उसके उपकरण

शोधन, रस-निर्माण के सिद्धान्त आदि पर अनुभव पूर्ण अच्छा प्रकाश डाला गया है। स्वामी जी की निर्मित अब तक की सभी पुस्तको में यह शिरोमणि है। रसायन विद्याके इतिहास विवेचनके समय आदि कुछ बातोंमें मतभेदभी हो सकता है, किन्तु हम उस पर नहीं जाकर इसके गुण गौरवका अभिनन्दन करते हैं। पुस्तक सर्वथा संग्राह्य है।

कविराज प्रतापसिंह प्राणाचार्य व रसायनाचार्य, बनारस।

मैंने आपकी "कूपीपक्व रसनिर्माण विज्ञान" पुस्तक का अध्ययन किया, इसकी भूमिका प्रत्येक वैद्यको रस-निर्माण करने से पूर्व अवश्य पढ़नी चाहिए। भूमिकामें स्वामीजीने आवश्यकीय नवीन रसायन शास्त्रके उपादेय अंशका, गागर में सागर भरनेकी किम्वदन्तीके अनुसार, सारभाग संगृहीत कर दिया है। इसके स्वाध्यायसे वैद्योंका बड़ा उपकार होगा।

स्वामीजीकी ओजस्विनी लेखनीका यह उज्ज्वल ग्रन्थ रत्न है। इस सफल प्रयत्नके लिए स्वामीजी वैद्य समाजमें धन्यवादार्ह हैं।

आयुर्वेदकी अभिवृद्धि किस प्रकारकी होनी स्वामीजी आवश्यक समझते हैं, इसका इस पुस्तकमें प्रचुर प्रकाश मिलता है। स्वामीजी क्रॉतिवादके पक्षपाती हैं। आयुर्वेदमें कैसे क्रॉति हो सकती है ? इसका स्वरूप सुस्पष्ट इस पुस्तकमें वर्णित है। आशा है वैद्य-समाज पुस्तकको अपनाकर लेखकका उत्साह वर्द्धन करेगा।

डा० रामनारायण वैद्य शास्त्री कानपुर—

श्रीमान् स्वामी जी ! आपकी भेजी हुई पुस्तक "कूपीपक्व रसनिर्माण विज्ञान" मैंने पढ़ा। बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है। प्राचीन रसायन शास्त्रको आधुनिक विज्ञानके साथ मिलान करके बहुत भले प्रकार समझाया गया है। स्थान स्थान पर आपकी सम्मति और टिप्पणियां बड़े मारके की हैं। भूमिका भी अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर आपने बड़ी ला-जवाब लिखी है। इससे सभी वैद्य और आयुर्वेद प्रेमियोको बड़ा लाभ होगा। ऐसी पुस्तककी बड़ी आवश्यकता थी। आपने उस कमी की पूर्ति की है, एतदर्थ बधाई।

आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मा जी लाहौर भूतपूर्व प्रधान अ० भा० वैद्य सम्मेलन

कूपीपक्व आयुर्वेदिक रसायनों पर पहले कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं लिखा गया। इस विषयका मैं पहला ही ग्रन्थ देख रहा हूँ। इस बृहत् ग्रन्थमें कूपीपक्व रसायनों के सम्बन्धमें प्राचीन और नवीन शैलीसे विस्तृत और उपादेय सूचना एकत्रित की गई है। स्वामीजी की शैली सदा की भाँति सरल और स्पष्ट है। प्रत्येक बात बिना हेर-फेर के कही गई है। नवीन रसायन शास्त्र (Modern Chemistry) का सम्मिश्रण करके भी कुछ योग दिए गए हैं जिनका अध्ययन और अनुभव रोचक और प्रकाश-जनक सिद्ध होना चाहिए। पुस्तक ग्रन्थ संग्रहके रूपमें तथा चिकित्सक की ज्ञानवृद्धिके लिए भी पढ़ने और संग्रह करने योग्य है,

नृसिंहदेव शर्मा शास्त्री B.A. आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न, रावलपिंडी—

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी,

अध्यक्ष पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर द्वारा रचित रसायन की नवीन पुस्तक, कूपीपक्व-रस निर्माण विज्ञान मैंने आद्योपान्त पढ़ी है। स्वामी जी की यह मौलिककृति है जिसे पढ़ कर कोईभी वैद्य रसोंका बिना कुछ हानि उठाये निर्माण कर सकता है। स्वामी जी ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के इस विषय पर गम्भीर और मौलिक विवेचन किया है। पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठ से स्वामी जी के अत्यन्त गम्भीर अध्ययन मनन और विशाल अनुभव का पता लगता है। पुस्तक वैद्य समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी और विद्वानों के लिए संग्रहणीय है।